भौमर्षि

(मराठी उपन्यास से अनूदित)

भौमर्षि

आचार्य विनोबा भावे के जीवन पर केन्द्रित उपन्यास

शुभांगी भडभडे

अनुवाद

डॉ. ओम् शिवराज

ऋता सेंगर
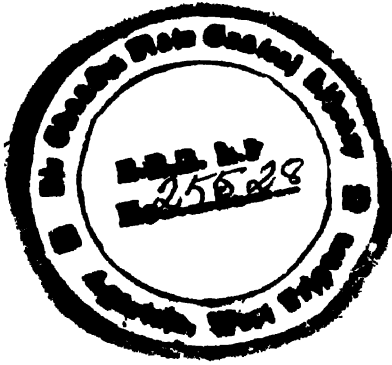
भारतीय ज्ञानपीठ

ISBN 81 - 263 - 1036 - 7

राष्ट्रभारती
लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक 756

प्रकाशक :
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नयी दिल्ली-110 003

मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली 110 032

मूल्य : 250 रुपये

BHOUMARSHI
(Marathi Novel)
by Shubhangi Bhadbhade

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road
New Delhi-110 003

Price : Rs. 250

जिनके जीवन का प्रत्येक क्षण दूसरों को
सुखी करने के लिए कर्म करने में व्यतीत
होता है—उन सभी कर्मयोगी महामानवों को
सादर समर्पित

—सौ. शुभांगी भडभडे

भौमर्षि के व्याज से

महात्मा गाँधी के आध्यात्मिक अनुयायी और भूदान यज्ञ के प्रणेता के रूप में आचार्य विनोबा भावे के व्यक्तित्व से समस्त संसार परिचित है। विनोबा महात्मा गाँधी के आदर्श का अनुसरण करते हुए सन् 1941 ई. तक पवनार और पवनार के परिसर में घूम-फिर रहे थे। सन् 1921 से 1940 ई. के मध्य कालखण्ड में विनोबा परमधाम आश्रम में अखण्ड साधना और साधना में अनेक प्रयोग करते हुए ऋषितुल्य जीवन व्यतीत कर रहे थे। खान-पान के प्रयोग, कृषि के प्रयोग, स्वावलम्बन के, कांचनमुक्ति के, घूमने-फिरने के, परिश्रम के, सूत-कताई के, गाँव-गाँव में स्वच्छता के—ऐसे अनेक प्रयोग वे करते थे। वे अत्यन्त प्रसन्न थे। जब सन् 1941 में महात्मा गाँधी ने प्रथम सत्याग्रही के रूप में विनोबाजी का चयन किया तो उसी समय समस्त संसार का ध्यान उनकी ओर गया। कांचनमुक्ति का प्रयोग छोड़कर वे पदयात्रा से सर्वोदय सम्मेलन के लिए तेलंगाना की ओर चल पड़े।

तेलंगाना में अतिवादी, कम्युनिस्ट और जमींदारों के कारण साधारण जनता, दारिद्र्यरेखा के नीचे जीनेवाली जनता, पिस रही थी। ऐसे समय में अहिंसा के मार्ग से साम्यवाद लाकर सबका कल्याण हो, महात्माजी की इस इच्छा को विनोबाजी जानते थे। विनोबाजी कोई 'वाद' नहीं चाहते थे। वे चाहते थे साम्ययोग। इस साम्ययोग के प्रयोग इस पदयात्रा से सफल हों, यह विनोबाजी की इच्छा थी।

और फिर प्रारम्भ हो गयी अविरत पदयात्रा। शिवरामपल्ली में सम्पन्न हुए सर्वोदय सम्मेलन में भाग लेकर वे लौट रहे थे कि मार्ग में हैदराबाद के निकट पोचमपल्ली में मुकाम करते समय चालीस हरिजन-परिवारों ने उनसे कृषि-भूमि की माँग की और उसी सभा में श्री रामचन्द्र रेड्डी ने 100 एकड़ भूमि का दान दिया। और विनोबाजी को दान-ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया। साथ ही ईश्वर के अस्तित्व का साक्षात्कार हो गया। कर्मयोग पर अखण्ड निष्ठा रखनेवाले विनोबाजी को जीवन का नया आयाम मिल गया। नया इतिहास रचा जाने लगा। विनोबाजी की पदयात्रा सम्पूर्ण भारत में प्रारम्भ हो गयी। कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर के पीरपंजाल हिमाच्छादित

पर्वत मालिकाओं तक और द्वारिका से गंगासागर तक तथा सीमावर्ती पूर्व-पश्चिम पाकिस्तान और बंगलादेश तक यह पदयात्रा—भूदान यात्रा—आनन्द यात्रा—मैत्री यात्रा चल रही थी। विनोबाजी 52 हजार मील अखण्ड अविरत चले।

सम्पत्ति-दान, भूदान, ग्रामदान—इनकी गणना की जाय तो विनोबाजी ने विश्व-विक्रम किया है, यही कहना पड़ेगा। स्वार्थी संसार की यह नि:स्वार्थता तथा हिंसाचारी जगत् की यह अहिंसा और इस अतिरेक से साम्यवाद विनोबा ही घटित कर सके। और भूदान में मिली हुई लाखों एकड़ भूमि अनासक्त ब्राह्मण योगी ने स्पर्श भी न करते हुए भूमिहीनों को दान कर दी।

ऐसा यह आनन्दमय व्यक्ति प्रथम साढ़े तेरह वर्ष पैदल घूमता रहा। बाद में दो वर्ष उसने मोटर से तूफानी यात्रा की। पैदल घूमनेवाले इस यात्री के पैर कमल की पंखुड़ी जैसे कोमल थे। गाँव-गाँव में स्वच्छता करनेवाले उसके हाथ अत्यन्त सुकोमल थे। उनकी बातें छोटे बच्चे जैसी निष्कपट और सरल सीधी थीं। उनका कण्ठ छोटा था। परन्तु उनके गाने का स्वर अत्यन्त मधुर और उच्च था। कारागार की भित्तियों को पारकर वह आवाज वातावरण को प्रसन्न करती फिरती थी। उनकी हँसी निरागस् और प्रफुल्ल शतदल जैसी थी। उस हँसी में इतनी निरागसता होती थी कि देखनेवाला प्रसन्न होता था। वे निरन्तर बोलते हुए भी अन्तर्तम में वे सबसे दूर एकाग्र होकर ईश्वर-चिन्तन करते रहते थे। दिन के प्रत्येक क्षण का हिसाब रखते हुए और तदनुसार कार्य करते हुए वे अनासक्त भी थे।

वे उत्तम लेखक थे। अखण्ड कर्म-साधना होने पर वे मध्य रात्रि में अथवा ब्राह्म मुहूर्त में लिखते थे। यह शब्दयोगी रात में जागने पर भी दिन में वैसा ही प्रसन्न दिखाई देता था। दो सौ से अधिक ग्रन्थ लिखनेवाला यह शब्दप्रभु अद्वितीय ही कहा जाएगा। उनकी 'गीताई' (गीतामाता) का प्रचार-प्रसार तथा बिक्री 'बाइबिल' के पश्चात संसार में सर्वत्र है।

जन्मभूमि गागोदे (रत्नागिरि), शिक्षण बड़ौदा तथा कर्मभूमि पवनार—इस प्रकार त्रि-स्थलों पर निवास करनेवाला यह संन्यासी भारत-भर में भ्रमण करके भी गृहस्थाश्रमी था। उनका परिवार समाज था। समाज के सुख-दु:ख इस गृहस्थाश्रमी संन्यासी के थे। अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले इस गृहस्थ ने मैत्रीसंघ, शान्ति सेना, समन्वय आश्रम, आचार्य कुल की तथा अनेक आश्रमों की स्थापना की।

तत्त्व चिन्तन एवं अध्यात्म विनोबाजी के रक्त में था। ईश्वर तथा कर्म पर इनकी अटूट श्रद्धा थी। और जैसी असीम श्रद्धा उनकी अहिंसा की सामर्थ्य पर थी वैसी ही वह महात्मा गाँधी नामक व्यक्ति पर तथा उसके कार्यों पर थी। विनोबा का वेश महात्माजी जैसा ही था और महात्माजी के प्रत्येक क्षण का आदर्श उनके मन में था। महात्माजी के अनेक अनुयायी थे। उनमें राजनीतिक अनुयायी के रूप में वे पण्डित

जवाहरलाल को तथा आध्यात्मिक अनुयायी के रूप में वे विनोबाजी को मानते थे।

विनोबाजी प्रयोगशील थे। देहासक्ति तो उनमें थी ही नहीं। देह से मन को निकाल लेने की विद्या उन्होंने सिद्ध कर रखी थी। 'देह का जो होना हो वह होने दो। मन को तो कुछ नहीं हुआ है न?' इस प्रकार वे देह से मन को निकालकर उसको प्रसन्न रखते थे। श्री रामकृष्ण परमहंस को एक सिद्धि प्राप्त थी। वे दूसरे के दु:ख को स्पर्श से अपने ऊपर ले लेते थे। विनोबाजी अपना दु:ख देह में धारण कर मन से प्रसन्न रहते थे।

विनोबाजी ब्राह्म मुहूर्त में उच्च स्वर में मुक्त कण्ठ से ईश्वर-स्तुति करते थे। सुननेवाले को असीम प्रसन्नता प्रदान करते थे। वे अत्यन्त कठोर प्रतीत होते थे, अनेक बार चिड़-चिड़े और हठीले तथा निर्मम लगते थे। परन्तु वे ऐसे नहीं थे, इस बात को उनके सम्पर्क में आया हुआ व्यक्ति ही कह सकता था। उनका स्वभाव ऊपर से परिहासप्रिय तथा विनोदी था परन्तु प्रकृत्या वे अत्यन्त गम्भीर थे। ईश्वर का तथा ब्रह्मविद्या का रहस्य उनको आकर्षित करता था। उनकी प्राणिमात्र पर तथा प्रकृति पर ममता थी। लोगों को भयंकर लगनेवाले सर्प के विषय में भी वे अत्यन्त आत्मीयता से बात करते थे, "सर्प को विषैला कहते हैं परन्तु मनुष्य क्या कम विषैला है? कोई न कोई डंक मारता ही रहता है। धनसत्ता, राजसत्ता, शस्त्रसत्ता, अहं और कर्तृत्व के विषैले डंक समाज के लिए घातक नहीं होते हैं क्या? सर्प तो किसानों का मित्र होता है। नब्बे प्रतिशत सर्प विषैले नहीं होते हैं परन्तु नब्बे प्रतिशत मनुष्य विषैले होते हैं।"

मृत्यु के विषय में उनका चिन्तन प्रगाढ़ था। सामने स्तम्भ है, यह आँखों को दिखाई दे रहा है, इसी प्रकार मृत्यु की कल्पना सतत हृदय में रखी जाए तो जीवन सहज और सुन्दर हो जाएगा। मृत्यु से सावधानी उन्होंने निरन्तर रखी। वे कहते थे, "शरीर निसर्गत: जैसे-जैसे जीर्ण होता जाएगा वैसे-वैसे प्रज्ञा की कला बढ़ती जानी चाहिए और जिस समय शरीर का पतन हो उस समय प्रज्ञा की पौर्णमासी होनी चाहिए—इसको गीता शुक्ल पक्ष का मरण कहती है। इसके विपरीत शरीर के साथ प्रज्ञा क्षीण होकर मरण आना—यह कृष्ण पक्ष का मरण है।"

श्रीमद्भगवद्गीता को विनोबाजी ने जीया। गीता में कहा गया है, 'प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।' गीताई में लिखा है, 'प्रज्ञा स्थिर हो गयी।' उनकी माता श्रीमद्भगवद्गीता को पढ़ नहीं पाती थीं, इसलिए उन्होंने अत्यन्त विश्वास से कहा, "विन्या! अरे तू ही गीता को मराठी में क्यों नहीं लिखता?" और धुले की जेल में गीता-प्रवचन करते हुए उन्होंने कहा, "अब गीताई मराठी में प्रकाशित हो रही है, परन्तु दिखाने के लिए माता तो है ही नहीं।"

विनोबाजी की माता पर असीम भक्ति थी। जीवनभर वे माता को कभी कहीं नहीं भूले। माता के कथन का अर्थ बारम्बार स्मरण कर वे चकित होते थे। उनका मन

भर आता था। 'श्यामची आई' (साने गुरुजी का उपन्यास) लोगों तक पहुँची परन्तु विनोबाजी ने मृत्यु तक माता की स्मृति को सुरक्षित रखा। इसके कारण ही ब्रह्मविद्या मन्दिर की स्थापना हुई।

श्री शंकराचार्य पर विनोबाजी की श्रद्धा थी। वे उनके प्रति अत्यधिक आकर्षित थे। ईश्वर का शोध करने के लिए वे काशी से हिमालय पर जानेवाले थे। कानडी (मद्रास) के शंकराचार्य, जो अद्वैत के पुरस्कर्ता तथा हिन्दू धर्म को पुनरुज्जीवन देनेवाले थे, विनोबाजी के आदर्श थे। परन्तु नियति की इच्छा नहीं थी कि विनोबा योगी-साधु-संन्यासी हों! इसीलिए काशी में निवास करते समय विश्वविद्यालय में दिये गये महात्माजी के भाषण को सुनकर ही वे प्रभावित होकर कोचरब आश्रम में आ गये। एक प्रकाण्ड पण्डित—एक अनन्य साधक—एक तत्त्ववेत्ता आखिर महात्माजी की अहिंसा का पुजारी हो गया और स्वामी विवेकानन्द की भाँति अहिंसा की ध्वजा पूरे हिन्दुस्तान में फहराता रहा तथा साम्ययोग का प्रसार करता रहा। महात्माजी की सत्यनिष्ठा को विनोबाजी ने पहले से ही अंगीकार कर लिया था। वह उनकी प्रथम गुरु माता ने उनको दी थी। अहिंसा का कुछ पाठ उनको पितामह से मिला था। महात्माजी के सम्पर्क में आने पर विनोबाजी का स्वर्ण तेजस्वी हो उठा। वे अपने एकादश व्रत के चौंसठवें अभंग (छन्द में) कहते हैं :

> सत्य-अहिंसा हैं अभिन्न युगल
> व्रतों की सकल जन्मभूमि।
> या यों कहें कि वह मूल सत्य एक है
> अहिंसा है उसकी शोभिता पुत्री॥

जीवनभर अहिंसा की उपासना करनेवाले इस महामानव ने अपना मार्ग स्वयं ही अतिशय परिश्रमपूर्वक आरेखित किया था। वे उत्तम गणितज्ञ थे। जीवन का गणित प्रस्तुत करते समय लोगों को वह कैसा दिखाई देगा। यह प्रत्येक का व्यक्तिगत प्रश्न है; परन्तु वे साम्ययोगी, ज्ञानयोगी और शिक्षणमहर्षि थे। उनका ग्रन्थ 'विचारपोथी' एक दीपस्तम्भ है।

'असत्य में शक्ति नहीं है। अपने अस्तित्व के लिए वह सत्य का आश्रय लेने के लिए विवश है।'

'सत्य की व्याख्या नहीं है क्योंकि व्याख्या का ही आधार सत्य है।'

'जो वाणी सत्य की रक्षा करती है, उस वाणी की रक्षा सत्य करता है।'

'संन्यास नोट है। कर्मयोग सिक्का है। मूल्य एक ही है।'

'दुःख सहन करना—यह तितीक्षा का प्रारम्भ है। तितीक्षा की कसौटी सुख सहन करने में है।'

—ये विचारपोथी के कुछ वाक्य हैं।

विनोबाजी अनेक गुणों के रत्नाकर हैं, उनके तट पर मैं चकित खड़ी हूँ। उनकी विस्तृत गहन-गम्भीरता और व्यापकता का आकलन मेरी सामर्थ्य से परे है, उसका शोध और बोध करने में मैं असमर्थ हूँ। परन्तु जो सुन्दर दिखाई दिया, प्रतीत हुआ, जो मन में आया, मन को उदात्त और ईश्वरी साक्षात्कार प्रतीत हुआ, परिश्रम का उत्तुंग शिखर दिखाई दिया, साधक की महान साधना प्रतीत हुई, उस योग्य का किंचित् दर्शन इस उपन्यास में है।

भौमर्षि—भूमि का ऋषि। जो भूमि पर प्रयोग करता रहा, जो भूदान का प्रचण्ड प्रवाह भूमिहीनों की ओर मोड़ता रहा, साढ़े तेरह वर्षों तक जो निरन्तर चलता रहा और मिला हुआ भूदान भूमिहीनों को देकर पुनः-पुनः रिक्त होता रहा—उस अनासक्त साधक की जीवन-शैली मुझको इतना प्रभावित करती रही कि मैं कह नहीं सकती।

विनोबाजी ने अनेक प्रयोग किये। उन प्रयोगों में सफलता भी उनको मिली है। परन्तु दो प्रयोगों से मैं अभिभूत हूँ। एक तो यह कि अँग्रेजों को भी हैरान कर देनेवाले डाकुओं के राज्य में प्रवेश कर, हृदय परिवर्तन की अद्वितीय भूमिका मन में सँजोकर, निर्भय होकर उन तक जाना और डाकुओं द्वारा दस्युवृत्ति छोड़कर चम्बल के बीहड़ों में शरणागति स्वीकार करना। ये बातें सरल नहीं हैं।

विनोबाजी की प्रत्येक बात ही आध्यात्मिकता और व्यावहारिकता लिये हुए थी। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण नये-नये प्रयोगों के लिए था। असंख्य प्रयोग करते हुए अपनी माता की तरह 'अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक को' सब कुछ अर्पण कर देने को वे उद्यत थे। रात में सोते समय एक नया विचार लेकर वे सोते थे। प्रातःकाल उस विचार का संकल्प करके दिन भर उस संकल्प के अनुसार आचरण करके सोने से पूर्व वे उस संकल्प की पूर्ति ईश्वर के चरणों में करते थे। संकल्प को सफल करने के लिए उनके दुर्बल प्रतीत होनेवाले शरीर में दृढ़निश्चयी और सशक्त मन था।

अनगिनत लोगों ने विनोबाजी को निकट से देखा है। उनके साहचर्य में अनेक लोग रहे हैं। पदयात्रा में अनेक लोग उनके साथ चले हैं। निर्मला दीदी, कुसुम दीदी, महादेवी, मदालसा देवी आदि अनेक भगिनियाँ विनोबाजी के साहचर्य से धन्य हुई हैं।

विनोबाजी का दूसरा प्रयोग मृत्युसम्बन्धी था। विनोबाजी को मृत्यु की प्रतीति सदैव रहती थी। मृत्यु उनसे आकर मिले, इसकी अपेक्षा उनकी इच्छा थी कि वे मृत्यु तक पहुँचकर उसका स्वागत करें—यह बात वे कह चुके थे। मृत्यु जीवन की इतिश्री नहीं है, अपितु जीवन को पूर्ण विराम देने के बाद नवीन अनुच्छेद की, प्रगल्भ जीवन की, पुनः शुरुआत है। मृत्यु नितान्त रमणीय है। मृत्यु जीवन का विरामस्थल है। वे यही अनुभव करते थे। 'मृत्यु के बाद क्या?' इस प्रश्न के रहस्य को समझने का वे प्रयत्न करते थे। उनका विचार था कि निद्रा लघु मृत्यु है। जीवन भर मृत्यु का ध्यान रखनेवाले

इस जीवनयोगी ने अपने अन्त समय में खान-पान-औषध और सर्वसंग-परित्याग करके प्रायोपवेशन से मृत्यु को स्वीकार किया। मरण से उनका जीवन अधिक तेजस्वी बन गया। एक महापुरुष का अस्त होने पर समाज अस्त-व्यस्त और दिशाहीन हो जाता है—यह प्रतीति होती है। अनासक्त योगी पुरुष समाज को प्राप्त हुई ईश्वरीय निधि होती है। उस महापुरुष के जाने से यह अनुभूति होती रहती है।

महात्माजी के तैयार किये हुए लोगों से यह समाज कुछ समय तक संघटित रहा। उनमें विनोबाजी ने एकता के लिए जो अथक प्रयत्न किये थे, वे सर्वविदित हैं। परन्तु विनोबाजी अगली पीढ़ी तैयार न कर सके और पाश्चात्य प्रभावग्रस्त लोग आदर्शमूल्य भूलकर तेजी से संस्कृति के मार्ग से च्युत हो गये, इसलिए विनोबाजी की कमी समाज ने अधिक ही अनुभव की। प्रत्येक महापुरुष की मृत्यु से समाज में एक बड़ी रिक्तता उत्पन्न होती है। विनोबा की मृत्यु से यह रिक्तता कुछ अधिक ही प्रतीत हुई।

ऐसे इस साधक के मन की थाह, उसके द्वारा किया गया विशाल कार्य, उसका गूढ़ तत्त्वज्ञान—इन सबका मैं जितना आकलन कर सकी, उतना ही इस उपन्यास में है। ये पुरुष हिमालय जैसे होते हैं, उनका दूरस्थ दर्शन भी विलोभनीय होता है। पाठक भी उसका दर्शन कर सकें, इसी आशा से आपके सम्मुख यह साकार करने का विनम्र प्रयत्न किया है।

सौ. शुभांगी भडभडे

276, पद्मगन्धा, लोकमान्य नगर,
नागपुर—440 016

अहिंसा के विषय में लिखना हो, तो वह मेरी सामर्थ्य के बाहर का काम है और यदि मैं इसको न कर सकूँ तो पत्र लेखकों ने मुझको तीन नाम सुझाये हैं—श्री विनोबा, श्री किशोरीलाल मशरूवाला और श्री काकासाहब कालेलकर। पहला व्यक्ति यह काम निश्चित रूप से कर सकता है, परन्तु वह व्यक्ति इस काम को करेगा नहीं, यह मैं जानता हूँ। कारण यह है कि विनोबा का प्रत्येक क्षण परिश्रम को अर्पित किया हुआ है और उससे थोड़ा समय निकालकर अहिंसा पर लिखना विनोबा को अच्छा नहीं लगेगा। और मैं भी यही उचित समझता हूँ। विश्व को आज शास्त्र की भूख नहीं है, बल्कि आस्थापूर्वक किये गये कार्य की आवश्यकता है। और जिसको इस बात का ज्ञान हो गया वह कृषि-कार्य को छोड़कर शास्त्र लिखने को कभी नहीं बैठेगा!

—**महात्मा गाँधी**

अनेक वर्षों से मेरी पदयात्रा चल रही है। इस यात्रा का एकमात्र उद्देश्य था—मनुष्यों को जोड़ना। केवल भूदान-यात्रा ही नहीं, बल्कि मेरे अनेक कार्यों का, प्रयोगों का उद्देश्य मनुष्यों को जोड़ना ही था। विज्ञान ने संसार का निकट ला दिया, परन्तु मनुष्यों को दूर कर दिया। परन्तु उन्हीं को पुनः निकट लाने का कार्य करने का प्रयत्न मैं कर रहा हूँ। वर्तमान में मानव-समाज खण्डप्राय हो गया है, अनेक जाति-धर्म में विभक्त होकर प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरे को कनिष्ठ समझने लगा है। इससे समाज प्रगति कैसे करेगा?

मेरे जीवन में अनेक बार मुझको समाधान मिला है। परन्तु कुछ प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते हैं। मानवी मन का और मृत्यु का रहस्य अभी तक सुलझा नहीं है।

—**विनोबा भावे**

आज प्रात:काल से ही विनोबा गुनगुना रहे थे। प्रार्थना के बाद उन्होंने ज्ञानेश्वरी को खोला और सूर्य का प्रकाश दसों दिशाओं से धरती पर आने तक वे पढ़ते रहे। सदा प्रसन्न रहनेवाले विनोबा आज कुछ अधिक ही प्रसन्न लग रहे थे। अन्तर्तम का आनन्द मुख पर प्रकट हो गया था। कभी वे धाराप्रवाह बोलते रहते तो कभी-कभी गाते रहते। नये-नये विषयों को स्पर्श करता हुआ उनका मन ईश्वर के अगम्य रूप तक आकर ठहर जाता था।

ज्ञानेश्वरी बन्द कर वे खेत की ओर चल दिये। उस समय वे गुनगुना रहे थे। परन्तु खेत में उनकी आवाज ऊँची हो गयी थी :

तू है परब्रह्म। जो इन महाभूतों का आश्रयधाम
परम तू पवित्र! जगन्नाथ
तू परम देवता है तीनों लोकों में। तू पुरुष है पच्चीसवाँ
तू है दिव्य प्रकृति से परे
अनादि सिद्ध तू स्वामी! हो तुम जन्म-मरण से परे
तुमको अब जान गये हैं हम।

'तू पंच महाभूतों का नाथ है। परम पवित्र है। तू अपनी दिव्य सृष्टि का भी स्वामी है। प्रकृति से परे अगम्य तेरा स्वरूप है। तू नित्य है। जन्म-मरण का प्रभाव तुझ पर नहीं है।' यह विचार विनोबाजी के मन में क्षण भर को आया और वे गाते-गाते रुक गये।

प्रात:काल का प्रसन्न पवन। हरा-भरा लहलहाता हुआ सब्जियों का बगीचा, खेत में रहट का भव्य कुआँ, रहट का चलता हुआ संगीत, नाली में होकर दूर जाता हुआ गाना गाता कलकल पानी, प्रफुल्लित पौधे, फलों से लदे केले के पेड़। यह था विनोबा का गृहस्थाश्रम। लड़कौरा। वे उसी में आनन्दित और सन्तुष्ट थे। जीवन इस प्रकार भी व्यतीत किया जा सकता है, यह उन्होंने सोचा भी नहीं था।

कुन्दर दीवान और पानसे उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। इतने में ही मोघे आ गये—''बापू के पास से एक सज्जन आये हैं। परन्तु...परन्तु...'' कहते हुए वे रुक गये।

वे विनोबाजी की प्रत्येक रुचि को जान गये थे।

खेत में गीली मिट्टी का स्पर्श पैरों को होते ही वे आनन्दित हो उठते थे। यह आनन्द ज्ञानेश्वरी के इच्छित सन्दर्भ का आनन्द है या अगम्य ईश्वर के साक्षात् हरित रूप का वह आनन्द है या अनुपम सृष्टि सौन्दर्य के साक्षात्कार का वह आनन्द है—यह पता नहीं चलता था। प्रत्येक पेड़ के पास बैठकर वे प्रेम से पत्ते और फूलों को हाथ लगाने लगे। पुन:-पुन: उन्हीं पंक्तियों को वे दुहराने लगे। उनकी तन्मयता देखकर मोघे के मन में आया कि कैवल्य की चाँदनी का प्राशन करनेवाला चकोर और अगम्य की सुगन्ध फैलानेवाला समीर—निराकार से ही विनोबा के आगे साकार हुए होंगे।

उनको सन्देश देना था, "बाबा, बापू का पत्र लेकर कोई देसाई आये हैं।"

विनोबा का ध्यान नहीं था। खेत में अनेक स्त्री-पुरुष काम कर रहे थे। विनोबा के मधुर स्वर से प्रसन्न सुबह और अधिक प्रसन्न हो गयी थी। सहसा उनका ध्यान गया और वे बोले, "बापू ने किसी को भेजा है न!"

वे जल्दी-जल्दी अपने कक्ष तक आये। मेज पर ताजे अखबार रखे थे। विनोबा ने एक अखबार उठा लिया। सभी अखबारों में एक ही समाचार था—द्वितीय महायुद्ध का। सारा संसार ही भयग्रस्त तथा आतंकित हो गया था। महात्माजी का अहिंसा और सत्य का मार्ग हिंसाचार से निस्तेज हो गया था। सत्य थी सत्ता! सत्य थी धनलिप्सा और उसके लिए सस्ता होता जा रहा था मृत्युमार्ग! निष्ठा और परस्पर स्नेहभावना समाप्त हो गयी थी। नैतिकता का भय लुप्त हो गया था। प्रतिदिन के समाचारपत्र पढ़कर विनोबा शान्त थे। आश्रम से सैकड़ों मील दूर महायुद्ध चल रहा था परन्तु उसकी प्रतिध्वनि भारत के कोने-कोने में पहुँच गयी थी। उसकी तपन साधारण लोगों के परिवारों को झुलसा रही थी। कल-परसों ही कुछ लोग विनोबा से मिलने आये थे। उनमें किसी ने पूछा था, "संसार में हिंसाचार प्रबल हो रहा है इसलिए..."

विनोबा ने तत्क्षण कहा था, "विनाशकाले विपरीतबुद्धि:।"

"परन्तु आप कुछ नहीं कर सकते?"

"क्यों नहीं कर सकते? परन्तु जब तक कोई पवन आकर मुझसे यह नहीं कहता कि विन्या उठ, कुछ कार्य कर, तब तक आज्ञा के बिना मैं कैसे कार्य करूँ?"

"परन्तु आप जैसे व्यक्ति को आज्ञा कौन देगा?"

"जनता जनार्दन और सेवाग्राम के महात्मन्।"

"परन्तु तब तक आप क्या सन्देश देंगे?"

"आप पत्रकार हैं तो बताता हूँ। बढ़ते हुए हिंसाचार के सत्य चित्र प्रकाशित करो। सोये हुओं को जगाओ। यदि आप मुझ जैसे साधारण व्यक्ति हैं तो कुछ नहीं कर सकते, इसलिए विवश समझ लीजिए।"

हाथ में जब समाचारपत्र लिया तब सारे संवाद कुन्दर दीवान को याद आ गये।

इतने में ही हाथ में लगा समाचारपत्र नीचे रखकर विनोबा बोले, "देसाई कहाँ हैं?"

कुन्दर दीवान, मोघे, पानसे—इन लोगों की इच्छा होती थी कि विनोबाजी ऐसे उत्तर दें जिनसे लोग सन्तुष्ट हो जाएँ। राजनीतिज्ञ-मण्डली गम्भीरता से युद्ध का विचार कर रही थी। उधर दिनोंदिन बढ़ती हुई महँगाई से साधारण जनता त्रस्त हो गयी थी। जब विनोबा शान्तभाव से बोलते तब कोई उत्तेजित होकर कहता, "दूसरे महायुद्ध से संसार में आग लग जाए तब भी..."

"आप उस पर पानी डाल सकते हैं?" विनोबा पूछते।

"आपको कैसा लगता है?"

"मेरे लगने से युद्ध रुक जाए, मेरी आवाज इतनी विश्वव्यापी नहीं है। भले ही आप श्रीकृष्ण का पांचजन्य बजाएँ, परन्तु आसुरी वृत्ति से उन्मत्त हुए लोग एक-दूसरे का सर्वनाश करके ही दम लेंगे। यही तो प्रलय है। यादवों ने और कौरवों ने इसी वृत्ति से सर्वनाश को निमन्त्रित किया था। वह उनकी नियति रही होगी।"

"अर्थात् यह उस राष्ट्र की नियति है क्या?"

"यह नियति नहीं, कर्मगति है। जब हम कोई कार्य करते हैं तब यदि उसका हेतु अच्छा होगा तो उससे अच्छे फल की प्राप्ति होगी। युद्ध में जो संघर्ष होता है वह अपना साम्राज्य और सत्ता को बढ़ाने के लिए होता है।"

"परन्तु ऐसा तो होगा ही न?"

"अति सर्वत्र वर्जयेत्। अपना साम्राज्य विश्व पर स्थापित हो, यह मोह उचित है क्या? यदि कोई पुलिस अधिकारी सारे प्रदेश को अपने अधिकार के नीचे रखना चाहे तो? यह उचित नहीं होगा।" विनोबा ने शान्ति से कहा।

"मनुष्य को अपनी आवश्यकताएँ कम करने से..." उनका कथन पूरा होने से पहले एक व्यक्ति बोला, "मैं वरिष्ठ पुलिस अधिकारी हूँ। प्रदेश में ही नहीं बल्कि देश में शान्ति बनी रहे, इसके लिए मेरा प्रयत्न बुरा है क्या?"

"नहीं!" विनोबा ने उत्तर दिया।

विनोबा ने उसकी सुदृढ़ देहयष्टि को देख कहा, "मेरा अनुमान सत्य था!"

"कैसे?"

"अत्याचार और अन्याय को देखकर शक्तिशाली मनुष्य को ही अधिक क्रोध होता है। देशभक्त और पुलिस-अधिकारियों में तो वह और अधिक होगा।"

"आप देशभक्त नहीं हैं क्या? आपको क्रोध क्यों नहीं आता है?"

"मैं दुबला-पतला हूँ। अधिक क्रोध यह देह सहन नहीं कर सकती।"

वह हँसकर बोला, "बाबा! आप बात को टाल रहे हैं।"

विनोबा की बातों से किसी का भी समाधान नहीं हो रहा था। विनोबा उत्तेजित होकर हिंसाचार पर बोलें, फिर उस पर डटकर टीका-टिप्पणी की जाए, सबकी यही

इच्छा थी।

एक महिला ने विनोबा से पूछा, "ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तानी लोगों को गुलाम समझकर व्यवहार किया और अब तो हद ही हो गयी है। ब्रिटिशों की जीत हो, इसके लिए हिन्दुस्तनियों को लड़ने के लिए भेजा जा रहा है। अब क्या करना चाहिए?"

"देश के प्रश्नों को केवल जनता ही हल कर सकती है और हिन्दुस्तानी सैनिकों को परदेश में मरना है या स्वदेश में मरना है—इसका निर्णय सैनिक ही स्वयं करें। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:—अपनी प्रकृति को पहचानकर ही मनुष्य को जीना चाहिए। आज तो हिन्दुस्तानी लोग केवल ब्रिटिशों के ताबेदार हो गये हैं। मन भी गिरवी रख दिये हैं। वे जब क्रान्ति करना चाहेंगे तब किसी भी साम्राज्य को उलट-पुलट कर देंगे।"

"आपकी अहिंसा का उपयोग कब होगा?"

मोघे विचार कर रहे थे कि अब विनोबा चिढ़ जाएँगे, परन्तु विनोबा तत्काल बोले, "मुझको अहिंसा की हिंसा नहीं करनी है। अहिंसा बहुत बड़ी शक्ति है। उसमें पहले होता है मन पर नियन्त्रण। अहिंसा एक मार्ग है।"

एक स्त्री उपहास से बोली, "अहिंसा का मार्ग मन से जन में जाता है।"

"बिलकुल ठीक। समाज में अहिंसा की आवश्यकता सबको है। अहिंसा के सामर्थ्य को काल ही सिद्ध करेगा। अहिंसा पर बहुत कुछ कहा जा सकता है। परन्तु इस समय भोजन-वेला हो गयी है। भोजन करेंगे क्या?"

वह स्त्री विनोबा पर अत्यधिक सन्तप्त हो उठी थी।

मोघे, पानसे, कुन्दर दीवान सदा से यह देख रहे थे। वे विनोबा के कथन का अर्थ समझते थे। भड़के हुए हिंसाचार में क्षणभर को अहिंसा का सामर्थ्य आच्छादित-सा भले ही प्रतीत होता हो, परन्तु अहिंसा दीपस्तम्भ-जैसी थी, इसमें कोई सन्देह नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति शान्ति से जीवन बिताना चाहता था। परन्तु स्वतन्त्रता के ध्येय से दीवाने बने हुए लोग सतत अपना बलिदान दे रहे थे। ब्रिटिश पुलिस असीम अत्याचार कर रही थी। पूरे देश में आगजनी, लूटपाट और मारकाट मची हुई थी। स्वतन्त्रता, हिंसा के स्थान पर अहिंसा और परतन्त्रता से मुक्ति की तीव्र लालसा—इनको सभी चाहते थे। ऐसे समय में विनोबा ऊपर से भले ही शान्त दिखाई दे रहे हों, परन्तु अन्तस् में वे कार्यदिशा प्राप्त होने का संकेत मिलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं—मोघे को सदा यही आभास होता था। वे भी कभी-कभी पूछ बैठते, "बाबा! एक-एक देश लड़ाई में खिंचता आ रहा है। विश्व-शान्ति को भयंकर आघात लग रहे हैं। हिन्दुस्तानियों पर जबर्दस्ती लड़ाई थोपी जा रही है। इस द्वितीय महायुद्ध की प्रतिध्वनि को तथा तदनन्तर भयंकर भीषणता को सहन करना बड़ा कठिन होगा।"

"पुन: एक बार सशस्त्र क्रान्ति अवश्य होगी। उसके बिना शान्ति की स्थापना

नहीं होगी। निसर्ग का एक क्रम है। इस क्रम को देखकर लगता है कि जब देश युद्ध में रसातल को चले जाएँगे तभी आसुरी वृत्ति शान्त होगी। विनाश अटल है। विनाश भी निसर्ग का नियम है। इस समय हिन्दुस्तान में हम क्या कर सकते हैं—इसका विचार बापू कर रहे हैं। सम्पूर्ण जनता को उन पर विश्वास करना चाहिए। मुहूर्त देखकर भले ही कार्य न करना हो फिर भी ईश्वरीय संकेत तो मिलना चाहिए न?''

विनोबा के अन्तिम वाक्य से मोघे सहमत नहीं थे, परन्तु उन्होंने कुछ न कहा। उनको इस समय विनोबा का शान्त रहना अच्छा नहीं लग रहा था। जब सारे देश में आग लगी हो उस समय प्रत्यूषा में शान्त चित्त से सुरीली आवाज में ईशोपनिषद् का पाठ करना, कृषि में नये-नये प्रयोग करना और किसानों से मिट्टी की परख कराकर यहाँ कौन-कौन-सी शाक-भाजी कैसे उगायी जा सकेगी, यह पूछना, मोघे को स्वीकार नहीं था। परमधाम आश्रम से सटी हुई ही आगे कृषिभूमि थी। जमनालाल बजाज ने कृषिभूमि के साथ बँगले को ही आश्रम का रूप दे दिया था। परन्तु विनोबाजी को आश्रम की कृषिभूमि शायद कम प्रतीत होती थी इसलिए वे अन्यों की कृषि में भी ध्यान देते थे। रास्ते से आते-जाते उच्च स्वर से अभंग[1] पाठ करते थे। वे इतने शान्त थे कि कोई भी सुजान व्यक्ति उत्तेजित हो सकता था। और अब यह सुनकर कि वे ईश्वरीय संकेत की प्रतीक्षा कर रहे थे, मोघे मन-ही-मन सन्तप्त हो उठे थे।

अब भी खेतों में जाकर उनको यह कह दिया था कि बापू का सन्देश लेकर एक सज्जन आये हैं। परन्तु कैसी भी शीघ्रता न करते हुए वे लौट आये थे। आते ही मेज पर रखा समाचारपत्र देखा था। इसके बाद वे बरामदे में ही फर्श पर बैठकर सूत कातने लगे।

''बाबा! बापू के पास से कोई सज्जन आये हैं...'' मोघे से रहा न गया और उन्होंने पुनः कहा।

''अरे जल्दी बुलवाओ उनको!''

पानसे जल्दी-जल्दी विनोबा के कक्ष में गये।

वे सज्जन सामने आये। उन्होंने विनोबा को नमस्कार किया। परन्तु विनोबा का उस ओर ध्यान ही नहीं था। विनोबा ने चरखा एक ओर रख दिया और कते हुए सूत का अँटा हाथ में ले लिया। अत्यन्त बारीक धागा कता हुआ देखकर वे प्रसन्न हो गये। उन्होंने चरखा फिर सामने रख लिया। परन्तु प्रातःकाल जो पूनियाँ बनायी थीं—वे कब समाप्त हो गयी थीं, इसका उनको पता ही नहीं चला। उनको पूनियों का स्थान रिक्त दिखाई दिया। तब वे उन सज्जन की ओर मुड़कर बोले, ''आज प्रातःकाल से ही मेरा

---

1. अभंग—एक मात्रिक छन्द। सन्त तुकाराम ने इसका अधिक प्रयोग किया है। उनके अभंग प्रसिद्ध हैं।

मन अगम्य सुगन्ध से मोहित हो गया था। आज का प्रात:काल रमणीय था। आज जिन पंक्तियों का स्मरण हुआ था वे सुन्दर थीं। सौन्दर्य से सजी हुई वसुन्धरा सुन्दर थी। आज मनोरम पुष्पों की माला ही गूँथी जा रही थी। ऐसे रमणीय प्रभात में बापू का सन्देश आये, यह तो मानो दुग्ध-शर्करा संयोग ही है।''

वे सज्जन विनत होकर बैठ गये। महात्माजी के मुख पर निरागस् हास्य और विनोबाजी के मुख पर प्रसन्न हास्य—दोनों ही अनुपमेय!

''आज आप अत्यन्त आनन्दित और प्रसन्न हैं ?'' उन सज्जन ने पूछा।

''हम तो सहज आनन्द प्राप्त करते रहते हैं।'' विनोबा ने उत्तर दिया।

''प्रत्येक बात के पीछे ईश्वरीय अधिष्ठान मन में हो तो सब कुछ सुन्दर दिखाई देता है और प्रत्येक सुन्दर को एक ऊँचाई प्राप्त होती है। एक आयाम मिलता है।''

''ऐसा ही नहीं है। फूल खिलने से, शिशु के हँसने से मिलनेवाला सहज आनन्द और उस आनन्द से सहज होनेवाला अपना मन, बस इतना ही कहना है मुझको।''

''आप आनन्दयात्री हैं। प्रत्येक बात में आनन्द देखना आपका स्वभाव है। सचमुच आप अगम्य के परिमल को हौले से झुला रहे हैं।''

मोघे ने धीरे से कहा। विनोबा ने अनुभव किया। वे मन में हँसे।

''सुन्दर बातें एकदम अनजाने सुन्दर की परम्परा ही लेकर आती हैं। आज एक ओर एक ओवी[1] गुनगुना रहा था और दूसरी ओर मन बापू का विचार कर रहा था। मन तल्लीन था। यहाँ से केवल पाँच-छह मील दूर बापू का निवास है। मन में उनका आधार है। उनका पत्र कभी-कभी आता है और कभी-कभी ही उनसे मिलना होता है। आज प्रसन्न प्रभात में उनका मत्र आना मणि-कांचन-संयोग है। आपका परिचय ?''

उन्होंने विनोबा के हाथ में घड़ी किया हुआ एक कागज दिया।

''आपने मेरा परिचय पूछा है, परन्तु मेरा परिचय कुछ नहीं है। इस शरीर को देसाई कहते हैं।''

''और शरीर में रहनेवाले मन को ?''

देसाई क्षणभर ठहरकर हँसकर बोले, ''मन महात्माजी का निवासस्थान कहलाता है।''

विनोबा हँस पड़े। उन्होंने दोनों हाथ उठाकर प्रणाम किया। देसाई भ्रम में पड़ गये।

''यह आपके मन में स्थित बापू के मन्दिर को नमस्कार है।''

विनोबा ने पत्र खोला। केवल चार वा

1 ओवी—चार चरणों का एक छंद।

'प्रिय विनोबा,

तुम्हारी याद आ गयी। तुम जल्दी आ जाओ। आने में कोई विशेष कष्ट न हो तभी। शेष मिलने पर। बापू।'

विनोबा ने अँगोछा कन्धे पर डाला और देसाई से कहा, "चलिए।"

जयदेव, भाऊ पानसे, देसाई उनके साथ बाहर निकले।

आश्रम से उतरकर रास्ते पर आने पर शिवराम एकदम चिल्लाया। वह नदी में बैलों को नहलाकर लाया था तथा उनको गाड़ी में जोत रहा था।

शिवराम ने कहा, "बाबाजी, पैदल क्यों जा रहे हैं? मैं आ ही रहा हूँ...बस थोड़ा रुक जाइए..."

नदी की ओर से गाड़ी उनके पास आकर ठहर गयी।

"कहाँ जाना है बाबाजी?"

"सेवाग्राम को।"

"गाँधी बाबा के पास। चलिए ले चलता हूँ। मैं भी उधर ही जा रहा हूँ। मुझको पहचाना नहीं क्या? मैं सूरगाँव के पटेल का समधी हूँ शिवराम।"

"अच्छा, यह बात है। गाड़ी में बैठने को कह रहे हो। परन्तु चार मनुष्यों का भार हो जाएगा न!"

"बाबाजी! क्यों हम गरीबों की हँसी उड़ा रहे हैं!"

"हँसी नहीं रे! तुम्हारे बैल थक जाएँगे, इसलिए कह रहा हूँ।"

"थक क्यों जाएँगे? मुझको देखिए, अभी जवान हूँ। चार नाती हैं मेरे। तो इन बैलों पर क्या आफत आ रही है?"

विनोबा हँस पड़े। उसकी पीठ थपथपाते हुए बोले, "तुम सच कह रहे हो भाई! परन्तु एक तो तुम जैसा जवान बैलों को ले जाना पड़ेगा, इसके अलावा चार हम लोग हैं!"

"कुछ मत कहिए बाबाजी! दमदार हैं मेरे ये बैल।"

"जैसी तुम्हारी मर्जी।" विनोबा ने कहा और शिवराम खिलखिलाकर हँस पड़ा।

यद्यपि विनोबा शिवराम से बातें कर रहे थे तथापि उनके मन में बापू के पत्र की चार पंक्तियाँ घूम रही थीं। वर्ष में दो-तीन बार बापू के पत्र आते थे। जब कभी आवश्यकता होती थी तब विनोबा जाते थे। परन्तु 'जल्दी आ जाओ' ऐसा पत्र उन्होंने कभी नहीं लिखा था, फिर ऐसा कौन-सा महत्त्वपूर्ण कार्य होगा जिसके लिए उन्होंने देसाई को भेजा है! बापू की एक विशेषता है, जिस समय जिसका कार्य होगा उस समय वे उसका स्मरण निश्चय ही करते हैं। लोग दूर-दूर से आते हैं। बापू की बातें सुनते हैं। बापू की वाणी एक अमोघ शक्ति है। और हमको तो...

गाड़ी के पहिये के नीचे पत्थर आ जाने से गाड़ी टेढ़ी-मेढ़ी हो गयी। विनोबा की विचार-शृंखला टूट गयी।

"बैलों को जोर से मत दौड़ाओ शिवराम!"

"नहीं बाबाजी! घर पास आने लगता है तो बैल खुद ही दौड़ने लगते हैं।"

सेवाग्राम के आश्रम के पास गाड़ी रुक गयी। शिवराम ने हाथ में लगी लगाम नीचे रख दी। आश्रम को प्रणाम कर वह बोला, "बाबाजी! यहाँ हमारा देव निवास करता है।"

विनोबा अन्दर गये। महात्माजी बेला की लता के पास की भूमि खोद रहे थे। बायीं ओर पानी की बालटी रखी थी। पाँच-छह मनुष्य उनसे बातें कर रहे थे। विनोबा ने पहुँचकर उनको पुकारा, "बापू!"

महात्माजी तत्क्षण उठकर खड़े हो गये।

"मैं आया हूँ बापू!"

"आओ, मैं तुम्हारी ही राह देख रहा था।"

महात्माजी ने हाथ-पैर धोये। फिर वे जल्दी-जल्दी स्वयं पाकघर की ओर मुड़े। अभ्यास के अनुसार सभी स्वयं पाकघर में एकत्र हो गये। पत्तागोभी का एक फल हाथ में लेकर महात्माजी ने कहा, "पहले विनोबा को ठण्डा पानी दो!"

उसी समय विनोबा बोले, "बड़ी देर से मन को प्यास लग रही है।"

"अरे बाबा! उससे पहले शरीर को लगनेवाली धूप की चिन्ता करो। तुम्हारा सुदृढ़ मन जिसमें रहता है वह शरीर का पिंजरा तो शक्तिशाली होना चाहिए।"

महादेव भाई बोले, "विनोबाजी, बापू को आपके शरीर की बहुत चिन्ता रहती है।"

तभी विनोबा बोले, "मैं बापू को यही कहनेवाला था कि शरीरस्थ मन और मन के कारण शरीर अच्छा टिकाऊ बननेवाला है। इतना टिकाऊ कि अन्त में मृत्यु को मुझको आमन्त्रित करना पड़ेगा। मैं सहज ही पराजय स्वीकारनेवाला नहीं हूँ।"

"तुमसे यही अपेक्षा मेरे मन में है। तुम्हारी साधना और दृढ़ता दोनों अनुपम हैं। देह और मन को अलग-अलग कर कार्यरत रखने की क्षमता केवल तुममें है।" बापू शान्तिपूर्वक कह रहे थे...और ग्रीष्म की तपन शीतल मलयानिल का झोंका बन गयी। बापू के शब्द सुनकर विनोबा को ऐसा लगता जैसे सम्पूर्ण देह सार्थक हो गयी हो। आँखें आर्द्र हो जातीं।

महादेव भाई बोले, "विनोबाजी! बापू आपके विषय में निरन्तर बोलते रहते हैं और विचार करते रहते हैं। कल रात बापू बोले, 'विनोबा को बुलवाना चाहिए।' आपके आने से बापू आनन्दित हुए हैं।"

"निश्चय ही आनन्दित हुए हैं। बापू के आनन्द में हम भी सहभागी होते हैं। परन्तु बापू की कठिनाई में मात्र विनोबाजी को आमन्त्रित किया जाता है।" कान्तिभाई

ने कहा।

महात्माजी के होठों पर निश्छल हँसी प्रकट हुई। उसको देखकर विनोबा के मन में आया, इस हँसी से ही बापू सारा संसार जीत लेंगे। प्रकट रूप में उन्होंने कहा, ''बापू! आपके पत्र की आज्ञानुसार मैं यहाँ उपस्थित हो गया हूँ।''

गोल फ्रेम के चश्मे से महात्माजी ने विनोबा की ओर देखा और कहा, ''विनोबा! प्रथम सत्याग्रही के रूप में मैंने तुम्हारा चयन किया है। यदि अपने दैनन्दिन आवश्यक कार्यों से तुम मुक्त हो सको तो मेरे चयन पर विचार करना।''

''आपके आमन्त्रण को मैं अपने लिए यम की आज्ञा ही समझता हूँ। आप जहाँ कहेंगे वहाँ जाने के लिए मैं इसी क्षण तैयार हूँ। मैं लौटकर पवनार भी नहीं जाऊँगा।''

महात्माजी की आँखें आनन्द से आर्द्र हो गयीं। पण्डित जवाहरलाल नेहरू दूसरे सत्याग्रही घोषित किये गये। सत्य यह था कि द्वितीय महायुद्ध की घोषणा हो गयी थी। सशस्त्र आक्रमण आरम्भ हो गये थे। ब्रिटिशों ने भारत को जबर्दस्ती लपेटने का प्रयत्न किया। गाँधीजी ने प्रखर शब्दों में ब्रिटिशों का विरोध किया और अन्याय के प्रतिकार के लिए दो स्थानों पर सरकार विरोधी भाषण दिये।

भारत में ब्रिटिशों के आसन को अब झटके लगने लगे थे। पूरे देश में स्वतन्त्रता की लहर जोर पकड़ने लगी थी। किसी समय दासता को दैवगति माननेवाले भारतीय अब क्रमश: बढ़ती हुई स्वतन्त्रता की कल्पना से दीवाने हो गये थे। हिमालय की गंगा को आर्यावर्त में लाने के लिए सगर राजा ने प्रत्येक पीढ़ी का बलिदान दिया और आठवीं पीढ़ी के भगीरथ ने अपनी सेना के साथ पुन: प्राण-पण से प्रयत्न किया—ऐसे ही प्रयत्न स्वतन्त्रता के लिए प्रारम्भ हो गये थे, परन्तु शक्तिशाली ब्रिटिश राजसत्ता कहीं किसी को ठहरने नहीं दे रही थी। सन् 1920 ई. में लोकमान्य तिलक की मृत्यु हो जाने पर स्वतन्त्रता की यह कल्पना और अधिक बलवती हो गयी थी। पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण में भारत अब सजग हो गया था।

ब्रिटिशों के विरुद्ध, अन्याय के विरुद्ध महात्माजी के भाषण हुए। और ब्रिटिश-शासन ने भाषण की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया। यह और अधिक अन्याय हुआ। अपने विचार स्पष्ट प्रकट करने का विरोध प्रारम्भ हो गया और तब महात्माजी ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने का निश्चय किया। महात्माजी ने सत्याग्रह का रणशंख फूँक दिया। ब्रिटेन एक ओर युद्ध में व्यस्त था, उस समय भारत का स्वतन्त्रता के लिए सिर उठाना आवश्यक था। यह एक अवसर था, महात्माजी ने उसका लाभ उठाने का निश्चय किया। इसके लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह करके भाषण पर लगे प्रतिबन्ध को तिरस्कृत किया जाय तथा बन्दी बना लिये जाने पर कारागार में रहा जाय और एक के बाद एक व्यक्ति आगे आकर स्वतन्त्रता का मन्त्र जगाए, यह निश्चित किया गया था। पवनार में आनेवाले वृत्तपत्र 'हरिजन' में महात्माजी के विचार निरन्तर प्रकट हो

रहे थे। उस समय महात्माजी के मन की बात तो स्पष्ट हो ही गयी थी, परन्तु इस विधायक कार्य पर पूर्ण निष्ठा रखनेवाले सदाचारी व्यक्ति को ही महात्माजी सत्याग्रही घोषित करनेवाले थे। उनमें पहला सत्याग्रही कौन होगा, इसकी चर्चा लोगों में प्रतिदिन हो रही थी। पण्डित जवाहरलाल, सरदार पटेल, राजेन्द्रप्रसाद, भूलाभाई देसाई आदि निष्ठावान व्यक्तियों के नामों की चर्चा लोग कर रहे थे। एक दिन प्रात:काल शिवाजीराव ने उनसे पूछा था, "आजकल नामों की जो चर्चा हो रही है उसमें आपका नाम नहीं है। ऐसा क्यों है?"

विनोबा ने कहा, "मेरा राजनीति से सम्बन्ध नहीं है। राजनीति अंगभूत वृत्ति है। मेरा राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है, शायद यह जानकर ही मेरे नाम की चर्चा नहीं हुई है और चर्चा नहीं है, यह एक प्रकार से अच्छा ही नहीं है क्या?"

"राजनीति में हों या न हों, यह राष्ट्र अपना है। इस राष्ट्र को स्वतन्त्रता मिले, यह हम सबकी इच्छा है। फिर कोई भी कार्य हो वह करना ही चाहिए।"

"यह सत्य है। उसको मैं करूँगा भी। परन्तु महात्माजी मेरे भूमिप्रेम को जानते हैं। उस भूमि की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करनेवालों की एक जाति है तथा भूमि को हरी-भरी करने के लिए नया आयाम देनेवालों की दूसरी जाति है। मैं इस दूसरी जाति का हूँ। मैं राजनीति नहीं जानता हूँ। सत्य और अहिंसा पर आधारित राजनीति को मैं अपना भी सकता हूँ परन्तु मेरे प्राण कुएँ की रहट के पानी के झिलमिलाते रूप से तथा विकसित होती कली के रूप से दीवाने हो जाते हैं। प्रात:काल की ईशोपनिषद् की प्रार्थना से तथा ईश्वर की भिन्न-भिन्न प्रतिमाओं से मेरे प्राण मुग्ध होते हैं।"

ऐसा ही बहुत कुछ उन्होंने कहा था। उन्हीं विनोबा को महात्माजी ने पहला सत्याग्रही घोषित कर एक निश्चिन्तता की साँस छोड़ी थी। उनके बाद दूसरा क्रमांक था पण्डित जवाहरलाल का।

विनोबा की निश्चित प्रतिक्रिया भले ही ज्ञात न हुई हो फिर भी साथ रहनेवाले शिवाजीराव इतना तो जान गये कि पिता से भी अधिक पूज्य महात्माजी के आदेश की अवहेलना का सामर्थ्य विनोबा में नहीं था। महात्माजी इस बात को जानते थे कि प्रत्येक कार्य को एकनिष्ठा से, निरन्तरता से और नि:स्वार्थ भाव से करने का सामर्थ्य केवल विनोबा में ही था। दोनों का ही सामर्थ्य शिवाजीराव जानते थे।

"मैं आपकी आज्ञा समझकर कल से ही अपना कार्य प्रारम्भ कर दूँगा। पवनार मेरी कर्मभूमि है। वहीं से मैं सत्याग्रह प्रारम्भ करूँगा।"

महात्माजी के होठों पर मुस्कराहट छा गयी और विनोबा को ऐसा लगा मानो लक्ष-लक्ष फूलों की वर्षा उन पर हो गयी हो। इतना आनन्द उनको हुआ। अपनी बायीं टाँग मोड़कर उस पर बैठते हुए विनोबा ने पूछा, "बापू! एक प्रश्न है।"

सब्जी कट चुकी थी। महात्माजी अब निश्चिन्त हो गये थे। धनिये की एक-

एक डाल हाथ में लेकर दायें हाथ से उसके पत्ते तोड़ते हुए महात्माजी बोले, "मन में प्रश्न रखकर ही तुमने यह कार्य स्वीकार किया है?"

"नहीं! पहले स्वीकृति दी, उसका कारण था आपके प्रति अत्यन्त निष्ठा। परन्तु अब प्रश्न है वैयक्तिक पक्ष की ओर से। आपने मेरा ही चयन क्यों किया है?"

वहाँ एकत्र सभी लोग इस प्रश्न का उत्तर सुनने को उत्सुक हो रहे हैं, यह जानकर महात्माजी ने महादेवभाई की ओर देखते हुए कहा, "इस प्रश्न का उत्तर महादेवभाई के लेख में है। कल ही उन्होंने 'हरिजन' के लिए हस्तलिखित तैयार किया है।"

महादेवभाई शीघ्रता से बाहर चले गये।

विनोबा को उठते हुए देखते ही महात्माजी ने उनके सामने छाछ से भरा हुआ गिलास लाने को कहा। विनोबा हँसे।

महात्माजी बोले, "भोजन किये बिना नहीं जा सकेंगे।"

विनोबा ने मन में कहा, 'बा भी तो मुझको नहीं जाने देंगी।'

शिवाजीराव बारी-बारी से दोनों की ओर देख रहे थे। रहन-सहन से लेकर विचारसरणि तक एक प्रतीत होनेवाले दो व्यक्तित्व आमने-सामने बैठे थे। कुछ न कहते हुए भी उनमें अनन्त संवाद हो रहे थे। कुछ प्रश्नोत्तर ही केवल प्रकट हो रहे थे।

महादेवभाई अपना लेख लेकर आ गये थे।

"पढ़िए महादेवभाई!"

"नहीं, नहीं...कृपा करके मत पढ़िए।"

"प्रश्न किया था न! फिर उत्तर सुनने में कुछ भी हानि नहीं है। इसके अतिरिक्त जो स्तुति से उन्मत्त नहीं होता है और निन्दा से पराजित नहीं होता है—सुख-दु:खे समे कृत्वा...यह सब तुम्हीं कर सकते हो।"

कहते-कहते महात्माजी रुक गये।

महादेवभाई ने लेख पढ़ना प्रारम्भ किया :

> "सबके मन में निश्चय ही यह प्रश्न उठेगा कि ब्रिटिशों के भाषण पर प्रतिबन्ध लगाने के विरोध में प्रथम भाषण करनेवाला, अन्याय के विरुद्ध अहिंसक मार्ग से जानेवाला प्रथम सत्याग्रही कौन होगा? महात्माजी ने अन्त:प्रेरणा से विनोबाजी का नाम लिया।
>
> प्रश्न यह है कि यह प्रेरणा क्यों हुई? अन्तर की आवाज प्रकट क्यों हुई? इसका उत्तर इसी में है कि उन्होंने स्वयं विनोबाजी को प्रथम स्थान दिया है। विनोबाजी की दैनन्दिन कार्यप्रणाली की एक विशेषता है—अखण्ड नामस्मरण। इस नामस्मरण से कार्य को पवित्रता प्राप्त होती है, आत्म-साक्षात्कार होता है,

मन संस्कृत होता है और जीवन में गति आती है।

विनोबाजी स्वयं-सिद्धान्ती हैं। वे स्वयं ही सिद्धान्त का निर्माण करते हैं और उस पर स्वयं ही आचरण भी करते हैं। वाणी का साक्षात्कार और कार्य का आविष्कार, यह उनका उज्ज्वल पक्ष है। जीवन-तत्त्वज्ञान गणित से सिद्ध करने तथा प्रयोग से सिद्ध करने पर उनकी श्रद्धा है...रचनात्मक कार्य में उनको अहिंसा अनिवार्य लगती है। स्वयं का आदर्श निर्माण करते-करते उन्होंने अनेक आदर्श-मण्डलियाँ तैयार कीं। विनोबाजी बुद्धिवादी हैं, विज्ञानवादी हैं। वृत्ति से वे धनिक भी हैं और नाममात्र निर्वाह-व्यय लेनेवाले श्रमिक भी हैं, ग्रामवासी भी हैं और कुष्ठरोगियों की सेवा करनेवाले सेवक भी हैं। भगवद्गीता में कर्म की निरन्तरता को योग-कर्मयोग नाम दिया है। कर्मयोग को आचरण में लानेवाले विनोबाजी सिद्धयोगी हैं।

उनका एक सिद्धान्त है, खादी ग्रामोद्योग। वे उत्तम सूत कातते हैं। और वे करना है, इसीलिए कोई कार्य नहीं करते हैं, अपितु वह कार्य सर्वांग सुन्दर और सर्वांग परिपूर्ण कैसे होगा, इस ओर उनका ध्यान रहता है। वे ग्रामसेवक हैं। ग्रामजीवन से और ग्रामवासियों से वे इतने एकरूप हो गये हैं कि उनको उन्हीं में से एक समझ सकते हैं।

भगवद्गीता जैसे तत्त्वज्ञान का समन्वय जीवन-प्रणाली से करके उन्होंने जो समश्लोकी अनुवाद किया है वह प्रसाद गुण सम्पन्न और नितान्त सुन्दर है। आज इस समय केवल महाराष्ट्र में ही उसकी एक लाख प्रतियाँ समाप्त हो चुकी हैं। और इस समय वे जीवन-वेतन अर्थात् जीवन के लिए आवश्यक धन स्वयं प्राप्त किया जाए, इसका प्रयोग कर रहे हैं। इतना ही नहीं, वे प्रत्येक सम्प्रदाय के मूल सिद्धान्तों का अध्ययन कर जीवन को सहज करने का स्तुत्य प्रयत्न कर रहे हैं। मूल अरबी भाषा में कुरान पढ़ने के लिए वे दिन का कुछ समय व्यय करते हैं।

आज महात्माजी के मत में यदि कोई निर्दोष, निष्कपट, निरागस् और अहिंसा की वृत्ति से कार्य करनेवाला निष्ठावान् कार्यकर्ता है, तो वे हैं विनोबा भावे। हाँ विनोबाजी ही। निरपेक्ष होते हुए भी उनको यह सम्मान मिला है।''

महादेवभाई ने अपना लेख पढ़कर जब समाप्त किया तब विनोबा उठे। महात्माजी को प्रणाम कर वे बाहर निकले। महात्माजी के मन में था कि उनको भोजन के लिए रोक लें, परन्तु वे चुप रहे। आश्रम के द्वार पर हँसती हुई कस्तूरबा खड़ी थीं।

''विनोबा! मेरे हाथ का खाना नहीं खाओगे?''

बाईस वर्ष पूर्व दिवंगत हुई माता का विनोबा को स्मरण हो आया। उन्होंने गद्‌गद स्वर में कहा, ''बा! मैं आपकी आज्ञा के बाहर नहीं जा सकता।''

वे पुन: स्वयं पाकघर में आये। महात्माजी अन्य लोगों के साथ बाहर के बरामदे में वर्तमान स्थिति पर चर्चा कर रहे थे। उनमें महादेवभाई की आवाज प्रमुख थी।

कस्तूरबा काम में लग गयी थीं। भोजन में अभी थोड़ा समय था। शिवाजीराव, भाऊ पानसे, नरूभाऊ महात्माजी की बातें सुनने में मग्न थे। विनोबा अकेले वहाँ से उठे और आश्रम के पीछे वृक्षों के बीच घूमने लगे।

उनके मन में माता की स्मृति जाग्रत हो गयी। यों वे माता को कभी भूले तो थे ही नहीं। परन्तु कस्तूरबा को देखते ही माता की स्मृति प्रबलता से जाग्रत हो जाती। रत्नागिरि जिले का वह छोटा-सा गाँव था—गागोदे। सम्पूर्ण मिट्टी के, नारियल के पेड़ों के तथा सुपारी के पेड़ों के छप्परों से आच्छादित, घरों के बीच अलग दिखाई देनेवाला पक्की ईंटों से बना हुआ घर। घर के बरामदे में बैठा-बैठा पूँछ हिलाता हुआ खण्ड्या (कुत्ता)। गाँव में अनेक तालाब थे। एक उनके घर के सामने भी था। उस तालाब की सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर जाने पर बरामदा, फिर बैठक, फिर घर का मध्य भाग, रसोईघर—माँ भोजन पकाती होती थी। दादा बगलवाले देवघर में होते थे।

मुख से अभंग का निरन्तर उच्चारण करती हुई माँ काम में लगी रहती थी। सब पर स्नेह करनेवाली माँ उनको आवाज देती, "विन्या! अपना काम बन्द कर और खाने आ जा। पत्तल ले आ।"

कस्तूरबा ने पुकारकर कहा, "विनोबा! पत्तलें परोस दी हैं। भोजन करने चलो।" विनोबा रसोईघर की ओर मुड़े।

प्रभात में सुगन्धित पवन चल रहा था और अब स्नेह का सागर उमड़ा आ रहा था। हाथ में पंखा लेकर कस्तूरबा विनोबा के पास बैठी थीं। उनकी बगल में महात्माजी बैठे थे। विनोबा को ऐसा लग रहा था जैसे वे गागोदे में अपने घर पहुँच गये हों।

17 अक्टूबर 1940। विनोबा ने रात में अपनी दैनन्दिनी में टिप्पणी लिखी। आज प्रात:काल उन्होंने पवनार के चौक में भाषण देकर ब्रिटिशों के विरुद्ध अपनी आवाज दर्ज करायी थी। पहले सत्याग्रही का पहला भाषण सुनने के लिए लोग वर्धा तक से आये थे। घुटनों तक धोती, कनटोपी और देह पर अँगोछा कसकर लपेटकर विनोबा अपने उच्च स्वर में बोल रहे थे :

> "बहिनो और भाइयो!
>
> आज महात्मा गाँधीजी का सन्देश सुनाने के लिए मैं यहाँ खड़ा हूँ। जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सुवर्ण बन जाता है, वैसे ही उनके स्पर्श से विन्या विनोबा हो गया है। उनका उच्चारित प्रत्येक शब्द एक वेदमन्त्र हो गया है। उस वेदमन्त्र का पुन:-पुन: उच्चारण करना मेरा संस्कार बन गया है। कल जब महात्माजी ने प्रथम सत्याग्रही के रूप में मेरा चयन किया तब क्षणभर मुझको ऐसा लगा कि मेरे इस दुबले-पतले शरीर के लिए 'सत्याग्रही' शब्द भी भारी

हो! जब मैंने बापू की ओर देखा तब पता चला कि मुझ जैसे असंख्य लोगों को ये दो आँखें आश्वासन दे रही हैं, शक्ति दे रही हैं और वेदमन्त्र की पवित्रता भी दे रही हैं। और तब ऐसा लगा कि हम भी सामर्थ्यशाली हैं।

बन्धुओ! दो-चार बहिनों को छोड़कर यहाँ बहिनें उपस्थित नहीं हैं। यह दृश्य तभी बदलेगा जब हमको स्वतन्त्रता मिल जाएगी। जब हम मुक्त साँस ले सकेंगे। परन्तु हम यह आशा करें, इस दृष्टि से प्रयत्न करें तो नैसर्गिक भाषण-स्वतन्त्रता पर भी ब्रिटिशों ने प्रतिबन्ध लगा दिया है। 'वन्दे मातरम्' कहने पर धर-पकड़ प्रारम्भ हो जाती है, इसका अर्थ यही है कि तुम मातृभूमि की स्वतन्त्रता की माँग मत करो, उसके विषय में मुँह भी मत खोलो! मनुष्य माता और भूमि माता पर स्वाभाविक प्रेम करता है। इस प्रेम को कोई छीनेगा तो अनर्थ होगा। 1857 ई. से हम यही माँग रहे हैं। सम्पूर्ण संसार पर अपनी सत्ता स्थापित करनेवाले अँग्रेजों को अब अपने पैर उठाने पड़ेंगे, यहाँ से जाना पड़ेगा।

हमारे आतिथ्य का, हमारे सीधेपन का, हमारी संस्कृति का फायदा उठाकर उद्दण्ड बने हुए अँग्रेज अब जल्दी ही यहाँ से जाएँगे, इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु अपने प्रयत्न समाप्त नहीं होने चाहिए। हमको थककर निर्बल नहीं होना है या निद्राग्रस्त नहीं होना है। हमको अपनी मातृभूमि के चरणों की शृंखलाएँ तोड़ने के लिए कटिबद्ध रहना चाहिए। मिट्टी के प्रेम का हम अनुभव करते हैं। अपनी जन्मभूमि, अपनी कर्मभूमि हमको प्रिय लगती है। जहाँ हम श्वास लेते हैं, जहाँ से हम जीवन प्राप्त करते हैं, जहाँ डगमग चरण दौड़ते हैं, जहाँ प्रगति का उत्साह लहराता है, जहाँ हमारे पूर्वज रहते हैं, जहाँ थके हुए चरण विश्राम करते हैं, जीवन के उदय से लेकर अस्त तक जहाँ हम चलते जाते हैं, उस आसेतु-हिमाचल अपनी मातृभूमि को कोटि-कोटि प्रणाम करके भी यह ऋण समाप्त नहीं होगा। उस मातृभूमि के प्रति एक शब्द भी न बोलें, यह कैसे सम्भव है? यह कैसी राजसत्ता है? यह तो अमानवीय आचरण का निदर्शन है। हम इसको कदापि स्वीकार नहीं करेंगे।

अँग्रेजों को संसार जीतना है। वे समस्त देशों को अपने पदतल में देखना चाहते हैं। इस देश के लोगों को वे बलपूर्वक युद्ध के लिए ले गये हैं, कारण यही है कि सत्ताप्राप्ति के लिए वे उनका उपयोग करना चाहते हैं। इसके विरुद्ध कोई आवाज भी न उठाए, इसलिए उन्होंने बोलने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया है। परन्तु मातृभूमि से सुदूर जानेवाले यहाँ के सैनिकों में हमारे ही रक्त के हमारे ऋणानुबन्धी हैं। अँग्रेजों को अधिक सत्ता प्राप्त कराकर उनको क्या लाभ होगा? चूँकि वे ब्रिटिश सरकार की सेना में हैं, इसलिए उनको इतना बड़ा दण्ड क्यों दिया जाए?—यह समझ में नहीं आ रहा है। इसका विरोध होना चाहिए। और

इसी समय प्रत्येक स्थान पर अँग्रेजों का अहिंसा से विरोध करना चाहिए।''

विनोबा के आग्रहपूर्ण सुदृढ़ स्वर को प्रत्येक श्रोता का मन स्वीकार कर रहा था।

सबको विश्वास था कि भाषण के बाद विनोबा को बन्दी बना लिया जाएगा। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। तब आनन्दित होकर शिवाजीराव बोले, ''हम समझ रहे थे कि आज आप बन्दी बना लिये जाएँगे।''

''आज नहीं बन्दी बनाये हैं तो कल बना लिये जाएँगे। उसमें विशेष कुछ नहीं है।''

''बापू का यह मार्ग सचमुच स्वतन्त्रता देगा क्या?''

''ईश्वर की ओर जाने के अनेक मार्ग हैं। उनमें एक प्रबल मार्ग है प्रेममार्ग। अहिंसा-मार्ग प्रेममार्ग है। इस मार्ग से हम जो चाहें वही प्राप्त कर सकते हैं।'' विनोबा कहने लगे, ''बापू यदि कोई प्रस्ताव रखते हैं तो उस पर भले ही उलटी-सुलटी चर्चा हो जाए, परन्तु अन्त में उनका मार्ग ही उचित लगने लगता है। लोग सशस्त्र क्रान्ति के मार्ग पर चल रहे हैं, वैयक्तिक प्रयत्न भी चालू हैं। आजाद हिन्द सेना है। मार्ग अनेक हैं। मुझको यही मार्ग योग्य लगता है।''

विनोबा के प्रति बहुत से प्रश्न किसी के मन में नहीं थे। शिवाजीराव को सदैव एक ही प्रतीति होती थी, विनोबाजी के अगम्य मन के तार महात्माजी के मन से निरन्तर जुड़े रहते थे।

दैनन्दिनी बन्द कर विनोबा बिस्तर पर लेट गये, परन्तु फिर भी उनके मन में युद्ध और शान्ति के विचार आते ही रहे। विश्व का कोई धर्म, कोई चिन्तक युद्ध को मान्यता नहीं देता है—फिर भी युद्ध होते ही रहते हैं। छोटे राज्य और छोटे देश परस्पर युद्ध करके अपना पराक्रम सिद्ध करते हैं। यदि कोई देश युद्ध में उलझना न चाहे तो बलात् उसको युद्ध में घसीटते हैं। क्या सिद्ध होता है इस युद्ध से? जो जीवन दिया नहीं जा सकता, ऐसे सैकड़ों जीवन क्षण में समाप्त हो जाते हैं तथा अशान्ति और द्वेष बढ़ता ही जाता है।

पहले महायुद्ध को टाला जा सकता था, यह बाद में सामाजिक चिन्तक और राजनीतिक समीक्षकों ने कहा था। परन्तु वास्तविकता यह थी कि वे युद्ध को टाल नहीं सके थे। पहला महायुद्ध 1 अगस्त, 1914 को प्रारम्भ हुआ और 11 नवम्बर, 1918 को समाप्त हुआ। निरन्तर चार वर्षों तक यह विश्वयुद्ध चलता रहा था। मानवहानि की पूर्ति कभी नहीं हो सकती। इस युद्ध के कारण तो अनेक कहे जाते हैं। आस्ट्रिया-हंगेरी के युवराज के वध से यह युद्ध प्रारम्भ हुआ। युवराज फ्रांसिस फर्डिनण्ड की मृत्यु ही एकमात्र कारण उस समय प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा था। वास्तविक संघर्ष जर्मनी और शेष यूरोप के बीच था। आस्ट्रिया को छोड़कर सभी जर्मन संस्थाओं का एकीकरण होने

से वह एक बलवती शक्ति तैयार हो गयी थी। और इस बलवान् जर्मनी के निर्माण के बाद ब्रिटेन-फ्रांस और रूस का एक प्रतिस्पर्धी तैयार हो गया।

घटनाचक्र यहीं नहीं रुका था। बलशाली जर्मनी को साम्राज्य-विस्तार की आकांक्षा थी। जर्मनी का एकीकरण होकर एक बलशाली संघ का निर्माण होने से पूर्व ही अफ्रीका और एशिया का बहुत-सा भूभाग ब्रिटेन-फ्रांस और रूस ने हड़प लिया था। उनके बाद जर्मनी ने अफ्रीका का और चीन का प्रदेश अधिकार में करना प्रारम्भ कर दिया। जर्मनी का विकास तेजी से होने पर ब्रिटेन और जर्मनी में स्पर्धा शुरू हो गयी। और फिर दोनों राष्ट्रों की सत्ता और साम्राज्य लिप्सा चरम सीमा पर पहुँच गयी। उसके लिए सेनाएँ अग्रसर हुईं।

आस्ट्रिया वैसे एक छोटा-सा राष्ट्र है, परन्तु उसने भी पोलैण्ड, हंगेरी और बाल्कन का कुछ भाग दबा रखा था। उस भाग को वापस करने का आश्वासन आस्ट्रिया ने दिया, परन्तु वह आश्वासन पूर्ण करने के बजाय जब उसने उन भागों को अपने देश में जोड़ लिया तब रूस की जनता क्षुब्ध हो गयी और लगभग उसी समय आस्ट्रिया के युवराज का वध हो गया तथा युद्ध के लिए मानो शंख ही बजा दिया गया। आस्ट्रिया के द्वारा युद्ध पुकारते ही सभी युद्ध-पिपासु सेनाएँ सावधान हो गयीं। जर्मन सेना अधिक सम्पन्न, सुसंघटित और प्रशिक्षित थी। उसका युद्ध-स्वर तीव्र था।

एक के बाद एक देश उसमें खिंचते चले गये। फिर जर्मनी ने रूस के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। फिर जर्मनी ने फ्रांस के विरुद्ध भी युद्ध की घोषणा कर दी। इटली मात्र उस ओर था, जिस ओर का पलड़ा भारी होगा। यूरोप के इन राष्ट्रों की समस्याओं का सम्यक् आकलन न कर पाने के कारण अमेरिका तटस्थ था। अमेरिका और रूस दोनों में साधन-सामग्री की होड़ लगी हुई थी। उत्पादन-क्षमता के लिए आवश्यक प्रचण्ड सम्पत्ति थी। जर्मनी अद्य-यावत् तन्त्रज्ञान से सम्पन्न था। जापान और जर्मनी के जहाजी बेड़े युद्ध-सामग्री से सज्जित थे, परन्तु विमानों की ओर उनका ध्यान नहीं था। परिणाम यह हुआ कि अमेरिका ने अन्त में युद्ध में भाग लेकर जापान और जर्मनी की धज्जियाँ उड़ा दीं। हिटलर की नीति की अनेक बातें यद्यपि उचित थीं तथापि उसकी कुछ भयंकर गलतियाँ उसको बहुत महँगी पड़ीं।

प्रथम महायुद्ध की प्रतिध्वनियाँ लम्बे समय तक गूँजती रहीं। सचमुच महायुद्ध अटल था क्या? इस प्रश्न का उत्तर खोजने में समय बीत रहा था और युद्ध के काले बादल पुन: विरल रूप में विश्व में एकत्र होने लगे। जनवरी 1919 ईसवी में शान्ति-समिति की बैठक हुई। इस शान्ति-समिति की बैठक में ही अशान्ति उत्पन्न हो गयी। पराजित राष्ट्रों को आधार देने के सम्बन्ध में वाद-विवाद चरम सीमा पर पहुँच गया था। उस समिति की बैठक में यह घोषणा भी की गयी कि जर्मनी को कुचलकर रख देंगे!

प्रथम महायुद्ध के समय भी ब्रिटिश साम्राज्य का सूर्य भारताकाश में चमक रहा

था। इसीलिए भारतीय सैनिकों ने ब्रिटिशों की ओर से युद्ध में भाग लिया था। भारतीय वायुसेना की नींव इसी युद्ध में रखी गयी थी और उस समय लोकमान्य तिलक की उग्र राजनीति 'केसरी' के माध्यम से प्रखरता से प्रकट होने लगी थी। सन् 1914 ई. के अगस्त में जब युद्ध का संकट इंग्लैण्ड पर छा गया और जब इंग्लैण्ड के विनाश की घड़ी आ पहुँची तब लोकमान्य तिलक जैसे निर्भीक समाजसेवक की गर्जना सुनाई दी, ''हिन्दुस्तान की प्रचण्ड सेना पर प्रचण्ड खर्च किसलिए किया जाता है?'' और उस गर्जना का परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन गवर्नर ने भारत में सेना-व्यवस्था बन्द कर दी।

इतना सब होने पर भी साम्राज्यवाद की बढ़ती हुई इच्छा, विकास के निरन्तर बढ़ते हुए चरणों के कारण असूया और शक्ति—इनके कारण द्वितीय महायुद्ध के विरल फैले हुए कृष्ण मेघ सघन होते चले गये।

विनोबा विचार कर रहे थे। उनके जीवन में यह द्वितीय महायुद्ध अटल लग रहा था। उनकी अवस्था पैंतालीस वर्ष की हो गयी थी।...अभी कितना समय व्यतीत होना है, यह कौन जानता है? कभी महायुद्ध से मुक्ति मिलेगी—यह भी कभी बताया जा सकेगा क्या? सब कुछ ही अनिश्चित है। आज एक, कल एक, आज यहाँ युद्धस्वर है, कल विश्व में युद्धों के तीव्र स्वर! मनुष्य का स्थिर और स्थायी भाव युद्ध ही है, यही सत्य है। कौरवों से लेकर आज तक प्रत्येक काल में विकास-पथ पर चलनेवाला मनुष्य आज भी सत्ता से पीड़ित है, यह मात्र नितान्त सत्य है।

पहले महायुद्ध में ही दूसरे महायुद्ध की अप्रकट घोषणा हो गयी थी। जर्मनी को धूल में मिला देने की घोषणा निरर्थक नहीं थी। पेरिस में सम्पन्न हुई शान्ति-समिति की बैठक शान्ति स्थापित कर ही नहीं सकी। 1 सितम्बर, 1939 को दूसरे महायुद्ध की शुरुआत हुई। शान्ति-समिति की बातचीत और उसमें जर्मनी से किया हुआ समझौता! इस समझौते में स्थान-स्थान पर जीता हुआ भाग जर्मनी को लौटाना पड़ा था। इस शल्य को हृदय में धारण किये हुए ही जर्मनी का उद्वेग बढ़ रहा था। सन् 1920 ई. में जागतिक राष्ट्र संघ की स्थापना हुई और राष्ट्र-राष्ट्र के बीच मैत्री बढ़ाने तथा युद्धस्थिति को टालने का उत्तरदायित्व उसको सौंपा गया। यद्यपि कागज पर आर्थिक और अणुशक्ति के बल का आधार था तथापि अमेरिका का हार्दिक सहयोग इस संघ को नहीं था। परिणाम यह हुआ कि संघ एकपक्षीय ही बना रहा।

प्रथम महायुद्ध में जर्मनी और इटली की पराजय हुई। उस पराजय में ही विजय की ईर्ष्या अंकित हो गयी और हिटलर ने रूस से मित्रता करके पोलैण्ड जैसे शान्तिप्रिय देश पर आक्रमण कर दिया। तब फ्रांस और ब्रिटेन को विवश होकर युद्ध में उतरना पड़ा। 3 सितम्बर, 1939 ई. को दिन के 11 बजे ब्रिटेन ने और सन्ध्या समय पाँच बजे फ्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। पोलैण्ड पराजित हो गया और रूस

और जापान ने उसको बाँट लिया परन्तु युद्ध की आग धधकती ही रही। फिर एक-एक करके सभी देश उसमें सम्मिलित हो गये। सन् 1940 में इटली का अधिनायक मुसोलिनी अपनी सामर्थ्य के साथ रण में सम्मिलित हुआ। ब्रिटेन से उसका पहला संघर्ष शुरू हो गया।

और उसी की प्रतिध्वनि भारत में सुनाई दी! ब्रिटेन ने भारत की सेना इटली के सैनिकों से लड़ने के लिए भेजी और तब तीव्र असन्तोष की लहर सम्पूर्ण भारत में दौड़ गयी। तब अहिंसात्मक युद्ध के मनोविज्ञान को महात्माजी ने जाना।

शासन से असहयोग, अपनी माँगों को शान्तिपूर्वक बार-बार लिखित रूप में देना, शासन का निषेध उल्लिखित कर उसको पंगु बनाना और जनता में जागृति उत्पन्न करना—इस मनोविज्ञान का अध्ययन यद्यपि महात्माजी ने नहीं किया था तथापि अनजाने में ही उनको अहिंसा का मार्ग कौरव-पाण्डवों के और राम-रावण के युद्ध से तथा विश्व में प्रतिदिन होनेवाले घमासान से चिन्तन के द्वारा प्राप्त हो गया था।

जब विनोबा को महात्माजी के अगम्य विचारों का सहज बोध हुआ तब उनको ऐसा आनन्द हुआ जैसे उन्होंने मन के एक गूढ़ गणित को हल कर लिया हो।

कल जब वे महात्माजी के पास से पवनार को लौटे थे तब उसी सन्ध्याकाल में उन्होंने अपने पिताजी को पत्र लिखा था। आज वह पत्र उनको ज्यों-का-त्यों याद आ रहा था। उसमें उन्होंने लिखा था :

> "मेरे मन में एक धुन समा गयी है। वह बापू की प्रत्येक कृति की संगति बैठाती रहती है। जो गूढ़ आकर्षण मुझको अगम्य ईश्वर के प्रति लगता है वही आकर्षण मुझको उनके प्रति लगता है। उनका अहिंसा का मार्ग पुरातन है—यह निर्विवाद है। यीशू को कीलें टांक देने पर भी उन्होंने कहा था—'प्रभो! इन अज्ञानी लोगों को क्षमा कर दो।' शान्तिपूर्वक सहन करने का यह वही मार्ग था।
>
> परन्तु आखिर सहनशीलता की भी एक सीमा होती है और जब वह सीमा टूटती है तब क्षणभर को मुझको भी क्रोध आ जाता है। बचपन में मुझको बहुत क्रोध आता था। मैं आते-जाते बालकोबा की अच्छी धुनाई कर देता था। वह मुझसे पाँच वर्ष ही छोटा था। जब हम मिलकर खेलते थे तब मैं अपने क्रोध को रोक नहीं पाता था। शिवाजी तो मुझसे चौदह वर्ष छोटा था। वह मेरी सब बातें मन:पूर्वक सुनता था। बचपन में उसके साथ मेरा सम्बन्ध अधिक रहा ही नहीं, वह अब रहा है। आज जब वह आदरपूर्वक व्यवहार करता है तब बचपन की बालकोबा की स्मृति हो आती है। आज मैं अहिंसा का जप करता हूँ, परन्तु उस समय माता के बार-बार सिखाने पर भी मैं राक्षस था। आज मैं मनुष्य हो गया हूँ, परन्तु आज माता नहीं है। धुले में जाकर आपको कुछ बताऊँ, आपके स्वास्थ्य को देखूँ, बापूजी ने मुझको पहला सत्याग्रही घोषित कर मेरा जो सम्मान

किया है वह आपको बताऊँ और आशीर्वाद प्राप्त करूँ—यह सब मन में था और है। इसीलिए पत्र भेज रहा हूँ।

ब्रिटिशों के विरुद्ध आज सारे देश में ही असन्तोष उत्पन्न हो गया है। प्रत्येक मनुष्य अपने ढंग से स्वतन्त्रता के लिए तन-मन-धन से समर्पण कर रहा है। जब सत्याग्रही के रूप में भाषण दूँगा तब हो सकता है कि मुझको बन्दी बना लिया जाए।

इन सब बातों का आपके मन पर आघात नहीं होगा—यह मेरा विश्वास है। देश के अनेक युवक आज स्वतन्त्रता की वेदी पर जीवनपुष्प अर्पण कर रहे हैं। वास्तव में मैंने जिस समय काशी को पलायन किया था उस समय मेरे मन में दो प्रबल मार्ग थे। एक था हिमालय के प्रकृतिरम्य वातावरण में योगी होकर विचरण करने का और दूसरा था बंगाल में असन्तोष से सुलगती हुई और बाद में ज्वालाग्राही होनेवाली क्रान्ति में भाग लेने का। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ और मैं कोचरब आश्रम में चला गया। शायद अनजाने ही मेरा मन यह समझ गया था कि मन भले ही सुदृढ़ हो परन्तु शरीर तो दुर्बल ही था।

हमारा बेटा पागल है—अनेक बार आपको ऐसा लगा होगा। सचमुच मैं अब भी पागल हूँ। अनेक मार्ग मिलते हैं। मैं अनेक प्रयोग करता हूँ। अनेक बार प्रवाह में बह जाता हूँ, अनेक बार सँभल जाता हूँ। खूब लिखता हूँ, खूब बोलता हूँ, खूब कष्ट सहता हूँ, परन्तु पवित्र मन से बहुत थोड़ा करता हूँ। स्वयं अर्जित किया हुआ खाता हूँ और पवित्र मन से सोता हूँ। नीले आकाश में नक्षत्रों की राशियाँ होती हैं। धरती पर पीठ टेककर सोने पर दरवाजे से, खिड़कियों से उनका दर्शन मुझको हो जाता है। उस दर्शन से चकित होकर मैं बाहर आता हूँ।

मुझको अनेक बार रायगढ़ में अपना गाँव गागोदे याद आता है। घर के पास का तालाब याद आता है और उस तालाब में अनेक बार दिखाई दिया हुआ शरद पूर्णिमा का चन्द्रमा याद आता है। एक बार माँ से मैंने पूछा था, 'जब यह बड़ा चन्द्रमा तालाब में आता है तब तारे क्यों नहीं आते हैं?'

'विन्या! अरे तारों को लज्जा लगती है इसलिए वे छिप जाते हैं।'

'सो क्यों?'

'किसी सत्पुरुष, किसी सद्गुणी मनुष्य को सामने देखकर जैसे साधारण मनुष्य को लज्जा लगती है वैसे ही पूर्ण चन्द्र को देखकर तारों को लगती है।'

आज माँ नहीं है। परन्तु समय-समय पर उसने जो वाक्य कहे थे वे धरोहर के रूप में मेरे पास हैं। जब कभी उनके ये वाक्य याद आ जाते हैं तो लगता है कि माँ ब्रह्मदेव से ब्रह्मविद्या और रामदासजी से व्यवहार-दीक्षा लेकर

आयी होगी। प्रत्येक कार्य को संगीत का साथ, प्रत्येक कार्य भक्तिरस से परिपूर्ण। प्रत्येक को अपनी माता प्रिय लगती है परन्तु मुझको अपनी माता प्रिय तो है ही, लेकिन प्रत्येक वाक्य का अर्थ खोजने में लगानेवाली वह मेरी गुरु भी है।

मैं आपका बड़ा लड़का हूँ। मैं श्रवणकुमार की तरह, पुण्डरीक की तरह सेवा करूँ—मातृ-पितृ-ऋण का विचार कर आपकी वृद्धावस्था की लाठी बनूँ—ये विचार पहले कभी आपके मन में न आये होंगे, परन्तु अब आते होंगे। आप थक गये हैं। यहीं से आप दिखाई दे रहे हैं। परन्तु देखते-ही-देखते यह ब्रह्मचारी बाबा गृहस्थाश्रमी हो गया है। समाज के प्रति कर्तव्य का और बापू के साहचर्य का मोह मैं त्याग नहीं सका।

बापू ने श्री जमनालाल बजाज के आग्रह पर वर्धा में सत्याग्रह आश्रम का निर्माण करवाया। फिर सेवाग्राम, पवनार, गोपुरी में मैं उनके आसपास ही घूमता रहा।

आप अकेले हैं। आप यहाँ आ जाएँ। मैं शिवाजीराव को भेज रहा हूँ। परन्तु उससे पूर्व यदि मेरे बन्दी बना लिये जाने का समाचार आपके कानों तक पहुँच जाए तो दुःख मत करिएगा। आपके आशीर्वाद से इस विन्या का जीवन यदि सुवर्ण नहीं बन सका तो भी उसको उपजाऊ मिट्टी हो जाने दीजिए।

भूमाता आज मेरी आवश्यकता बन गयी है। आजकल वह धरती नहीं लगती है, माता लगती है। और भी जो कुछ अनुभव होता है वह कहा नहीं जा सकता। माता शब्द में जो परम सात्त्विक और मंगल भाव है वे सब धरती में प्रतीत होते हैं और लड़कौरी धरती अति स्नेहमयी लगती है। परन्तु इससे भी अधिक और बहुत कुछ प्रतीत होता है।

आपको याद है? एक बार तालाब के पास से मैं एक आम का पौधा लाया था। कीचड़ के उस पौधे को आँगन के मध्यभाग में लगाने के लिए मैं माँ से आग्रह कर रहा था। परन्तु माँ ने एक धौल मुझको लगाते हुए कहा था, 'विन्या! जमे हुए पौधे उखाड़कर नहीं लाने चाहिए। उनको वहीं पनपने देना चाहिए। दूसरे स्थान पर वे मर जाते हैं।'

आज जब एक लड़के ने कुएँ के पास से पपीता का पौधा मुझको लाकर दिया तब मुझको माता का वाक्य याद आ गया और याद आ गयी गीता। स्वधर्म में, स्वप्रवृत्ति के अनुरूप, स्व-स्थान पर विकास होता है। परधर्म में स्वभाव और मूल मिट्टी को छोड़कर दूसरे स्थान पर मृत्यु की सम्भावना होती है—यह प्रतीति मन में कौंध गयी।

कहने का तात्पर्य इतना ही है कि माँ के वाक्यों का अर्थ और सन्दर्भ कहीं-न-कहीं जोड़कर देखने का मन अभ्यस्त हो गया है। आपकी सुबृहत्

कार्य-क्षमता तथा तरह-तरह के प्रयोग करने की शक्ति थोड़ी-बहुत मुझमें भी अवतरित हुई है। अस्तु! गिरफ्तारी तो होगी ही। इस गरीब विन्या को कितनी सजा होगी—यह कौन जानता है! जेलर कहेंगे, 'यह दुबला-पतला मनुष्य किस काम का है! इसको सजा दे दी तो झटपट मर जाएगा।' और व्यर्थ ही हत्या का पातक सिर पर लेने की अपेक्षा वह मुझको सहज ही छोड़ देगा।

जीवन के बहुत से वर्ष बीत गये हैं। सुखी है यह ब्रह्मचारी बाबा। यह हँसता है, नाचता है, गाता है—इसके पास कैसी भी कमी नहीं है। परन्तु आजकल आपकी याद आती है और आपकी चिन्ता सताती है।

कोई योगी हो जाए, अध्यात्म को घोलकर पी जाए, ब्रह्मज्ञानी और आत्मज्ञानी हो जाए, फिर भी माता-पिता से उसके प्रेम-सम्बन्ध अन्त तक टूटते नहीं हैं—यही सच है। सब कुछ त्याग देने पर भी मन जीवन-भर वहीं भटकता रहता है। मैं जल्दी ही मिलने आऊँगा अथवा आपको लिवा लाने के लिए शिवाजीराव को भेजूँगा। शेष कुशल है।"

विनोबा की आँखें आर्द्र हो गयीं। माँ तो है ही नहीं। पिता दूर धुलिया में हैं। उनसे सहज मिलना हो ही नहीं सकता है।

उनको अपने ऊपर आश्चर्य हुआ। प्रथम महायुद्ध से प्रारम्भ हुए विचार अन्त में बापू तक आकर ठहर गये थे। गीता का अर्थ बापू के जीवन में ढूँढ़ा जाए तथा आत्मज्ञान का आविष्कार उनके विचारों से प्रकट हो, ऐसे दुर्लभ रसायन बापू में थे।

परन्तु आखिर हम कौन हैं? केवल आनन्दयात्री?
या जीवन के प्रत्येक मोड़ पर ठिठकनेवाले,
प्रवाह-पतित जैसे तितर-बितर होनेवाले या
निराकार का अन्वेषण करते-करते सगुण के पूजक
या सशस्त्र-क्रान्ति में अहिंसा मिलाकर नये पथ के पथिक
या सृजनात्मक कार्यों के रसज्ञ या गूढ़ विचारों के मर्मज्ञ
या जीवन का गणित सजाकर रखनेवाले गणितज्ञ
या वसुन्धरा के ममत्व के भागीदार?

शायद हम कोई नहीं हैं। हम हैं मिट्टी। हम हैं वायु, आकाश, प्रकाश और जल। पंचभूतों का वास बना हुआ यह शरीर। विनायक नरहरि भावे—यह उस शरीर का नाम है, मन का, आत्मा का, चेतना का नाम है। पंचतत्त्व का अस्तित्व लेकर घूमनेवाला, चलनेवाला, बोलनेवाला रूप!

विनोबा सावधान हुए। व्यवहार का बोध हुआ।

आज का भाषण समाप्त हो गया। परन्तु सत्याग्रह चालू रखना है। कल शाम को चार बजे सुरगाँव में भाषण है। शायद कल गिरफ्तारी हो जाए!

और फिर कल भाषण में क्या-क्या बोलना है, इसका विचार करते-करते रात के उत्तरार्द्ध में वे निद्राधीन हो गये।

2

देवली से रोहण को जाते समय विनोबा आखिर बन्दी बना लिये गये थे। तीन महीनों का कारावास पूर्ण कर वे वर्धा में आये थे। वे सीधे महात्माजी से मिलने पहुँचे। तब महात्माजी विनोबा का हाथ पकड़कर उनको अन्दर ले गये और पूछा, "केम छे?"[1]

"आमी भालो आछी।"[2] विनोबा ने बांग्ला में उत्तर दिया।

"स्वास्थ्य अच्छा दिखाई दे रहा है।"

"कारागार में मस्तिष्क को चिन्ता नहीं होती है बापू! इसके अतिरिक्त वहाँ का जेलर हिन्दी-भाषी था। उसके मन में आपके प्रति असीम आदर-भाव था। उसने पूछा, 'बापू के पास से आये हैं न?' मैंने 'हाँ' कहा। उसने तत्काल मेरे पैर पकड़ लिये। मैं घबड़ा गया। कारागार में कोई इस प्रकार व्यवहार करेगा—यह सोचा भी नहीं था। वह बोला, 'मैं उनको देवता मानता हूँ। आप उनके चरण-स्पर्श करके आये होंगे, इसलिए मैंने आपको प्रणाम किया है। जब कभी आप बापू के पास जाएँ तब उनको मेरा नमस्कार पहुँचा दें।' बापू! उसने इधर-उधर देखकर चोरी-छिपे जो पवित्र नमस्कार किया था, उसको मैं आपको पहुँचा रहा हूँ। 'बापू का आदमी'—इस रूप में मेरा अच्छा स्वागत हुआ।"

महात्माजी हँसने लगे। क्षणभर विनोबा उनको देखते रहे। राष्ट्र की चिन्ता वहन करते हुए महात्माजी की हँसी मात्र निरागस् और निश्चिन्त थी।

"अब पुनः वही काम करना पड़ेगा। बार-बार कारागार में जाना पड़ेगा।"

"मैं यम-सदन जाने को तैयार हूँ।"

"यम-सदन जाने से कुछ भी सिद्ध नहीं होगा विनोबा! इस समय तो जीवित

---

1. कैसे हो?

2. मैं अच्छा हूँ।

ही मरण को भोगना है। शीघ्र ही यदि स्वतन्त्रता का उदय चाहते हो तो अन्धकार नष्ट होने तक मरण यातनाएँ सहने के लिए तैयार रहो।''

विनोबा क्षणभर मौन रहे। महात्माजी ही आगे बोले, ''विनोबा! आज 15 जनवरी है। दो दिन बाद सत्याग्रह पुनः चालू रखना है। मेरा मार्ग स्वीकार है न?''

''बापू! ऐसी बात क्यों कह रहे हैं?''

''कभी-कभी ऐसा लगता है कि सशस्त्र-क्रान्ति के मार्ग पर चलनेवालों को यह मार्ग मूर्खतापूर्ण लगता होगा। एक ओर हिंसा है, दूसरी ओर अहिंसा है। लक्ष्य एक ही है—स्वतन्त्रता की प्राप्ति। परन्तु साधारण जनता सोचती होगी कि इस गाँधी बाबा का मार्ग कायरता का है। हिंसा का परिणाम तत्काल मिलता है। युद्ध में जय या पराजय तत्काल दिखाई देती है। अहिंसा का मार्ग दूरगामी है। मुझ पर प्रेम के कारण सैकड़ों लोग मेरे मार्ग का अनुसरण करते हैं। कभी-कभी ये विचार मन में आ जाते हैं।''

जनवरी महीने का सुखद प्रभात था। वातावरण में स्वच्छ शीतलता थी। किसी ने बकुल-पुष्प लाकर महात्माजी की चटाई पर रख दिये थे। महात्माजी के सामने चरखा रखा था। मिलने के लिए आनेवाले लोग आ-जा रहे थे। महात्माजी निरन्तर बोल रहे थे। परन्तु विनोबा के आने पर उनको अन्दर के कमरे में ले जाते हुए महात्माजी ने मन का प्रश्न उनको बताकर कहा, ''तुम मेरे गुरु हो विनोबा!''

''बापू! ऐसी बात क्यों कहते हो?''

''जिस समय भी अपने कार्य के सम्बन्ध में मैं थोड़ा-सा भी शंकालु हुआ हूँ, मैंने तत्काल तुमसे विचार-विमर्श किया है। आज मेरे कथनानुसार सैकड़ों सत्याग्रही हो गये हैं। कारागार भरे जा रहे हैं। लोगों का मुझ पर जो प्रेम है, उसकी पात्रता मुझमें होनी चाहिए। यह विचार कभी-कभी मन में आता है।''

घुटने तक खादी की धोती पहने हुए महात्माजी महासागर की अथाह गहराई और विशालता लिये हुए थे। फिर भी वे अत्यन्त विनम्र थे। जागरूक थे। जब कभी उनके मन में कुछ पूछने की इच्छा होती थी तब वे विनोबा को बुलवा लेते थे।

''बापू! आपका मार्ग शत-प्रतिशत योग्य है। अहिंसा आयुर्वेद जैसी ही प्रभावशालिनी है। परन्तु उसका मार्ग दुरूह है। आज लोग अधीर, अस्वस्थ और उत्सुक हो गये हैं, परन्तु इसलिए अहिंसा का मार्ग असमर्थ और त्याज्य नहीं हो जाएगा; बल्कि हिंसाचार से, हत्याओं से और पराजय से त्रस्त होने पर एकमात्र मार्ग अहिंसा ही शेष रहता है। आपके मार्ग गलत होंगे, जब वे गलत लगेंगे तब लोग स्वयं ही उनको त्याग देंगे। अपना भला समझने में लोगों को समय भले ही लग जाए, परन्तु फिर भी वे अधिक समय तक हिंसाचार का मार्ग स्वीकार नहीं कर सकेंगे। इसलिए मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टि से अहिंसा और उसके लिए सत्याग्रह अनिवार्य है बापू! आज के दिग्गज जब इस बात को मान रहे हैं तब मैं अज्ञानी आपको क्या कह सकता हूँ?''

महात्माजी हँसकर बोले, "स्वयं को अज्ञ बतानेवाले तुम सबसे अधिक सुज्ञ और बुद्धिमान हो।"

महात्माजी ने विनोबा का हाथ पकड़ लिया। उसी समय मिलने के लिए आये हुए पत्रकार ने आगे बढ़कर फोटो खींच लिया।

"चलिए चिरन्तन स्मृति..." विनोबा बोले।

"अब आगामी सत्याग्रह कब है?"

"परसों 17 जनवरी को। प्रात:काल ही सत्याग्रह प्रारम्भ कर दूँगा।"

विनोबा पवनार को आये। शिवाजीराव प्रसन्न हुए। आश्रमवासी भी आनन्दित हुए।

विनोबा ने कहा, "तीन महीने पहले जब मैं सत्याग्रह को जा रहा था तब प्रत्येक की आँखें गीली हो गयी थीं। आप लोगों को लगा था कि यह बाबा सात समुद्र पार जा रहा है, अब यह देखने को नहीं मिलेगा। या लगा था कि बुढ़ापे में यह बाबा कारागार में कंकड़ नहीं तोड़ पाएगा, चक्की से पीस नहीं पाएगा। उस पर जेलर का क्रोध और जबर्दस्ती! बाबा का क्या होगा, इस भय से आपकी आँखें भीग गयी थीं। परन्तु नागपुर की जेल में अपराधियों के कक्ष संख्या एक में मुझको रखा गया और उस हिन्दी-भाजी जेलर को आपकी ही तरह मुझ पर दया आयी। वह बोला, 'बाबा! तीन महीने हो गये। तुमसे काम नहीं होता है। तुम लौट जाओ बाबा! तुम तो केवल भाषण दो। तुम्हारी आवाज अच्छी है। लोग सुनेंगे!' और उसने इस बाबा को छोड़ दिया।"

आश्रमवासियों की आँखें आनन्द से आर्द्र हो गयीं।

"परसों मैं फिर सत्याग्रह को जानेवाला हूँ। और जब तक बापू कहेंगे तब तक जाता रहूँगा।"

किसी ने कुछ न कहा। सन्ध्या समय हो गया था। विनोबा आश्रम के निकट खेत में गये। सन्ध्याकाल की केसरिया धूप खेत में गेहूँ की लहलहाती फसल पर पड़ी हुई थी। दूर कोई बाँसुरी बजा रहा था। गले में पड़ीं घण्टियाँ बजाते हुए गोधन लौट रहा था। गोधूली में केसरिया रंग मिल रहा था। विनोबा प्रसन्नता से हँसे।

सन्ध्याकाल सघन हुई। तब विनोबा लौटे। पुन: परसों प्रभात में सत्याग्रह का प्रारम्भ! प्रत्येक के मन का एक ही लक्ष्य है—स्वतन्त्रता! इस रूप सुन्दर वसुन्धरा की स्वतन्त्रता! खेत से लौटते हुए उनको देवली में दिया गया भाषण याद आ गया। सुरगाँव, सेलू और पवनार में भाषण हुए थे, परन्तु यहाँ गिरफ्तारी नहीं हुई थी। देवली में भाषण देकर रोहण को जाते समय उनको बन्दी बना लिया गया। देवली में देहात के कोने-कोने से ग्रामवासी किसान कुर्ता, मुडासा और घुटनों तक धोती पहनकर ठण्ड में भाषण सुनने आये थे। तब विनोबा ने सोचा था—आधे से ज्यादा हिन्दुस्तान ऐसा ही है, देहात के प्रत्येक कोने में रहनेवाला, अतिवृष्टि और अनावृष्टि में भी उत्सव मनानेवाला,

सतत चिन्ताग्रस्त होते हुए भी राष्ट्रभावना से भरा हुआ! इन लोगों को स्वतन्त्रता का तथा सत्याग्रह का अर्थ भी मालूम नहीं था। दिन और रात्रि की चिन्ता करते हुए वे ईश्वर पर श्रद्धा रखते हैं।

उन अनेक भोले लोगों को देखकर विनोबा प्रसन्न हुए थे। सुरगाँव और सेलू की अपेक्षा यहाँ भीड़ अधिक थी। भाषण की स्वतन्त्रता, जागतिक दूसरा महायुद्ध, भारतीय सैनिकों को मार डालने का षड्यन्त्र, बढ़ती हुई महँगाई तथा अनावश्यक वस्तुओं की कमी, उद्योग-धन्धों पर होनेवाले परिणाम, घर-गाँव तथा देश से दूर लड़ने को जानेवाले लोग—इनके सम्बन्ध में क्या कहा जाए, यह विचार करते हुए विनोबा क्षणभर खड़े रहे।

फिर उन्होंने बोलना प्रारम्भ किया :

'मेरे भाइयो!

आप इतने प्रेम से यहाँ आये हैं। दूर-दूर से आये हैं। आते समय सूर्य का प्रकाश था। परन्तु जब जाएँगे तब अन्धकार होगा। कीच-गड्ढों में होकर जाएँगे। रात का अन्धकार कल समाप्त होगा। परन्तु परतन्त्रता का अन्धकार...'

और विनोबा ने अपने भाषण में सरल स्वाभाविक शब्दों में अपनी भूमिका प्रस्तुत की। वे कहने लगे :

'ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान के लोगों को पूछे बिना ही हिन्दुस्तानी सैनिकों को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में जबर्दस्ती सम्मिलित कर लिया है। और उन्होंने यह घोषित कर दिया है कि सभी हिन्दुस्तानी लोग इस युद्ध का समर्थन कर रहे हैं। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। वे हमारा उपयोग अपना साम्राज्य बढ़ाने के लिए कर रहे हैं। हमको साम्राज्य नहीं चाहिए। हमको दूसरे देश पर आक्रमण नहीं करने हैं। ब्रिटिश उधर युद्ध में उलझे हुए हैं, इसलिए हमको उनके विरुद्ध लड़ाई नहीं छेड़नी है, बल्कि अहिंसा से उनको सत्य समझाकर कहना है कि यह हमारी भूमि है। श्रीराम और श्रीकृष्ण की तथा ऋषि-मुनियों की वेदवाणी जिसको प्राप्त है वह यह वसुन्धरा हमारी है। दूर तक फैले हुए हरे-पीले खेत, स्याह काली भूमि, खुला आकाश, स्वच्छ प्रकाश—यह सब हमारा है।

हम बोल सकते हैं, हम आनन्द के गीत गा सकते हैं। हम अपनी मातृभूमि के अंचल को दूसरे के हाथ में नहीं दे सकते।

आज मैं यह कहना चाहता हूँ कि इस भूमि के गीत गाने पर प्रतिबन्ध, उसके सम्बन्ध में बात करने पर प्रतिबन्ध, ये प्रतिबन्ध अब समाप्त होने चाहिए। हमारे घर में आकर कोई हमको चुप करना चाहेगा तो हम उसकी बात मान लें क्या? कभी नहीं। बापू ने मुझसे सत्याग्रह करने को कहा और मैंने उनका कहना

माना। क्यों? वह स्वयं मुझको उचित लगा। मैंने उनको अपनी भूमिका स्पष्ट कर दी थी।

चौबीस वर्ष पहले केवल ईश्वर-दर्शन की अभिलाषा से गृहत्याग कर मैं बाहर निकला था। उसका सर्वोत्तम और सुलभ साधन जनता की सेवा है, इस दृढ़ श्रद्धा को मन में रखकर मैंने इसको जनता की सेवा न मानकर अपनी ही सेवा माना और यह अनुभव किया कि असंख्य दोषों से युक्त मैं उनके चरणों के योग्य कैसे बन सकता हूँ! इसके अतिरिक्त दूसरी कोई इच्छा ही नहीं रही। आज सत्याग्रही के रूप में मैं उत्तरदायित्व को सँभाल रहा हूँ—इस समय भी मेरे मन में यही भावना है कि यह उत्तरदायित्व मेरा है।

अहिंसा के विषय में मेरी पूर्ण श्रद्धा है। मानव-समाज के सभी प्रश्न हल करने का वही एकमात्र साधन है। खादी, हरिजन-सेवा, जातीय एकता आदि जो विधायक कार्यक्रम हैं; उसको मैं अहिंसा की ही बाह्य प्रवृत्तियाँ समझता हूँ। मैं चौबीसों घण्टे इन्हीं प्रवृत्तियों को गतिशील करने और विकसित करने में लगा रहता हूँ। सरकार ने युद्ध-विरोधी प्रचार पर रोक लगाकर इन सब विधायक प्रवृत्तियों के मूल आधार पर ही आघात किया है। यह मेरा मत है। इसीलिए जब मुझको व्यक्तिगत सत्याग्रह के आन्दोलन का उत्तरदायित्व स्वीकार करने को कहा गया तब उसको स्वीकार करने में मुझको किसी तरह की कठिनाई नहीं हुई।

मैंने निश्चय किया कि यदि सरकार मुझको स्वतन्त्र रहने देती है तो मैं लोगों के बीच जाकर विनम्र शब्दों में अपने इस विचार को रखूँगा कि युद्ध में हिन्दुस्तानियों का कोई सहभाग नहीं होना चाहिए। नाजीवाद, फासीवाद, साम्राज्यवाद—ये सब एक ही माला के मनके हैं, यह मैं सिद्ध कर सकता हूँ। सरकार की वर्तमान नीति कितनी अनुचित है, यह भी मैं कह सकता हूँ।

मुझ पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है और मैं अनेक दुर्बलताओं से भरा हुआ हूँ, इसकी जानकारी मुझको है। ईश्वर की कृपा से और सज्जनों के आशीर्वाद से यह उत्तरदायित्व मेरे दोषों को दूर करने में काम आएगा, यह आशा मैं कर रहा हूँ। ईश्वर मुझको शक्ति दे!'

विनोबा बोल रहे थे। उच्च स्वर से। अत्यन्त भावविभोर होकर। लोग भी गम्भीर हो गये थे। सन्ध्याकाल सघन हो गया था और ठण्ड का जोर भी बढ़ गया था। भाषण का परिणाम भी गहरा हुआ था। दूसरे दिन रोहण में भाषण था, इसलिए वे चल दिये। उसी समय पुलिस ने उनको बन्दी बना लिया। हाथों में हथकड़ी डालते हुए सिपाहियों ने विनम्रता से कहा, "बाबा! हम मजबूर हैं।"

"आप अपना काम करें।"

"परन्तु अपने ही आदमी को कैद करते हुए बुरा लगता है।"

"अपने आदमियों की चाकरी छोड़कर दूसरों की करेंगे तो उनके नियमों का पालन आपको करना ही पड़ेगा। आप निस्संकोच अपना काम करें।"

विनोबा को बन्दी बनाकर वर्धा के न्यायालय में खड़ा किया गया। न्यायाधीश हिन्दी-भाषी था।

उसने पूछा, "आपका नाम क्या है?"

"इस देह को विनायक नरहरि भावे कहते हैं।"

"आपकी अवस्था कितनी है?"

"चालीस और पाँच।"

"आपकी शिक्षा?"

"अभी पूर्ण होनी है।"

"आप कहाँ रहते हैं?"

"वैसे तो मेरे रहने का स्थान आपको मालूम होगा ही। मैं रायगढ़ में गागोंदे गाँव का रहनेवाला हूँ। पढ़ाई की वाई में और बनारस में। अपनी ही भारत भूमि में घूमता रहता हूँ। इस पर आपको कोई ऑब्जेक्शन नहीं होना चाहिए।"

"आपका व्यवसाय क्या है?"

"मेरे हाथों का व्यवसाय है सूत कातना और खेत में काम करना। पैरों का व्यवसाय है धरती पर चलना, आँखों का है भारत माता के सुजलाम्-सुफलाम् रूप को देखना और कानों का भारतमाता की स्तुति सुनना। मन का भी एक व्यवसाय है—नित्य हरिभजन करना।"

"आपको अपना अपराध स्वीकार है?"

"अपनी ही भूमि का गुणगान करना, उसकी स्तुति सुनना और उसकी स्वतन्त्रता के लिए आपका विरोध करना, यह मेरा अपराध नहीं बल्कि आदि कर्तव्य है। आपने मुझ पर युद्ध-विरोधी भाषण करने का आरोप लगाया है। उसको मैं स्वीकार करता हूँ। मैंने अत्यन्त विचारपूर्वक भाषण दिया है। और वह सकारण दिया है। परन्तु मैंने कैसा भी अपराध नहीं किया है और न वैसा करने में मेरा कोई बुरा कर्म करने का उद्देश्य है। वास्तव में मैं उसको भी अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूँ। अहिंसा पर मेरा पूर्ण विश्वास है और अपने जीवन का अधिकतर समय मैंने राष्ट्रीय एकता, खादी, हरिजन-सेवा, बुनियादी अर्थात् मूलभूत जीवन-शिक्षण आदि रचनात्मक कार्यों में व्यतीत किया है। ये सभी कार्य अहिंसा पर आधारित हैं। ऐसे समय में ऐसी नाजुक परिस्थिति में जब मुझ जैसा कोई मनुष्य सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह का उत्तरदायित्व स्वीकार करता है तब वह अपना परम पवित्र कर्तव्य ही स्वीकार करता है। आपने जो दण्ड दिया है वह इसी कारण स्वीकार है कि आप राज्यकर्ता हैं।"

और विनोबा को तीन महीनों की कैद की सजा हो गयी। सजा पूरी काटकर विनोबा शान्ति से लौट आये। उस दिन विनोबा जब खेत से आश्रम में आये तब सायंकालीन प्रार्थना के लिए सब एकत्र हुए थे। प्रार्थना हो जाने पर शिवाजीराव ने पूछा, "वहाँ बहुत कष्ट उठाना पड़ा होगा ना?"

"नहीं, अधिक कष्ट नहीं मालूम पड़ा। जेलर हिन्दी-भाषी था। वह बार-बार आकर पूछता, 'बाबा! कोई तकलीफ है?' दो-तीन बार मैंने 'नहीं' कह दिया। बाद में उससे कहा, 'एक तकलीफ है।' उसने आश्चर्य से पूछा, 'कौन-सी?' मैंने कहा, 'यहाँ से सूर्योदय और सूर्यास्त दिखाई नहीं देते हैं और क्षितिज तक भूमि दिखाई नहीं देती है।' वह गम्भीर होकर बोला, 'आइ ऐम सॉरी बाबा! ऐक्स्ट्रीमली सॉरी!' "

"फिर आपकी दिनचर्या कैसी थी?" शिवाजीराव ने पूछा।

विनोबा हँसकर बोले, "यों देखा जाय तो आश्रम में और वहाँ ज्यादा अन्तर नहीं था। सारा काम घण्टे बजने के साथ होता रहता है। शरीर अनुशासन का अभ्यस्त होता है। कभी-कभी मन में यह बात आती थी कि लौह-शृंखलाएँ और लोहे के दरवाजे मनुष्य के मन की अच्छी भावनाओं को कहीं भी नहीं रोक सकते हैं। इस वातावरण में लोग स्वधर्म को भूलते नहीं हैं। हम स्वतन्त्रता के बन्दी अपना ध्येय कहाँ भूले थे?"

विनोबा कह रहे थे, "बाद में ऐसा लगा कि खूनी-डकैत यहाँ अगर आएँ और उनके साथ बलपूर्वक निम्न स्तर का व्यवहार किया जाए तो वे कभी नहीं सुधरेंगे, उलटे वे अधिकाधिक दुराग्रही और मत्सरी हो जाएँगे। उनको पश्चात्ताप के लिए दण्ड दिया जाना चाहिए। सहृदयतापूर्वक उनको उनकी दुर्वृत्ति से परावृत्त करना चाहिए। यह विचार मैं करता रहा। हमारे साथ एक खूनी कैदी था। उस पर जो सख्त अत्याचार होते थे उनको देखकर मन बेचैन हो जाता था। एक दिन वह अकेला बैठा था। मैंने उसको पास बुलाया और कहा, 'तुम मराठी हो या हिन्दी-भाषी, तमिल-भाषी हो या तेलुगु-भाषी के, यह मैं नहीं जानता हूँ, परन्तु तुम हिन्दुस्तानी हो। आओ हम लोग एक स्वतन्त्रता का गीत गाएँ।' "

विनोबा कुछ रुककर कहने लगे, "वह नहीं बोला। फिर मैंने उससे कहा, 'मैं श्रीराम का गीत गाऊँ या गणपति का?' वह आधी हिन्दी और आधी तमिल में बोला, 'गणपति का।' और मैं उच्च स्वर से एक के बाद एक गीत गाने लगा। आसपास के वातावरण को भी भूल गया। और जब मैं गाते-गाते थक गया तब मैंने आँखें खोलीं। मेरे सामने कारागार के दो-ढाई सौ कैदी बैठे हुए थे। जेलर पीछे खड़ा था। क्षणभर मुझको भी कुछ नहीं सूझा।"

विनोबा कह रहे थे, "जेलर बोला, 'बाबा! एक प्रार्थना करना चाहता हूँ।' मैंने संकोचवश पूछा, 'क्या?' जेलर ने कहा, 'रोज सुबह-शाम केवल भक्तिगीत आप गा सकेंगे क्या?' मेरी आँखें आनन्द से आर्द्र हो गयीं। न जाने कहाँ-कहाँ से आये हुए ये सारे लोग क्षणभर में मेरे हो गये थे। उसी क्षण श्रीराम के जप के सामर्थ्य की प्रतीति

हो गयी। संगीत के सामर्थ्य, अहिंसा के सामर्थ्य और प्रेम के सामर्थ्य को भी जाना। फिर मैंने तुकाराम, नामदेव, एकनाथ के अभंग मँगवाये। वे पुस्तकें जेलर ने लाकर दीं और कहा, 'बाबा! मैं कहीं भी जाऊँ परन्तु इस जेल को मैं भूल नहीं सकूँगा।' मेरे पास अधिक काम नहीं था। शायद जेलर की मुझपर कृपा थी। परन्तु मुझको यह स्वीकार नहीं था। स्वावलम्बन से जीवन बिताने का मेरा आग्रह था। मैंने जेलर से काम माँगा। तब उसने कहा, 'बाबा! यहाँ युद्धकैदी, खूनी-डकैत, चोर और महाचोर हैं। बापू के हृदय-परिवर्तन पर मेरा असीम विश्वास है। आप गाइए, पढ़िए, बोलिए! यही आपका काम है। सबको समझदार बनाएँ। अनजाने क्रोध के आवेश में अपराध करके कारागार में जीवन बितानेवाले लोगों को आप आनन्द का मन्त्र दे जाइए। यही आपका काम है।' इस पर मैं क्या कहता? फिर तो मेरी दिनचर्या निश्चित हो गयी। मुझको नया आनन्द प्राप्त हो गया।''

आश्रमवासी सुन रहे थे। यदि इस बाबा को सात समुद्र के पार घनघोर अरण्य में फेंक दिया जाय तो भी यह ऐसा ही प्रसन्न रहेगा, इसमें उनको कोई सन्देह नहीं था।

दूसरा दिन पवनार आश्रम में विनोबा के सुमधुर गायन के साथ ही उदित हुआ। प्रात:काल के चार बजे थे। धाम नदी की ओर जाते हुए विनोबा गा रहे थे :

आनन्द-निधि हमने उर में सहेज रखी है
प्रेम का प्रवाह बह चला है
नाम का प्रवाह बह चला है
जीवन न हो खण्डित—रामकृष्ण नारायण!

वातावरण प्रसन्न हो गया था। कल विनोबा का स्वर सुनने को नहीं मिलेगा, यह सोचकर शिवाजीराव व्याकुल भी हो गये थे।

देखते-देखते दिन समाप्त हो गया। दिनभर विनोबा निरन्तर बोलते रहे और हाथ से सूत कातते रहे।

सोने से पहले विनोबा ने कहा, ''मोघे! संक्रान्ति के बाद दिन बड़ा और रात छोटी हो गयी है।''

तब मोघे बोले, ''ऋतुओं का चक्र तो चलता ही रहता है, क्षण भर विराम न लेते हुए। जब कभी मन में विचार आता है तब लगता है कि ऐसा सुनियोजित निसर्गक्रम पहले किसने तैयार किया होगा? आज तक उसका पालन कैसे हो रहा है? उसमें कभी-कभी उत्पात होने पर भी उसकी निरन्तरता कैसे बनी रहती है?''

''इसी को ईश्वर कहते हैं। निसर्ग कैसे उत्पन्न हुआ, इसका कारण जीवविज्ञान बता भी सकता है परन्तु निसर्ग में स्थान-स्थान पर फैली हुई ईश्वरीय यन्त्रणा साधारण मनुष्य को चकित कर देती है। वह बुद्धिवाद को मोहित करती है, विज्ञानवाद को

चुनौती देती है तथा भक्तिमार्ग को प्रकाश देती है। इस दृष्टि से जिधर-जिधर देखा जाय उधर-उधर ईश्वर का साक्षात्कार होता है। इसीलिए मेरी माता निरन्तर हरिनाम के अभंग गाती रहती थी। कितनी ही ओवियाँ उसको याद थीं। सुनते-सुनते मन एकाग्र हो जाता था और निराकार का साकार रूप आँखों के सामने आ जाता था। मोघे-जयदेव! अब जाओ, सब सो जाओ!"

मोघे और जयदेव के जाने पर विनोबा ने गीताई (गीता माता) निकाली और गीता माता की माता उनकी आँखों के सामने खड़ी हो गयी और देखते-ही-देखते वह भारतमाता हो गयी। विनोबा गुनगुनाते रहे :

देवि स्वतन्त्रते! तुम्हारे ही लिए यह देह जीर्ण हो।
हे महन्मंगले! तुम्हारे लिए स्वर वाणी को मिले।

प्रात:काल ठीक साढ़े सात बजे विनोबा अनेक लोगों के साथ बापू के आश्रम के सामने पहुँचे। पवनार से सेवाग्राम तक पैदल आते समय विनोबा गा रहे थे। जब वे सेवाग्राम पहुँचे तब सूर्य क्षणभर पहले ही बादलों से बाहर आया था।

आश्रम से महात्माजी बाहर आये और बोले, "क्षणभर पहले बादलों की ओट से महारथी सूर्य महाराज प्रकट हुए और दूसरे ही क्षण प्रत्येक हिन्दुस्तानी के हृदय में विराजमान महापुरुष का स्वरूप प्रकट हुआ। विनोबा! तमने कैद करवा माटे आव्यो छूँ। तमने तो कमाल कर्यो छे।"[1]

महात्माजी ने स्वयं तैयार किये हुए सूत की माला विनोबा के गले में डाल दी और बोले, "विनोबा! तुमको सफ़लता प्राप्त हो!"

चौक के पास मैदान में सभा थी। तीन महीनों के बाद विनोबा कारागार से आये थे। जब वे कारागार में थे तब उनसे सम्बन्धित समाचार अखबारों में छप रहे थे। विनोबा को सारा संसार जानने लगा था, यह बात जब विनोबा कारागार से बाहर आये तब स्पष्ट हो गयी थी। अब मैदान में एकत्र प्रचण्ड भीड़ से वह और अधिक स्पष्ट हो गयी। महादेवभाई विनोबा के साथ थे।

विनोबा ने भाषण प्रारम्भ किया। भाषण का समय प्रात:काल का होते हुए भी, स्त्री-पुरुषों से मैदान खचाखच भरा था। विनोबा कहने लगे :

'मेरे बहिन-भाइयो!

आप बहुत बड़ी संख्या में यहाँ आये हैं, यह देखकर बाबा परम प्रसन्न है। यह श्रद्धा मुझ पर नहीं है। यह श्रद्धा स्वतन्त्रता पर है, मातृभूमि पर है तथा महात्मा गाँधी जी पर है, यह मैं जानता हूँ।

---

1. विनोबा! तुमको कैद करने के लिए आया हूँ। तुमने तो कमाल कर दिया है।

हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को रामनाम जपने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था, यह कहानी मैंने बचपन में पढ़ी थी। तब मैं सोचता था, 'राम नाम लेना कितनी तुच्छ बात है। उस पर प्रतिबन्ध क्यों लगाया जाए?' परन्तु अब लगता है कि यह बात सच होगी। आज वही अनुभव प्रत्यक्ष हो रहा है। मनुष्य किसी को भी न मारे—इस छोटे से वाक्य में गहन अर्थ भरा हुआ है। जो एक-दूसरे के शत्रु हैं, जो युद्ध के लिए तैयार हैं, वे एक-दूसरे के मारनेवाले हैं। जो निःशस्त्र हैं, जिनकी किसी से शत्रुता नहीं है, ऐसे छोटे बच्चे, हॉस्पिटलों में पड़े रोगी, जो अपने कुटुम्ब के अतिरिक्त और कुछ भी विचार करने की इच्छा नहीं रखती हैं, ऐसी गृहिणी स्त्रियाँ, इन पर बम डालने को क्या लड़ाई कहेंगे? जर्मनी के पेड़ युद्ध में शामिल हैं क्या? परन्तु इतनी सीधी बात भी उनको समझाकर कहना अपराध है क्या? अभी कारागार से मुक्त हुए दो दिन भी नहीं बीते हैं कि ये सब बातें आप लोगों को बताने के लिए मैं यहाँ तक आया हूँ। तो क्या मैं पागल हूँ?

सच पूछिए तो यह बताना मेरा धर्म है। युद्ध में हमको कैसी भी सहायता नहीं करनी है। इसके अतिरिक्त रचनात्मक कार्यक्रम करने हैं। आपस में सबको एकता स्थापित करनी है। हरिजनों से प्रेमपूर्वक व्यवहार करके स्पृश्यास्पृश्य का भेद नष्ट करना है तथा खादी का प्रचार करना है, यह हमारी नीति रहनी चाहिए। वर्तमान स्थिति में द्वेष-मत्सर-ईर्ष्या और भ्रष्टाचार बढ़ा है। ऐसे समय में प्रेमपूर्वक समझदारी से यह संसार हमको जीतना चाहिए। महात्माजी का आशीर्वाद लेकर मैंने यहाँ इतना समझाकर कहा है। यदि सरकार ने मुझको मुक्त रखा तो मैं बार-बार इसी बात को कहता रहूँगा।'

विनोबा तल्लीन होकर बोल रहे थे। प्रत्येक श्रोता के हृदय में उनके शब्द अंकित हो रहे थे। मैदान की भीड़ के पास ही पुलिस की वैन खड़ी थी। मंच के पास भी सिपाहियों की पंक्ति थी। प्रत्येक व्यक्ति यही समझ रहा था कि अब विनोबा बन्दी बना लिये जाएँगे। परन्तु पुलिस इन्स्पेक्टर मंच से उतरते हुए विनोबा को अभिवादन करके खड़े हो गये।

विनोबा ने हँसकर पूछा, "कैद करेंगे क्या?"

पुलिस इन्स्पेक्टर हँसकर बोले, "अभी नहीं। शाम को भी तो भाषण है न! उसको होने दीजिए। फिर देखेंगे।"

विनोबा मंच से उतरकर सीधे व्यायामशाला की झोंपड़ी के सामने पहुँचे और धूप में मैदान में घूमने लगे।

धूप में घूमने का विनोबा का प्रतिदिन का नियम था। उनके मन में कहीं गंगा के पात्र में सूर्योदय से लेकर मध्याह्न तक खड़ा रहकर अर्घ्य देनेवाला कर्ण खड़ा था।

गौर वर्ण का शरीर सूर्य के तेज से लाल-सा और तेजस्वी हो गया है, ऐसा कर्ण का रूप उनको दिखाई पड़ रहा था।

अब भी वे धूप में घूम रहे थे।

''सुना है कि आप प्रतिदिन धूप में घूमते हैं। यह सच है क्या?'' किसी ने पूछा।

''हिन्दुस्तान में सभी ऋतुएँ हैं। परन्तु ग्रीष्मकाल प्रमुख है।...देश के किसान धूप में ही काम करते हैं। ग्रीष्मकाल में धूप तेज तो होती है परन्तु प्रातःकाल की धूप शरीर के लिए आवश्यक होती है। उससे स्वास्थ्य उत्तम रहता है। धूप-वायु-वर्षा-प्रकाश इन तत्त्वों से हम जुड़े हुए हैं।''

''हम लोग यदि इन्हीं तत्त्वों में उलझे रहेंगे तो हमको जंगली मनुष्यों की तरह जंगल में ही रहना पड़ेगा। तो फिर इन गाड़ियों की और सुख-सुविधाओं की क्या आवश्यकता है?''

''आप ठीक कहते हैं। मनुष्य विकास-यात्रा कितनी ही कर ले, फिर भी प्रकृति से उसको निकटता ही रखनी पड़ेगी। सृष्टिक्रम के साथ अपना विकास रखने पर ही आरोग्य ठीक रहेगा। हम प्राकृतिक साग, कन्द-मूल, फल खाते हैं, पानी पीते हैं; उसी प्रकार धूप-सेवन भी करना चाहिए।''

''बाबा! मनुष्य के पास इतना समय भी कहाँ होता है कि वह घण्टों तक खाली बैठा रहे। जिसके पास कोई काम नहीं होगा, अनायास ही जिसको सब कुछ प्राप्त हो जाता होगा, उसके लिए तो ये चोचले ठीक हैं।'' उसका आशय विनोबा समझ गये।

वे हँसकर बोले, ''मनुष्य के पास समय की कोई कमी नहीं है। वह केवल समय का सदुपयोग नहीं कर पाता है। सूर्योदय के बाद उठकर घर के कामों में घण्टों बिता देना, नौकरी से लौटकर पुनः संसार में डूब जाना। आते-जाते और काम करते समय भी ईश्वर का नाम लेने को जिसके पास समय नहीं है अथवा एक क्षण को भी ईश्वर को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करने के लिए जो समय नहीं निकाल पाता है, ऐसा मनुष्य ईश्वर-प्रणीत प्रकृति से संगति नहीं बैठा सकता।''

विनोबा का स्वर अत्यन्त सौम्य था।

''आप जो कह रहे हैं वह उचित तो लग रहा है। परन्तु समय निकालना कठिन है।''

''समय कैसे भी बिताने के लिए अपने पास समय नहीं होता है क्या? परसों एक सज्जन बोले, 'मन में बड़ी इच्छा होती है कि प्रतिदिन सुबह देवता की पूजा करके घर से निकलें, परन्तु कर नहीं पाते।' मैंने पूछा, 'ऐसा क्यों? आप कितने बजे उठते हैं और कितने बजे घर से निकलते हैं?' वे बोले, 'उठता हूँ साढ़े छह बजे। फिर इधर-उधर काम करने में नौ-साढ़े नौ बज जाते हैं। फिर मैं घर से बाहर चल देता हूँ।' फिर मेरी कुछ भी कहने की इच्छा नहीं हुई। ये लोग अपने मन को ही धोखा देते हैं। क्षण-

क्षण का हिसाब रखते हैं क्या ये लोग? नहीं। फिर क्यों कहते हैं कि मन में बड़ी इच्छा होती है! ऐसे लोग ढोंगी होते हैं। यदि वास्तव में इच्छा हो तो चौबीस घण्टों में दस-पन्द्रह मिनट, आधा घण्टा लोगों के पास नहीं बचता है, यह कहना उचित है क्या? आपको विश्वास होता है इस पर?''

उन सज्जन ने कुछ न कहा। विनोबा ही बोले, ''यदि किसी के पास किसी काम के लिए समय नहीं है तो वह उसको निकालना चाहिए। उस समय जो काम हों उनको आगे-पीछे कर लेना चाहिए, परन्तु मन को धोखा नहीं देना चाहिए।''

अनेक लोग अनेक प्रश्न करते थे। विनोबा प्रत्येक को प्रेमपूर्वक उचित उत्तर देते थे। उनके साथ मदालसा देवी थीं।

वे बोलीं, ''देखा जाय तो मनुष्य खूब समय निकाल सकता है। सामाजिक कार्य भी कर सकता है। धूप में घूमना एक बार न भी कर सके परन्तु अनेक अवधानों को वह सहज स्वीकार कर सकता है।''

मोघे बोले, ''अब बाबा को ही देख लो। समय का प्रश्न ही नहीं है या उनके सामने कोई प्रश्न ही नहीं है। आश्रमवासी जब सुखनिद्रा में लीन होते हैं तब प्रातः तीन बजे वे उठते हैं। यह उनके लिए सुन्दर ब्राह्ममुहूर्त है। हम अपनी नींद देखें तो हमको कुछ नहीं होता है। शरीर को अभ्यस्त करना पड़ता है। पहले-पहले इतनी सुबह उठने में प्राणों पर बीतती थी, परन्तु फिर अभ्यास हो गया। उचित भी लगा।''

शिवाजीराव मुक्त मन से हँस पड़े।

''क्यों हँसे शिवाजीराव?''

शिवाजीराव बोले, ''माँ का कथन याद आ गया। वह कहती थी कि काम करने की जब इच्छा नहीं होती है तब स्पष्टीकरण के लिए सतत आधार ढूँढ़ना पड़ता है। कहती—नाचना आता नहीं है और आँगन टेढ़ा बताते हैं। आज हमारी भी वही दशा है।''

दस-ग्यारह बज रहे थे। विनोबाजी के पास आकर एक गाड़ी खड़ी हो गयी। भाषण देने नालवाडी को जाना था। विनोबा झटपट गाड़ी में बैठ गये। शिवाजीराव, मोघे, मदालसा देवी उनके पीछे-पीछे गाड़ी में बैठ गयीं। एकत्र लोगों को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए विनोबा बोले, ''सत्कार्य के लिए समय निकालिए। मन को सद्विचारों से परिपूर्ण रहने दीजिए।''

उन सज्जन ने विनोबा के खिड़की से बाहर आये हुए हाथों पर अपना सिर टेककर कहा, ''बाबा! इतने समय में ही मैं बहुत कुछ सीख गया हूँ। आपके साथ रहने के लिए मैं अवश्य आऊँगा।''

गाड़ी शुरू हो गयी।

मोघे बोले, ''बाबा! आपको अनेक हार मिले हैं। इन हारों का आखिर क्या

किया जाए? प्रत्येक की इच्छा होती है कि बाबा को हार पहनाया जाए। हारों का ढेर लग गया है। तो ऐसा करें कि इनको नीलाम कर दें!"

"मुझको यह तरीका पसन्द नहीं है।"

"सो क्यों? हारों को खरीदने के लिए मूल्य अवश्य चुकाया गया होगा। इन हारों का सूखकर निर्माल्य हो जाएगा। यदि इनको नीलाम किया जाए तो लोग 'बाबा के हार' समझकर ले लेंगे। रचनात्मक कार्य के लिए इससे पैसा मिल जाएगा।" मोघे ने कहा।

विनोबा बोले, "सचमुच मुझको यह तरीका पसन्द नहीं है। बापू इस प्रकार नीलाम करते हैं, वह ठीक है। मुझको गणित प्रिय है। परन्तु यह हिसाब मैं नहीं कर पाता हूँ। जमनालालजी इसी प्रकार विचार करते हैं। उनका हिसाब तो बहुत ही अलग है। उनका गणित होता है कि अमुक मनुष्य बाबा के सहवास में इतनी देर तक रहा तो वह कितना बदल सका होगा? हारों के सम्बन्ध में मेरे मन में एक ही बात आती है। उनके पीछे देनेवालों की भावनाएँ हैं। मैं उनको अनुभव करता हूँ। बापू भी उनको अवश्य अनुभव करते होंगे। परन्तु उनको देश का विचार करना है। मैं तो साधारण मनुष्य हूँ। मैं तो केवल अपना समाधान खोजता रहता हूँ। मैं तो आत्मसन्तोष को ही सभी परिणामों की कसौटी मानता हूँ। इस कारण ऐसे पैसे के व्यवहार का बोझ भी मुझ पर नहीं रहता है।"

सन्ध्या समय नालवाडी में और रात में वर्धा में भाषण था। विनोबा ने भाषणों का सत्र ही प्रारम्भ कर दिया था। एक के बाद दूसरा भाषण जब होता था तब प्रत्येक बार शिवाजीराव को लगता था कि अब विनोबा कैद कर लिये जाएँगे।

मदालसा देवी ने भी मन की बात कह दी थी, "बाबा! प्रत्येक शब्द को कानों से सुनते हुए आँखें मात्र पुलिस पर ही लगी रहती हैं।"

"परन्तु आप लोग इतना विचार क्यों करते हैं? जब जानबूझकर यह व्रत अंगीकार किया है तो परिणाम भी आज या कल सामने आ ही जाएगा।" फिर गम्भीर स्वर बदलकर बाबा बोले, "तुम लोग शायद यह चाहते हो कि मैं जल्दी ही यहाँ से कारागार में चला जाऊँ! इसीलिए कहते हो कि बाबा न जाने कब बन्दी बनाये जाएँगे। सच है न! झंझट तो खत्म हो जाएगा!"

मदालसा देवी तो नहीं बोलीं परन्तु मोघे बोले, "बाबा! आपका झंझट तो हमने स्वयं ही अपने ऊपर लिया है और हम यह भी देख रहे हैं कि ब्रह्मचारी मनुष्य को भी आश्रम से कितना लगाव है! प्रत्येक पर प्रेम करना आपका स्वभाव है। इसीलिए जब आप कारागार में चले जाते हैं तब ऐसा लगता है जैसे यहीं हों। यही तो आपकी विशेषता है।"

"और कल यदि मृत्यु आ जाए तो..."

"उस समय भी निश्चित ही ऐसा ही लगेगा। आपका अस्तित्व आश्रम के कण-

कण में व्याप्त है। उस दिन मदालसा देवी ने आपके सन्दर्भ में बहुत अच्छी उपमा का प्रयोग किया था। उन्होंने कहा था, 'सूर्यप्रकाश में तो उसका उजाला हम देखते ही हैं, परन्तु सूर्य यदि बादलों की ओट में हो जाता है तब भी दिनभर सूर्य है, दिन है, यह प्रतीति होती रहती है। बाबा कारागार में हैं, परन्तु लगता है कि वे यत्र-तत्र-सर्वत्र हैं!' "

"आज इस बाबा की स्तुति किसलिए की जा रही है? शायद आप लोग यह सोच रहे हैं कि प्रसन्न होकर मैं कुछ दूँगा।"

"यह तो सोचते ही हैं। कोई बहुत अच्छी बात हो जाय तो आपको दिखाने की इच्छा होती है। आप उसकी ओर देखते हैं और फिर हमारी ओर देखते हैं। उस देखने में क्या नहीं होता है बाबा? लेकिन इस बात को आप कैसे जान सकते हैं—यह भी सच है।"

बातें करते-करते नालवाडी आ गयी थी। दोनों ओर से घनी झाड़ियों से घिरा हुआ उदास गाँव। सूर्यास्त हो रहा था। और सहसा उदास भाव वातावरण में प्रकट हो गया। वृक्षों की लम्बी परछाइयाँ भी अदृश्य हो गयीं। उपस्थिति अच्छी थी। परन्तु सब उदास थे।

विनोबा बोले, "कुछ गाँव उदास होते हैं। कम-से-कम ऐसे लगते हैं...उपस्थित लोगों के चेहरे देखकर। परन्तु इस समय मैं आप लोगों से एक ही बात कहूँगा। प्रत्येक काम करते हुए आनन्दित रहने का प्रयत्न करो। दु:ख की बात तो ऐसी है कि उसका उल्लेख करने पर न तो दूसरा रोता है और न व्याकुल होता है...परन्तु हँसनेवाले मनुष्य को देखकर दूसरे का दु:ख कम होता है और उसके होठों पर मुस्कराहट झलकने लगती है। आज की स्थिति ऐसी है कि सत्याग्रह करके आनन्द से कारागार में जाया जाय! स्वयं का बलिदान किया जाय! आनन्दपूर्वक मातृभूमि का जयघोष किया जाय!"

विनोबा पुन: गाड़ी में बैठ गये। तब एक वृद्ध गाड़ी के पास आकर बोला, "बाबा! इस गाँव की युवक-मण्डली महात्माजी के आदेशानुसार छोटे-छोटे गाँवों में चली गयी है। उनमें कितने जेल गये, कितने कहाँ-कहाँ गये, इसका कुछ पता नहीं है। गाँव उदास नहीं है। परतन्त्रता से उकता गये हैं। सोचते हैं कि हम बड़े-बूढ़ों को महात्माजी कुछ भी काम क्यों नहीं बताते हैं? इसीलिए हम उदास हैं बाबा! हमको काम दें। हमको लड़ना है। महात्माजी को हमारा सन्देश दे दें।"

वह वृद्ध पुरुष व्याकुल होकर कह रहा था।

विनोबा ने उसके जोड़े हुए हाथों को कसकर पकड़ लिया और वे बोले, "मैं बापू से कहूँगा। अवश्य कहूँगा। मैंने अभी यों ही वे सब बातें कही थीं।"

गाड़ी चल दी थी। आते समय निरन्तर बोलनेवाले विनोबा पीछे सिर टेककर चुप बैठे थे। नालवाडी जैसे असंख्य गाँव थे। उन गाँवों के युवक स्वतन्त्रता के लिए दौड़ रहे हैं। उनके हाथ में झण्डा है। उस झण्डे को छीनकर पुलिस उनकी जबर्दस्त

पिटाई कर रही है, फिर भी वे युवक आनन्द और उल्लास से चिल्ला रहे हैं, "वन्दे मातरम्!" बंगाल धधक रहा है! पंजाब सुलग रहा है! स्थान-स्थान पर निषेध किया जा रहा है। धर-पकड़ शुरू हो गयी है। नालवाडी जैसा ही अनेक गाँवों का आज चित्र है।

हम बार-बार कहते हैं, "युवको! आगे आओ!" युवक धधक उठे हैं और क्रान्ति के मार्ग पर, अहिंसा के मार्ग पर चलने लगे हैं। परन्तु स्वतन्त्रता न जाने कब मिलेगी? कितने युगों का यह अन्धकार है! गहन अन्धकार! न जाने कितनी मशालें जलीं और बुझ गयीं परन्तु परतन्त्रता का अन्धकार दूर नहीं हुआ। रात्रि के गर्भ में ही यदि उषःकाल है तो फिर रात्रि इतनी लम्बी क्यों होती जा रही है? यह सब कब समाप्त होगा? यह भूमाता स्वतन्त्र कब होगी? लोग बेचैन हो रहे हैं, अधीर हो रहे हैं। नालवाडी जैसे अनेक गाँवों में आज युवक रहे ही नहीं हैं।

जनमेजय सर्पयज्ञ करे, सर्वस्व स्वाहा करे और अग्नि उस स्वाहाकार को स्वीकार करे, ऐसी स्थिति हो गयी है। स्वातन्त्र्य-यज्ञ हमने प्रारम्भ किया है। ब्रिटिश शासन इसको विद्रोह कहता है, स्वतन्त्रता-प्रेमियों को राजद्रोही और देशद्रोही मानता है। यह सब कब समाप्त होगा?

आकाश में चन्द्रोदय हो गया था। फिर भी चन्द्र का प्रत्यक्ष दर्शन इस समय करके विनोबा सोच रहे थे—इसी तरह बादलों की ओट से स्वतन्त्रता का सूर्य निकलेगा और दसों दिशाएँ प्रकाशित हो जाएँगी। सब आनन्द से नाचने लगेंगे! गाने लगेंगे! परन्तु कब होगा यह सब? हम लोगों को आश्वासन देते हैं, धैर्य बँधाते हैं, परन्तु कभी-कभी हमारा ही धैर्य चुक जाता है। अपने विचारों पर भी विश्वास नहीं रहता है...

चालक ने कसकर ब्रेक लगाये। गाड़ी के सामने गाय का बछड़ा दौड़कर आ गया था। रँभा रहा था। वह माँ को ढूँढ़ रहा था। व्याकुल होकर वह रँभाता दौड़ रहा था।

मदालसा देवी बोलीं, "न जाने यह कहाँ से दौड़ता आ गया!"

भारत माता की प्राप्ति के लिए इसी प्रकार व्याकुल होकर दौड़नेवाले असंख्य युवक विनोबा को दिखाई दिये। उन्होंने मन में कहा :

> कितनी हो गयी भागमभाग
> कब मिलोगे जग-सरताज?
> तुम्हारे नाम का जयघोष
> करूँगा पूरे जीवन-भर!

रात में देर से सोते समय विनोबा को व्याकुल वृद्ध और माँ के लिए व्याकुल होकर रँभाता हुआ वन में दौड़ता बछड़ा याद आता रहा और सहसा वे कह उठे :

दयाघन! करके तुम्हारा स्मरण
विकल हुए हैं मेरे प्राण!
बरसने दो स्नेह की धारा
यह जीवन तो बस गया...गया...।

प्रतिदिन की तरह आज दैनन्दिनी निकालकर भी उसमें कुछ लिखने की इच्छा नहीं हो रही थी।

3

नारायण की चरण-वन्दना कर
एक ही याचना का माँगते दान।
धीर-गम्भीर-निर्मल-निर्मत्सर
ये ही हैं सर्वेश्वर के नाम!

विनोबा तकली पर सूत कात रहे थे और अभंग कहते जा रहे थे। कल रात जब उनको नींद नहीं आ रही थी तब कपास की बौंड़ी से कचरा और बिनौले निकालकर उन्होंने कपास को स्वच्छ किया। फिर कमानचा से उसको धुनकर पटा पर उसकी पूनियाँ बनाकर रखीं। तभी वे शान्ति से सोये।

प्रात:काल प्रार्थना होने पर उन्होंने हाथ में चरखा के स्थान पर तकली ले ली। बायीं जंघा मोड़कर वे बैठ गये। बायें हाथ में पूनी पकड़कर तकली को गरगर घुमाने लगे। चरखे की अपेक्षा बारीक सूत तकली पर निकल रहा था। एक ओर वे गा रहे थे, दूसरी ओर सूत निकल रहा था।

किसी ने कहा, "कबीर का स्मरण हो रहा है। बुनते हुए वे निरन्तर गाते रहते थे। श्रम का परिहार हो—इसलिए तो ये लोग नाम-स्मरण करते रहते थे। ईश्वर निरन्तर उनके मन में रहता था और शरीर काम करता रहता था।"

विनोबा बोले, "सच कहते हैं।"

"यह किसका अभंग है?" एकत्र लोगों में से किसी ने पूछा।

"यह सन्त तुकाराम का अभंग है। सन्तों ने अखण्ड नाम-स्मरण के द्वारा सद्गति का महाद्वार खोल दिया। सदाचार से सामाजिक आदर्शों का निर्माण किया। सन्तों के बिना समाज का उद्धार सम्भव ही नहीं था। इसलिए तुकाराम पूछते हैं :

कहो—तुमको किसने तारा?
सन्त ने उद्धार किया, सन्त ने उपदेश दिया
तुमने वह स्वीकार किया
कहते हैं तुकाराम—यह नहीं तुम्हारा उपकार
करो सन्त का जय-जयकार।

आगे भी वे कहते हैं :

सन्तों के उपदेश हमारे सिर पर
मृत्युलोक में नहीं रहना है।"

शिवाजीराव बोले, "सचमुच सन्तों ने प्रत्येक काल में समाज को आधार दिया है, उसको अनीति से नीति की ओर चलाया है। समाज को भ्रष्टाचार से सदाचार की ओर ले जाते हुए सन्तों ने उसको सपासप कोड़े लगाये हैं।"

"सच है। उनको समाज से घबड़ाने की आवश्यकता ही क्या थी?"

"समाज उनसे ऐसे ही घबड़ाता था जैसे किसी पतिव्रता से घबड़ाता हो!" विनोबा ने कहा।

कुछ रुककर विनोबा बोले, "सन्त-साहित्य इतिहास की चन्दन की कुप्पी में रखा हुआ नौ लखा माणिक है। जब-जब समाज अनीति, अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार से प्रताड़ित होता है तब-तब भगवद्गीता में दिये गये वचन के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण सन्तों के रूप में अवतरित होते हैं। 'न धारण करूँगा मैं शस्त्र कर में, कहूँगा धर्म की बातें चार'—यह कहकर प्रत्येक काल में वे सन्तों के मुख से बोलते रहे।"

मोघे बोले, "भारतभूमि में सन्तों की एक परम्परा ही निर्मित हो गयी है।"

महादेवभाई बोले, "किसी भी अन्य देश में ऐसी सन्त-परम्परा और साहित्य के आँगन को समृद्ध करनेवाली साहित्य-परम्परा भी नहीं है।"

एक व्यक्ति ने पूछा, "परन्तु विष्णुसहस्रनाम, अथर्वशीर्ष अथवा कोई भी ईश्वर की अखण्ड नामावली लेकर कुछ सिद्ध हो सकेगा क्या?"

विनोबा ने कहा, "ईश्वर का नाम न लेते हुए आप सुखी हैं क्या? यदि इसका उत्तर 'हाँ' है तो प्रत्यक्ष आप ही आनन्दघन ईश्वर हैं।"

"सर्वसुख कैसे प्राप्त हो सकता है?"

"यही तो कहना चाहता हूँ। सर्वसुखी कौन है? गौतमबुद्ध ने उस समय कहा था, 'जाओ, जिस घर में किसी की मृत्यु न हुई हो उस घर से सरसों के चार दाने ले आओ।' यदि उन्होंने यह कहा होता, 'जाओ, जहाँ कहीं कोई दुःख नहीं रहा हो वहाँ से सरसों ले आओ।' तो यह मिलना असम्भव था। ईश्वर मात्र कल्पना नहीं है।

सद्भाव, सदाचार, सद्गुण, प्रेम, प्रयत्न, विनम्रता—ये सब ईश्वर के ही रूप हैं। समय-समय पर सन्तों ने यह सामाजिक ज्ञान करा दिया है। ईश्वर की स्तुति-स्तवन, नामावली बार-बार कहते हुए उसके प्रत्येक सद्गुण का, सत्कर्म का नाम हम लिया करते हैं।''

''परन्तु ईश्वर इस समय कहीं दिखाई भी देगा क्या?''

''शायद नहीं। ईश्वर नाम की अलंकृत, स्वर्गस्थ अपने मन की चित्राकृति प्रत्यक्ष हमारे सामने साकार होनेवाली नहीं है। परन्तु यदि किसी के पास गुणों का भण्डार हो, किसी के पास श्रद्धापूर्वक कार्यशक्ति हो अथवा किसी की कला यदि प्रयत्न-साध्य हो तो उस स्थान पर हम ईश्वर का अधिष्ठान मानते हैं। आपके प्रत्येक दु:ख को सहलानेवाला, समाज की समस्याओं का निराकरण करने में पूरा जीवन लगा देनेवाला व्यक्ति देवपद को प्राप्त होता है।''

''आज ऐसा देवता आप कहाँ खोजेंगे?''

''आज उस देवता का नाम गाँधी है। सम्पूर्ण हिन्दुस्तान को एक आवाज में ही एकत्र करने की शक्ति उनके पास है।''

''परन्तु उनको सन्त नहीं कहा जा सकता!''

''आपकी इच्छा हो तो उनको कोई भी नाम मत दो। सन्तों का कार्य है, विशृंखलित होते हुए समाज को संघटित करना। अत्याचार दूर कर प्रेम से सबको पास लाना। और यही कार्य गाँधीजी कर रहे हैं।''

''हम ज्ञानेश्वर को सन्त कहते हैं। उन्होंने कितने अत्याचार सहन किये थे! ऐसे महात्मा गाँधी को कहाँ सहन करने पड़े हैं?''

''कुछ सामाजिक अत्याचार होते हैं, कुछ वैयक्तिक होते हैं। ज्ञानेश्वरजी को पारिवारिक समस्याओं का सामना करना पड़ा था। उनको समाज से बहिष्कृत कर दिया गया था, इसलिए उनको सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ा था। परन्तु उन्होंने किसी पर कोई कठोर टिप्पणी तो की ही नहीं, अपितु इसके विपरीत उन्होंने बड़े विनम्र भाव से जनसाधारण की समझ में आ जाए, ऐसी ज्ञानेश्वरी लिखी। वे ईश्वर के प्रति इतने विनम्र थे कि वे कहते हैं :

जो जो प्राणी मिले, वे वे माने भगवन्त।
निश्चित ही यह भक्तियोग, जान मेरा ॥

प्रत्येक का कार्य अलग है। परन्तु अन्तर में एक ही भाव—सद्भाव। महात्माजी को सन्त की उपमा नहीं दे सकते, क्योंकि वे सन्तों के भी सन्त हैं। वे उच्चकोटि के सामाजिक कार्यकर्ता और अहिंसा के परम भक्त हैं। प्रेम के पुजारी हैं।''

विनोबा ने अपना प्रदीर्घ उत्तर दिया फिर भी उन सज्जन के मन का समाधान नहीं हुआ। कुछ देर शान्ति छायी रही। शिवाजीराव कपास हाथ में लेकर बिनौले

निकाल रहे थे। लम्बे धागेवाली श्वेत स्वच्छ कपास का ढेर उनके पास था। उन सज्जन की ओर देखकर वे बोले, "ज्ञानेश्वर, एकनाथ, नामदेव, चोखामेला, गोरा कुम्भार, सावता माली, जनाबाई आदि ने एक प्रेमपन्थ बनाया। उसका नाम है वारकरी पन्थ। ईश्वर पर निष्ठा रखकर उन्होंने प्रेममन्त्र का जयघोष किया। स्वकर्म का आदर्श रखते हुए उन्होंने ईश्वरनिष्ठा की रक्षा की। उस समय में मुसलमानों का प्रवेश नहीं हुआ था, ऐसा नहीं था। परन्तु वह नगण्य था। म्लेच्छ शब्द ज्ञानेश्वरी में है। परन्तु उनका उपद्रव नहीं था। फिर भी वैदिक धर्म पर अनेक सम्प्रदायों के आक्रमण होने लगे थे।"...

शिवाजीराव के अधूरे कथन को पूरा करते हुए विनोबा ने कहा, "जैन और बौद्ध सम्प्रदाय विकसित होने लगे थे। कर्मयोग के स्थान पर मिथ्या कर्मकाण्ड प्रबल हो रहा था। चातुर्वर्ण्य की कल्पना की विकृत व्याख्या हो रही थी और ब्राह्मण शब्द का अर्थ सीमित हो गया था। ब्राह्मण वर्ण अन्य सभी वर्णों से अलग होकर धर्म का अधिकारी बन गया था। इसका परिणाम साधारण जनों को प्रत्येक बात में भोगना पड़ रहा था। यह जानकर ही सन्तों ने उस समय जाति-पाँति-निषेध की प्रमुख भूमिका निभायी थी।"

"बाबा! यदि आप समर्थ रामदास को सन्त मानते हैं तो आपने उनका नाम इस समय लिये गये सन्तों के नामों की सूची में क्यों नहीं सम्मिलित किया है?"

"वे सन्त थे—इसमें सन्देह तो है ही नहीं। इससे अधिक वे एक समर्पित कार्यकर्ता थे। बारह वर्षों तक अखण्ड देशभ्रमण करने पर उनको जो अनुभूति हुई उसके आधार पर उन्होंने हितोपदेश दिया। स्वयं का और समाज का कल्याण हो, संसार को व्यवस्थित कर परमार्थ सिद्ध करना चाहिए, यह उन्होंने बताया। उनको सन्त की अपेक्षा राष्ट्रीय शिक्षक कहा जाना चाहिए। अच्छा क्या है, बुरा क्या है, ज्ञानी कौन है और मूर्ख कौन है, इतना ही नहीं बल्कि द्वैताद्वैत, माया-ब्रह्म, सगुण-निर्गुण इन सबका विचार-विमर्श करते हुए उन्होंने कभी शब्दों से फटकार लगायी तो कभी उपदेश दिया :

सतत कर्म करते रहो
सतत ध्यान धरते रहो
अहर्निश करते रहो
विवरों का निरूपण!

निरन्तर कर्म करने का मार्ग उन्होंने दिखाया। वे आगे कहते हैं :

सतत लोक-प्रबोध हो
सुनकर सम्यक् बोध हो

प्रपंच भी सँवारते रहो
यथाशक्ति!

रामदास जैसे सन्त शिवाजी महाराज को गुरु के रूप में प्राप्त हुए और सम्पूर्ण राज्य श्री का राज्य हो गया।"

कहते-कहते विनोबा रुके। सभी एकदम शान्त थे। केवल धरती पर तकली के फिरने की आवाज आ रही थी। शिवाजीराव ने तकली ली, परन्तु पहली बार ही हाथ भर सूत कतने के बाद धागा टूट गया और तकली लुढ़कती हुई नीचे गिर पड़ी। लोहे की चकती के घिसटने की आवाज गूँज उठी।

किसी ने पूछा, "अभी लकड़ी की तकली का प्रयोग सफल नहीं हुआ न?"

"आपका कहना सच है। लकड़ी की तकली सफल नहीं हुई है। इसका कारण डण्डी में नीचे की ओर लगी हुई यह चकती है। लकड़ी की चकती इतनी पतली नहीं बन सकी। सूत को अटकाने के लिए लकड़ी की तकली में नासिका भी ढंग से नहीं बन पाती है। इस तकली जैसा प्रभाव उस तकली का नहीं होता है।"

विनोबा आगे कह रहे थे, "परन्तु परसों ही यह पढ़ा कि जिस माध्यम का हम रोज साधन के रूप में प्रयोग करते हैं वही साधन शस्त्र भी हो सकता है। स्त्रियाँ रोज रोटियाँ बनाती हैं। बेलन यह साधन है और शस्त्र है। हँसिया हो या गँड़ासा हो, ये सब स्वसंरक्षण के शस्त्र ही हैं। परसों ही यह पढ़ा था कि ट्राटस्की को हथौड़े से मार दिया। जिससे मजदूरी मिलती है वही साधन शस्त्र हो सकता है। यों देखा जाय तो तकली की यह छड़ भी हिंसक सिद्ध हो सकती है। अहिंसा के तत्त्व में वह केवल साधन है। उपासना के लिए ऐसा साधन होना चाहिए जिसका दुरुपयोग न हो सके। इस दृष्टि से लकड़ी की तकली सफल हो सकती है।"

तकली के सम्बन्ध में ऐसे विचार विनोबा के मन में आ सकते हैं, यह किसी ने नहीं सोचा था!

भोजन की घण्टी बजते ही विनोबा उठे। उनके साथ ही पूरी मण्डली उठी।

"आश्रम में भोजन का समय बहुत जल्दी है।" किसी ने कहा।

"आश्रम में दिन भी जल्दी शुरू होता है और भूखे भजन न होय गोपाला। इसके अलावा, हमारे आश्रमवासी भोजन को एक कार्य मानते हैं। आप भी कार्य समझकर आज के दिन भोजन कर लें।"

विनोबा का कथन सुनकर पूर्व वक्ता क्षणभर अवाक् रह गया। विनोबा के पास सभी प्रश्नों के तत्काल उत्तर हो सकते हैं—इन बातों को अन्य कोई भले ही न समझ सके परन्तु अभ्यास से शिवाजीराव जान गये थे। वे हँसे और आसपास की सब वस्तुएँ उठाकर खड़े हो गये।

भोजनालय अत्यन्त सादा था। कक्ष में पच्चीस-तीस मनुष्य बैठ सकते थे। उसमें पंक्ति में बैठने के लिए बुनी हुई लम्बी कम-चौड़ी पट्टियाँ पड़ी हुई थीं। गिने-चुने पदार्थ थे। दो सब्जियाँ, भात, चटनी, फुलके और रायता।

विनोबा की थाली में एक फुलका, कटोरी-भर दाल, थोड़ी सब्जी और थोड़ा भात—इतना ही भोजन था। 'मुख में कौर रखते समय नाम लीजिए श्री हरि का' यह पंक्ति बोलकर भोजन प्रारम्भ हुआ।

विनोबा ने पूछा, "आज नागझरी में सत्याग्रह है। इस बात को कोई भूल तो नहीं गया है?"

"आज की साहित्य और सन्तों की चर्चा से सत्याग्रह का स्मरण ही अब तक नहीं रहा था। परन्तु भोजन के बाद तो स्मरण हो ही जाता।"

विनोबा धीरे-धीरे भोजन कर रहे थे। सदैव की अपेक्षा कुछ अधिक ही बोल रहे थे। वे कह रहे थे, "मैं पिछले कई दिनों से विचार कर रहा हूँ कि बोलने से मनुष्य की ऊर्जा प्रवाहित होती है। उस ऊर्जा को मौन रहकर शरीर में रखकर दूसरे कार्यों की ओर मोड़ा जा सकता है या फिर प्रवाहित ऊर्जा से एकाध पवनचक्की चलायी जा सकती है। जब वह पवनचक्की चलने लगेगी तब लोग आते-जाते कहेंगे, 'यह बाबा की कुटिया है और यह बाबा के बोलने से चलनेवाली पवनचक्की है।' "

विनोबा एक के बाद एक शाब्दिक परिहास कर रहे थे। भोजन समाप्त कर विनोबा बाहर आये। उन्होंने लोगों से कहा, "थोड़ा विश्राम कर लीजिए।"

और वे बरामदे में चलते हुए अपने कक्ष तक आये और ठिठक गये। कोयल का स्वर उनके कानों में पड़ा। कल नालवाडी की ओर जाते समय आम पर बौर दिखाई दिया था और अब भरी दोपहरी में कोयल पंचम स्वर में वसन्त ऋतु के आगमन की सूचना दे रही थी। उनको एकदम याद आया। माता कोकिला व्रत रखती थी। कोकिला को देखे बिना भोजन नहीं करती थी। और तब बालकोबा—शिवाजी और मैं—हम तीनों ही कोकिला का स्वर सुनाई पड़ते ही उसको देखने के लिए दौड़ पड़ते थे। परन्तु वह घने आम के वृक्षों में छिपी रहती थी और न जाने कब उड़ जाती थी। माता उपासी ही रह जाती थी।

पहले स्त्रियों में व्रत पर व्रत करने को बड़ी उमंग रहती थी...

एक बार उन्होंने माता से कहा था, "कितने उपवास करती हो और उपासी रहकर कितना काम करती हो!" तब माता ने कहा था, "विन्या! स्त्रियाँ पुरुषों की तरह कष्ट उठाकर कुछ नहीं प्राप्त कर सकती हैं। इस प्रकार व्रत करके वे पुरुषों के पीछे पुण्य लेकर खड़ी रहती हैं। उनके लिए प्रार्थना करके वे भी सुखी होती हैं।"

आगे चलकर कभी उनको यह ज्ञान हुआ था कि गाता है कोकिल और नाचता है मोर। कोकिला और मोरनी ये वैसी ही दूरस्थ हैं, केवल पुरुष की स्तुति करनेवाली,

उनके सुख में स्वयं का सुख खोजनेवाली।

वे कक्ष में आये। ऐसा एक भी प्रसंग नहीं है जिसमें माता की स्मृति समायी न हो। उनकी इच्छा हुई, उन्होंने प्रात:काल जिनका विहंगावलोकन किया था उन समाचारपत्रों को हाथ में ले लिया। ब्रिटेन और जर्मनी में युद्ध का जोर बढ़ गया था। युद्ध शीघ्र समाप्त होने के लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे। वे पढ़ रहे थे और पढ़ते-पढ़ते उनको याद आया कि सामने स्थित बेला के पेड़ को आज पानी नहीं दिया है। प्रतिदिन वे स्वयं नियमपूर्वक यह कार्य करते थे। उन्होंने समाचारपत्र घड़ी करके रख दिया और वे उठे। हाथ में कलश लेकर वे बाहर आये। कल-परसों बापू के आश्रम से पाँच-छह वर्ष की कस्तूरी इस आश्रम में रहने को आयी थी। वह बरामदे में गोटियों से खेल रही थी। विनोबा को देखकर वह बोली, "बाबा! मैंने उन पेड़ों में पानी लगा दिया है।"

"समझदार हो। सचमुच ही खूब समझदार हो। तुमको अच्छा लगता है यहाँ?"

"ना...बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है। लेकिन करूँ भी तो क्या! बापूजी मुझको रोज सिखाते थे। मेरे साथ गोटी खेलते थे। कभी-कभी मेरी चोटी भी कर देते थे। मुझको बापूजी के पास भेज देंगे?"

विनोबा को महात्माजी का और एक पक्ष दिखाई दिया था। यह एक झोंपड़ी की लड़की थी, न माता थी और न पिता था। गाँववाले इसको महात्माजी के पास ले आये। उन्होंने उसको आश्रम में रख लिया। छह-सात महीनों में कस्तूरी आश्रम में रम गयी थी।

"मैं गोटी खेलना जानता हूँ। अन्दर कमरे में आ जा।"

वह कमरे में आ गयी। घाघरे से गोटियाँ अंजलि में लेकर उनको खलखलाकर धरती पर डालकर वह बोली, "कौन-सी ले लूँ?"

"क्या मतलब?"

"धत्! आप जानते नहीं हैं।"

"सचमुच मैं नहीं जानता हूँ कस्तूरी! तू सिखा, मैं सीखूँगा।"

"पाँचखड़ी सिखाऊँ या सातखड़ी?"

"सिखाओ।"

विनोबा की अंजलि में उसने गोटियाँ डाल दीं और वह बोली, "अब इनको खलखलाकर हिलाओ और फिर सब गोटियाँ नीचे डाल दो। और बाबा इस तरह पालथी मारकर नहीं बैठते हैं। ठहरो, मैं दिखाती हूँ आपको।"

उसने घाघरा की लाँग लगायी। सीधा पैर मोड़कर बायाँ पैर सीधा फैला दिया। विनोबा उसी की तरह बैठ गये और फैली हुई गोटियाँ अंजलि में लेकर फिर खलखलाकर धरती पर डाल दीं।

"अच्छा! अब कौन-सी गोटी उठा लूँ?"

उसने दिखाकर कहा, "केवल उठाते नहीं हैं बाबा! उठायी हुई गोटी सीधे हाथ से ऊपर फेंकते हैं तथा उसको झेलते हैं और इतने ही समय में बायें हाथ से नीचे से गोटी उठाते हैं। ऊँहुँ! आपसे नहीं होता है। बापूजी बहुत अच्छा कर लेते हैं। आप टिक्करबिल्ला खेलना जानते हैं।"

विनोबा ने कहा, "नहीं।"

तब वह खिलखिलाकर हँसकर बोली, "आपको कुछ भी नहीं आता है।"

"सचमुच नहीं आता है!"

"सब्जी बनाना आता है?"

"नहीं!"

"फिर पानी में नावें चलाना आता है?"

"नहीं।"

"धत्! आपको कुछ भी क्यों नहीं आता है?"

"तुम सिखाओगी मुझको?"

वह दूर दीवार के पास जाकर गम्भीर स्वर में बोली, "बापूजी को पूछकर आऊँगी।"

"सो क्यों?"

"हमारी एक गुपित[1] है। आपको नहीं बताऊँगी।" उसकी आँखें चमक उठीं।

फिर स्वयं उससे ही नहीं रहा गया। वह उनके पास आकर बोली, "आप मेरी अच्छी चोटी कर देंगे तो बता दूँगी।"

विनोबा को मन में हँसी आ रही थी। उसके लाड़भरे हावभावों से मन प्रसन्न हो गया था। उन्होंने कहा, "अरी! पहले मुझको बता तो सही।"

"बताऊँ? लेकिन किसी से कहिएगा मत!"

"नहीं कहूँगा।"

"मैंने और बापूजी ने एक बिल्ली का बच्चा पाला है। बापूजी उसको गोद में बैठाकर दूध पिलाते हैं। आश्रम के पीछे एक मटका है। उसमें वह बच्चा छिपकर रहता है। किसी को भी इसका पता नहीं है। फकत मुझको और बापूजी को ही यह मालूम है।"

कहते-कहते वह एकदम गम्भीर हो गयी। उसकी आँखें आर्द्र हो गयीं। दायें हाथ की बाँह से उसने आँखें पोंछीं।

"क्या हुआ कस्तूरी?"

---

1. गुपित—छिपी हुई बात।

"बापूजी ने उस बच्चे को दूध दिया ही नहीं होगा। आश्रम में बहुत लोग आते हैं। तब बापू भूल जाते हैं। तब मैं ही याद कराती हूँ। उनको धीरे से उठाकर लाती हूँ। अब मैं यहाँ आ गयी हूँ तो बच्चा उपासा होगा। कल वह मर जाएगा। मुझको अभी पहुँचवा दीजिए बाबा! मुझको अभी जाना है।"

उसकी आँखों से धाराप्रवाह आँसू बहने लगे। विनोबा ने उसको गोद में बैठा लिया। उसकी आँखें पोंछकर उन्होंने कहा, "थोड़ी देर बाद मैं तुमको पहुँचा देने की व्यवस्था कर दूँगा। लेकिन कस्तूरी! बापू सब बातों को याद रखते हैं। उस बिल्ली के बच्चे की भी होगी ही। तुम कल तक रहो न!"

"ऊँहुं! मुझको बापूजी के पास पहुँचा दो।"

क्षणभर पहले खिलखिलाकर हँसनेवाली कस्तूरी अब हिचकी ले-लेकर रो रही थी। विनोबा उसको समझा-समझाकर थक गये। अन्त में उन्होंने मोघे को आवाज देकर कहा, "कस्तूरी को इसी समय सेवाग्राम में बापू के पास भेजने की व्यवस्था कीजिए।"

कस्तूरी तत्काल मोघे के पास जाकर हँसकर बोली, "काका! मुझको दूध चाहिए।"

विनोबा ने मन ही मन कहा, 'न हल हो सकनेवाले गणित के सवाल तत्क्षण हल कर दिये, गूढ़ तत्त्वज्ञान की थाह भी ले ली परन्तु इस नन्ही बालिका का मन मैं नहीं जीत सका। इस निरागस् नन्ही बालिका की भावनाओं के रंग कितने अगम्य हैं। दीखने में सरल परन्तु अबूझ पहेली जैसे।'

सन्ध्या समय जब कस्तूरी तैयार होकर विनोबा के पास आयी उस समय अनेक लोग वहाँ बैठे हुए थे। उसने आकर धीरे-से कान में कहा, "बापूजी को दूध की याद दिलाकर मैं कल जरूर आ जाऊँगी।"

और वह दौड़कर मोघे के पास चली गयी।

विनोबा देखते रहे। क्षणभर वे भी कुछ न कह सके परन्तु दूसरे ही क्षण वे बोले, "ठहर कस्तूरी!"

वे पेड़ से चार-पाँच अमरूद तोड़कर लाये और उनको उन्होंने कस्तूरी के हाथ में दे दिया। वे कस्तूरी के हाथों में समा नहीं रहे थे, इसलिए वह बोली, "आप पकड़िए, मैं घाघरे में इनको रखती हूँ।"

उसने घाघरे में अमरूद रख लिये और कहा, "बापूजी को अमरूद अच्छे लगते हैं। ये अमरूद लाल हैं?"

पेड़ पर पहली बार ही अमरूद आये थे। वे अन्दर लाल हैं या नहीं, यह जानने का कोई उपाय नहीं था। उन्होंने कहा, "बापूजी से कहना कि ये अमरूद बाबा के आश्रम के हैं और लाल हैं।"

इतना कहने तक कस्तूरी ने अमरूद का टुकड़ा काट लिया था।

"ये अमरूद रख लीजिए।"

"क्यों?"

"ये लाल नहीं हैं। बापूजी नहीं खाएँगे, फिर मैं ही कैसे खा सकती हूँ?"

उसने घाघरे से निकालकर अमरूद विनोबा के हाथ में दे दिये। तब वे विमोहित हो रहे थे। कस्तूरी को कहने के लिए उनके पास कोई शब्द नहीं था।

सन्ध्या समय वे नागझरी में पहुँचे। वहाँ भीड़ पर्याप्त थी। अपने भाषण में उन्होंने कहा, "महात्मा गाँधी ऐसे व्यक्ति हैं कि प्रत्येक मनुष्य उनसे प्रेम करेगा। उनका आदर्श भी ऐसा है कि सभी व्यक्ति उसका सहज पालन कर सकते हैं। उनका अहिंसा का प्रेम मार्ग अत्यन्त पुरातन है। उससे ही नयी शक्ति का उदय सम्भव होगा। प्रेम से संसार जीता जा सकता है। अहिंसा के सहयोग से शत्रु मित्र हो सकता है। बाल्या कोली की कहानी आप जानते ही हैं। बाल्या कोली लूटमार करके स्त्री-बच्चों का पेट भरता था। एक दिन नारद मुनि उस मार्ग से जा रहे थे। बाल्या कोली ने डपटकर उनसे कहा, 'तुम्हारे पास जो कुछ सामान है वह तत्काल यहाँ रख दो। ऐसा किये बिना तुम यहाँ से नहीं जा सकोगे।' नारद मुनि हँसकर बोले, 'जो धन मेरे पास है उसको तुम लूट नहीं सकोगे।' बाल्या ने पूछा, 'ऐसा कौन-सा धन है?' नारद मुनि ने कहा, 'श्रीराम हरि नाम का धन, ओम नमो भगवते वासुदेवाय—इस मन्त्र का धन मेरे पास है। इसके कारण मुझको चोरी का भय तो है ही नहीं, बल्कि दीर्घ समय बीतने के बाद भी मेरा पुण्य संचय समाप्त नहीं हुआ है और आगे भी नहीं होगा। तुम लोगों को लूटते हो। उनका सामान छीन लेते हो। वह दुःखी मनुष्य तुमको मन-ही-मन शाप देता हुआ घर जाता है। पाप बढ़ता ही रहता है। तुम पाप से जो धन प्राप्त करते हो उस पाप में तुम्हारे परिवार के लोग भी सम्मिलित होते हैं क्या?' बाल्या कोली बोला, 'निश्चय ही होते हैं।' नारद ने कहा, 'यह सम्भव नहीं है। तुम्हारा पाप केवल तुम्हारा है। तुम अपने घर जाकर पूछ आओ।' तदनुसार बाल्या घर आया। उसने स्त्री-बच्चों से जब पूछा तो वे बोले, 'पाप तो आप करते हैं। आपका कर्तव्य-कर्म अगर आपको पाप की ओर ले जा रहा है तो उसमें हमारा क्या दोष है? दोषी तो आप ही हैं।' बाल्या तपस्या करके आगे चलकर ऋषि हो गया। वाल्मीकि हो गया। रामायण ग्रन्थ की रचना करनेवाला महाकवि हो गया। परन्तु नारद मुनि एक ही होते हैं। सभी नारद मुनि नहीं हो सकते हैं। आज जर्मनी में सभी हिटलर हैं क्या? हिटलर एक ही है। परन्तु हिटलर की बात सभी मानते हैं, उसके कहने के अनुसार आचरण करते हैं। अनुशासन में रहते हैं। इसी प्रकार नारद मुनि भले ही एक ही हों, गाँधीजी भले ही एक ही हों, फिर भी यदि आज हम उनके आदेश का पालन करेंगे तो हिटलर की भाँति हम अपनी अहिंसा से ही बड़े-बड़े परिणाम घटित कर सकते हैं।"

विनोबा सभा से लौटकर अपने कमरे में गये। कस्तूरी की एक गोटी उनके बिछौने पर पड़ी थी। उनकी इच्छा हुई कि सेवाग्राम में बापू के पास जाएँ और कस्तूरी को ले आएँ। परन्तु इस समय यह सम्भव नहीं था। अब तो वर्धा के आसपास छोटे-छोटे गाँवों में सभाओं का आयोजन करते हुए घूमना था। कस्तूरी यहाँ आएगी तो कुम्हला जाएगी। गेहुएँ रंग की, बड़ी-बड़ी आँखोंवाली, उठी हुई नासिकावाली, दो चोटियाँ करनेवाली कस्तूरी पारिजात के पुष्प जैसी सुकोमल थी। लड़ैती थी। विनोबा व्याकुल हो उठे। कल प्रात: उठकर कस्तूरी से मिलकर ही आगे जाना है, यह निश्चय कर लेने पर ही उनको शान्ति मिली।

21 जनवरी सन् 1941 ई.। विनोबा की सभाएँ चल रही थीं। 17 जनवरी को महात्माजी के आश्रम से प्रारम्भ हुई सभा-परम्परा अखण्ड चल रही थी। एक दिन में तीन सभाएँ आयोजित हो रही थीं। सोनेगाँव से आगरगाँव और आगरगाँव से लोणी। प्रत्येक गाँव में विनोबा के पहुँचने पर मेला ही लग जाता था।

आज लोणी में ऐसा ही मेला लगा हुआ था। प्रात:काल कलेवा किया जा रहा था। गरम रोटी और लोनी (मक्खन)। पुन: सन्तों की चर्चा छिड़ गयी थी। गाडगे महाराज की और तुकडोजी महाराज की!

शिवाजीराव बोले, ''आज के सन्तों के प्रति जनमानस में उतना आदर नहीं रहा है। परन्तु पाँच सौ वर्षों पूर्व के सन्तों के प्रति आदर लगता है। वस्तुत: उस समय हम लोग नहीं थे। सुनी हुई जानकारी से ही आदरभाव जाग्रत हुआ है। वैसे अगर देखा जाय तो तुकडोजी महाराज ने ग्राम विकास करने की दृष्टि से अभी हाल में ही कदम उठाये हैं। उनके भजनों से एक बात तो हुई है। स्वाँग और गन्दे शृंगारिक गीतों का उल्लेख करने में लोगों को लज्जा लगने लगी है। परन्तु इस कारण तुकडोजी महाराज के प्रति लोगों में अत्यधिक आदरभाव उत्पन्न हो गया है—ऐसा नहीं लगता है। सच तो यह है कि हम उनको प्रत्यक्ष ही देख रहे हैं।''

एकत्र लोगों की ओर देखकर विनोबा बोले, ''शिवाजीराव! इन लोगों से पूछिए कि इनको तुकडोजी क्यों अच्छे नहीं लगते हैं? क्योंकि, जैसा कि आपने कहा है, स्वाँग के अश्लील गीतों का विरोध तो होने लगा। अच्छे-बुरे की पहचान लोगों को होने लगी है। महात्माजी के आदेशानुसार ग्राम-सफाई और ग्राम-सुधार के कार्य अभी हाल में ही उन्होंने हाथ में लिये हैं और प्रत्येक कार्य के सफल होने में कुछ समय तो लगता ही है। उनको भी निरन्तर कार्य से यश प्राप्त होगा। गाडगे बाबा नि:स्पृह कार्यकर्ता हैं, साधु पुरुष हैं। उन्होंने जाति-पाँति पर कड़ी टिप्पणी की। उसका लोगों ने विरोध किया। परन्तु भविष्य में लोग उनका भी सम्मान करेंगे, उसी तरह जिस तरह हम लोग पाँच सौ वर्ष पूर्व हुए लोगों के प्रति आदर रखते हैं, परन्तु उनको पूर्ण रूप से जानते नहीं हैं।''

"परन्तु ऐसा क्यों होता है?"

"हम उनको जानते नहीं हैं, ऐसा नहीं है। भूतकाल के सन्तों की, उनके कार्यों की हम पूर्ण कल्पना कर सकते हैं। रेडियो पर दूर की आवाज स्पष्ट सुनाई देती है। इसी प्रकार जो इन सन्तों के विचार ग्रहण करेगा उसको वे सन्दर्भ-सहित, अर्थ-सहित पूर्ण स्पष्ट कर देते हैं। अब देखना यह है कि वह ग्रहण-शक्ति किसके पास कितनी है?"

शिवाजीराव के प्रश्न के कारण एकत्र लोगों को भी उत्तर मिल गया था। शिवाजीराव आगे बोले, "मीमांसकों ने सृष्टि को शब्दप्रभव माना है, उसका अर्थ हम यह निकाल सकते हैं कि सृष्टि विचार से उत्पन्न हुई है।"

विनोबा बोले, "यह तो है ही। विचार और भाषा दोनों अलग रह ही नहीं सकते हैं। वास्तव में हम जो-जो देखते हैं, उसके अनुसार ही विचार करते हैं। सृष्टि ज्ञानस्वरूप है, इसलिए ज्ञानेश्वर को वह अनेक प्रकार की लगी। अनेक प्रकार से उन्होंने उसको प्रकट किया है। उस दिन मैं धूप में फिर रहा था। सहज ही सामने वृक्ष पर दृष्टि पड़ी। कल-परसों पर्णरहित बिल्कुल ठूँठ एक वृक्ष देखा जो लगा कि यह वृक्ष हमारी ही तरह है—सर्वत्यागी! परन्तु बाद में कुछ दिनों के बाद जब उस वृक्ष की ओर ध्यान गया तब वह खूब हरा-भरा था। इसका अर्थ यही था कि वह भी मेरी तरह आश्रम में गृहस्थाश्रमी हो गया था। प्रखर धूप में भी उस पर बहार छायी थी। तब मेरे मन में आया, प्रखर धूप में एक नया स्वच्छ-हरा-भरा विचार ही खड़ा है! ऊपर से तपस्या और अन्दर से भक्ति!"

यह सुनकर शिवाजीराव ने हँसकर पूछा, "सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में अमुक विचार है, यह कैसे कहा जा सकता है? आपके मन में ऐसे विचार हैं इसलिए आपको ऐसा लगता है। दूसरे व्यक्ति के उस वृक्ष के सम्बन्ध में और कुछ विचार हो सकते हैं।"

विनोबा ने कहा, "सगुण का यही तो दोष है। सगुण विविध स्वरूप में है। निर्गुण की बात ऐसी नहीं है। निर्गुण निश्चित एकस्वरूप है। अव्यक्त दशा निश्चित है। परन्तु जो दिखाई दे रहा है, जो व्यक्त है वह भ्रमात्मक है। फिर भी सृष्टि का वैभव ही ऐसा है कि उसके दर्शन से भिन्न-भिन्न विचार प्रकट हों। हमको सगुण-निर्गुण की जो परम्परा प्राप्त हुई है वह अनेक सुन्दर विचारों को जन्म देनेवाली है। महाराष्ट्र को अथवा हिन्दुस्तान को जो सन्त-परम्परा प्राप्त हुई है वह भी नये और मंगलकारी विचार देनेवाली है।"

"हाँ, यह तो सच है। और हिन्दूधर्मियों के देवता कितने प्रचण्ड हैं!"

"जो देवता हैं वे एक-एक प्रवृत्ति के और कार्य के निदर्शक हैं। इसलिए उनकी प्रवृत्ति की और कार्य की भक्ति करते समय साहित्य का निर्माण होता जाता है।"

"तो फिर महाराष्ट्र का देवता कौन-सा है?"

"महाराष्ट्र के विशिष्ट देवता पाण्डुरंग प्रतीत होते हैं।"

"यह आप कैसे कह रहे हैं? तुकाराम-नामदेव तथा उनके वारकरी-सम्प्रदाय को देखकर यह कह रहे हैं क्या?"

"कहते हैं पाण्डुरंग परन्तु उनका रंग है काला-साँवला। कितना विलक्षण है।"

"पाण्डुरंग अर्थात् साँवला-काला विट्ठल, यह अर्थ नहीं है। यह शब्द तो भक्त के हृदय का भक्तिभाव है। घनश्याम अर्थात् बादलों जैसा काला-मटमैला यह अर्थ नहीं होता है बल्कि घन या मेघ की तरह दयार्द्र अर्थ होता है। तात्पर्य यह है कि शब्दश: अर्थ की अपेक्षा भक्त के मन का अर्थ उस शब्द से ध्वनित होता है।"

"हाँ, यह तो सच है। मराठी भाषा में ऐसे अनेक शब्द हैं।"

"एक बार शंकराचार्य पाण्डुरंग के दर्शन करने गये। कमर पर हाथ रखकर खड़े विठोबा की मूर्ति देखकर उनके मुख से उद्‌गार निकला, 'भवसागर से तुमको भय लगता है, परन्तु ऐसी बात नहीं है। जीवन-सागर से मत डरो। आचरण पवित्र रखोगे तो संसार-सागर कमर तक ही है, इसमें डूबने का कोई भय नहीं है, यह बात विठोबा कमर पर हाथ रखकर दिखा रहे हैं। पाण्डुरंग राम की तरह शिवधनुष नहीं उठाते हैं, कारण यह है कि दुष्कर शिवधनुष को यदि विट्ठल ही उठा लेंगे तो फिर भक्त कौन-सा शिवधनुष उठाएँगे? भक्तजन प्रयत्न करें, इसलिए विठोबा शान्त हैं।' तुकाराम महाराज कहते हैं, 'तटस्थ यह ध्यान खड़ा है भाले पर।' तटस्थता का अचूक अर्थ क्या है? दीन-दु:खियों का दु:ख देखते हुए अलिप्त रहना, यही तो इसका अर्थ नहीं है?"

शिवाजीराव और विनोबा के मध्य सम्भाषण की शृंखला ही प्रारम्भ हो जाती थी। वाक्‌युद्ध जैसा शीतयुद्ध होता! आश्रमवासियों को और आये हुए लोगों को साहित्य और ज्ञान का तब प्रसाद मिलता। कभी कोई कह भी देता था, "यह युद्ध ऐसा है कि इससे प्रसन्नता और सन्तोष मिलता है।" जब वे दोनों बोलने लगते थे तब उनके बीच सहसा कोई बोलता नहीं था। आज भी यही हुआ था। सच कहूँ तो सत्याग्रह की प्रचार-यात्रा ही प्रारम्भ हो गयी थी। प्रत्येक गाँव के लोगों को जाग्रत कर असन्तोष निर्माण करना था और महात्माजी के अहिंसा-आन्दोलन को बल प्रदान करना था। परन्तु विनोबा का एक अलग ही तन्त्र था।

कभी-कभी मदालसा देवी कहतीं, "आप तो ऐसे हैं कि बापू भी आप पर मुग्ध हैं। मुझको तो कभी-कभी आप ईश्वर की भाँति ही अगम्य लगते हैं। ईश्वर का चिन्तन और स्वरूप समझाते समय आप ब्रह्मर्षि प्रतीत होते हैं तो बापू के साथ अहिंसा पर चर्चा करते समय आप प्रखर सामाजिक कार्यकर्ता लगते हैं, तो कभी आप तरल संवेदनाओं के उपासक कवि लगते हैं और कभी धरती के विविध रूपों का वर्णन करनेवाले, उसमें अभिनव प्रयोग करनेवाले कर्मठ किसान आप प्रतीत होते हैं, फिर

वेद-पुराणों का भाष्य आप करते हैं! बाबा! आप कौन हैं, यह प्रश्न जब मन में उठता है तब अन्तर्तम से आवाज आती है कि आप हैं भौमर्षि, ब्रह्मर्षि और प्रतिभावान् कवि! सृष्टि के अनादिकाल से लेकर उसके स्वरूप के सम्बन्ध में आप व्याख्या करते आये हैं!"

ऐसी बातें विनोबा को अच्छी नहीं लगती थीं।

वे पूछते, "बस समाप्त! और कुछ कहना है? तो अब काम की बातें कीजिए।"

परन्तु आज का विषय जिस प्रकार शिवाजीराव को प्रिय था उसी प्रकार वह विनोबा को और अधिक प्रिय था। उन दोनों के सम्भाषण से एकत्र श्रोताओं को आनन्द मिल रहा था।

शिवाजीराव बोले, " 'तटस्थ यह ध्यान खड़ा है भाले पर', इसका अर्थ क्या यह है कि विट्ठल भक्त के विषय में कुछ कहें ही नहीं?"

"यह बात नहीं है। विट्ठल तो अलिप्त हैं, तटस्थ हैं। यह ज्ञान तुकाराम को है। इसीलिए वे कहते हैं, 'तुका कहे-आँखों से किया परिचय। तटस्थ है ध्यान भाले पर।' पाण्डुरंग रहस्यमय देवता हैं। उनमें जैन-सनातनियों का एकीकरण है। शैव और वैष्णवों को एकत्र करने का प्रयत्न भी इस मूर्ति में किया गया है। उसमें कन्नड़-मराठी को भी एकत्र किया गया है। विट्ठल नाम कन्नड़ का है। नामदेव ने उत्तर हिन्दुस्तान में भी विट्ठल का प्रचार किया था और नामदेव नरसी मेहता के गुरु थे। मीराबाई भी अपने कीर्तन में कहती हैं—'विट्ठल को करती हूँ वरण।' इसका अर्थ यह है कि विट्ठल का व्यक्तित्व बहुरूपी है।"

मदालसा देवी हाथ में रमास की फलियाँ लेकर आयीं और विषय एकदम बदल गया। किसी ने रमास की ताज़ी फलियाँ देखकर पूछा, "आश्रम में ही सारी सब्जियाँ बो रखी हैं क्या?"

"हाँ बो रखी हैं। कभी-कभी बाहर से भी लेनी पड़ती हैं। परन्तु मेरे मन की बात यह है कि आश्रम संस्था स्वयंपूर्ण होनी चाहिए। इस दृष्टि से मेरे प्रयोग चल रहे हैं। धनलिप्सा को दूर करने के लिए स्वायत्त संस्थानों को स्वयंपूर्ण होना चाहिए। मैंने सदा यही अनुभव किया है। इस दृष्टि से मेरा विचार प्रारम्भ हो गया है।" विनोबा ने कहा।

यह सुनकर मोघे हँस पड़े।

शिवाजीराव ने पूछा, "हँसे क्यों?"

मोघे बोले, "बाबा के प्रति मेरे मन में एक रहस्यमय आकर्षण है। उनके स्वभाव की थाह नहीं मिलती है। प्रात:-सायं बापूजी के आदेशानुसार भाषण देते हैं। वे भाषण देते हैं जनजागृति के तथा अहिंसा से सत्याग्रह करने के और शेष समय बोलते हैं साहित्य पर। समय में से समय निकालकर खेत में काम करते हैं। उष:काल में कभी सामवेद गाते हैं तो कभी ज्ञानेश्वरी पढ़ते हैं। और बीच-बीच में लिखते भी हैं। सबसे

अधिक सूत कातते हैं। सबसे अधिक कष्ट सहते हैं। कभी-कभी ऐसा लगता है कि अलादीन के चिराग का यह सरल व्यक्तित्ववाला ब्रह्मर्षि है। जो चाहिए वह तत्काल उपलब्ध करा देता है।''

विनोबा ने कहा, ''मोघे! आज कोई काम नहीं है क्या? आगर गाँव के लोगों को सूचना दे दी है न?''

मोघे हँस पड़े। विनोबाजी प्रत्येक बात को अच्छी तरह याद रखते हैं और विषय को तत्काल बदलना भी वे जानते हैं। मोघे बोले, ''अपने महाराष्ट्र में अनेक देवताओं की भीड़ हो गयी है। दत्तावतार को लोग खूब मानते हैं। महानुभावी लोग भी दत्त की उपासना करते हैं।''

विनोबा ने कहा, ''महानुभावों का दत्त त्रिमूर्ति दत्त नहीं है। वह भागवत का अवधूत है। महानुभावों के दत्त के तीन मुख नहीं होते हैं। महानुभाव सम्प्रदाय तो भागवत सम्प्रदाय ही है, गीता-भागवत को माननेवाला।''

शिवाजीराव बोले, ''केवल मुसलमान मूर्तिपूजा को नहीं मानते हैं।''

विनोबा ने कहा, ''कुरान में साकार की सेवा और निराकार की भक्ति कही गयी है। साकार की सेवा और सगुण की भक्ति भी उसमें है।''

शिवाजीराव ने पूछा, ''आपके कथनानुसार सगुण का ज्ञान हो सकता है परन्तु निर्गुण-निराकार की भक्ति आखिर कैसे की जाए?''

विनोबा हँसकर बोले, ''शिवाजीराव! तुम मुझसे प्रश्न करके जान-बूझकर सन्त-साहित्य पर एक अच्छा-सा प्रवचन करवा रहे हो।''

''इस कारण हमको अनायास ही यह उत्तम श्रवण का योग मिला है। परन्तु बाबा! आप शिवाजीराव के निर्गुण निराकार का उत्तर दें।''

''निर्गुण-निराकार की प्रतीति अन्तर्तम के अनुभव से होती है, यह तो ठीक है। परन्तु आँखों के सामने कुछ होगा तो उसका ध्यान किया जा सकता है परन्तु निराकार में कौन-सी प्रतिमा का आधार लेकर ध्यान किया जाए?'' शिवाजीराव ने पूछा।

''सगुण साकार की।''

''यह कैसे सम्भव है?''

''अपने निराकार और अव्यक्त मन में अनजाने एक प्रतिमा तैयार होती है। मान लीजिए कि हम अन्धकार में चल रहे हैं। उस अन्धकार का अभ्यास होने पर पहले अस्पष्ट और फिर स्पष्ट मार्ग दिखाई देने लगता है। ठीक यही निराकार की स्थिति है। कभी-कभी कोई विभूति अपने कर्म से जन-मानस में पैठकर निराकार का ही स्थान प्राप्त कर सकती है। परन्तु उसके लिए उस व्यक्ति को अपने कर्म से कालातीत सिद्धि प्राप्त करनी पड़ती है।''

''तो फिर कर्मयोग और सेवा में अन्तर क्या है?''

"निष्काम-नि:स्वार्थ सेवाकार्य ही कर्मयोग है। सेवा होती है एक व्यक्ति की। यह सेवा जब समाज की होती है, उस सेवा के लिए जब जीवन दाँव पर लगाया जाता है तब कर्मयोग होता है। कारण यह है कि व्यक्ति साकार है परन्तु समाज निराकार है, असीम है। जीवित मनुष्य की भक्ति नहीं हो सकती है।"

"क्यों? बापू के प्रति आपमें भक्ति नहीं है क्या?"

"शिवाजीराव! आसक्ति से उत्पन्न होनेवाली भक्ति और आदरयुक्त भक्ति तथा नि:स्वार्थ भक्ति के विषय में भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। परन्तु पेट का कलेवा अब समाप्त होनेवाला होगा, अत: पहले भोजन करके लोणी के कार्यकर्ताओं से मिलना है।"

मदालसा देवी बोलीं, "रमास की फलियाँ यहाँ आयीं और उदर कुलबुलाने लगा।"

और उसी समय भोजन तैयार होने की सूचना आ गयी। बोलते-बोलते विनोबा के सूत के चार अँटे तैयार हो गये थे। उन्होंने तकली और पूनियाँ उठाकर रख दीं और वे उठे।

"बन्धुओ! अत्यधिक मानसिक अत्याचार हो चुका है। अहिंसा के युग में अधिक बोलना भी नहीं चाहिए—यही सच है।"

विनोबा उठे और बरामदे में होकर चलने लगे। बरामदे में मिट्टी की सुगन्ध लेकर हवा आ रही थी जो दूर कहीं वर्षा होने की सूचना दे रही थी।

4

लोणी एक छोटा-सा गाँव था। विनोबा के आने के कारण गाँव में लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। सभा से पहले विनोबा गाँव में घूम रहे थे।

"इस गाँव में जमीन कितनी है?" एक किसान से विनोबा ने पूछा।

"मुझको नहीं मालूम जी।"

"कितनी जमीन पर खेती होती है?"

"मेरे पास तो आठ गुंठे (8712 वर्ग फुट) जमीन है जी। औरों की मैं क्या कहूँ?"

"अच्छा तुम्हारे घर कौन-कौन है? इतनी जमीन से तुम्हारा पेट भर जाता है?"

"मेरे घर दो लड़कियाँ, दो लड़के, एक घरवाली और मैं हूँ जी!"

"तुम्हारा काम चल जाता है?"

"काम कैसे चलता जी! लड़का अचलपुर में सूत की मिल में है और लड़कियाँ अपने-अपने घर गयीं। एक लड़का और हम बुढ़े-बुढ़िया रह गये हैं।"

विनोबा ने हँसकर उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "भैया, अब कुछ सीखोगे क्या? मैं पूछ रहा हूँ कुछ और तुम उत्तर दे रहे हो कुछ!"

"अब हम क्या सीखेंगे जी! कब्र में पैर लटक रहे हैं, भला हम क्या सीखेंगे! मेरे लड़के को बताइए।"

"जमीन का लगान देते हो क्या?"

"हाँ जी! देना पड़ता है। कभी पानी आता है तो आता है, नहीं तो सारी बरसात सूखी ही चली जाती है। फिर तो कुछ मत पूछिए! लगान देते-देते आँखों से आँसू बहने लगते हैं जी! खेत में पानी आएगा तभी तो उसमें कुछ होगा बाबा!"

"तो फिर कुआँ क्यों नहीं खोदा?"

"कुआँ खोदने के लिए भी पैसे चाहिए। फोकट में कौन खोद देगा जी?"

"चार लोग इकट्ठे होकर चौपाल पर गप्पें मारते हो, बीड़ी पीते हो, तम्बाकू खाते हो—तो फिर चार-छह लोग मिलकर कुआँ क्यों नहीं खोद सकते?"

"यह भली बात कही जी! हम क्या मना करते हैं जी? कुआँ भी खोदेंगे जी। अच्छा हुआ बप्पा बाबा आप आ गये। हमको तो सब ओर अँधेरा ही दिखाई देता है जी। आप लोग सयाने हैं। हमसे कुछ कहते हैं तभी हमारी खोपड़ी में उजाला होता है जी!"

उस किसान ने विनोबा के पैर पकड़ लिये। विनोबा ने उसको उठाया। विनोबा चलने लगे। वे प्रत्येक झोंपड़ी के द्वार पर रुकते थे। एक स्थान पर उन्होंने पूछा—

"इस रास्ते पर दुकानें नहीं दिखाई दीं। गाँव में बाजार लगता है या नहीं?"

"दुकानें हैं जी! आज बन्द हैं। आप आएँगे और सभा करेंगे इसलिए।"

"सो क्यों? मुझसे डर लगता है?"

"आपसे क्या डरना जी! हम दारोगा से डरते हैं जी!"

"दारोगा से मत डरिए। बुरा काम करने से डरिए। चोरी करने से डरिए। मनुष्य को मनुष्य से डरने की क्या जरूरत है?"

"...यहाँ मुसलमान लोग नहीं हैं?"

"हैं।"

"उनसे तुम्हारे सम्बन्ध कैसे हैं?"

"भाई-भाई लड़ते हैं और फिर एक हो जाते हैं जी!"

"महानुभावी लोग नहीं हैं क्या?"

"हैं ना जी! जब गाँव कहते हैं तो वहाँ सभी लोग रहते हैं जी! यहाँ एकमुखी

दत्त की मूर्ति है न! सारा गाँव सयाने बालकोंवाला है जी!''

''परन्तु इन सयाने बच्चों की माँ अँग्रेजों के अधिकार में है, यह जानते हैं क्या आप?''

''जानते हैं जी! बाबा, हमारे बापूजी जो कहते हैं वह सब हमें मालूम है। उनकी एक पुकार सुनकर हम दौड़ते जाएँगे जी! जब वे बोलते हैं तो हमको ऐसा लगता है जैसे हमको जगाने के लिए आकाश से देव ही आया हो!''

विनोबा बहुत देर तक बातें करते रहे। सन्ध्या सघन हो रही थी। मण्डली के साथ विनोबा सभास्थल पर आये। परन्तु इतने समय तक गाँव में विचरण करते हुए मुक्त मन से बातें करनेवाले गाँव के लोग सभा में नहीं आये थे, एक भी ग्रामीण वहाँ नहीं था।

विनोबा को आश्चर्य हुआ। स्थानीय कार्यकर्ताओं से उन्होंने पूछा, ''आज सभा है, यह बात गाँव में सबको मालूम तो है न?''

''हाँ! कल से लोग गाँव में इस विषय पर चर्चा कर रहे थे।''

''तो फिर वे आये क्यों नहीं?''

पेट्रोमैक्स का प्रकाश विनोबा के चेहरे पर पड़ रहा था। इतना चलकर भी वे थके नहीं थे। शायद विनोबा पुनः घर-घर जाएँगे, ऐसा उस कार्यकर्ता को महसूस हुआ। वह शीघ्रता से बोला, ''मैं उनको बुलाकर लाता हूँ। आप यहाँ बैठें। फकत दस मिनट में लोग यहाँ आ जाएँगे।''

वह शीघ्रता से चलकर अन्धकार में अदृश्य हो गया। सभास्थल पर चार पेट्रोमैक्स जल रहे थे। उनके प्रकाश में वहाँ एकत्र लोग खड़े-खड़े व्याकुल हो रहे थे। दूर तक कोई पक्षी भी दिखाई नहीं दे रहा था। पेट्रोमैक्स के प्रकाश के परे क्षितिज तक सघन अन्धकार व्याप्त था। एक ओर घने वृक्ष और उनसे परे दिखाई न पड़नेवाली खेती थी, सामने गाँव की नदी थी जो पहले दिखाई दे रही थी परन्तु इस समय अदृश्य थी और एक ओर बस्ती थी—अन्धकार में डूबी हुई। विनोबा तुकाराम का अभंग गुनगुना रहे थे। इतने में ही दो मोटरगाड़ियाँ उनके सामने आकर खड़ी हो गयीं। उनसे दारोगा और सर्किल इन्स्पेक्टर उतरे।

उन्होंने विनोबा से पूछा, ''सभा शुरू नहीं हुई?''

''अभी नहीं हुई।''

''लेकिन क्यों?''

''लोग नहीं आये हैं।''

''लेकिन लोग क्यों नहीं आये हैं?''

इतने में ही गये हुए तीर-चार कार्यकर्ता और कुछ लोग सहमे हुए-से सभा में आये। विनोबा ने कहा, ''अब आप लोगों के सामने ही शुरू करता हूँ।''

विनोबा कहने लगे, "बन्धुओ! जब मैं गाँव में घूम रहा था तब लोग खुले मन से बातें कर रहे थे। अपनी-अपनी कठिनाइयाँ बता रहे थे। हँस रहे थे। परन्तु लोग सभा में स्वयं ही नहीं आये। मुझसे तो उनको कोई भय नहीं था। इसका यही अर्थ है कि दारोगा नामक पदाधिकारी से वे डरते हैं।"

दारोगा मुक्त मन से हँस पड़ा।

विनोबा बोले, "मैं यदि दारोगा होता तो लोगों से कहता, 'भाइयो! मुझसे क्यों डरते हो? मैं तो आपका और जनता का सेवक हूँ। चोरियाँ न हों, झगड़े न हों, इसलिए मैं लोगों में घूमता हूँ।' लन्दन में लोग पुलिस से नहीं डरते हैं। कारण यह है कि वे जानते हैं कि पुलिस से डरने का कोई भी कारण नहीं है। शिक्षा ने यह ज्ञान उनको दिया है। हम लोगों को ज्ञान नहीं है, इसलिए हमको भय लगता है। महानुभाव सम्प्रदाय का सिद्धान्त है कि प्राणिमात्र की हत्या नहीं करनी चाहिए। परन्तु इतने से ही उस धर्म की परिपूर्ति नहीं होती है। मनुष्य को परस्पर द्वेष और मत्सर नहीं करना चाहिए। द्वेष होगा तो हिंसा होगी ही और हिंसा के होने पर अहिंसा नष्ट होगी ही। महात्माजी मन:पूर्वक यह अनुभव करते हैं। महात्माजी कहते हैं कि हिंसाचार से अहिंसा पीड़ित नहीं होनी चाहिए। नहीं तो वही बात हो जाएगी कि मरे बिना स्वर्ग दिखाई नहीं देता है। हिन्दुस्तान के चालीस करोड़ लोगों पर अँग्रेज लोग शासन कर रहे हैं, उसका कारण यह भय ही है। गाँव में कम-से-कम हजार-पन्द्रह सौ लोग हैं, फिर भी एक दारोगा से आप डरते हैं! सारा हिन्दुस्तान ही ऐसा है। प्रत्येक को मृत्यु आएगी या नहीं? मरना तो है ही तो फिर भय किस बात का?"

कुछ रुककर विनोबा कहने लगे, "थोड़ी देर पहले बातें करते समय पता चला कि यहाँ के लोग सप्ताह में दो दिन भजन करते हैं। जो देवता की भक्ति करता है उसको भय किसका? भक्ति और भीति दोनों एक स्थान पर रह ही नहीं सकतीं। मेरा इतना ही कहना है कि आप दारोगा को देखकर मत घबड़ाइए। हिन्दुस्तान में आये हुए अँग्रेजों से मत घबड़ाइए। देश अपना है। महात्माजी अपने पीछे खड़े हैं फिर भय कैसा?"

विनोबा ने दारोगा और पुलिस इन्स्पेक्टर की ओर देखा। वे दोनों ही मुस्करा रहे थे। अब विनोबाजी बन्दी बना लिये जाएँगे, यह निश्चित था। परन्तु भाषण समाप्त होने पर नमस्कार करके दोनों ही चले गये। तब सबको आश्चर्य हुआ। रात में देर तक वार्तालाप होता रहा। विनोबा जब उठे तब लगभग आधी रात बीत चुकी थी।

कुछ समय बाद ही अर्धरात्रि व्यतीत हो जाएगी और प्रत्यूष का एक शान्त समय आ जाएगा। फिर आएगा सुन्दर स्वप्नों का प्रात:काल। स्वतन्त्रता का प्रात:काल भी ऐसे ही आएगा। आज उस प्रात:काल के पूर्व का काल प्रारम्भ हो चुका है। प्रात:काल की प्रतीक्षा है। आएगा...वह सुन्दर प्रात:काल जल्दी ही आएगा।

विचार करते-करते उनको नींद आ गयी। और निश्चित समय पर वे पुनः जग गये। संक्रान्ति के बाद के दिन थे। जल्दी ही पौ फटने लगती थी। प्रार्थना समाप्त कर जब विनोबा सामने आँगन में हाथ में चरखा और कपास लेकर बैठे उसी समय मोघे जल्दी-जल्दी आये और बोले, ''बाबा! कलवाले दारोगा और इन्स्पेक्टर आये हैं।''

विनोबा हँस पड़े। सब कुछ समेटकर रखकर वे बोले, ''मैं तैयार हूँ।''

दारोगा निश्छल प्रकृति का था।

वह बोला, ''सॉरी बाबा! आपकी खिदमत में आये हैं।''

बाबा ने कहा, ''स्वागत है आपका। सॉरी की जरूरत नहीं है। दारोगाजी! आप अपना कर्तव्य कीजिए। हमने अपना कर्तव्य किया है।''

''फिर भी हमको अफसोस है...''

विनोबा ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा, ''तुम्हारे कर्तव्य के कारण मैं कारागार में लोगों की अधिक सेवा कर सकूँगा। जीवन-चिन्तन के लिए कारागार जैसा एकान्त कहाँ मिलेगा? चलिए!''

दारोगा ने उनको बेड़ियाँ नहीं पहनायीं। विनोबा स्वयं ही उनके आगे चलने लगे। क्षणभर पीछे मुड़कर उन्होंने धाम नदी को नमस्कार किया और फिर आगे-आगे विनोबा तथा पीछे-पीछे और लोग मोटर तक आये। अब मोटर पवनार से नागपुर-कारागार की ओर दौड़ने लगी।

5

नागपुर-वर्धा मार्ग पर स्थित नागपुर मध्यवर्ती कारागार के सामने सफेद रंग की डौज रुकी। चारों ओर जंगल में स्थित इस कारागार के प्रचण्ड द्वार के खुलने की, गाड़ी के अन्दर जाने की और फिर दरवाजा बन्द करने की आवाज वातावरण में गूँज उठी। सैल्यूट हुए। बूटों के दौड़ने की आवाजें हुईं और कुछ देर बाद ही सब कुछ शान्त हो गया।

मध्यवर्ती कारागार का दरवाजा इस प्रकार किसी के आने पर ही पूरा खोला जाता था, अन्यथा उस महाद्वार के छोटे द्वार को खोलकर कैदी को अन्दर ले लिया जाता था। कारागार की गाड़ी उस महाद्वार के पास खड़ी रहती थी। जंगल में स्तब्धता रहती थी। आज दिल्ली के कारागार के मुख्य साहब आये थे। नागपुर कारागार के जेलर

बैरक के बरामदे में खड़े थे। उन्होंने भी सैल्यूट किया। साहब अन्दर आकर एकदम ठिठक गये।

उन्होंने पूछा, "हू इज़ सिंगिंग?"

"नया कैदी है साब!"

"ह्वाट इज़ हिज नेम?"

"उसको बाबा बोलता है साब!"

"ओह! बाबा! गाँधी का...विनोबा बाबा..."

साहब ने हैट हाथ में ले लिया और ऑफिस में प्रवेश किया। हाथ की छड़ी मेज पर रख दी। उस पर हैट रख दिया और वे कुर्सी पर बैठ गये।

"उसका जुर्म क्या है?"

"सत्याग्रह।"

"ओह! एम.के. गाँधी का नया तरीका..."

"यस सर।"

कुछ ही देर में साहब कारागार की अन्दर की बैरक के पास आये। गुनाहखाना एक की बैरक में विनोबा तन्मय होकर गा रहे थे।

साहब ने अँग्रेजी में पूछा, "वह सत्याग्रही यही है क्या?"

"हाँ साहब!"

"इतना कमजोर आदमी!"

"हाँ साहब!"

वे कुछ क्षण खड़े रहे। बायाँ पैर मोड़कर विनोबा बैठे थे। दाढ़ी बढ़ गयी थी। बाल गर्दन तक आ गये थे। देह पर धोती के अतिरिक्त कुछ नहीं था। आँखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा था।

"यह क्या गा रहा है? यह राजद्रोह का कैदी है, इसलिए पूछ रहा हूँ।"

"कुछ नहीं साहब! यह कैदी केवल बाइबिल जैसी 'रामायण' धर्मग्रन्थ की कविताएँ कह रहा है।"

"ऑल राइट। इसको गाने दो।"

धर्म से जागृति होती है। धर्म से समाज संघटित होता है। धर्म के लिए लोग मरते भी हैं—यह बात जेलर के ध्यान में आ गयी थी परन्तु आये हुए साहब के ध्यान में नहीं आयी थी। जाते-जाते उसने कहा, "यह आदमी जरा विचित्र दिखाई देता है। राष्ट्रगीत के स्थान पर धर्मग्रन्थ का पारायण करनेवाला। बेचारा स्वयं का ही समाधान खोज रहा है।"

"हाँ, साहब!" जेलर बोला। परन्तु उसके मन में आया—'रामायण में अनीति-अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध युद्ध है। इसके अतिरिक्त सद्प्रवृत्तियों का विकास

होने पर असद्-प्रवृत्तियों को क्रोध आता है। विनोबा को रामायण के प्रति कैसा लगता होगा, यह तो वे ही जानें। परन्तु मैंने हिन्दुस्तानी होते हुए भी लाचार होकर जब ब्रिटिशों की गुलामी स्वीकार की है तो जहाँ तक हो सकेगा वहाँ तक यदि कोई राष्ट्र के लिए, राष्ट्रजागृति के लिए कुछ कार्य कर रहा है तो मैं उसको रोकूँगा नहीं।' यह जेलर ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था।

विनोबा सीधे-सादे थे। शान्त थे। संयमी और अत्यन्त प्रबुद्ध थे। अपने हाथों से किसी प्रकार का नियम-भंग न हो, इसके लिए अत्यन्त सावधान थे। किसी को कैसा भी कष्ट न पहुँचे, इसका ध्यान रखते थे। सहयोगी पर प्रेम करते थे। विनोबा जैसा आदमी कारागार में आ जाने से जेलर को वास्तव में आनन्द हुआ था।

''उसको गाने दो! उसकी आवाज सुन्दर है, परन्तु वह बहुत जोर से गाना गाता है। यहाँ की दीवारों को ऐसी आवाज सुनने का अभ्यास नहीं है।'' साहब ने हँसते-हँसते कहा और वे अन्य कैदियों की ओर मुड़ गये।

जब से विनोबा नागपुर के मध्यवर्ती कारागार में आये थे तब से स्वयं को और अधिक स्वतन्त्र अनुभव कर रहे थे। जैसे कोई बेटी अपने पीहर आ गयी हो! एक बार जेलर ने पूछा भी, ''बाबा! आप आश्रम से छूटकर आनन्द से कारागार में रहने आये हैं क्या?''

विनोबा ने प्रसन्नता से हँसकर कहा था, ''जैसे प्रभु रखें वैसे ही रहना है। मन में रखना चाहिए सन्तोष!''

''परन्तु बाबा! आप ही यह भी तो कहते हैं कि जो व्यक्ति करेगा उसमें सामर्थ्य है आन्दोलन का?''

विनोबा बोले, ''प्रत्येक क्षण के लिए एक और प्रत्येक आचार-विचार के लिए एक देवता भक्तों ने कल्पित कर रखा है। उसी प्रकार साधु-सन्तों ने एक-एक कहावत गढ़ रखी है। छूटने के लिए, उलझने के लिए, मुक्ति के लिए, परतन्त्रता के लिए। आखिर आनन्द है क्या? यह जीवन का दृश्य-अदृश्य स्थायी भाव है।''

''सो कैसे? कल ही तो आपने कहा था, सुख देखो तो जौ जैसा, दुःख पर्वताकार! तब आपने कहा था कि दुःख ही निरन्तर जीवन का स्थायी भाव है।''

''तो आप बड़े ध्यान से मेरी बातें सुनते हैं!''

''हाँ! ऑफिस की बैरक में भी आपकी आवाज सुनाई देती है। आप जिन ओवियों को और कहावतों को कहते हैं उनको मैं ध्यान में रखता हूँ। वे मुझको अच्छी लगती हैं। परन्तु दुःख को स्थायी भाव कहने पर सुख भी स्थायी भाव है क्या?''

''सच पूछिए तो जीवन का स्थायी भाव आनन्द है। आनन्द का स्वरूप वैयक्तिक भी है और सार्वजनिक भी है। आनन्द दृश्य स्वरूप में होता है। उसका अनुभव होता है। दिखाई भी देता है। परन्तु दुःख में भी हम आनन्द की ही प्रतीक्षा करते रहते हैं,

इसीलिए तो उसको आनन्दब्रह्म कहते हैं। दुःख में आनन्द की प्रतीक्षा, प्रत्यक्ष दुःख में सुख की पूर्वानुभूति और सुख की आगामी आहट होती ही है। इसलिए आनन्द-सुख सर्वदा सर्वत्र रहते ही हैं।''

उसी समय सब कुछ सुनते हुए रामकृष्ण बजाज कहते, ''साधु पुरुष को यत्र-तत्र-सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द दिखता है।''

एक ने कहा, ''बाबा मुझको रामायण पढ़ाते हैं। उस समय पहले वे गाते हैं। फिर एक-एक शब्द का अर्थ विस्तार से बताते हैं। और इतनी सुगमता से बताते हैं कि ऐसा लगता है जैसे किसी रेशमी वस्त्र का तरल सुखद स्पर्श हम अनुभव कर रहे हों! शब्द में नाद होता है, यह मैं जानता था। परन्तु शब्द में गन्ध होता है, शब्द में रेशमी स्पर्श होता है, शब्द पत्थर जैसा कठोर, शब्द ज्वालाग्राही और शब्द दिगन्तव्यापी होता है, यह बात मैं बाबा के कारण ही जान सका।''

जब रामकृष्ण बजाज ने पूछा, ''बाबा! क्या एक बार मुझको भी रामायण पढ़ाऐंगे?'' तब बाबा ने तत्काल जेलर से कहा था, ''क्या मुझको वाल्मीकि रामायण और तुलसीदास का रामचरितमानस ला देंगे?''

कारागार में आने पर विनोबा की यह पहली माँग सुनकर जेलर चकित हो गया था। पिछली बार जब विनोबा यहीं आये थे तब उन्होंने नामदेव, एकनाथ और तुकाराम की पुस्तकों की माँग की थी। राजबन्दी को सब कुछ दिया जा सकता है परन्तु राजद्रोही को ऐसा सन्त-साहित्य दिया जाय या नहीं, इस दुविधा में जेलर पड़ा हुआ था। परन्तु विनोबा ने कहा, ''यदि सरलता से आप व्यवस्था कर सकें तो देख लीजिए। माण्डले के कारागार में 'गीता रहस्य' लिखा जाता है, इससे प्रकट है कि धर्मग्रन्थ का अध्ययन मन को शान्ति देनेवाला होता है। आपके नियम के अन्तर्गत न आता हो तो...''

''आपने जो पुस्तकें मँगायी हैं उनको मैं निश्चय ही लाऊँगा, परन्तु नागपुर में यह साहित्य कहाँ मिल सकेगा, क्या यह आप बता सकेंगे?''

''इसकी जानकारी मुझको नहीं है। परन्तु ये पुस्तकें मुझको मेरे आश्रम से ही प्राप्त हो सकती हैं।''

तब जेलर ने वे पुस्तकें उनको लाकर दे दी थीं। इस समय रामायण और रामचरितमानस कहाँ से लाये जाएँ, यह प्रश्न जेलर के चेहरे पर देखकर विनोबा बोले, ''पहले की ही भाँति मेरे ही आश्रम में मिल जाएँगी। इस बार आपके कारागार में मैं पूरे एक वर्ष का मेहमान हूँ...।''

जेलर ने कहा, ''मेहमान भी उसके स्वयं के आचरण से अपना लगने लगता है। बाबा! इस जेल में अनेक प्रसिद्ध लोग आकर चले गये हैं, परन्तु आप जैसा साधुपुरुष आज तक नहीं आया था।''

वह मन में कह रहा था, 'इस पुरुष का सब कुछ निराला है। अन्य कैदियों को

जगाना पड़ता है। यह पुरुष प्रत्यूष में तीन बजे ही उठकर मधुर स्वर में गाना प्रार कर देता है। सख्ती से जो काम करवाया जाता है उसका भाव अन्य कैदियों के चेहरों पर परिलक्षित होने लगता है, परन्तु इस पुरुष के चेहरे पर एक ही भाव होता है। वह होता है आनन्द का भाव! न काम की आफत, न भोजन की शिकायत! न किसी के प्रति क्रोध और न घुमड़ता असन्तोष! इतनी स्नेहार्द्रता और अपनत्व कि अपना स्वकीय लगता है। कैदियों से सदाचरण से रहने की कहो तो भी कोई नहीं सुनता है परन्तु यह पुरुष तो साक्षात् सद्गुण ही है! यह कारागार उसके लिए साधना का आश्रम ही है। अधिकाधिक कठोर और अचूक दैनिक कृत्यों का पालन करते हुए भी अपने लिए तथा दूसरों के लिए स्वाध्याय करनेवाले दो ही महापुरुष आज हैं। एक महात्माजी और दूसरे विनोबा!'

जेलर रामायण और रामचरितमानस ले आया था। विनोबा प्रातःकाल उच्च स्वर से रामचरितमानस गाते। सायं समय धीमी आवाज में प्रवचन करते। प्रार्थना करते।

एक दिन रामकृष्ण ने ही डरते-डरते पूछा, ''बाबा! ऐसा क्यों? प्रातःकाल तो आप जोर-जोर से गाते हैं और सायं समय अत्यन्त थकित हुए से एक-एक शब्द गिनकर बोलते हैं!''

बाबा ने कहा, ''यह बात नहीं है। मनुष्य जब दूसरे की अभिव्यक्ति आत्मसात् करने का प्रयत्न करता है तब वह उच्च स्वर में करता है। परन्तु जब वह स्वयं की अभिव्यक्ति करता है तब शब्द का महत्त्व जानकर धीमा हो जाता है। आत्मसंवाद के प्रति वह प्रामाणिक होता है। और वैसे भी प्रातःकाल के चैतन्य के स्फूर्तिमय प्रवाह को सायंकाल तक ज्यों का त्यों स्थिर कोई भी नहीं रख सकता है।''

''परन्तु हम तो वही होते हैं!''

''हाँ! वही होते हैं, परन्तु हमारा नैसर्गिक स्वभाव सूर्यमुखी-सा होता है। सूर्य चेतना देता है, ऊर्जा देता है। उस ऊर्जा को हम कितना आत्मसात् करते हैं, यह महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए तो मैंने जेलर से कहा था, 'इस कारागार में मुझको कोई असुविधा नहीं है, मुझको कोई शिकायत नहीं है, परन्तु यहाँ सूर्योदय और सूर्यास्त दिखाई नहीं देते हैं। प्रकाश से मेरा सम्बन्ध नहीं रहता है, यही असुविधा मुझको है।' ''

''प्रकृति का इतना भारी परिणाम होता है?''

''निश्चय ही। प्रकृति से साहचर्य बनाये रखने पर उत्तम आरोग्य हमको प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त सृष्टि के विकासक्रम के साथ-साथ अनजाने ही हमारा अभ्यास बढ़ता जाता है।''

विनोबा दैनिक कृत्य बड़ी जल्दी सम्पन्न कर लेते थे। इससे उनको लिखने और पढ़ने को भरपूर समय मिल जाता था। एक दिन जेलर ने कहा, ''आप चक्की मत

चलाइए। आप रस्सी मत बटिये। आप तो बस बोलते रहिए।''

विनोबा बोले, ''जेलर साहब! यह कैसे हो सकता है? मुझको खाने के लिए शब्द नहीं अन्न चाहिए। और अन्न प्राप्त करने के लिए श्रम करना पड़ेगा। मैं लोगों से कहता हूँ कि प्रत्येक पालक अपने पाल्य को सोलह वर्षों तक स्वावलम्बन का शिक्षण और बाद में स्वावलम्बन से जीने का शिक्षण जरूर दे। यह नियम मुझ पर भी लागू है।''

जेलर कुछ नहीं बोला। कहने से विनोबा नहीं मानेंगे, यह बात वह जानता था। परन्तु जेलर ने जब यह सब दादा धर्माधिकारी और गोपालराव काले को बताया तो वे हँस पड़े। डॉक्टर कुमार बंगारप्पा भी हँस पड़े। तब जेलर ने उत्सुक होकर पूछा, ''हँसे क्यों? मैंने कहीं कुछ गलत कहा है क्या?''

दादा धर्माधिकारी बोले, ''यह बात नहीं है जेलर साहब! महात्माजी हों या विनोबा हों या अन्य कोई महापुरुष हों, ये लोग हिमालय की तरह मन में अत्यन्त गहराई में छिपे रहते हैं और उसी समय वे समाज में सुगन्ध की भाँति फैले हुए होते हैं। लोकजीवन पर उनका साम्राज्य छाया रहता है और मन से वे लोकजीवन से अलिप्त रहते हैं। वे स्वयं में मग्न होते हैं। ईश्वर की गूढ़ संकल्पनाओं के विविध वस्त्र अपने चारों ओर लपेटे हुए भी वे मुक्त ही होते हैं।''

जेलर बोला, ''ये बातें मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आती हैं। आपकी बातें सुनने में मुझको अच्छी लग रही हैं...बहुत अच्छी लग रही हैं...मैं इतना ही जानता हूँ। मेरी माता कोंकण की हैं और मेरे पिता कर्नाटक के हैं। दोनों संस्कार बचपन में अच्छे हो गये परन्तु ब्राह्मण पुरोहितों के संस्कार मुझ पर नहीं थे। मुझ पर थे नौकर-चाकरों के। प्रश्न था पेट का। इसलिए बिना कोई विचार किये नौकरी में लग गया। अनुभव खूब होता है, परन्तु कुछ भी करने में असमर्थ हूँ।''

दादा धर्माधिकारी ने कहा, ''जेलर साहब! एक बात ध्यान में रखिए। बच्चों का मल-मूत्र साफ करनेवाली माता पवित्र होती है। क्योंकि शरीर का कार्य-व्यवसाय का भाग अलग है और मन का निर्मल होना तथा ईश्वर के चरणों में लीन होना, यह भाग अलग है। अस्तु! जेलर साहब! एक प्रार्थना है। कुछ दिन उनके साथ रहने का अवसर मिले, यह हमारी इच्छा है।''

''दादा! आप कहें और उसको हम सुनें, इसी में सच्चा आनन्द है।'' यह कहकर जेलर ने दोनों के मिलने की व्यवस्था की और वह मन में प्रसन्न होकर अपने रेस्ट हाउस की ओर चल दिया।

विनोबा आश्रम की अपेक्षा कारागार में अधिक प्रसन्न लग रहे थे। उनके देखते ही दादा धर्माधिकारी ने पूछा, ''इतने प्रसन्न कैसे हैं?''

''बात यह है कि यहाँ नाई समय पर आता है। वह नागपुर-वर्धा की बातें बताता

है। यहाँ रसोइया बाहर से कभी-कभी सब्जी लाता है और तुम्हारे-हमारे देश की कहानियाँ सुनाता है। सब कुछ आनन्दमय है। गेंदा के पेड़ों की बहार समाप्त हुई परन्तु बेला के पेड़ों पर पत्तों की आड़ में छोटी-छोटी कलियाँ आ गयीं। जून-जुलाई तक बेला चलेगा और फिर हरे पत्तों से गेंदा पीला-भगवा खिल उठेगा।''

क्षणभर को दादा की समझ में नहीं आया कि क्या कहें!

उन्होंने कहा, ''मैंने उस विषय में नहीं कहा था।''

बाबा बोले, ''तुमने भोजन के बारे में कहा हो। तब भी कोई बात नहीं। सब्जी का बगीचा है। यहाँ सब्जी कच्ची ही क्यों नहीं देते हैं, यही समझ में नहीं आता। शायद आरोग्यशास्त्र की पुस्तक की प्रतियाँ यहाँ तक नहीं आ पाती हैं। लेकिन यहाँ आनन्द है। सब्जी कभी अधपकी, कभी जली हुई, कभी तीखी तो कभी नमकरहित। चर्बी न बढ़े इसलिए तेल का बहिष्कार कर रखा है। दाल में दाल ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगी। दो-चार दाल के दाने और छौंक लगा हुआ पानी, भरपूर नमक डालकर तैयार की हुई मोटी-मोटी कच्ची रोटियाँ और रूखा भात। यहाँ मनुष्य सचमुच ही जीवन का विचार करता है। सुख की इच्छाओं की यहाँ होली करता है। आत्मसंयम भले ही न हो परन्तु अनजाने रसना-तृप्ति पर तो अंकुश लगता ही है। मुझको अच्छा लगा यहाँ।''

''और डॉक्टर कुमार बंगारप्पा को?''

''उनकी आँखें आर्द्र हो जाती होंगी, परन्तु उन्होंने शब्दों पर विजय प्राप्त कर ली है।''

''रामकृष्णजी के विषय में भी यही बात है?''

''बजाज परिवार धनवान, सुशील, संयमी, देशभक्त और परिश्रमी भी है। उनको तो सबसे अधिक कष्ट हो तो भी वे कुछ नहीं कहेंगे।''

''मतलब यह कि सब लोग पवनार के परमधाम आश्रम में जैसे थे वैसे ही हैं।''

विनोबा ने कोई उत्तर नहीं दिया फिर भी वह स्पष्ट हो गया था। देह पर मोटा लबादा पहने अत्यन्त शान्त और स्वस्थ विनोबा को देखकर किसी को भी उनसे ईर्ष्या होती।

''डॉक्टर भारतन कुमारप्पा के कहने पर मैंने आपके स्वराज्यशास्त्र की पाण्डुलिपि को पढ़ा। वह मुझको बहुत अच्छी लगी। मुझको आश्चर्य हुआ कि अभी स्वराज्य के दूर होते हुए भी आपने स्वतन्त्रता के बाद की कल्पनाएँ कैसे साकार कर लीं?''

''स्वराज्य दूर नहीं है। स्वतन्त्रता का उदय शीघ्र ही होगा। अटूट प्रयत्न करने पर एक-न-एक दिन इसका फल अवश्य प्राप्त होगा। स्वराज्य हो जाने पर भी सुराज्य मिलना कठिन होता है।''

गोपालराव काले बोले, ''स्वराज्य मिलने पर सुराज्य सहज ही हो जाएगा!''

''नहीं गोपालराव! स्वराज्य आने पर सुराज्य का आना इतनी सरल बात नहीं

है। रामराज्य का समय आज नहीं है। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के आनन्द में लोग यह भी भूल जाएँगे कि स्वतन्त्रता की अखण्ड उपासना के लिए अखण्ड आत्मयज्ञ प्रज्वलित किया था। सुराज्य की स्थापना के लिए परस्पर स्नेहभाव, जाति-पन्थ-सम्प्रदाय-विरहित स्नेहभाव की आवश्यकता है।''

''वह तो होगी ही।''

''ऐसा ही होगा, यह मानने से काम नहीं चलेगा। सुराज्य का आदर्श कल्पना के रूप में प्रयोग न करके उसका महत्त्व जानना चाहिए।''

''स्वराज्य की आपकी भूमिका से मैं पूर्णत: सहमत हूँ। मेरा विचार है कि महान समाजशास्त्री हैराल्ड लास्की की पुस्तक की भाँति ये विचार भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। किसी-किसी पुस्तक को पढ़कर मनुष्य बेहद प्रभावित होता है। वह उन विचारों को अनजाने आत्मसात कर लेता है। मुझको स्मरण है कि एक बार बापू ने कहा था, 'जोहान्सबर्ग स्टेशन पर एक मित्र ने मुझको रस्किन की पुस्तक 'अनटू दि लास्ट' दी। उस पुस्तक का मुझ पर भूत ही सवार हो गया।' उसी प्रकार आपकी पुस्तक का भूत मुझ पर सवार हो गया है। इतने अर्थगर्भ विचार राष्ट्र को भविष्य में प्रामाणिक मानने ही पड़ेंगे।''

''यह आप कैसे कहते हैं?''

दादा धर्माधिकारी हँस पड़े। उन्होंने मन में विचार किया—ऋषि द्रष्टा होता है। तीनों काल अपने हाथ में दृढ़ता से पकड़े रखता है। ऋषि स्रष्टा भी होता है। वह नये-नये विचारों से, कृति से, प्रयोग से आदर्श निर्माण करता जाता है। ऋषि साधु और सामाजिक सन्त होता है। बापू के साहचर्य में यही समझ में आया। वही और वैसा ही यहाँ भी प्रतीत हुआ।

विनोबा ने अपना कथन दुहराया, ''यह आप कैसे कहते हैं आचार्य जी?''

''मुझको आचार्य मत कहिए। केवल धर्माधिकारी अथवा दादा कहिए।''

विनोबा बोले, ''परन्तु अकेले आपके हाथ में धर्म के अधिकार किसने दिये? और यदि लोगों ने दिये भी हैं तो आपने क्यों ले लिये? और यदि ले भी लिये तो चलो ठीक है, परन्तु उसको अपना कुलनाम क्यों बना लिया है?''

विनोबा के कथन से सबके मन ऐसे प्रफुल्लित हो गये जैसे ग्रीष्मकाल में वर्षा की धारा आने से वातावरण मृदु गन्ध से परिपूर्ण हो जाता है। उनके सौम्य विनोद से सबके मन सदैव प्रफुल्लित हो जाते थे।

दादा धर्माधिकारी बोले, ''यह ठीक है कि मैंने ऐसा किया है। परन्तु आप तो 'भाव' लेते हैं। गोपालराव 'काले' ही हो गये हैं। ये कुलनाम बड़े मजेदार होते हैं। गुणों से, स्वभाव से, गाँव से, अधिकारयुक्त पद से तथा कार्य से ये सहज ही पड़ जाते हैं। मेरे पूर्वजों ने धर्मजागृति का कार्य अपने हाथों में लिया होगा, इसलिए उनको धर्माधिकारी कहा गया होगा।''

दादा धर्माधिकारी चुप हो गये और तभी विनोबा ने रेडियो का स्विच दबा दिया। अरबी-फारसी शब्दों की पंक्तियाँ प्रकट हुईं और देखते-ही-देखते विनोबा उन पंक्तियों के साथ स्वयं भी बोलने लगे। उपस्थित लोग अवाक् रह गये।

आचार्य धर्माधिकारी को थोड़ी झुँझलाहट हुई। मिलने के लिए आनेवाले लोगों के प्रति ऐसा उपेक्षापूर्ण व्यवहार उनको अच्छा नहीं लगा था। वे उठकर खड़े हो गये और साभिप्राय दृष्टि से उन्होंने विनोबा की ओर देखा। परन्तु विनोबा रेडियो को सुनने में तन्मय हो गये थे। क्रोधपूर्वक उठे हुए आचार्यजी पुन: बैठ गये। कुछ देर बाद रेडियो बन्द हो गया।

"यह क्यों और किसलिए सुन रहे हैं?"

"यह कुरान मैं अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदाय की बातों के लिए सुनता हूँ।"

"परन्तु क्यों?"

"हम ही श्रेष्ठ हैं, हमारा धर्म ही श्रेष्ठ है—यह विचार कर दूसरे का श्रेष्ठ धर्म और विचार त्याज्य बताने में क्या औचित्य है?"

"आपकी बात मुझको स्वीकार है," आचार्य बोले, "विचार जन्म से ही अच्छा होता है। विचार अपौरुषेय और स्वयंभू होता है। शब्द आकाश का गुण है, वैसे ही विचार मनुष्य का गुण है। अनेक समस्याओं के समाधान विचारों से किये जाते हैं। परन्तु वैचारिक समस्याएँ दीर्घकाल तक जटिल बनी रहती हैं और उनको समझने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य का अपना एक विचार होता है, एक शैली होती है। परन्तु विचार विचार होता है।"

"आपने विचारों पर बहुत विचार किया है।"

"बात यह है कि बापू के साहचर्य का प्रत्येक क्षण विचार करने को और जीवन का अर्थ खोजने को विवश करता है।"

"परन्तु आपको कुरान का विचार आत्मसात् करने की इच्छा क्यों होती है?" गोपालराव काले ने पूछा।

"अब संसार पास आता जा रहा है। प्रत्येक राष्ट्र की भावनाओं की प्रतिध्वनियाँ सात समुद्रों के पार से यहाँ भी गूँज रही हैं। जो महायुद्ध प्रारम्भ हुआ है उसकी लपटों से हम भी झुलस रहे हैं। आकाशवाणी ने संसार को अत्यन्त निकट ला दिया है। कल कोई अन्य माध्यम भी आ सकता है। इन माध्यमों से हम सभी राष्ट्रों से अपना सम्पर्क साध रहे हैं, इसलिए उनके धर्मग्रन्थों का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है। यह एक कारण है और दूसरी बात यह है कि भाषाज्ञान के लिए संसार की अन्य भाषाओं को सीखना अनुचित नहीं है। तीसरी बात यह है कि आज हिन्दुस्तान में मुस्लिम लोग हैं, बौद्धधर्मीय हैं तथा इनके अतिरिक्त शासनकर्ता क्रिश्चियन हैं। ये लोग देश स्वतन्त्र होने

पर भी यहाँ ही रहेंगे। उस समय अपने भाई के पास कैसा क्या है, यह विचार करना गलत है क्या? बापू जो सर्वधर्म समभाव कहते हैं, उसका आशय यही है या इससे भी अधिक व्यापक हो सकता है।''

''देश स्वतन्त्र होने पर देश के अन्य धर्मियों के लिए...''

''अन्य धर्मियों के लिए, इन शब्दों का प्रयोग मत कीजिए गोपालराव! अपने लिए कहिए।''

गोपालराव काले कुछ कहते उससे पहले ही विनोबा बोले, ''स्वराज्यशास्त्र की कल्पना मेरे मन में सर्वधर्मियों की एकता के लिए आयी। एक बात ध्यान में आयी कि अब लोग मुझसे अधिक स्वतन्त्रता के बाद की प्रणाली की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसका कारण प्रत्येक समाजशास्त्री जानता है। रात में अन्धकार जब अत्यन्त सघन हो जाता है तब उत्तर रात्रि का शीतल पवन उष:काल के स्वप्न लेकर आ जाता है। असन्तोष की तीव्र लहर, क्रान्ति की धधकती ज्वाला और अहिंसा की सुदृढ़ पकड़ एक दिन स्वराज्य लाएगी ही, परन्तु प्यास लगने पर ही कुआँ खोदा जाए, ऐसा नहीं होना चाहिए। स्वराज्य मिलने पर उसके सम्बन्ध में विचार करना तो पहले ही हो रही देर में और देर करना है। इससे तो यही योग्य है कि पूर्वनियोजित स्वतन्त्रता के बाद की कल्पनाओं को अंकित कर लिया जाए।'' विनोबा ने शान्तिपूर्वक कहा।

आचार्य दादा धर्माधिकारी ने पूछा, ''परन्तु विनोबाजी! भविष्य के नवनिर्मित राष्ट्र के लिए, राष्ट्र खड़ा करने के लिए आपने लोकतन्त्र का ही आग्रह क्यों किया है?''

''कारण यह है कि अनेक धर्म, अनेक विचार, अनेक संस्कार और अनेक संस्कृतियाँ जिस देश में विलसित हो रही हों, ऐसा हिन्दुस्तान संसार में एकमेव राष्ट्र होगा! और इन सब धर्मियों के लिए समान अवसर हेतु अधिनायकवादी या एकतन्त्री राज्य पद्धति सफल नहीं होगी। उनको 'लोगों के द्वारा लोगों के लिए चलाया गया लोकतन्त्र' लम्बे समय तक संघटित रख सकेगा। इसमें सबको समान अवसर मिलेंगे। गुणवत्ता के आधार पर लोकप्रतिनिधि चुने जाएँगे। लोकराज्य में लोकप्रतिनिधि लोगों के प्रति ही उत्तरदायी होंगे।'' विनोबा एकाग्र होकर बोल रहे थे। उस समय उनके सामने नवभारत का चित्र खड़ा हो गया था।

भारतमाता हरित वस्त्रों में साज शृंगार करके जलाशय में अपना रूप देखती हुई समाधानपूर्वक हँस रही है। चन्द्र-सूर्य उसके नव-नव उन्मेष का स्वरूप देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। इस भारतमाता के चारों ओर हिन्दू-मुसलमान-जैन-बौद्ध सब बैठे हुए हैं। इनको धूप से बचाने के लिए माता ने अपना आँचल इनके ऊपर डाल दिया है। इस दृश्य से ही विनोबा इतने अभिभूत हो गये कि उनकी आँखों से अविरल अश्रु बहने लगे। जब उनके सामने का दृश्य धूमिल हो गया तब वे उठे और चलने लग गये।

दादा धर्माधिकारी ने मन में कहा—'बापू ठीक कहते हैं। विनोबा इस संसार के

हैं ही नहीं।' उनको अँग्रेजी में अनुवाद के लिए पाण्डुलिपि लेनी थी। उनको ऐसा लगा कि भले ही ब्रिजलाल बियाणी के कहने से विनोबा ने स्वराज्यशास्त्र लिखा हो, फिर भी उसका कारण सामाजिक चिन्तन है। रामकृष्ण को बताकर धर्माधिकारी काले के साथ दूसरी बैरक में पहुँचे।

बहुत देर तक विनोबा दूर आकाश में न जाने क्या देखते रहे। बड़ी देर बाद वे लौटे। उस समय उनकी बैरक में कोई नहीं था। उन्होंने उस पाण्डुलिपि के पृष्ठ पुनः पलटे तब उनके मन में आया—'बापू कहते हैं कि इस अहिंसा में गजब की शक्ति है। इस अहिंसा का आधार लेकर बड़े-बड़े साम्राज्य शान्तिपूर्वक सम्पन्न और समृद्ध रह सकते हैं। यह छोटी-सी पाण्डुलिपि राजनीति का व्याकरण है। इसमें राज्यशास्त्र का सार है। ब्रिजलाल बियाणी ने स्वयं यदि मुझसे आग्रह न किया होता और स्वयं लेखक बनकर यह लिख न लिया होता तो शायद यह कभी लिखा ही नहीं जाता। मेरा पिण्ड राजनीति का नहीं है। राजनीतिक परिस्थितियों पर विचार करना मेरा स्वभाव नहीं है अथवा भविष्य में मुझको राजनीति में भाग भी नहीं लेना है। फिर इस सामाजिक चिन्तन को मैं क्यों लिखूँ? और इसको हम सामाजिक कह सकते हैं क्या? यह सम्पूर्ण राजनीतिक भूमिकाओं का दर्शन है। यह दर्शन मन में उत्पन्न कैसे हुआ? मन के विपरीत हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं।

इसका अर्थ यह है कि हमारे मन में अहिंसा अंकुरित हो गयी है, समाज अंकुरित हो गया है, समाज का हित अंकुरित हो गया है; इसलिए भावी सामाजिक जीवन की सीढ़ियों पर होकर राजनीतिक सिंहासन प्रतिष्ठित करते समय मैंने केवल सामाजिक भूमिका ही प्रस्तुत की है। आज मुझको जो उचित लग रहा है वही आगे भी उचित रहेगा, ऐसी बात नहीं है। स्वतन्त्रता के पश्चात् शायद कुछ निराला भी हो सकता है। फिर भी अपनी भूमिका हमने स्पष्ट कर दी है।'

विनोबा की दृष्टि पाण्डुलिपि के पृष्ठों पर घूम रही थी। उन्होंने लिखा था—शासन और स्वराज्य—ये दो भिन्न-भिन्न बातें हैं। राज्य अथवा सरकार अथवा शासन तो बलपूर्वक हिंसाचार से स्थापित हो सकता है परन्तु स्वराज्य तो अहिंसा के बिना मिल ही नहीं सकता। इसके लिए कोई भी विचारवान राज्यकर्ता केवल राजसिंहासन की ही अपेक्षा नहीं करता है, अपितु राज्य में स्वराज्य लाने के लिए भी प्रयत्नशील रहता है।

स्वराज्य वैदिक शब्द है। संस्कृत का शब्द है। इसका अर्थ है, प्रत्येक का राज्य। प्रत्येक का राज्य अर्थात् प्रत्येक की मर्जी के अनुसार राज्य के टुकड़े करके उसको दे दिया जाए, यह स्वराज्य का अर्थ नहीं है, बल्कि जो राज्य स्थापित हुआ है वह राज्य स्वतः का है, अपना है, इस प्रतीति का नाम स्वराज्य है। इसका ही अर्थ है कि जिसमें सबका सहयोग और स्नेहभाव हो वह स्वराज्य है। सम्पूर्ण सहयोग या स्नेहभाव हिंसा

से कभी प्रस्थापित नहीं हो सकता है। जो राज्य अहिंसा से विचारपूर्वक उत्तरोत्तर क्रमश: विकसित होता जाय वही स्वराज्य है।

यह स्वराज्य अपने सुयोग्य प्रतिनिधियों को चुनकर लोगों को तैयार करना चाहिए। ये लोकप्रतिनिधि सुयोग्य होने चाहिए, इसमें भी अर्थ भरा हुआ है। हम जनता के सेवक हैं, इसलिए प्रथम गुण जनसेवा भाव उनमें होना चाहिए। और यह कब साध्य होगा? तभी जब समाज के सुख दु:ख की, समस्याओं की और प्रश्नों की जानकारी उन लोकप्रतिनिधियो को होगी। समाज यदि दुर्बल, लाचार, परतन्त्र और पीड़ित होगा तो यह कदापि सम्भव नहीं है।

इस राज्य में जितने महत्त्वपूर्ण लोकप्रतिनिधि हैं उतने ही महत्त्वपूर्ण उनको चुननेवाले लोग भी हैं। वे लोग विचारशील, संयमी तथा स्वावलम्बी होने चाहिए। उनको अपनी शक्ति का, सामर्थ्य का तथा अपने मत का विवेक होना चाहिए। इसका अर्थ यह भी है कि स्वराज्य में विकसित कारखाने होंगे। वे उनके स्वयं के होंगे। उन पर परकीयों की सत्ता नहीं होगी। ऐसे स्वनियन्त्रित कारखानों में मजदूरों की स्थिति दुर्बल समाज जैसी नहीं होगी। मजदूर तन-मन से काम करेगा। काम करते हुए वह व्यक्तिगत विकास तो करता ही जाएगा, साथ-ही-साथ राष्ट्र के विकास का भी वह ध्यान रखेगा। भोजन करते समय हम कहते हैं कि अन्न पूर्ण ब्रह्म है। उसी प्रकार मजदूरों का प्रत्येक कार्य राष्ट्र के विकास के लिए होगा। तब मजदूर अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार आदि का सहज ही विरोध करेगा।

शहर के मजदूरों की ओर स्वयं मजदूर भी ध्यान देता है तथा अन्य संस्थाएँ भी ध्यान देती हैं। परन्तु गाँव की ओर भी ध्यान देना चाहिए, यह विचार उनके मन में नहीं आता है। गाँव से खेती की पैदावार होकर शहर का विकास होता है। किसानों का माल कम-से-कम पैसों में अधिक-से-अधिक लेकर शहरों को समृद्ध करने का विचार तो मन में आता है परन्तु गाँवों को समृद्ध करना, किसानों को और श्रमिकों को आर्थिक समृद्धि देना भी आवश्यक है। शहर के प्रति एक जबर्दस्त आकर्षण ग्रामवासियों को होता है। इस कारण गाँव रिक्त होता जाता है तथा शहर अधिकाधिक भरता जाता है। गाँव इतना स्वावलम्बी होना चाहिए कि लोगों को उसके प्रति आकर्षण प्रतीत होना चाहिए। इसलिए ग्राम विकास होना चाहिए, इसके बिना लोकतन्त्र व्यर्थ है। प्रत्येक ग्राम अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं के लिए कभी शहर की ओर न देखे। कच्चा माल गाँव में तैयार होने से शहर और गाँव में सामंजस्य स्थापित होना चाहिए। कारखानों की स्थापना ऐसे ही मध्यवर्ती स्थानों में होनी चाहिए। इससे गाँव शहर से और शहर गाँव से जुड़ जाएगा।

महात्मा गाँधी के ग्राम विकास का अर्थ स्वयंपूर्ण गाँव ही है। एक-एक गाँव जब स्वयंपूर्ण हो जाएगा तथा जब प्रत्येक राष्ट्र स्वयंपूर्ण हो जाएगा तब विश्व स्वयंपूर्ण

हो जाएगा और तब सहज ही विश्व में अहिंसा का प्रसार हो जाएगा। संघर्ष के कितने ही झंझावात चलें, फिर भी प्रत्येक व्यक्ति अहिंसा और शान्ति ही चाहता है।

स्वावलम्बन के सन्दर्भ में एक बात और महत्त्वपूर्ण है। गाँव का पैसा शहर में लाकर, उसको इकट्ठा करके उसका बँटवारा करने की अपेक्षा शहर का शासन यदि पहले ग्राम विकास करके, योजना लागू करके, फिर उस पैसे को शहर में लाए तो गाँव का ऋण शेष नहीं रहेगा। शहरों का विकास होते समय यदि गाँव अविकसित रहे और गाँव का पैसा बलपूर्वक शहर में आएगा तो हिंसाचार भड़केगा। परिश्रमी ग्रामीण किसान स्वयंपूर्ण और स्वावलम्बी बनकर शहर की राजनीतिक संस्थाओं का प्रतिनिधि बनना चाहिए।

विनोबा पृष्ठ पलट रहे थे। उनके मन में राज्य के और गाँव के विचार कब आये थे—यह उनको याद नहीं आ रहा था। आज तो देश में परतन्त्रता का घना अन्धकार ही छाया था। परन्तु कल-परसों एक भाषण के बाद एक ग्रामवासी विनोबा के पास आकर बोला, "बाबा! आप इतने छोटे गाँव में कँटीली-पथरीली राह पर चलकर आये हैं। किसी दिन बापू भी आएँगे। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर जो लोग शासन के प्रमुख पदों पर विराजमान होंगे वे भी कभी हम तक आएँगे?"

विनोबा क्षणभर विचारमग्न हो गये। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और गंगासागर से कच्छ की खाड़ी तक विशाल फैले हुए भारत में असंख्य छोटे-बड़े गाँव हैं। इन गाँवों में देश के प्रधानमन्त्री अथवा राजा का आना असम्भव ही है। सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने पर भी सभी गाँवों में घूमना उसके लिए सम्भव नहीं है।

"बताइए न बाबा! हम तक कौन आएगा?"

"मित्र! तुम्हारा कथन आधा सत्य है। देश का प्रमुख खेड़े-गाँवों में भटकता रहेगा तो उसकी पूरी आयु बीत जाएगी और वह देश की गाड़ी को नहीं चला सकेगा।"

"तो फिर वह मनुष्य हमको अपना कैसे लगेगा?"

"तुमको ही उस तक पहुँचना पड़ेगा। देश के मध्यभाग में देश की एक राजधानी होगी। देश का प्रमुख वहाँ रहेगा और प्रत्येक गाँव का एक प्रतिनिधि उस राजा या प्रमुख तक पहुँचकर अपनी समस्याएँ कहेगा। इस प्रकार एक-दूसरे से सम्पर्क बना रहेगा।"

"परन्तु वह सच्ची समस्याएँ लाया है, यह बात उनको कैसे मालूम पड़ेगी?"

"अन्त में जैसे हम विश्वास की बात करते हैं वैसे ही कभी-न-कभी देश प्रमुख को उन-उन भागों में जाकर संघटित ग्रामवासियों से मिलना तो पड़ेगा ही।"

"नहीं बाबा! हमारे पास कोई नहीं आएगा। आज देश के प्रमुख पदों पर दूसरे लोग हैं, इसलिए वे नहीं आते। परन्तु स्वतन्त्रता के बाद के लोग भी यहाँ नहीं आएँगे। सचमुच नहीं आएँगे।"

कहते-कहते उसकी आवाज काँप उठी। विनोबा भी भावुक हो उठे। उसकी पीठ पर हाथ रखकर वे बोले, "प्रत्येक राष्ट्र प्रमुख को ही तुम्हारे पास आना पड़ेगा। तुम चिन्ता मत करो। पहले देश को स्वतन्त्रता तो प्राप्त होने दो!"

"मिलेगी बाबा! जल्दी ही स्वतन्त्रता मिलेगी। आजाद हिन्द सेना लड़ाई करेगी, वीरों की आहुतियाँ पड़ रही हैं, आप जैसे बड़े लोग रात-दिन एक करके लोक-जागृति कर रहे हैं! और हम जैसे युवकों का खून खौल रहा है। यह अन्धकार जाएगा बाबा! यह अन्धकार जाएगा। मैं नेताजी सुभाषचन्द्र से मिला, मैं महात्माजी से मिला, बापू जी अणे से मिला। सबसे मैंने यही प्रश्न पूछा। आज आपके उत्तर से मेरा समाधान हो गया।"

उस युवक के सनसनाते हुए रक्त को जैसे स्वतन्त्रता की अपेक्षा थी वैसे ही सुराज्य की अपेक्षा भी थी। विनोबा को प्रतीत हुआ कि यह युवक आज की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि बनकर ही उनसे वार्तालाप कर रहा था। अनजाने ही विनोबा उसके द्वारा किये गये प्रश्न में लिपटते चले गये और उनको इस विषय में कोई सन्देह नहीं रहा कि उस युवक की सुराज्य की माँग की पूर्ति 'सुराज्य' की संकल्पना ही कर सकती है।

देश में विनोबा निरन्तर स्वतन्त्रता के बाद के शासन का विचार करते रहते थे। परन्तु विनोबा को महात्माजी का ग्राम-विकास का तथा जाति-पाँति विरहित गुण-विशेषों का आदर करनेवाला शासन अपेक्षित था। वे लोक और लोकप्रतिनिधि दोनों का समन्वय चाहते थे।

अपनी अपेक्षित शासन-व्यवस्था उन्होंने लिख रखी थी। उनको लिखना बहुत अच्छा लगता था। जो अच्छा विचार मन में आता उसको लिपिबद्ध करने में वे समर्थ थे। विचार करते-करते अथवा लिखते-लिखते वे तन्मय हो जाते थे। इतने तन्मय कि सामने बैठे हुए व्यक्ति को वह तन्मयता असह्य हो उठती थी। लोग मन में क्रुद्ध हो जाते थे। बाद में शिवाजीराव अथवा मोघे उनसे कहते भी थे, "बाबा! आप इतने एकाग्र हो जाते हैं कि किसी के आने पर भी ध्यान नहीं रहता है।"

यह सुनकर विनोबा हँस पड़ते और कहते, "मैं जान-बूझकर ऐसा नहीं करता हूँ। जीवन का अन्त समय आने पर श्रीकृष्ण की भाँति मैं कहूँगा कि जाने-अनजाने जो अपराध मुझसे हो गये हैं उनका दण्ड मुझको मिले। मुझको स्वर्ग नहीं चाहिए, मुझको मुक्ति नहीं चाहिए, मुझको यदि पुनः जन्म मिला तो पुनः अधूरा कार्य पूर्ण करूँगा। नहीं तो मैं नरक में जाऊँगा।"

"वहाँ भी आप लोकशिक्षण शुरू कर देंगे!"

"नरक में ही लोगों को अच्छे कार्यकर्ताओं की अधिक जरूरत है। जो स्वर्ग में अच्छे कार्यकर्ता होंगे, जैसे लोकमान्य तिलक, उनको मैं बुलवा लूँगा। उनके मार्गदर्शन में मैं कार्य करूँगा।"

'स्वराज्यशास्त्र' लिखते समय की सभी बातें आज विनोबा को याद आ गयी थीं। वे पृष्ठ पलट रहे थे। एक स्थान पर उन्होंने लिखा था, 'अच्छे राज्य की पहचान है वहाँ कार्यरत व्यक्तियों का परिचय। केवल अच्छे व्यक्तियों को ही शासन में अवसर मिलना चाहिए।' यह पढ़कर उनके मन में आया, अच्छे व्यक्तियों को ढूँढ़ना वास्तव में ही कठिन काम है। यह शास्त्र गणित के किसी सिद्धान्त पर या प्रमेय पर आधारित नहीं है। शुद्ध गणित शास्त्र कल्पना पर आधारित है और व्यावहारिक गणित का मुख्य आधार है—दैनिक जीवन। परन्तु राजनीति का क्षेत्र है मानव-समाज। अर्थात् अमूर्त कल्पना और व्यावहारिकता से यह क्षेत्र भिन्न है।

राज्यशास्त्र का उद्देश्य और कार्य क्या होना चाहिए ? इस प्रश्न का स्वयं ही उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा था, मानव के सम्पूर्ण हित की दृष्टि से अहिंसा पर आधारित और सत्याग्रह पर अधिष्ठित शासन में अनेक शक्तियों का उदय होगा। तब स्वराज्य आएगा, सुराज्य आएगा।

बापू रामराज्य चाहते हैं। रामराज्य में भी कभी-कभी सत्शील व्यक्तियों को वनवास भोगना पड़ता है। परन्तु उस वनवास में भी वे सत्कार्य करते रहते हैं। आदर्श की स्थापना के लिए नि:स्वार्थ वैचारिक बैठक ही अपेक्षित होती है।

यद्यपि रामराज्य और स्वराज्य इन दोनों में अन्तर है तथापि दोनों का उद्देश्य एक ही है और वह है समाज-हित।

विचारपूर्वक लिखते गये, 'स्वराज्यशास्त्र' को पढ़ते समय आज उनके होठों पर हँसी थी। किसी ने यदि पूछा होता कि 'ऐसा क्यों है ?' तो उन्होंने तत्क्षण कहा होता, 'अरे बाजार में जैसे बिक्री का सामान वैसे ही ये विचार स्वतन्त्रता प्राप्त होने से पहले ही तैयार कर रखे हैं।'

राज्यशास्त्र के विचार में पूर्ण रूप से लोकहित का ही विचार होता है। उसके लिए अच्छे प्रतिनिधि शासन में आने के लिए व्यापक सम्पूर्णत: मतदान आवश्यक है। शासन में बहुमत से लोकप्रतिनिधि चुने जाएँगे। लोकतन्त्र में विरोधी पक्ष का सम्मान, अल्पमत को संरक्षण, मत-प्रचार की पूर्ण स्वतन्त्रता, निष्पक्ष-सुलभ तथा गरीब जिसका खर्च उठा सकें, ऐसी सस्ती न्यायव्यवस्था, सर्वत्र शिक्षा का प्रसार तथा अपराध के लिए दण्ड—सुराज्य के लिए ये घटक मैंने आवश्यक माने हैं। इनकी जाँच-पड़ताल स्वयं ही अपने मन में कर ली। स्वयं ने ही इन घटकों के चलचित्र जाग्रतावस्था में आँखों से देखे और मन से उनको साकार किया। यह परिहास-योग्य ही है।

'असहयोग भी महात्माजी द्वारा उच्चारित मन्त्र है। उससे सत्याग्रह अपेक्षित है। प्रतिकार और असहयोग, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। असहयोग प्रचण्ड विरोध को शान्तिपूर्वक प्रदर्शित करनेवाला सौम्य मार्ग है परन्तु प्रतिकार तीव्र असन्तोषदर्शक है। और जो इन दोनों बातों से सिद्ध नहीं होगा वह कानून और कानून के कारण दण्ड

से सिद्ध होगा।' विनोबा पढ़ रहे थे। उसमें कुछ भी परिवर्तन करने योग्य उनको नहीं लग रहा था।

आज अन्य राष्ट्रों में तथा हिन्दुस्तान में हिंसक शासन पद्धति आती जा रही है। इस पद्धति में अनेक दोष हैं। शरीर और सम्पत्ति को धक्का दिये बिना काम नहीं होगा। अहिंसक समाज रचना में मेरा अदम्य विश्वास है और समाज में अहिंसा की प्रतिष्ठापना करना कोरी काल्पनिकता नहीं है...

आदर्श प्रतीत होनेवाली इस अहिंसक शासन-व्यवस्था में भी शान्ति सेना की आवश्यकता को नकार नहीं सकते हैं। लोक-प्रतिनिधियों को लोगों से सम्पर्क करके जनमानस शुद्ध रखने का प्रयत्न करना चाहिए। इस शान्ति सेना को यह प्रयत्न अधिक-से-अधिक करना चाहिए, जिससे संघर्ष का बीज ही अंकुरित नहीं होगा। लोग पूछेंगे, आपकी शासन-पद्धति में सैन्यबल नहीं रहेगा क्या? और सैन्यबल के बिना राष्ट्र की सामर्थ्य ही क्या रहेगी? इस प्रश्न का हमारा उत्तर यही है कि अपराध घटित हो जाने पर बाद में पुलिस और कोर्ट दण्ड देते हैं, इससे तो अच्छा है कि पहले से ही सजग रहा जाए। इसमें हानि क्या है?

मेरे मन के ये विचार सन् उन्नीस सौ चालीस के हैं। हो सकता है कि सन् 2000 में वे कालातीत हो जाएँ। कल अनेक पक्ष अपनी अनेक प्रणालियाँ लेकर ताल ठोंकेंगे और राजनीति में एक-दूसरे के विरुद्ध खड़े होंगे। न्याय-व्यवस्था को ग्रहण लग जाएगा! शान्तिसेना धराशायी हो जाएगी और अहिंसा को क्षितिज के पार फेंककर हिंसाचार से रक्त की धाराएँ बहेंगी। दिशाएँ रंग जाएँगी। दिशाएँ अन्धकार से अपना मुख ढक लेंगी। फिर कोई सूर्य का रक्तरंजित प्रकाश देख न सकेगा। शहर गाँवों को निगल जाएँगे। स्वार्थ जब चरम सीमा पर पहुँच जाएगा तब इन तत्त्वों का विचार कभी किसी के मन में आएगा! उत्क्रान्ति, क्रान्ति और विलय यह तो सृष्टि का ही नियम है।

प्रत्येक काल विद्रोह की कविता गाता है। मानसिक शान्ति और सामाजिक शान्ति दोनों को वह मथकर रख देता है। विद्रोह की ये कविताएँ जल से और चन्दन के लेप से शान्त नहीं होती हैं। यह सत्य हो तो भी बापू! आपके अहिंसा के सन्देश को देने के लिए आपको ही बार-बार जन्म लेना पड़ेगा। मेरी शब्द-सामर्थ्य ऐसी नहीं है कि आपकी अनुभूतियों को उतने सशक्त ढंग से व्यक्त कर सकूँ! परन्तु बापू!...ध्यान रखिए, आपको अपने प्रिय समाज के लिए बार-बार आना ही पड़ेगा।

विचारों का झंझावात विनोबा के मन में वेग से आया और कुछ समय के बाद वह शान्त भी हो गया। महात्माजी की प्रतिमा आँखों के सामने साकार हो गयी। उनकी हँसी मानो विनोबा को आश्वासन दे रही थी। विनोबा ने मुस्कराकर 'स्वराज्यशास्त्र' एक ओर रखकर तकिये पर सिर रख दिया।

6

अहह धन्य लछमनु बड़भागी। राम-पदारविन्दु अनुरागी॥
कपटी कुटिल नाथ मोहि चीन्हा। ताते संग न मोहि प्रभु लीन्हा॥

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड की तुलसीदास की इन चौपाइयों को गाते-गाते विनोबा रुक गये। विगत छह महीनों से रामायण के पात्रों से और घटनाओं से वे समरस हो गये थे। कर्तव्य, प्रेम, वचनपूर्ति, साहस, आदर्श, विलाप और शौर्य, लोकहित, न्याय—इन समस्त आदर्शों के प्रति वे विनम्र भाव से नतमस्तक हो गये थे। श्रीराम के जन्म से लेकर घटित हुई सभी घटनाओं को देखकर वे क्षणभर थरथरा उठे! आनन्द, दु:ख, क्रोध, शान्ति, शौर्य, सत्य आदि गुणों का विकास होकर श्रीराम आदर्श बन गये। श्रीराम ने स्वयं को नैतिक मर्यादाओं में बाँधा और पत्नी का त्याग करने तक उन मर्यादाओं का पालन भी किया। पुरुषोत्तम श्रीराम और पूर्ण पुरुष श्रीकृष्ण—एक त्यागी-विरागी-अनुरागी, एकपत्नी, एक वाणी, शूर योद्धा तो दूसरा प्रत्येक क्षण का साक्षी, क्षत्रिय होते हुए गोपालन करनेवाला, प्रतिक्षण मोह से सहज बाहर निकल जानेवाला, अनुरागी फिर भी वीतरागी, मैत्री और समाजऋण का समन्वय करनेवाला, सम्राट् होते हुए भी सारथी, सत्य का उद्घोषक और विराट् समाज मन का सम्राट् भी! श्रीराम और श्रीकृष्ण—ये दो व्यक्तित्वों की स्वयंभू प्रतिमाएँ! श्रीराम होना कठिन है वैसे ही श्रीकृष्ण होना भी कठिन है। जीवन-आदर्श सहज प्रस्थापित करना कठिंन है, तथा आदर्श जीवन का पैदल रास्ता तथा उस पगडण्डी का राजमार्ग तक पहुँचना और भी कठिन है। एक आदर्श का सेतु खड़ा करता है—दूसरा गीता-धर्म का सन्देश देता है। दोनों ही लोकोत्तर हैं, इसलिए कालातीत हैं! श्रीराम सहजगम्य हैं। आचरण में लाने में कठिन हैं। श्रीराम हैं श्वास... श्रीराम हैं धर्म और श्रीराम हैं कर्म! श्रीराम जीवन की गति हैं और श्रीराम जीवन की सम्पत्ति भी हैं।

श्रीराम—विनोबा के सम्मुख श्रीराम का जीवन साकार हो गया तथा उसी प्रकार नामस्मरण करने से प्रात:स्मरणीय वाल्मीकि और तुलसीदास साकार हो गये। उनकी जीवन-कथाओं का स्मरण हो गया और बड़ी देर तक विनोबा आत्ममग्न बने रहे। फिर वे बोले :

"तुलसी प्रीति प्रतीति सों रामनाम-जप-जाग।
किये कोइ विधि दाहिनो, देह अभागेहि भाग॥"

सामने कारागार के कैदी बैठे थे। रामकृष्ण थे। जेलर कुर्सी पर बैठे थे। विनोबा हँस पड़े। अनेक बार रामचरितमानस की चौपाइयाँ गाते समय और उनका अर्थ कहते समय वे एकदम मौन हो जाते थे। उनकी आँखों के सामने रामायण के प्रसंग साकार

हो उठते थे। श्रीराम के जीवन का वे साक्षात् अनुभव करते थे। आज भी ऐसा ही हुआ था। वे कहने लगे :

"तुलसीदास ही ऐसा भक्तिभाव रखते हैं, यह बात नहीं है। विष्णुपुराण में भी इसी अर्थ को व्यक्त करनेवाला एक श्लोक है :

अविकारी विकारी वा सर्वथा द्वेषभाजन।
परमेशपदं याति राम-नामानुकीर्तनात्॥

श्रीराम के रूप-सौन्दर्य का वर्णन श्री रामदास ने अति सुन्दर किया है। वे कहते हैं :

'तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ पुण्डरीक-विशालाक्षौ...'

ऐसा यह पीताम्बरधारी सात्त्विक स्वरूप तथा सरल व्यक्तित्ववाला श्रीराम मुझको आकाश के नील-श्याम मेघपटल पर दिखाई देता है और मन राममय हो जाता है। उसके व्यवहार से मन गद्गद होकर मुग्ध हो जाता है, उसकी मनःस्थिति का ज्ञान होता है और उस स्थिति पर प्राप्त की हुई विजय का ज्ञान होता है। तदनन्तर उनकी अद्भुत विनम्रता का ज्ञान होता है! आज पाँच हजार वर्षों से हमारे मनों में श्रीराम राजा का स्थान रंचमात्र भी कम नहीं हुआ है। इसका अर्थ यह भी है कि हमको उन सद्गुणों का मोह है। परन्तु हम उस मोह पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते हैं। हम अपनी अस्पष्ट संवेदना को छिपाकर सुख-दुःख को एक ही माप से तौलना नहीं जानते हैं। हम षट्रिपुओं को नहीं जीत सकते हैं। हम श्रीराम के निकट नहीं पहुँच सकते। कभी किसी घटना के निकट हम पहुँच जाते हैं तब उस घटना को हम बार-बार बोलकर सुना देते हैं। श्रीराम हमको प्रिय लगते हैं। वे हमारे जीवन का आदर्श हैं। इसीलिए तुलसीदास अपनी 'दोहावली' में कहते हैं :

'एक भरोसो एक बल एक आस-विश्वास।
एक राम-घनश्याम-हित चातक तुलसीदास॥'

तुलसीदास ने श्रीराम का अखण्ड स्मरण किया है। जीवन में—जीवन का अन्तिम सत्य श्रीराम है—यह उनका अटल विश्वास है। मोरोपन्त ने 'कोकावली' में परमेश्वर को अनेक प्रकार से बुलाया है और जब तक वह शीघ्रता से आकर आश्वासक हाथ भक्त की पीठ पर नहीं रखता है तब तक मोरोपन्त के व्याकुल स्वरों की शब्दावली बाहर निकलती रहती है।

मित्रो! पिछले छह महीने से मैं तुलसीदास का 'रामचरितमानस' आपको सुना रहा हूँ। मैं श्रीराम का सेवक हूँ, भक्त हूँ, पाठक हूँ और अभ्यासक हूँ। उसको समझते

समय मुझको अपरम्पार आनन्द प्राप्त हुआ है।

पहले धुलिया के कारागार में रहते समय श्रीकृष्ण के स्वरूप का, उनके विचारों का, उनके जीवन के सामंजस्य का, पराभव का तथा जीवन-प्रणाली का एवं तत्त्वज्ञान का अभ्यास किया था। मैं उस समय भी मुग्ध हो गया था और आज भी मुग्ध हो गया हूँ।

मुझको जीवन में कारावास वरदानस्वरूप मिला हुआ है। नहीं तो इतनी जल्दी शायद मैं उसकी ओर मुड़ा न होता। कारावास मेरा ज्ञानाश्रम हो गया है। कारावास मेरे लिए सुखद काल हो गया है। इसके लिए मैं ब्रिटिश शासन का ऋणी हूँ। उसी प्रकार मैं महात्माजी का ऋणी हूँ। इसीलिए प्रथम सत्याग्रही के रूप में उन्होंने मेरा जो चयन किया है वह मुझको महत्त्वपूर्ण लगता है। मुझको प्रतिदिन अरबी-फारसी में लिखित 'कुरान' एकान्त में सुनने का और समझने का अवसर नागपुर कारावास में मिला है।

कारावास सश्रम अन्धार कोठरी है। बाहरी जीवन दिखाई न दे, इसलिए वह अन्धार कोठरी है। बाह्य जगत् का प्रकाश हमने देख ही लिया है। मनुष्य को अन्तर्मन का प्रकाश यहाँ दिखाई देता है। यहाँ हम आत्मशोध कर सकते हैं। मन निर्मल कर सकते हैं। पश्चात्ताप की अग्नि में जलकर यहीं वह सुवर्ण बनता है। यहीं मिलता है ज्ञान और ज्ञानमार्ग। जीवन का अध्ययन भी यहीं होता है। मुझको अनेक बार यह प्रतीति होती है कि यहाँ श्रम करता हुआ भी मनुष्य शुद्ध होता है तथा एकाकी रहकर आत्मशुद्ध होता है!

लोग कारावास से डरते हैं। कारावास को निषिद्ध समझते हैं। परन्तु कारावास में जो आत्म-ज्ञान होता है वह जीवनभर अध्ययन करने पर भी नहीं होता है। और कैसी मजेदार बात है कि चोरी करने में मनुष्य को लज्जा नहीं आती, पाप करने में मनुष्य नहीं लजाता, परन्तु कारागार में रहने पर लज्जा लगती है। उसको कुकर्म से भय नहीं लगता, भय लगता है कारागार के इस अन्धकार से!

मित्रो! जीवन के अन्धकार को दूर करो। श्रीराम के प्रकाशमय जीवन का हमने प्रतिदिन पाठ करके अनुभव किया है। राष्ट्र का अन्धकार निश्चित ही दूर होगा, क्योंकि स्वतन्त्रता का प्रकाश-मन्त्र प्रत्येक के मन में समा चुका है!"

विनोबा कहे जा रहे थे। नियमानुसार सोने का समय हो गया था। दिनभर निरन्तर श्रम करके भी किसी के मुख पर कैसी भी थकावट का चिह्न नहीं था। सब प्रसन्न मन से उठे। जेलर ने एक बार स्वयं निरीक्षण किया और रात की गश्त शुरू हो गयी। जेलर विनोबा की बैरक के पास रुके। विनोबा एक पैर मोड़कर तथा दोनों हाथों की घड़ी छाती पर बाँधकर शान्त-निश्छल बैठे हुए थे। जेलर ने उनकी ओर देखकर कहा, "बाबा! अब किसका ध्यान कर रहे हैं?"

"अब ध्यान क्या करूँगा! मेरे सामने निश्चित एक ही वस्तु नहीं आती है।

अर्जुन की दृष्टि अपने लक्ष्य की ओर थी। मुझको दिखाई देते हैं—श्रीराम और श्रीकृष्ण! मुझको दीखते हैं वाल्मीकि-तुलसीदास-रामदास-ज्ञानेश्वर। मुझको दिखाई देते हैं मुहम्मद पैगम्बर और महावीर जैन, बुद्ध और ख्रिस्त। मुझको सर्वत्र दिखाई देती है महात्माजी की अहिंसा और शान्ति!''

जेलर कुछ देर तक चुप खड़े रहे।

''जेलर साहब! अपनी ड्यूटी से आप उकताते नहीं हैं?''

''बाबा! कल तक नहीं उकताता था। अपनी ड्यूटी अधिकाधिक कठोर हो, जेल में सभी कैदियों पर धाक रहनी चाहिए, सदैव यही इच्छा रहती थी। इतना ही नहीं, कैदियों से छोटी-छोटी गलतियाँ होने पर उनको कठोर दण्ड देने में मुझको आनन्द मिलता था। परन्तु बाबा! आप आये और मेरे अनजाने मेरा मन बदल गया। मैंने क्या अनुभव किया, मैं कह नहीं सकता! दण्ड देनेवाला मैं दुष्ट व्यक्ति हूँ। मेरे पास अच्छे शब्द तक नहीं हैं, यह प्रतीति मुझको हुई। मैं मूक बना सब कुछ देखता रहा। कारागार आश्रमशाला बन गया और कैदी हो गये भक्तगण! बाबा! आप निर्मित हुए, जुड़े और आज चमक रहे हैं! आपको ऐसा किसने निर्मित किया है? अपने प्रति इतने कठोर तथा दूसरों के प्रति इतने मृदुतर आप आखिर कैसे रहते हैं?''

''जेलर साहब!'' इतना कहकर बाबा रुके, हँसे और फिर हाथ उठाकर बोले, ''ईश्वर की इच्छा, मेरी माता की इच्छा!''

''अपनी माता के लिए आपने 'गीताई' लिखी थी!''

''परन्तु उस समय माता जीवित नहीं थी।''

''माता ने आपका निर्माण किया है!''

''मेरे पितामह ने भी...परन्तु मेरा विधिवत् निर्माण किसी ने नहीं किया है। कुछ लोग सहज जीवन जीते हुए अपना आदर्श निर्मित करते हैं। उसी आदर्श के संस्कार बालपन में अपने ऊपर अमिट होते हैं।''

''सच है!'' उदास स्वर में जेलर ने कहा, ''ऐसे संस्कार प्रत्येक पुरुष के भाग में आते हैं फिर भी जैसे पत्थर पर पानी बह जाता है वैसे ही वे बह जाते हैं। मन की मिट्टी मृदु भी होनी चाहिए न! और यह मन की मिट्टी माता से मिलती है।''

''जेलर साहब! आप भावुक मन के हैं!''

''कौन जाने! मन का विचार ही कभी नहीं किया था। इतना संवेदनशील भी कभी नहीं हुआ था! बाबा! आपने मेरे अन्दर का मनुष्य जगा दिया है।''

जेलर का स्वर आर्द्र हो गया। वे बाहर आये और अपनी बैरक की ओर जाने लगे। विनोबा स्तब्ध बैठे थे। सामने के चौक में चाँदनी का प्रकाश हो रहा था। उस छोटे से मार्ग पर दिन में प्रकाश रहता था, रात में चाँदनी और अमावस्या का घोर अन्धकार! आज की चाँदनी ने तथा जेलर की बातों ने माता का स्मरण करा दिया!

वे बिस्तर पर लेट गये। दोनों हथेलियों को सिर के नीचे रख लिया। आँखों से उतारकर चश्मा अलग रख दिया। कनटोपी को कानों पर कसकर बाँध लिया।

उनको याद आ रहा था—गागोदे, रायगढ़ जनपद का एक छोटा-सा गाँव। उसमें सत्तर-अस्सी घर थे। वे घर भी छोटे-छोटे। घर नारियल के पत्तों से आच्छादित थे। भींतें मिट्टी की थीं। अधिकतर घर किसानों के थे। लँगोटी पहने हुए लोग और सिर को आँचल से ढककर आदरपूर्वक बोलनेवाली, अत्यन्त दरिद्रता में कष्ट सहन कर हँसमुख रहनेवाली उनकी स्त्रियाँ, गोलाकार पहाड़ी की गोद में सघन वनराजि से घिरा हुआ गागोदे—उनका जन्मस्थान।

उस गाँव की याद आते ही उनको अपनी माता का स्मरण हो आया। अपना घर याद आया। गाँव में वही ईंटों का एकमात्र घर था। फाटक बाँस का था। बरामदे में चढ़ने के लिए छह-सात सीढ़ियाँ। विनोबा मन में उन सीढ़ियों पर चढ़कर बरामदे में पहुँच गये थे। बरामदे में पितामह शम्भूराव और काका गोपालराव बैठे थे। संस्कृत और व्याकरण पढ़नेवाले कुछ लड़के बरामदे में बैठे हुए थे।

विनोबा लेटे-लेटे मन-ही-मन मुस्कराये। 'मैं बरामदे तक गया परन्तु पैर तो धोये ही नहीं।' मन में वे पीछे लौटे। घर की बगल में ही छोटा तालाब था। उसमें पैर धोकर दौड़ते हुए ही वे पिछले आँगन से अन्दर प्रविष्ट हुए। आँगन में नारियल और सुपारी के पेड़ फलों से लदे थे। कटहल तो जड़ से ही फैला हुआ था। वृक्षों की शाखाएँ आपस में मिल गयी थीं, इससे भरी दोपहरी में शान्त छाया आँगन में फैली हुई थी। विनोबा ने पुकारा, "माँ!"

"विन्या तू आ गया!" माँ की आँखें आनन्द से चमक उठीं। होठों पर हँसी थी, "अच्छा हुआ आ गया! कटहल छीलकर रखा है। आम तुड़वा रखे हैं। पहले चार-छह घरों में इनको दे आ!"

"मैं अभी-अभी तो आया हूँ। मुझको भी बहुत अच्छे लगते हैं।"

"जो पहले दूसरे को देता है वह देव है और जो स्वयं खाता है वह राक्षस है। जा विन्या! पहले गाँव में बाँट आ। तब तक मैं भोजन का थाल लगाती हूँ। आज तो पंगत के लिए सभी हैं। ये भी आ गये हैं।"

"दादा आ गये हैं माँ?"

"हाँ! कल ही बड़ौदा से आये हैं। जा विन्या! अकारण विलम्ब न हो!"

विनोबा गाँव में कटहल के टुकड़े और आम बाँटकर आये। भोजनगृह में पटा बिछा दिये गये थे। उनके सामने केले के हरे पत्ते रखे थे। सामने सुन्दर रंगोली कढ़ी हुई थी। पीतल के लोटों में पानी था। उनके पास गिलास रखे थे। पितामह के लिए चाँदी का लोटा और चाँदी का गिलास था। उनके भोजन का थाल भी चाँदी का था।

केले के पत्तों पर बायीं ओर नमक, नीबू, धनिया और चटनी रखी थी तथा दायीं

ओर कटहल का साग, आलू की रसीली सब्जी तथा नीचे की ओर चावल के पापड़, चावल की कुरैरी, भात और उसके ऊपर गाढ़ी दाल! माँ सावधानी से दाल पर घी डाल रही थी।

"विन्या! आ, पटा पर बैठ!" शम्भूराव बोले।

विनोबा पटा पर बैठ गये।

अनेक वर्षों के बाद बचपन की याद करते हुए विनोबा की आँखों से जलधारा बह उठी। नागपुर से गागोदे गाँव को जा सकते हैं परन्तु वह बचपन नहीं मिलेगा। अब तो बहुत दूर आ गये हैं। बचपन का समय बहुत पीछे रह गया है। पैरों के नीचे से बालू जैसे सागर की लहरों से सरक जाती है वैसे ही बचपन सरक गया है। हाथ से जैसे पारा खिसक जाता है वैसे ही बचपन चला गया है। केवल स्मृतियाँ ही सहचरी रह गयी हैं। विनोबा के मुख से निःश्वास निकला और उसी समय बन्द दरवाजे के आगे पहरेदार सिपाही ने हाथ के डण्डे से आवाज की। विनोबा ने करवट बदली। और गागोदे का भोजनगृह पुनः उनके नयनों के सम्मुख साकार हो गया...

"विन्या...श्लोक बोल रे!" माँ ने रसोईघर से कहा।

"बोलो विनायक...तुम्हारे पितामह तुमको सिखाते हैं न! तो बोलो बेटा!" पंगत में बैठे हुए अतिथि ने कहा।

"नाना देशों में मत घूमो, जन-वन में रहकर मत भोगो।
लोक-लाज में मत डूबो, हरि-कथा-विश्वास को मत छोड़ो॥
कानों में दुष्ट कठोर शब्द यदि पड़ें तो मत दुःख करो।
सुख-दुःख को पीछे छोड़ो, निजानन्द को मत तोड़ो॥"

"श्लोक तो अच्छा कहा है। परन्तु बहुत प्रौढ़ हो गया है। अपनी अवस्था के अनुरूप कोई अच्छा-सा सुनाओ!" अतिथि ने आग्रह किया।

"वेदों में जिसका गुणगान, जो अवतरित हुआ, लोक ने किया जिसका वन्दन।
नन्द ने जिसको खिलाया, जो वन-वन घूमा, गोपों ने दिया जिसको आलिंगन।
जो आनन्द से परिपूर्ण सदा भक्तों के सम्मुख रहा सदा।
उस विट्ठल पण्ढरी को मैंने भीमा नदी के तट पर देखा॥"

"वाह बहुत अच्छा! विनायक, तुम्हारी आवाज मधुर है।" अतिथि ने स्वीकृति दी।

विनोबा के पास बैठे हुए शिवाजी से पितामह शम्भूराव बोले, "शिवाजी! तुम भी कोई श्लोक सुनाओ न!"

वह सिर झुकाकर खाने लग गया।

"बोल ना!" विनोबा ने सीधे हाथ की कोहनी से उसको हिलाते हुए कहा।

विनोबा के हाथ से अनेक बार पिट चुके शिवाजी ने तत्काल कहना प्रारम्भ किया :

> "फूल-फलों से लदे पेड़ केला-बेर-सुपारी।
> नारियल और सीताफल हैं सभी मनोहारी॥
> वैसे ही आकर्षक नीले-पीले फूलों का क्या कहना
> निर्मल अशोक-बकुल-कुन्दादि के पुष्प
> जय जय रघुवीर समर्थ!"

"चलिए, प्रारम्भ कीजिए..." शम्भूराव ने जब कहा तब गोपालराव काका बोले, "बोलो रे! पुण्डरीक वरदा हरि विट्ठल।"

विनोबा ने पत्तल के चारों ओर पानी छिड़का और खाना प्रारम्भ किया। आगत अतिथि गप्प-प्रिय थे। हिन्दुस्तान में घूमे हुए थे। अनेक राजकीय व सामाजिक बातों की उनको जानकारी थी। वे बातें करते-करते भोजन कर रहे थे। वैसे पंगत में भोजन करते समय बातें करना पितामह को अच्छा नहीं लगता था। इसीलिए विनोबा की दृष्टि बार-बार पितामह की ओर जा रही थी। आखिर वे भी हँस पड़े।

भोजन करके सब उठे। भोजन में पर्याप्त विलम्ब हो गया था। घर में माता और दादी प्रतीक्षा कर रही थीं। विनोबा का सहज ही विन्या बन गया था। विनायक दौड़कर अन्दर गया। माता दो केलों के पत्तों पर खाना परोस रही थी।

"माँ! तुमको खूब भूख लग रही होगी! बाबा की पूजा जल्दी नहीं होती है।"

"ऐसे मत बोल विन्या! जब वे पूजा करते हैं तब तू भी तो घण्टों तक उनके साथ शंकर की पूजा करता है। रहा मेरी भूख का प्रश्न। अरे स्त्रियाँ अभ्यस्त होती हैं भूख सहन करने की। और आज तो उस बिच्छू ने देर कर दी। यह क्या ईश्वरेच्छा ही नहीं है? फिर क्रोध किस पर करूँ? देवता पर?"

विनायक को याद आया। प्रातःकाल पूजा करते समय बेल की टोकरी से एक कालाकिट्ट बिच्छू निकला और सर-सर चलता हुआ शंकर के पिण्ड पर जाकर बैठ गया। विनायक चिल्लाया, "बाबा बिच्छू, दादा, काका, दौड़ो!" सब दौड़कर आये, परन्तु शम्भूराव बोले, "बिच्छू ने देवता का आश्रय लिया है...अब इसे मत मारो।"

उनकी बात किसी को स्वीकार नहीं थी परन्तु उनके सामने कोई नहीं बोला।

शम्भूराव का प्रभाव ही ऐसा था। शम्भूराव के पितामह नरसिंहराव को गागोदे गाँव इनाम में मिला था, सरदार आंग्रे को मदद करने के कारण! तब से लेकर शम्भूराव तक शंकर की पूजा विधिवत् होती आयी थी। शम्भूराव प्रातः उठते। व्यायाम करते। अनेक प्रकार के फूल तोड़कर लाते और घण्टों पूजा करते रहते। शम्भूराव चान्द्रायण व्रत करते थे। चन्द्रोदय के पश्चात् पूजा-आरती करके ही प्रसाद ग्रहण करते थे। तब माता को दिनभर निराहार रहना पड़ता तथा आधी रात को भोजन मिलता था। आरती

के समय वह विनायक को जगाकर शम्भूराव के पास बैठा देती थी। विनायक प्रसाद के लिए आँखें खोलकर जागता रहता। गोपालराव काका विनायक से कहते, "अरे विनायक! व्याकरण पढ़ते समय झपकी आ जाय, यह बात तो समझ में आती है परन्तु तू तो प्रसाद खाते समय भी झपकी लेता है!"

गोपालराव काका उदार स्वभाव के थे। मुक्त मन के थे। वे लड़कों को पढ़ाते थे। दूसरे थे अन्धे काका। वे दिन भर कोई-न-कोई काम अभ्यासवश करते रहते थे। वे कहाँ के थे, कौन थे, यह कोई नहीं जानता था। अब तो वे घर के ही एक सदस्य बन गये थे। कुशा नौकर और खण्ड्या कुत्ता—सभी का घर में सम्मान होता था। सबको पहले भोजन कराने के बाद माता भोजन करती थी।

विनायक माता से कहता, "माँ! तुमको भूख नहीं लगी क्या?"

"भूख लगती है रे! परन्तु जब तक घर के सब न खा लें तब तक कैसे खा सकती हूँ?"

"तो फिर माँ! तुम कहती क्यों नहीं हो?"

"मैं कैसे कह सकती हूँ? ये सब लोग मुझसे बड़े हैं।"

"तो मैं कहता हूँ सबसे!"

"नहीं विन्या! छोटे मुँह बड़ी बात नहीं करनी चाहिए।"

"परन्तु ये लोग समझते क्यों नहीं हैं?"

"सब समझते हैं रे! परन्तु चन्दन की भाँति घिस न जाय तो जीवन में सुगन्ध नहीं आती है।"

विनोबा ने करवट बदली। लाल रंग की साड़ी पहने हुए गौरवर्ण माता उनके सम्मुख साकार हो गयी। चन्द्र की ज्योत्स्ना उसके मुख पर थी। आँखें कोंकण का हरा रंग लेकर शान्त थीं। होठों पर गीत थे जनाबाई के!

सचमुच माता का पीहर का नाम कितना सार्थक था—वेणु! सुरीली आवाज का उपहार उसको अपने पिता बालकृष्ण महाशय से मिला था। कर्नाटक के संगीत घराने में हावनूर के बालकृष्ण महाशय का भी घराना था। शम्भूराव का बालकृष्ण महाशय से परिचय था। वे शम्भूराव के आग्रह पर कोटेश्वर के मन्दिर में भजन गाने को आया करते थे। शंकर के मुखमण्डल पर लेप के लिए चन्दन वे कर्नाटक से लाकर देते थे। पिता की सेवा-वृत्ति और उनका मधुर कण्ठ तथा असंख्य भजनों की स्मरणशक्ति विनोबा की माता में अवतरित हुई थी।

विनोबा को याद आया। अलख सवेरे माता का दिन प्रारम्भ होता था। चार चरणोंवाले 'ओवी' छन्दों से, प्राकृत छन्द 'अभंग' से तथा देवता को जाग्रत करने के लिए गाये जानेवाले 'भूपाली' छन्दों से! दिनभर काम करते हुए भी वह निरन्तर 'अभंग' बोलती रहती थी।

एक दिन विनोबा ने उनसे पूछा, ''माँ! तुम दिनभर काम करती हो और दिन भर गाती रहती हो। तुम दोनों ही बातों से उकताती नहीं हो?''

माता सदैव हँसकर विनम्रता से बात करती थीं। उन्होंने कहा, ''विन्या! स्त्री का काम कभी समाप्त होता है क्या? वह तो करना ही पड़ता है। तो फिर जो काम हमको करना ही है उसको रोकर, चिढ़कर, पटकापटकी कर करने से तो अच्छा है कि ईश्वर का नाम लेते हुए किया जाय। इससे मन और शरीर को काम के कष्ट की प्रतीति नहीं होती है। इसीलिए मुझको न गाने से उकताहट होती है और न काम से होती है।''

उस समय विनोबा ने क्या समझा होगा, यह राम ही जाने! परन्तु इस समय उनको ऐसा लगा कि अशिक्षित माता जिस बात को समझती थी उसको तो भले-भले लोग नहीं समझ पाते! प्रसंग सादा, भाषा भी सादी, परन्तु जीवन का महान अर्थ बतानेवाली माता देवपूजा विधिवत् करती थी। अपने साथ लड़कों को लेकर बैठ जाती और अपने दोनों कान पकड़कर कहती, ''अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक! मेरे अपराधों को क्षमा कर दो!'' जो माता दूसरों के अपराध सहज क्षम्य मानती थी वह अपना कोई अपराध न होने पर भी अनजाने हुई तुच्छ गलतियों के लिए क्षमा माँगती थी।

''माँ! कभी-कभी मेरे मन में विचार आता है कि सन्ध्या समय परमेश्वर स्वयं यहाँ होकर जाते होंगे और तुम्हारी बात सुनकर कहते होंगे, यह स्त्री मुझको व्यर्थ ही बुलाती है!''

''विन्या! ईश्वर इतनी सरलता से कभी मिलता है क्या? तुमको भी जीवनभर तपस्या करनी पड़ेगी। उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। सद्‌गुणी बनना पड़ेगा।''

यह वार्तालाप माता-पुत्र में प्राय: होता रहता था। परन्तु एक दिन वह शम्भूराव ने सुन लिया। बरामदे से ही वे बोले, ''बहूरानी! तुम्हारे चार बेटे और एक बेटी है, परन्तु विनायक तुम्हारा लाड़ला है।''

''ज्येष्ठ पुत्र है न! उसको सीख दे दी जाय तो शेष स्वयं ही तैयार हो जाएँगे।''

''तुम चतुर हो बहूरानी! जब-तब तुम दोनों का वार्तालाप कानों में पड़ता है तब लगता है कि न तो यह लड़का साधारण है और न उसकी माता तुम साधारण हो। जैसे एक तपस्विनी अपने शिष्य को मन्त्र दे, वैसे ही तुम देती हो। तुम उच्चकोटि की हो!''

कभी माता से अधिक सम्भाषण न करनेवाले शम्भूराव बिना रुके बोल रहे थे। उसी दिन बालकृष्ण महाशय अचानक आ गये, तब शम्भूराव बोले, ''बालकृष्ण महाशय! आपकी पुत्री वेणु और हमारी बहूरानी रुक्मिणी[1] देवकृपा से भावे लोगों के कुटुम्ब को मिला हुआ एक उपहार है।''

''लज्जित मत कीजिए शम्भूराव! आपकी विद्वत्ता, आपका कार्य महान है।

1. वेणु का ही नाम ससुराल में रुक्मिणी है। महाराष्ट्र में विवाह के पश्चात् ससुराल में लड़की का नाम बदल दिया जाता है।

हमने जन्म दिया। वयस्क होने तक पाला, परन्तु संस्कार आपके हैं।''

बहुत देर तक वे दोनों माता के विषय में बातें करते रहे थे।

विनोबा ने कहा, ''माँ! तुम्हारे विषय में तुम्हारे पिताजी और तुम्हारे ससुर कितनी प्रशंसा कर रहे हैं!''

यह सुनकर माँ ने हँसकर कहा, ''विन्या! अरे अच्छे लोग अच्छा ही बोलेंगे। हो सकता है कि मैं थोड़ी अच्छी हूँ—परन्तु उससे सौ गुने अच्छे ये लोग हैं!''

विनोबा का मन भर आया। माता की प्रत्येक वृत्ति का और वाक्य का अर्थ उनकी समझ में अब आ गया था। उनको याद आया, एक बार रात में लालटेन लेकर वे एक कमरे से दूसरे कमरे में जा रहे थे कि डरकर सहसा वे चिल्ला उठे थे, ''माँ...माँ...ओ माँ!''

माता ने दौड़कर आकर पूछा था, ''क्या हुआ विन्या?''

विनोबा ने दीवार पर विशालकाय छाया की ओर संकेत किया था।

माँ ने हँसकर कहा था, ''अरे विन्या! यह तो तेरा गुलाम है। तू बैठेगा तो यह बैठेगा और तू उठेगा तो यह उठेगा! डर की क्या बात है? रामनाम ले। राम-रक्षा-स्तोत्र बोल। श्रीराम ही तेरी रक्षा करेंगे।''

तदनन्तर विनोबा फिर कभी नहीं डरे थे। एक बार माता ने ही कहा था, ''चोर चुराएँगे धन! परन्तु श्रीराम को वे नहीं चुरा सकेंगे।'' कितना सच था उनका कहना! श्रीराम का ज्ञान जिसको हो गया उसको अन्य बातें महत्त्वपूर्ण कैसे लग सकती हैं?

माता सबकी ही अच्छी होती है...परन्तु यह माता साधारण कभी नहीं थी। एक बार हृष्ट-पुष्ट भिखारी भीख माँगने आया। विनोबा बरामदे में बैठकर संस्कृत श्लोक पढ़ रहे थे। भिखारी को देखकर उन्होंने कहा, ''भला-चंगा दिखाई पड़ रहा है। जा हरी सुपारियाँ तोड़, नारियल की रस्सी बट या आमों में पानी लगा दे। भीख माँगना बन्द कर!''

वह सुनकर चुपचाप खड़ा रहा। विनोबा का ध्यान गया। पाकशाला से माता पत्तल पर भोजन लेकर आ रही थी।

''माँ! इसे भीख मत दो। यह हट्टा-कट्टा है!''

फिर भी माँ ने उसको भिक्षा दे दी। विनोबा को बहुत गुस्सा आया।

''माँ! तुम हट्टे-कट्टे आदमी को भी भिक्षा क्यों देती हो?''

''तू भी कमाल करता है विन्या! जो अपने द्वार पर आता है वह याचक है। वह हाथ पसारकर भीख माँगता है। उस याचक को देना हमारा काम है।''

''अन्धा-लंगड़ा तो ठीक है परन्तु...''

''अपने सामने अतिथि है। उसको न देना उचित है क्या?''

''वह यों ही भीख माँगता है।''

"वह अच्छा करता है या बुरा—यह तय करनेवाले हम कौन हैं? हम कैसा आचरण करें—यह हमको तय करना है। उनको शिक्षा देने का अधिकार हमको किसने दिया है? बोल विन्या! द्वार पर खड़े व्यक्ति को लौटा दूँ?"

उस समय घटित प्रसंग विनोबा को नयी दिशा दिखा गया। कितने ही वर्ष बीत गये थे। विनोबा माता के साथ गागोदा में सन् 1895 से 1905 तक रहे थे। केवल दस वर्ष की स्मृतियाँ! परन्तु इन दस वर्षों ने अपने आगामी सम्पूर्ण जीवन पर अमिट छाप छोड़ दी है, यह प्रतीति विनोबा को हुई। आयुष्य समाप्त होने तक माता का निरन्तर साहचर्य रहेगा! माता प्रथम गुरु होती है, यह विधान शत-प्रतिशत सत्य है। इसके बाद के वर्ष बड़ौदा की स्मृतियों के थे।

आधी रात बीत गयी थी। परन्तु नींद नहीं आयी थी। आज माता ही स्मृतियों के साथ रहने को आयी थी! वे प्रसन्न थे। माता सामने थी। वे अनुभव कर रहे थे, सभी स्मृतियों को।

शम्भूराव भावे। विनोबा के पितामह। अत्यन्त धार्मिक, सच्छील और सुधारक प्रवृत्ति के। वे गागोदा में रहते थे, परन्तु वाई के शिव मन्दिर की व्यवस्था देखने वाई में भी रहते थे। पर्व-उत्सव घर पर मनाये जाते थे। गाँव को आमन्त्रित किया जाता था। जाति-पाँति वे नहीं मानते थे। अटल सन्ध्या वन्दन और कठोर ब्राह्मणत्व का पालन करने वाले उस काल में वाई का वह शिवमन्दिर उन्होंने हरिजनों के लिए खुलवा दिया था। वे तो शिव मन्दिर में भजन गाने के लिए कभी-कभी मुसलमान गायकों को भी ले आते थे। अन्य ब्राह्मण उनकी कठोर आलोचना करते, परन्तु वे कहते, "ईश्वर ने जातियों का निर्माण नहीं किया है। जाति बनती है कर्म से। ब्राह्मण यदि व्यापार करने लगे तो वह वैश्य, ब्राह्मण यदि तलवार लेकर लड़ने लगे तो वह क्षत्रिय और ब्राह्मण यदि समाज की गन्दगी दूर करने लगे तो वह शूद्र भी! यदि जातियाँ ईश्वर ने बनायी होतीं तो सबको समान शरीर, समान मन और समान रक्त का रंग न दिया होता! कोई रसखान कृष्णगीत गाता है। कोई कबीर राम का वन्दन करता है। कोई डाकू वाल्मीकि हो जाता है। तुम्हारी दृष्टि में मैं गलत हो सकता हूँ परन्तु ईश्वर की दृष्टि में नहीं!"

उनके ये विचार सुनने के लिए कोई भी तैयार नहीं रहता था। मुसलमान गायकों के आने पर ब्राह्मण वर्ग बहिष्कार करता। तब वे गरजकर कहते, "अँग्रेजों की गुलामी आपको सह्य है। उनके द्वार पर आप धर्मभ्रष्ट नहीं होते हैं। उनके दान से तुम्हारे उदर में अन्न हलचल नहीं मचाता है। परन्तु वर्षानुवर्ष सफाई करनेवाले ग्रामीणों को तुम ठुकराते हो। हरिजनों के आने पर मन्दिर का बहिष्कार करते हो, मुसलमान गायक आएँ तो बहिष्कार करते हो! बहिष्कार करने के अतिरिक्त आप लोगों को और आता ही क्या है?"

शम्भूराव ने किसी की परवाह नहीं की। भावे कुल को गागोदा और अडूर—

ये दो गाँव इनाम में मिले थे। उसमें वाई की मन्दिर व्यवस्था भी थी। कहनेवाले कह रहे थे परन्तु करनेवाले शम्भूराव कर रहे थे।

विनोबा को स्मरण हो रहा था—मैं महात्मा गाँधी के सम्पर्क में आया। ग्राम-सफाई, ग्राम-सुधार, वैचारिक और मानसिक सुधार तथा धार्मिक सहिष्णुता मैंने सीखी। बचपन में गागोदा में दस वर्ष के कालखण्ड में उसका प्रथम संस्कार मेरे मन पर पितामह ने कर ही दिया था।

हमारे आम के बाग से जो आम घर पर आते थे उनको पितामह सभी ग्रामीणों को स्वयं बाँट देते थे। वे माता से कहते थे, "बहूरानी! घर की रीति है, दूसरों को देकर फिर स्वयं खाना। जो स्वयं का स्वयं ही खाता है, वह प्रकृति है परन्तु जो स्वयं का दूसरे को देता है वह संस्कृति है।"

माता ने उस संस्कृति को जाना, उसकी उपासना की और उसका उत्तराधिकार विनोबा को दे दिया।

शम्भूराव नाड़ी देखना भी जानते थे। आस-पास के गाँवों में वे औषध देने जाते थे। उन्होंने कभी किसी से एक पाई भी नहीं ली। लोग अन्न की टोकरी भरकर सामने कर देते थे, जी भरकर लेने को कहते थे परन्तु वे नम्र भाव से कहते, "मुझको मोह में मत डालिए। ईश्वर की कृपा से जो मेरे पास है उससे ही मैं सन्तुष्ट हूँ। मैं आपके चेहरे पर आनन्द देखना चाहता हूँ। यह आनन्द ही मेरा धन है।"

रात-बिरात तथा घनघोर वर्षा में भी शम्भूराव पुकार सुनकर दौड़े जाते थे। शम्भूराव जितने शान्त थे उतने ही क्रोधी भी थे। अस्वच्छता और अन्याय पर उनको क्रोध आता था। विनोबा घण्टों उनके पास चुपचाप बैठे रहते थे। परन्तु उनके क्रोध से विनोबा भली-भाँति परिचित थे। एक दिन चार वर्ष के बालकों ने उनकी देह पर पूजा करते समय गन्दा पानी डाल दिया था। परन्तु शम्भूराव शान्त रहे।

विनोबा ने पूछा, "बाबा! बालकोबा पर गुस्सा नहीं किया?"

"अरे! देवगृह में बैठकर क्रोध किया तो पूजा करने का अर्थ ही क्या रहा!"

यह सुनकर शम्भूराव की पत्नी खिलखिलाकर हँस पड़ीं। तब विनोबा ने पूछा, "दादी! हँस क्यों रही हो?"

"इनकी बात सुनकर हँसी आ गयी। देवघर में ही आसन बिछाकर बैठ जाना चाहिए। इससे शब्दों के बिच्छू चारों ओर नहीं दौड़ेंगे!"

गंगाबाई बोलती थीं तो मानो पहेली बुझाती थीं। दूसरों को हँसाती थीं। शम्भूराव और गंगाबाई दोनों का अत्यधिक प्रभाव विनोबा पर पड़ा था। दोनों ही अत्यन्त कष्ट-सहिष्णु थे। रुक्मिणी पर उनका असीम स्नेह था। 'बहूरानी-बहूरानी' कहते हुए ही वे आँगन में घूमते रहते थे।

माता घर में काम करके दूसरों की सहायता को जाती थी। घर का काम जल्दी

समाप्त कर लेती। विनोबा कहते, "माँ! पहले हमारा काम करने की अपेक्षा उनका काम कर आया करो!"

"अरे लेकिन फिर उनको खाना ठण्डा मिलेगा! लोगों की सहायता अपनी सुविधानुसार न करके उनकी सुविधानुसार करनी चाहिए।"

इस क्षण भी विनोबा को यह अनुभूति हुई कि माता के प्रत्येक उत्तर पर वे उस समय कुछ नहीं कह पाते थे और आज भी विचार करने पर वे उसकी व्याख्या नहीं कर पाते थे। विनोबा को लगा, माता को वे समझ ही नहीं सके थे। एक बार चर्चा चलने पर उसने कहा था, "विवाह करके घर बसानेवाले लाखों-करोड़ों होते हैं। क्योंकि विवाह करना लोक-प्रवाह है परन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करना प्रवाह के विरुद्ध जाना है। प्रवाह के साथ बहते जाना सरल है, क्योंकि उसमें अनेक सहायता करते हैं परन्तु प्रवाह के विरुद्ध जानेवाला अकेला ही होता है..."

"तो क्या विवाह करना बुरा है?"

"नहीं विन्या! भली प्रकार संसार करते हुए सदाचारी रहने पर उस कुल की कीर्ति बढ़ती ही है। परन्तु जो ब्रह्मचारी रहता है और सदाचारी रहता है वह बयालीस पीढ़ियों का उद्धार करता है।"

"माँ, मैं क्या करूँ?" उस समय विनोबा ने बालसुलभ प्रश्न किया था।

"विन्या, तू जो कुछ भी करेगा वह मुझको अच्छा लगेगा।"

विनोबा को इस क्षण आश्चर्य हुआ। लगभग नौ-दस वर्ष की अवस्था में पुत्र और माता में ऐसा संवाद हो और ब्रह्मचर्य की व्याख्या करते हुए माता कहे, "विन्या, यदि मैं ब्रह्मचारी होती तो आज के अनेक ब्रह्मचारियों को मैंने सद्व्यवहार से जीत लिया होता!" उस समय माता ने ऐसा क्यों कहा था? या नियति ही उसके मुख से बोल रही थी? भगवान जानें! परन्तु विनोबा को कभी विवाह का मोह नहीं हुआ। विषय-वासनाओं का स्पर्श भी नहीं हुआ। कठोर वैराग्य नस-नस में प्रवाहित हो गया!

माता की यही अपेक्षा थी क्या? भावे परिवार के तीनों ही लड़के कठोर वैराग्य धारण करनेवाले हों, यही चाहती थी क्या वह? या नियति ने विनायक, शिवाजी और वालकोबा के हाथ में ब्रह्मचारी पद थमा दिया? वह कठोर परिश्रमी, कठोर धार्मिक और नियमों का पालन करनेवाली थी। संसार में रहकर-भी अलिप्त थी। जैसे जनकराज का एक पैर सिंहासन के पायदान पर और दूसरा पैर यज्ञवेदी पर रहता था, वैसा ही उसका जीवन था। वह सदैव व्रत करती, व्रतस्थ रहती। वह स्वयं शंकर की भक्त थी।

एक श्रावण में उसने शंकर को एक लाख अक्षत अर्पण करने का व्रत किया था। एक लाख बेल विगत वर्ष उसने अर्पण किये थे। इस बार था अक्षत अर्पण करने का संकल्प। विनोबा के पिता नरहरि पन्त बोले—

"तुम लोगों के व्रत बड़े सूक्ष्म होते हैं। अब एक लाख अक्षत अर्पण किये जाएँगे

तो कितना समय लगेगा! उसकी अपेक्षा ऐसा करो, एक नैवेद्य की कटोरी में अक्षत भरकर उनको गिन लो! फिर उसी गिनती से कटोरी भर-भरकर शंकर को अर्पित कर दो!''

''यह गणित मेरी समझ में नहीं आया!''

''बहुत सरल है। मान लो कि तुम्हारी नैवेद्य की कटोरी में चावल के चार सौ दाने आ गये, उसी का गुणा करते हुए लाख तक गिनते जाओ। अर्थात् चार सौ की एक कटोरी तो लाख में कितनी कटोरियाँ होंगी! बस!''

रुक्मिणी देवी सम्भ्रम में पड़ गयीं। जैसे ही नरहरि पन्त काम से बाहर निकले वैसे ही रुक्मिणी देवी ने विनोबा को पुकारा।

''विन्या! तेरे पिताजी कह रहे थे कि कटोरी भर-भरकर अक्षत शंकर को अर्पण कर दो! यह उचित होगा क्या?''

''नहीं होगा!''

''क्यों नहीं होगा? एक कटोरी में चार सौ दाने, उसी हिसाब से मैं उतनी कटोरियाँ शंकर पर चढ़ा दूँगी, उससे लक्ष्य पूरा हो जाएगा!''

''माँ! पिताजी के गणित का काल कार्य वेग की दृष्टि से उचित है। परन्तु तुम्हारी दृष्टि से वह उचित नहीं है। क्योंकि तुमको एक लाख अक्षत अर्पण करते समय उतनी ही बार शंकर का नाम स्मरण भी करना है, इसलिए तुम्हारा एक-एक अक्षत चढ़ाना ही उचित है।''

माता को असीम आनन्द हुआ था! उसके मन की दुविधा समाप्त हो गयी थी। विनोबा के प्रति उसका विश्वास प्रगाढ़ हो गया था।

एक दिन घर के मध्य कक्ष में विनोबा पुस्तकों पर जमी धूल झाड़ रहे थे। माता की चूड़ियों के खनकने की आवाज से उनका ध्यान बार-बार माता के कार्य की ओर जा रहा था। आखिर उन्होंने पूछ ही लिया, ''माँ! खन-खन करनेवाली काँच की चूड़ियाँ तुम क्यों पहनती हो? खाना बनाते समय, कपड़े धोते समय, दतरा से दलते समय इन काँच की चूड़ियों का टूटने का डर रहता है!''

''विन्या! कहना तो तेरा ठीक है। सौभाग्यवती स्त्री की चूड़ियों का इस प्रकार टूटना अच्छा नहीं है, यह मैं जानती हूँ। इसलिए काँच की चूड़ियाँ मन को सावधान करती हैं, 'सँभलकर काम कर, एकाग्र होकर काम कर!' यदि ये धातु की चूड़ियाँ होतीं तो मैं उच्छृंखल हो जाती। विन्या! प्रत्येक बात एक सन्देश देती है। हाँ, उसको सुननेवाला होना चाहिए।''

रुक्मिणी देवी सतत भजन में ईश्वर का नाम लेती रहती थीं। उस दिन दूध में दही का जामन देते समय उन्होंने श्रीराम का नाम लिया।

''माँ! तुमने दूध में जामन देते समय नाम क्यों लिया? प्रभु का नाम न लें तो

दही जमेगा नहीं क्या?''

''विन्या! तुम लाख प्रयत्न करो, फिर भी परमेश्वर की कृपा के बिना कुछ भी नहीं होगा। समझे! चाहो तो प्रयत्न करके देख लो।''

''तुम्हारे कहने का मतलब यह है माँ! कि प्रयत्न करने पर सफलता मिल गयी तो वह ईश्वर की इच्छा से मिली और यदि नहीं मिली तो वह भी ईश्वर की इच्छा थी। यह तो 'चित भी मेरी और पट भी मेरी' जैसी बात हो गयी।''

रुक्मिणी बाई का संचरण घर तक ही सीमित था। कभी किसी के बुलाने पर ही वह घर से निकलती थी। जूड़ा कसकर बाँधकर, उस पर चाँदी के फूल लगाकर, माथे पर चन्द्रकला (बिन्दी) लगाकर, वह जाती। वह दुबली-पतली छरहरी थी। गौर वर्ण की और सुन्दर थी। बीजापुरी साड़ी का आँचल सँवारती हुई जब वह जाती थी तब शम्भूराव कहते, ''बहूरानी! गले में वज्रटीक[1] पहनो, हँसुली पहनो, मणिमाल पहनो और मोहनमाल धारण करो। साक्षात् लक्ष्मी जैसी दिखाई दे रही हो!''

परन्तु वह कहती, ''पिताजी! किसी की सहायता को जाते समय यह सब पहनकर जाना अच्छा नहीं लगता है। आप कहते हैं तो पहन लेती हूँ।''

''तुम्हारा कथन भी उचित है बहूरानी!''

उसकी समझदारी पर वे मन-ही-मन प्रसन्न होते।

रुक्मिणी बाई को केवल अक्षरों की पहचान थी। एक-एक शब्द जोड़कर वह पोथी पढ़ती। पढ़ने में खूब समय लगता। फिर भी उसको कभी उकताहट नहीं होती थी। वह कभी किसी काम से नहीं उकताती थी। समय मिलने पर वह सुन्दर कथाएँ कहती।

विनोबा माता के विचारों में तल्लीन थे कि प्रात: उठने की घण्टी बजी। गश्त लगानेवाले सिपाही प्रत्येक बैरक के पास जाकर डण्डे से आघात करते थे। 'जाग जाओ' की बुलन्द आवाज गूँज उठी...विनोबा उठे। सारी रात जागरण हुआ था, परन्तु उन्होंने वह प्रकट नहीं किया...उनको असीम प्रसन्नता मिली थी। वे बाहर आये। दूर प्रकाश की अस्पष्ट पट्टी दिखाई दे रही थी। वे आनन्दित थे। अभी कैदी सो रहे थे, तब तक विनोबा स्नान करके गाने लगे :

जय जय भगीरथ-नन्दिनी।
जय जय विबुध वन्दिता, जय जह्नु-बालिका॥
विष्णु-पद-सरोज-जाता, ईश-शीश पर शोभिता
त्रिपथगा हो, पुण्यराशि, पाप-क्षालिका॥
विपुल विमल प्रवाहित वारि, शीतल त्रय-ताप-हारि
भँवर वर विभंग तर तरंग-मालिका॥

---

1. एक आभूषण।

पुर-जन पूजोपहार, शोभित शशि धवल-धार
भंजन भवसार भक्तिकल्पथालिका॥
निज तटवासी विहंग, जल-थल-चर पशु पतंग
कोट, जटिल, तापस सबकी समान पालिका॥
तुलसी तव तीर-तीर सुमिरत रघुवंस वीर
विचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका।
जै जै भगीरथ-नन्दिनी!

विनोबा गा रहे थे। उनके सामने हाथ जोड़कर जेलर कब से खड़े थे। अभिभूत होकर वे बोले, "यह नागपुर सेण्ट्रल जेल का सौभाग्य है कि यहाँ पुण्यात्मा का अवतरण हुआ है। अगर मैं जेलर न होता तो आपके चरणों पर सिर रखकर आशीर्वाद माँगता।"

विनोबा हँसे। जेलर ने देखा, सर्वत्र उष:प्रभा फैल रही थी। समस्त वातावरण मंगलमय हो गया था।

7

सन् 1942 ईसवी।

हिन्दुस्तान में प्रखर असन्तोष उफन रहा था। चाहे कुछ भी करना पड़े, ब्रिटिश सरकार को देश छोड़कर जाना ही पड़ेगा, इसके लिए प्राणपण से प्रयत्न प्रारम्भ हो गये थे। ईसवी सन् 1857 से प्रारम्भ हुए स्वातन्त्र्य-संग्राम का प्रखर रूप—धधकती ज्वालाएँ अब दिखने लगी थीं। हिन्दुस्तान का एक-एक घर इस संग्राम में सम्मिलित हो चुका था। स्वदेशी का पुरस्कार और विदेशी माल का बहिष्कार करके ही लोग रुके नहीं थे...अपितु विदेशी वस्तुओं की होली चौराहों पर जलायी जा रही थी। 'करो या मरो' तथा 'जले जाओ' ये गगनभेदी उद्घोष हो रहे थे।

प्रभात-फेरियाँ निकल रही थीं। लाठी चलाने का प्रशिक्षण दिया जा रहा था। स्त्री-शक्ति जाग्रत हो रही थी। 'वन्दे मातरम्' का निनाद दसों दिशाओं में गूँज रहा था। स्टेनगन और बन्दूकों की आवाजें वातावरण को भयभीत नहीं कर पा रही थीं। लोग नये उत्साह से स्वतन्त्रता का जय-जयकार कर रहे थे। शस्त्र के बिना असहयोग और युद्ध के बिना सत्याग्रह ने जोर पकड़ लिया था।

राष्ट्र-नेता अधिक सक्रिय हो गये थे। वे जान गये थे कि जन-जन में सुलगती अग्नि अब क्रान्ति करवाएगी। इसलिए वे अथक अग्नि को चेता रहे थे। व्यक्तिगत प्रयत्नों की पराकाष्ठा हो रही थी। यज्ञ में आहुति डाली जा रही थी। जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गाँधी, राजेन्द्रप्रसाद, गोविन्दवल्लभ पन्त, लाला लाजपतराय, नेताजी सुभाषचन्द्र जैसे तेजस्वी वीर अधिक सजग हो गये थे। सबको विश्वास था कि जो दाहक परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है उससे ब्रिटिश शासन थर्रा जाएगा! प्रत्येक नेता स्वयं अविश्रान्त प्रयत्न कर रहा था। सन् 1940 ई. में महात्मा गाँधी ने प्रथम सत्याग्रही के रूप में विनोबा को चुना था। तब से लगभग दो वर्षों तक विनोबा नागपुर की जेल में थे। फिर तो अनेक सत्याग्रही आगे आ रहे थे। उनकी धर-पकड़ का सिलसिला प्रारम्भ हो गया था। कारागार भरे जा रहे थे। ब्रिटिश-शासन भी बौखला गया था। जो दिखाई देता उसी को पकड़कर बन्दी बना लिया जाता था।

अन्त में, शायद हमको कदम पीछे हटाने पड़ेंगे और हिन्दुस्तान से अपना बिस्तर गोल कर भागना पड़ेगा, इस भय से शासन ने प्रचण्ड धर-पकड़ प्रारम्भ कर दी थी। बड़े-बड़े नेताओं को ही यदि जेल में डाल दिया जाए तो जनता चुप हो जाएगी, उनकी यह धारणा मिथ्या सिद्ध हुई थी। 'शक्ति से मशाल को नीचे की ओर झुकाओगे तब भी लपटें ऊपर की ओर ही आएँगी,' ऐसी स्थिति देश की हो गयी थी। प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्रता चाहता था। कर्म-स्वतन्त्रता जीवन था, धर्म-स्वतन्त्रता जीवन था तथा जीवन का अर्थ ही स्वतन्त्रता था।

सेवाग्राम में महात्माजी विचार करते हुए सूत कात रहे थे। अचानक हाथ में लगी पूनी को नीचे रखकर चकई पर सूत लपेटते हुए वे बोले, "महादेवभाई! आप लेखक हैं। गुजराती लोग आपका साहित्य आदर और प्रेम से पढ़ते हैं।"

"तो?" चकित होकर महादेवभाई ने पूछा।

"लेखक-कवि द्रष्टा होता है। उसके पास विचारों की गति होती है तथा वर्तमान काल को वह भविष्य से जोड़ता है—यह कहते हैं। सच है न?"

"बापू...आप किस विषय में कह रहे हैं?"

"आज देश की जो स्थिति है, उस विषय में आपका क्या विचार है?"

"आपने मुझ जैसे साधारण व्यक्ति से पूछा है इसलिए कह रहा हूँ कि आज देश में असन्तोष उत्पन्न हो गया है। लोग स्वतन्त्रता प्राप्त करके ही चैन लेंगे।"

"यही मैं सुनना चाहता था। फिर भी मेरा विचार है कि आज के असन्तोष को यदि और अधिक प्रज्वलित कर दिया जाए तो स्वतन्त्रता के द्वार धड़ाधड़ खुल सकते हैं। समय यही है। लोग थककर शान्त हो गये तो यह अवसर निकल जाएगा। स्वतन्त्रता की यह अग्नि अधिक जोर से भड़कनी चाहिए।"

"तो आप क्या करना चाहते हैं?" कान्तिभाई ने पूछा।

कस्तूरबा वहीं खड़ी थीं। उन्होंने बापू का कथन सुना था। वे बोलीं, ''बापू के विचार अब अलग रास्ते पर चल रहे होंगे। निश्चय ही उनके मन में नये प्रयोग आ गये होंगे!''

''आपने ठीक कहा है,'' महात्माजी ने हँसकर कहा, ''मुझको शीघ्र ही पकड़ लिया जाएगा और कारागार में जाते ही मैं केवल असहयोग ही प्रकट नहीं करूँगा अपितु उपवास प्रारम्भ कर दूँगा।''

''नहीं...नहीं... ऐसा मत कीजिए। सिर सलामत तो पगड़ी पचास!'' महादेव भाई बोले।

''परन्तु पचास पगड़ियों को धारण कहाँ करें? वह सिर तो दूसरों के हाथ में है। मुझको यही एक मार्ग दिखाई दे रहा है। देश में सैकड़ों लोग स्वतन्त्रता के लिए आत्म-बलिदान कर रहे हैं। मैंने यदि उपवास किया और...''

''नहीं बापू! यह मार्ग ही हमको स्वीकार नहीं है।''

''आपसे मैं तर्क नहीं कर रहा हूँ। परन्तु मुझको यही मार्ग उचित लग रहा है। हमारे निकट ही पवनार में एक ब्रह्मर्षि रहते हैं, उनसे पूछ लीजिए। वे यदि उचित कह दें तो उचित है, वे यदि अयोग्य कह दें तो अयोग्य है।''

''मैं विनोबाजी को ही लेकर आता हूँ।'' यह कहकर महादेवभाई तत्काल चलने को हुए तब महात्माजी ने हँसकर कहा, ''महादेवभाई! आते समय लेखक के रूप में कोई सलाह विनोबाजी को नहीं देनी है!''

''विश्वास रखिए! श्रीराम के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं कहूँगा। क्योंकि मैं जानता हूँ कि वे इस मार्ग का समर्थन करेंगे ही नहीं। और फिर, पहले सत्याग्रही के रूप में आपने उनका चयन किया है, उसी प्रकार यदि पहले उपवासकर्ता के रूप में उनका चयन हो गया तो उनका स्वास्थ्य ढह जाएगा!''

महात्माजी हँसने लगे। उनके हँसने का अर्थ केवल कस्तूरबा ने समझा। वे बोलीं, ''विनोबा और आप, दोनों शिवशंकर और श्रीराम हैं। दोनों ही एक-दूसरे के पूरक और पूजक हैं। सच है न?''

महात्माजी ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

कुछ देर बाद ही विनोबा महात्माजी की कुटी के सामने आकर खाट पर बैठ गये और बोले, ''आपने बुलाया था बापू? पकड़ने का वारण्ट लेकर जब स्वयं महादेव भाई पहुँचे तब 'नहीं' तो कह ही नहीं सकता था!''

''जब पहले सत्याग्रही के रूप में सजा पूरी करके आप यहाँ लौटे थे तब मैंने कहा था, 'अब बार-बार पकड़-वारण्ट जारी होगा, बार-बार कारागार के दर्शन होंगे।' ''

''सच है बापू! परन्तु आज का वारण्ट किस बात का है?''

''वर्तमान देश की दशा पर विचार करने के लिए। आप क्या अनुभव कर रहे हैं?''

"बापू! सागर में ज्वार आता है तो तट भी डूब जाता है तथा अधिक क्षुब्ध होने पर प्रलय उपस्थित हो जाती है। प्रलय के पश्चात् नयी सृष्टि का—आनन्द सृष्टि का जन्म होता है। आज ऐसी ही स्थिति है देश की!"

"और प्रलय आने के लिए क्या करना पड़ेगा?"

"वातावरण का निर्माण!" विनोबा ने सहज भाव से कहा।

"तुम्हारे ही कथनानुसार वातावरण के निर्माण के लिए मैंने एक रास्ता ढूँढ़ा है। वह है उपवास का मार्ग। कारागार में पैर रखते ही मैं उपवास और सत्याग्रह प्रारम्भ कर दूँगा। आपका क्या विचार है?"

"विचार नितान्त उपयुक्त है," हँसकर विनोबा ने कहा, "जिस कार्य को श्रीराम सब ओर से विचार करके करते हैं उस कार्य को हनुमान केवल श्रद्धा के बल पर कर सकते हैं।"

कस्तूरबा समझ गयीं। महात्माजी के कार्य की दिशा को स्वीकृति देकर विनोबा ने स्वयं को भी उसी मार्ग पर डाल दिया था—हनुमान बनकर।

"विनोबा! यह मार्ग यहाँ किसी को भी स्वीकार्य नहीं है। कुछ निर्णय ऐसे होते हैं कि उन पर चर्चा करने की इच्छा होती है। यह निर्णय भी ऐसा ही है। आपने तत्क्षण मुझको उत्तर दे दिया है। अभी समय है। आप विचार करके उत्तर दे सकते हैं।"

"इसमें विचार क्या करना है? उपवास और बलिदान—दोनों ही बातें अहिंसा के तत्त्व को मान्य हैं। मैं आपके विचारों से पूर्णतः सहमत हूँ।"

"यदि ब्रह्मर्षि ऐसा कह रहे हैं तो वह उचित ही है।" महात्माजी ने हँसकर कहा।

जब महादेवभाई ने पूछा, "आप विनोबाजी को ऋषि न कहकर ब्रह्मर्षि क्यों कहते हैं?" तब कस्तूरबा बोलीं, "यही प्रश्न मैं भी पूछना चाहती थी। जो ऋषि से बड़ा होता है वह ब्रह्मर्षि, आप यह कहना चाहते हैं क्या? मैं तो सदा यही सोचती हूँ कि ये ऋषि तो हैं ही, परन्तु इनको भूपति कहना चाहिए!"

महात्माजी बोले, "भूपति का अर्थ है मालिक, सम्राट्! विनोबा निरिच्छ भावना से जनकल्याण करनेवाले ऋषि तो हैं ही, वे ब्रह्मर्षि इसलिए हैं कि प्रत्येक कार्य को वे परमेश्वर का नाम देते हैं। प्रत्येक कार्य श्रीराम के नाम से पूर्ण होता है। परमेश्वर में और उनमें द्वैत नहीं है। निराकार की उपासना करते हुए वे साकार के दर्शन करते हैं। निर्गुण-निराकार, ब्रह्म का जप वे मन में करते हैं और सगुण-साकार जनता जनार्दन को जपते हैं। इसीलिए वे ब्रह्मर्षि हैं, भूपति हैं और नानाविध प्रयोग करनेवाले ऋषि भौमर्षि भी हैं।"

जाने को उद्यत विनोबा सहसा घुटनों के बल बैठकर महात्माजी से बोले, "एक ही प्रार्थना है। मैं सर्वसाधारण लोगों में एक हूँ। मुझको इतना बड़प्पन मत दीजिए। कृपा करके मुझको साधारण ढंग से जीने दीजिए।"

महात्माजी बोले, "विनोबा! तुम्हारी महत्ता तुम्हारी नम्रता में है। तुम्हारा बड़प्पन दूसरे को बड़ा समझने में है। तुम राजनीति में रहते हो फिर भी मन में ईश्वर चिन्तन रहता है। तुम कारागार में रहते हो तो वहाँ भी ज्ञान मन्दिर, ईश्वर मन्दिर का निर्माण कर लेते हो। तुम्हारी स्तुति करके मैं देवत्व नहीं प्राप्त कर सकता परन्तु तुम्हारे सद्‌गुणों को समझने का प्रयत्न करने पर शायद..."

विनोबा ने कहा, "बापू! मैं क्या कहूँ? हिन्दुस्तान के प्रत्येक मनुष्य के मन में आप बसे हुए हैं। लोग आपके विचारों को मानते हैं।"

"हो सकता है कि लोगों के मन में मैं होऊँ परन्तु मेरे मन में आप हैं!"

विनोबा उठे और हँसकर बोले, "हम लोग देश की स्थिति पर विचार करने के लिए एकत्र हुए हैं, एक-दूसरे की स्तुति करने के लिए नहीं! आपका उपवास मुझको पूर्णरूप से स्वीकार है।"

"यही पूछने के लिए मैंने आपको बुलाया था। अब देश जल उठा है। आहुतियाँ पड़ रही हैं विनोबा! अब स्वतन्त्रता दूर नहीं है। अब चरम प्रयत्न होने चाहिए। मैं कारागार में पैर रखते ही स्वतन्त्रता के लिए उपवास प्रारम्भ कर दूँगा।"

"मैं आपसे पूर्णरूप से सहमत हूँ।"

विनोबा पवनार को लौट आये।

जयदेव, जमनालाल बजाज, मदालसा देवी तथा अन्य आश्रमवासियों ने कहा, "महात्माजी ने उपवास का जो निर्णय लिया है उसके प्रति हम सशंक हैं!"

"क्यों? उनकी शक्ति और सहनशीलता में सन्देह हो रहा है आपको?"

"नहीं! शासन की धर-पकड़ के बाद उपवास का मार्ग ठीक नहीं लग रहा है।"

"बड़े लोग जो बोलते हैं, करते हैं, वह साधारण हो ही नहीं सकता।"

"वह बात नहीं बाबा! केवल उपवास के मार्ग के विषय में हम कह रहे थे!"

"पहले लोग उनके ग्राम-सुधार पर बातें करते थे। फिर लोग उनकी अहिंसा पर बोलने लगे। तदनन्तर असहयोग, सत्याग्रह और ग्रामोद्योग तथा सूत-कताई पर बोलने लगे। फिर बातें करते-करते लोगों के ध्यान में आया कि बापू का प्रत्येक शब्द वेदमन्त्र का सामर्थ्य लिये हुए है। उनके प्रत्येक कार्य में जनहित की चिन्ता है। उनको स्वतन्त्रता चाहिए। रक्तपात के बिना स्वतन्त्रता चाहिए, शस्त्र के बिना स्वतन्त्रता चाहिए। अहिंसा की शक्ति को उन्होंने पहचान लिया है। देश के बहुसंख्यक लोगों को उन पर विश्वास है।"

कहते-कहते विनोबा की आवाज ऊँची हो गयी थी। महात्माजी के प्रत्येक कार्य का तुलनात्मक अध्ययन उन्होंने किया था। उनके बताये हुए प्रयोग किये थे। सुवर्ण कसौटी पर सम्पूर्ण शुद्ध था!

महात्माजी बन्दी बना लिये गये। यह वार्ता आने तक विनोबाजी के परमधाम

आश्रम में पुलिस पहुँच गयी थी।

"इतनी जल्दी आने का कारण?"

"आप लोगों के कारण असन्तोष अधिक बढ़ता है।"

"सचमुच, आप लोगों को पता कैसे नहीं चला कि महात्माजी को कैद कर लेने पर असन्तोष अधिक बढ़ जाएगा!"

"प्लीज, हमको हमारी ड्यूटी करने दीजिए। हम आपको अरेस्ट करेंगे।" विनोबा ने शान्त मन से हाथ आगे कर दिये। यह देखकर पुलिस इन्स्पेक्टर बोला, "हमको लज्जित मत कीजिए। आप हमारे साथ वर्धा जेल तक चलें। चाहें तो जीप से चलें।"

विनोबा पैदल चल पड़े। धाम नदी का पुल पार कर वे जैसे ही आगे बढ़े वैसे ही प्रचण्ड भीड़ इकट्ठी हो गयी। 'वन्दे मातरम्' के उद्घोष से धाम नदी थर्रा उठी। पुलिस ने हवा में गोलीबारी की। परन्तु भीड़ तितर-बितर नहीं हुई। पुलिस ने लाठीचार्ज करना शुरू कर दिया तब भी भीड़ हट नहीं रही थी। आखिर विनोबा बोले, "आप मुझको जीप में ले चलिए, नहीं तो आपको अनेक लोगों को अरेस्ट करना पड़ेगा। वर्धा जेल में इतना स्थान भी नहीं होगा। वैसे यह भी सुना है कि जेलें भर गयी हैं और कैदियों को रखने के लिए उनमें स्थान नहीं रहा है।"

पुलिस इन्स्पेक्टर तत्काल जीप ले आया। विनोबा उसमें बैठ गये और जीप चल दी। लोगों ने महात्माजी का जय-जयकार किया।

वर्धा के कारागार में पैर रखते ही विनोबा बोले, "प्रातःकाल तो मैं भोजन करके आया हूँ, परन्तु अब मेरा अनिश्चित काल के लिए उपवास प्रारम्भ हो गया है।"

जेलर काँप गया। महात्माजी के प्रिय शिष्य का उपवास उसको जरा भी अच्छा नहीं लग रहा था। सन्ध्या समय, रात में विनोबा को भूख लगेगी ही या आज नहीं तो कल वे भोजन करेंगे ही। इस दुबले-पतले आदमी में ताकत ही कितनी होगी, यह विचार कर वह जरा निश्चिन्त हो गया था। रात में उसने अधिक आग्रह नहीं किया।

दूसरे दिन सन्ध्या समय वह सारे नीति-नियम छोड़कर विनोबा के पास आया और चटाई पर बैठकर हाथ जोड़कर बोला, "बाबा! आप राजनीतिक कैदी हैं। आपको यहाँ किसी प्रकार की भी कमी न रहे, इसके लिए ब्रिटिश-शासन प्रयत्न कर रहा है। ऐसे समय में हमारी इच्छा है कि आप आनन्द से रहें!"

"मैं दुःखी नहीं हूँ जेलर साहब! आप इतनी सुविधाएँ दे रहे हैं कि एक दिन ब्रिटिश शासन हमको अच्छा लगने लगेगा। परन्तु यह आपका भ्रम है।"

"परन्तु आप उपवास न करें। यही आपसे विनम्र प्रार्थना है।"

"दिये हुए वचन का पालन करना अनुचित तो नहीं है!"

"आपने किसको वचन दिया है?"

"महात्माजी को। वे जहाँ भी होंगे वहीं उपवास कर रहे होंगे!"

जेलर चौंक पड़ा। परन्तु सावधान होकर बोला, "वे तो मुम्बई के आगा खान पैलेस में कैद हैं। किसी भी समाचारपत्र में उनके उपवास का वृत्तान्त नहीं आया है। आप भोजन कर लें। मैं निश्चित पता लगाता हूँ और आपके कथनानुसार उन्होंने सचमुच ही उपवास का मार्ग अगर स्वीकार कर रखा हो तो आप पुनः उपवास शुरू कर दें। आपका स्वास्थ्य पहले से ही..."

"स्वास्थ्य! मेरा स्वास्थ्य हट्टे-कट्टे आदमी से सौ गुना अच्छा है!"

जेलर ने अपने ढंग से खूब समझाया, परन्तु विनोबा ने भोजन नहीं किया। अन्त में जेलर ने उठते-उठते कहा, "सुन रखा था कि योगी लोग केवल हवा खाकर जीवित रहते हैं। वही आज प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।"

जेलर के जाने पर विनोबा ने मन में कहा, 'हमारी शक्ति को आप जान ही कहाँ सके हैं? आज देश जाग्रत हो गया है। अब सर्वत्र शक्ति का प्रदर्शन होगा। मुझ जैसे असंख्य लोगों को एक ही शब्द प्रतिक्षण संजीवन देगा। वह शब्द है—वन्दे मातरम्। जेलर साहब! मुझको आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना है। मैं आदेश का सिर झुकाकर पालन करने वाला मनुष्य हूँ। परन्तु इन सबके ऊपर एक मौन आज्ञा है। वह आज्ञा है बापू की। उसको मानना मेरा प्रथम कर्तव्य है।'

तीन दिन के बाद जेलर जल्दी-जल्दी आये। उसके साथ किशोरलाल भाई थे। जब से आये थे तब से वे चुप ही थे। विनोबा ने हँसकर पूछा, "किशोरलाल भाई! आज मौनव्रत है क्या?"

यह सुनते ही उनकी आँखें आर्द्र हो गयीं। अशक्त, दुबले-पतले विनोबा तीन दिनों के उपवास के बाद सूत कात रहे थे। स्वस्थ थे। किशोरलाल भाई बोले, "बाबा! बापू को आपकी बहुत चिन्ता थी। उनको चिन्ता थी कि आप कारागार में जाते ही उपवास प्रारम्भ कर देंगे। उन्होंने प्यारेलालजी से कहा, 'तत्काल विनोबा को सन्देश भेजो कि अभी सरकार से पत्र-व्यवहार चल रहा है। जब तक सरकार का उत्तर नहीं आता है तब तक उपवास का प्रयोजन नहीं है।' यह सन्देश उन्होंने बिल्कुल अभी भेजा है। प्यारेलालजी ने कारागार में आपको यह सन्देश देने के लिए मुझसे कहा है। मैंने डिप्टी कमिश्नर साहब से आपसे मिलने की अनुमति माँगी। क्योंकि किसी अन्य पर आप विश्वास न करते। कमिश्नर ने मुझको गवर्नर के पास भेज दिया। उन्होंने चेतावनी दी कि सन्देश देने के अतिरिक्त कुछ नहीं कहना है। मैं कुछ कहूँगा भी नहीं। परन्तु आप उपवास न करें। बस इतना ही।"

"ठीक है किशोरलालजी! बापू के उपवास में यदि मैं सहभागी हो जाता तो मुझको अधिक आनन्द मिलता। मैंने विचार नहीं किया था। विचारक तो बापू हैं। मेरे पास केवल श्रद्धा है। इस श्रद्धा के बल पर ही मैं उपवास करनेवाला था।"

किशोरलाल भाई अधिक कुछ न कहकर बाहर चले गये। परन्तु उनका वार्तालाप सुननेवाले जेलर ने विनोबा की त्वरित रवानगी नागपुर के कारागार को कर दी। पहले के अनेक बन्दी 'बाबा...बाबा...' कहते हुए उनके पास आये। नागपुर कारागार से उनको मुक्ति दो वर्ष पहले ही तो मिली थी। फिर वहीं आ गये थे। बहुत से कैदी वे ही थे परन्तु जेलर बदल गया था। उसने विनोबा का रूप देखा, उपवास की कथा सुनी, कारागार में अन्य लोगों से उनकी मित्रता देखी और फिर उसने तत्काल गवर्नर को पत्र लिखा—

'अभी हाल में जेल में कैदी नम्बर एक सौ तीन ने प्रवेश किया है। नाम है विनायक भावे। वह बहुत ही भीतरी और भयंकर मनुष्य है। यहाँ उसका पहले से परिचय है। देश की विस्फोटक परिस्थिति की चिनगारी यहाँ भी भड़कने की सम्भावना है। इसलिए इनको यहाँ से अन्य भाषी राज्य में भेज दिया जाय। इससे इनके सामने भाषा की समस्या आएगी तथा हमारी समस्या का समाधान हो जाएगा।'

गवर्नर ने तत्काल स्वीकृति दे दी और विनोबा को वेलूर के कारागार में भेज दिया गया। यहाँ सचमुच भाषा का प्रश्न उपस्थित हो गया। तमिल, तेलुगु, कन्नड तथा मलयालम-भाषी कैदी यहाँ थे। जेलर अँग्रेज था। उसने महात्माजी का नाम सुना था तथा उनके सहयोगी शिष्य के रूप में विनोबा का नाम भी सुना था। वह अत्यधिक विनम्र भाव से विनोबा के पास आकर बोला, "प्लीज सर! इस समय आपको क्या चाहिए?"

"बारबर।" विनोबा ने हँसते हुए उत्तर दिया, "जेलर साहब! पिछले चौदह-पन्द्रह दिनों से दाढ़ी नहीं बनी है। बाल भी बहुत बढ़ गये हैं। और एक बात, यहाँ की भाषा मुझको सिखाने के लिए कोई एक आदमी भेजिए!"

जेलर चकित हो गया। बाद में उसके ध्यान में यह बात आयी कि प्रत्येक नियम का विधिवत् पालन करने के बाद भी इस मनुष्य के पास पर्याप्त समय बच रहता था। उस बचे हुए समय में यह व्यक्ति एक साथ ही चार-चार भाषाएँ सीखता था, सूत कातता था और रूस का साम्यवाद सुनता था। दिन में अठारह घण्टे कार्य में व्यस्त रहने पर भी यह व्यक्ति थोड़ा-सा भी थकता नहीं था। बल्कि वह आनन्दित और प्रसन्न दिखाई देता था।

दो-तीन महीने निरीक्षण करने के बाद जेलर एक दिन विनोबा के पास आकर बोला, "आप थकते क्यों नहीं हैं?"

"क्योंकि मेरी मनःस्थिति थकने की नहीं है।"

"मन का मतलब?"

"मन का अर्थ बुद्धि नहीं है। हिन्दू संस्कृति में मन का अर्थ ईश्वर-जैसा है। जो दीखता नहीं है। परन्तु उसकी प्रतीति होती है। उसको 'इम्मॉर्टल फीलिंग' (अमृत

अनुभूति) भी नहीं कह सकते। वह शरीरशास्त्र में नहीं है, परन्तु उस मन का ही सारा खेल हम माना करते हैं।''

''मैं नहीं समझा!''

''समझ सकते ही नहीं जेलर साहब! मन नाम की एक संकल्पना है। जो दिखाई नहीं देती है, परन्तु है। वायु की प्रतीति होती है, दिखाई नहीं देती है। सुगन्ध की अनुभूति होती है, दिखाई नहीं देती है। उसी प्रकार शरीर में एक चेतना देनेवाला आत्मा होता है और एक मन होता है।''

''बाबा! प्लीज...एकदम इतना मत कहिए। मुझको समझने दीजिए। मेरी बुद्धि बहुत छोटी है। मैं ही अब कुछ प्रश्न करता हूँ। प्रत्येक धर्म का एक धर्मग्रन्थ होता है। उस धर्म का मूल पुरुष होता है। जैसे बाइबिल को लीजिए। जीवन की प्रत्येक घटना की वह परीक्षा कर सकता है। सीख देने का काम बाइबिल करता है। बाइबिल प्रत्येक समय सिग्नल का काम करता है।''

''बाइबिल, कुरान ये धर्मग्रन्थ हैं तथा येशू ख्रिस्त-मुहम्मद पैगम्बर ये जैसे धर्म-संस्थापक हैं वैसा हिन्दू धर्म का कोई मूल पुरुष नहीं है। धर्मग्रन्थों का निर्माण कब-किसने किया है—ज्ञात नहीं है। जीवन के प्रत्येक आधार का एक ही ग्रन्थ माना जाता हो, यह बात भी नहीं है। इसका कारण यह है कि हिन्दू धर्म सर्वधर्म समावेशक है। अनेक संस्कृतियाँ उसमें विलीन हो सकती हैं। अनेक प्रवृत्तियों की कसौटी एक ही धर्मग्रन्थ नहीं हो सकता है। कारण यह है कि संसार के प्रत्येक मनुष्य की भावना भिन्न है। ये सब भावनाएँ अनेक ग्रन्थों से प्रकट हुई प्रतीत होती हैं।''

''परन्तु आप कुछ तो मानेंगे या नहीं?''

''हम सब कुछ मानते हैं और सब कुछ नहीं मानते हैं।''

''अर्थात्?''

''आप धर्म संस्थापक को ईश्वर मानकर पूजते हैं। परन्तु हमारे यहाँ एक ईश्वर नहीं है।''

''कमाल है!''

''आपके कथनानुसार सचमुच कमाल है जेलर साहब! यहाँ बड़े-बड़े लोगों की मति भ्रान्त हो जाती है। कलकत्ते में श्री रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द के गुरु हो गये हैं। उनके विषय में सुनकर मैक्समूलर भारत में आया और वह भ्रम में पड़ गया। बोला, 'मुझको पहले हिन्दू संस्कृति का अध्ययन करने दो!' इस धर्मग्रन्थ की संस्कृति का अध्ययन सरल है क्या? यह सब एक ही धर्मग्रन्थ में मिल जाएगा क्या? नहीं। हिन्दू मन में जमे हुए संस्कृति के कन्दमूलों का परीक्षण ऊपर से देखकर किया जा सकता है क्या? नहीं जेलर साहब! यहाँ प्रत्येक निसर्ग-कृति की पूजा होती है। सूर्य की पूजा, चन्द्र की पूजा, वर्षा की, मेघों की, वायु की, धरती की, वृक्षों की, पशुओं की, बदलती

ऋतुओं की, ऋतुओं में उत्सवों की, उत्सवों में उत्साह की पूजा होती है। ईश्वर को विविध रूपों में देखा जाता है। निसर्ग में मनुष्य और मनुष्य में निसर्ग एकरूप होते हैं। इसी को आत्मा और परमात्मा कह सकते हैं।''

जेलर ने अपनी दोनों हथेलियों में सिर को कसकर दबाया और कहा, ''बाबा! थोड़ा-थोड़ा समझ में आता है। परन्तु सिर में आँधी आयी है। आत्मा-परमात्मा आये कहाँ से हैं?''

''जेलर साहब! बात सीधी-सादी है। तालाब में पेड़ का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है तब हम समझते हैं कि तालाब के किनारे निश्चित ही एक पेड़ है। यह उसी का प्रतिबिम्ब है। उसी प्रकार जिसने यह सृष्टि रची है, जिसकी असंख्य प्रतिमाएँ हमको दिखाई दे रही हैं, उन प्रतिमाओं का निर्माण करनेवाला कोई अद्वितीय पुरुष होगा न? हमारे शरीर में चेतना संचरित करनेवाली कोई तो शक्ति होगी। वृक्ष का प्रतिबिम्ब वृक्ष जैसा, उसी प्रकार वह हम जैसा ही होगा! हममें जो आत्मा है वह उस परमात्मा का ही रूप होगा, यह निश्चित है।''

जेलर बड़ी देर तक चुप बैठा रहा। विनोबा ने ध्यान दिया कि अँग्रेज लोग समझाने पर समझ लेते हैं, आत्मसात् करने में विलम्ब नहीं करते हैं। उनमें आलस्य नहीं होता है। अत्यन्त नम्रता से साफ-सुथरी बात वे करते हैं। अपने इसी गुण से उन्होंने विश्व को जीता है। अगर इस स्थान पर कोई हिन्दुस्तानी होता तो वह उकताकर चला गया होता। जेलर एक दुर्बल व्यक्ति से विनम्रता से बातें कर रहा है—यह देखकर अनेक कैदी उत्सुकता से देख रहे थे। ऑफिस के लोग आदर से दूर खड़े-खड़े सुन रहे थे।

''आप किसको आदर्श मानते हैं?''

''संस्कृति प्रत्येक प्राकृतिक शक्ति के सम्मुख नतमस्तक होती है। परन्तु हमारे यहाँ आदर्श एक नहीं है, आदर्श अनेक हैं। अनेक प्रवृत्तियों के अनेक आदर्श। फिर भी श्रीराम और श्रीकृष्ण हिन्दुस्तानी मनुष्यों के मन के आदर्श रूप हैं।''

''उन दोनों के नाम मैंने सुने हैं। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझको प्रतिदिन थोड़ी देर तक अपने धर्म के विषय में जानकारी दिया करें। आज इतना ही पर्याप्त है। आप कुछ भी कहिए, बाबा! परन्तु हमारे लोग जब इस धर्म का अध्ययन करेंगे तब आश्चर्यचकित हो जाएँगे। यदि छोटे से आधार पर हमारा जीवन सफल हो सकता है तो आपके पास तो असीम और अनन्त जीवन का तत्त्वज्ञान है। महात्मा गाँधी जैसा मनुष्य सेवाग्राम में बैठकर देश को हिला सकता है—यह विराट् शक्ति आपकी संस्कृति की है।''

''थैंक्यू जेलर साहब!''

तदनन्तर विनोबा का एक नियम ही बन गया। वे तमिल, तेलुगु, मलयालम और

कन्नड—चारों भाषाओं को पढ़ते। सूत कातते हुए वे साम्यवादी विचार सुनते तथा जेल के नियमों का पालन करने के पश्चात् जेलर को उसके प्रश्नों के उत्तर देते। समय का गणित व्यवस्थित हो गया था। दिन बीतते जा रहे थे। ऋतुचक्र अव्याहत चल रहा था।

उस दिन घोर अन्धकार छा गया। कानों के पर्दे कँपा देनेवाली बिजली गरज रही थी। फिर मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ हो गयी। जेल के बीच के चौक में बरसात हो रही थी।

"आज कौन-सा दिन है ? कौन-सी तिथि है ? यहाँ आने पर कुछ पता ही नहीं चलता है। सूर्य उदित होने पर दिन और अस्त होने पर रात!" विनोबा कुछ अधिक अस्वस्थ हो गये थे। उन्होंने आवाज देकर सिपाही को बुलाया और पूछा, "यह कौन-सा महीना है ?"

"अगस्त!" उसने उत्तर दिया।

"अर्थात् आषाढ़ प्रारम्भ हो गया होगा। यमुना लबालब भरी बह रही होगी! मथुरा और गोकुल के बीच बहनेवाली लोकमाता! उसी ने अपने कन्धे पर बैठाकर अत्यन्त स्नेह से सँभालकर श्रीकृष्ण को गोकुल में पहुँचाया था। उस समय ऐसी ही मूसलाधार वर्षा हो रही थी।"

विनोबा की आँखों के सामने श्रीकृष्ण का जन्म और उनका जीवन साकार हो गया। प्रात:काल नियत समय पर जेलर आया। उसने पूछा, "कल आपने 'कौन-सा महीना चल रहा है ?' यह क्यों पूछा था बाबा ?"

"कल की मूसलाधार वर्षा, घनघोर अन्धकार देखकर मुझको श्रीकृष्ण के जन्म की याद आ गयी। इसलिए सहज ही पूछ लिया था।"

"बाबा! श्रीकृष्ण की तथा श्रीराम की कथाएँ आपने कही हैं। श्रीकृष्ण का बड़प्पन किसमें है ?"

"श्रीकृष्ण हम-तुम जैसे ही मनुष्य हैं। जन्म हुआ राजभवन के कारागार में। क्षत्रिय होते हुए भी ग्वाल-बालों के साथ पले-बढ़े। अपनी बुद्धि-चपलता से अनेक काँटे उन्होंने नष्ट किये। परन्तु इसी से वे बड़े सिद्ध नहीं होते हैं। वे बड़े हैं तीन असाधारण गुणों के कारण। सत्रह बार जरासन्ध के द्वारा पराजित होकर भी वे मन से पराजित नहीं हुए। अपयश को सहन करके भी वे प्रसन्न रहे। सत्य के लिए और मित्रता के लिए वे साथी बने और कालातीत जीवनानुभूति उन्होंने गीता के रूप में कथन की। कारागार में बन्दी बनी हुई सैकड़ों स्त्रियों के वे नाथ बन गये। इन बातों से श्रीकृष्ण बड़े बने हैं। एक और राजा बहुत बड़े हो गये हैं—वे हैं शिवाजी राजा।"

"मैंने हिस्ट्री पढ़ी है। मैं उनसे बहुत इम्प्रेस हुआ हूँ। उनका बड़प्पन किसमें है बाबा ?"

"आपने पढ़ा है तो आप ही बताइए!"

"शिवाजी जैसे अनेक राजा हैं बाबा! एक मराठी पर्वतीय प्रदेश का मनुष्य दिल्ली-दरबार से शत्रुता करता है, यही बहुत बड़ी बात है।"

"जेलर साहब! यह बहुत बड़ी बात नहीं है। वे बड़े हैं अपनी सामाजिक जानकारी के कारण। जो पर-धर्म में चले गये थे उनको स्वधर्म में लाने का साहस उन्होंने किया। इसलिए वह बड़े हैं। उस समय जो हिन्दू राजा थे वे तब जागते थे जब शत्रु दरवाजे पर आ जाता था। परन्तु शिवाजी को शत्रु की पूरी जानकारी रहती थी। वह कब निकला है, उसकी छावनी कहाँ है, उसके गुट में क्या-क्या योजनाएँ बन रही हैं। इसकी राई-रत्तीभर जानकारी रहती थी! मुसलमानों से बढ़कर धोखा-विश्वासघात करने का और उनकी नीति उन्हीं पर उलटने का सामर्थ्य केवल शिवाजी में था। इसलिए वह बड़े ठहरते हैं! इतना ही नहीं, हिन्दू धर्म में साकार मूर्ति पूजा होते हुए, जब अफजल खान मन्दिरों को उद्ध्वस्त करता आ रहा था तब शिवाजी महाराज ने कहा, 'देवता मूर्ति में नहीं हैं। देवता मनुष्य के मन में हैं। मन्दिरों का फिर से निर्माण हो जाएगा, मूर्तियों का निर्माण भी हो जाएगा। परन्तु पहले मनुष्य के रूप में उपस्थित राक्षस का विनाश करना चाहिए।' इसलिए शिवाजी बड़े हैं।"

जेलर ने कहा, "और महात्माजी बड़े ठहरते हैं उनके सत्याग्रह के कारण, अहिंसा के कारण!"

यह सुनकर विनोबा हँस पड़े।

जेलर ने पूछा, "क्यों हँसे बाबा?"

"सचमुच जेलर साहब! आपके स्वभाव का बड़प्पन दूसरे के बड़प्पन को समझ लेने में है। आपके कारण मेरा समय कैसे बीत गया। इसका मुझको पता भी नहीं चला। बस एक काम ही नहीं हो सका। महात्माजी को पत्र लिखने का!"

"आइ ऐम ऐक्स्ट्रीमली सॉरी, बाबा! केवल नातेदारों को ही पत्र लिखने की यहाँ छूट है। मैंने आपसे कहा था कि आप अपने सम्बन्धियों को पत्र लिखिए। उसको ठीक-ठाक भेजने का उत्तरदायित्व मेरा है।"

"परन्तु जेलर साहब! महात्माजी के अतिरिक्त मेरा कोई निकट का सम्बन्धी नहीं है, इस कारण मैं पत्र ही नहीं लिखता हूँ।"

जेलर ने अत्यधिक विनम्रता से कहा, "आइ ऐम सॉरी अगेन!"

वर्धा-नागपुर-बेलोर जेल से विनोबा को मध्य प्रदेश की शिवनी जेल में भेजा गया। यह आदेश लेकर जेलर विनोबा के पास आया।

"मुझको इस तरह क्यों घुमा रहे हैं?"

"शायद आप खतरनाक राजनीतिक कैदी हैं। आप असाधारण हैं। इसीलिए यह घूमना आपके हिस्से में आया है। फिर भी आप एक वर्ष से यहाँ हैं। आयु का कितना समय जेल में बीतेगा बाबा?"

"जब तक आप लोग यहाँ से नहीं जाते तब तक!"

जेलर चौंक पड़ा। उसने ऐसे स्पष्ट उत्तर की अपेक्षा नहीं की थी।

उसने कहा, "अतिक्रमण अधिक दिन तक नहीं टिकता है बाबा! मैं कल अपने देश को लौट जाऊँगा तब भी आपके साहचर्य को भूल नहीं सकूँगा। गुड बाइ माइ बॉस! गुड बाइ अगेन!"

विनोबा जब शिवनी जेल में आये तब हिन्दी-भाषी लोगों के कारण उनको वहाँ बहुत अच्छा लगा। कारावास के अब पन्द्रह महीने रह गये थे। उन पर राजद्रोही होने का आरोप था। गोपुर में पवनार के आश्रम को 'सील' (बन्द) कर दिया गया था—इतनी ही जानकारी उनको मिली थी। जो होता है, वह ईश्वर को स्वीकार होता है, यह उनका मत था। सन् 1942 में उनको कैद कर लाया गया था। उसमें पन्द्रह महीने बीत गये थे। अभी कम-से-कम पन्द्रह महीने और जेल में रहना था। जब यह बात उनको कही गयी तब वे बोले, "केवल पन्द्रह महीने ही!"

"क्यों? आपको दुःख-कष्ट नहीं होता क्या?"

"नहीं!"

"धन्य हैं आप!"

ज्योतिप्रसाद बसु नामक राजकैदी उस समय शिवनी जेल में था। उसने कहा, "बाबा! आप स्थितप्रज्ञ हैं। भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के अन्त में स्थितप्रज्ञ मनुष्य के जो लक्षण कहे हैं, वे आपमें हैं।"

"नहीं ज्योतिप्रसाद! भगवान ने जिन लक्षणों का वर्णन किया है वे बहुत भिन्न हैं। ऊपर-ऊपर समता दिखाई देने पर भी वह शक्ति मुझमें नहीं है।"

यहाँ का वातावरण अच्छा था। कैदियों से लेकर जेलर तक, सभी हिन्दी-भाषी थे। वैसे अब विनोबा हिन्दुस्तान की सभी भाषाएँ जान चुके थे—लिपि सहित! फ्रेंच जानते थे। अँग्रेजी, संस्कृत जानते थे। अब संसार में कहीं जाने पर कोई कठिनाई नहीं थी।

वेलोर जेल के जेलर ने पूछा था, "बाबा! लिपि सहित इतनी भाषाएँ सीखने का मोह आपको क्यों है?"

विनोबा ने कहा था, "इसका उत्तर मैं नहीं दे सकता। परन्तु प्रत्येक बात का ज्ञान होना चाहिए, प्रत्येक बात की पूरी-पूरी जानकारी होनी चाहिए, यह मैं अनुभव करता रहता हूँ।"

शिवनी जेल में तो कोई समस्या ही नहीं थी। विनोबा ने निश्चय किया, कल से दूसरे अध्याय पर प्रवचन करना है। धुलिया की जेल में सम्पूर्ण भगवद्गीता पर प्रवचन दिया था। उस समय साने गुरुजी जैसे संवेदनशील लेखक थे। उन्होंने तल्लीन होकर उसको लिख लिया था। विनोबा ने निश्चय किया कि यहाँ दूसरे अध्याय के

प्रवचन को वे स्वयं ही लिख लेंगे।

सन्ध्या-समय विनोबा वृक्ष के नीचे बैठ गये। सूर्य अस्तंगत हो रहा था। वातावरण में गुलाबी रंग था। चौक से आकाश का गुलाबी रंग दिखाई दे रहा था। विनोबा ने अपनी मधुर आवाज में गीत गाना प्रारम्भ किया। एक के बाद एक श्लोक वे कहते गये। पहला अध्याय समाप्त हो गया। विनोबा कहने लगे—

"जब मैं धुलिया-कारागार में था तब मैंने भगवद्‌गीता पर प्रवचन दिया था। और अनजाने ही एक भक्तिभाव वहाँ जाग्रत हो गया। कारण यह कि महाभारत और रामायण, ये दोनों ग्रन्थ हमारे धार्मिक ग्रन्थ तो हैं ही, उससे अधिक राष्ट्रीय ग्रन्थ हैं। राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण रखने में इन ग्रन्थों की आवश्यकता सदैव रही है। उनके पात्र हमारे जीवन से एक रूप हो गये हैं। रामायण और महाभारत के पात्रों ने सम्पूर्ण भारतीय जीवन को हजारों वर्षों से प्रभावित कर रखा है। संसार में अन्य महाकाव्यों के पात्र इस प्रकार लोकजीवन में रमे हुए दिखाई नहीं देते हैं। इस दृष्टि से ये दोनों ग्रन्थ निस्सन्देह अनुपम और अद्‌भुत ग्रन्थ हैं। रामायण मधुर गीत काव्य है तो महाभारत व्यापक समाजशास्त्र है। व्यासजी ने एक लाख श्लोकों की रचना कर असंख्य चित्र और चरित्रों का बड़ी कुशलता से यथावत् चित्रण किया है। निर्दोष तो परमेश्वर के अतिरिक्त कोई है ही नहीं, उसी प्रकार ऐसा भी कोई नहीं है जिसमें केवल दोष ही हो!"

विनोबा कह रहे थे, "इतना बड़ा महाभारत व्यासजी ने क्यों लिखा? इसका उत्तर केवल भगवद्‌गीता है। जीवन का तत्त्वज्ञान बतानेवाली गीता महाभारत का सार है। मोह के वश में हुए अर्जुन को कर्तव्य के लिए जाग्रत करने का कार्य करते हुए भगवान ने उसको जो तत्त्वज्ञान कहा, वह आज पाँच हजार वर्षों के बाद भी शुद्ध-पवित्र-आचरणीय और आदर्श है। जब अर्जुन ने पूछा, 'हे श्रीकृष्ण! मुझको किन लोगों से युद्ध करना है, यह देखने के लिए आप मेरा रथ सेना के मध्यभाग में खड़ा कर दीजिए!' तब श्रीकृष्ण ने तत्काल उस रथ को कौरवों और पाण्डवों की सेना के मध्यभाग में खड़ा कर दिया। एक ओर ग्यारह और दूसरी ओर पाण्डवों की सात अक्षौहिणी सेना को खड़ी देखते ही वीर अर्जुन क्षात्रधर्म भूलकर मोह के वशीभूत हो गया। और फिर स्वयं अपने और समाज के स्पष्टीकरण देते हुए युद्ध से इनकार करने लगा। तब भगवान ने उससे स्पष्ट कहा, 'स्वधर्म का पालन करो। स्वधर्म का अर्थ है मूलवृत्ति, मूल स्वभाव। इस स्वभाव के विरुद्ध जाने पर तुमको पश्चात्ताप का मरण आएगा। इससे तो अच्छा है कि तुम क्षात्रवृत्ति से युद्ध में प्रवृत्त होओ। कर्म करो। तुम जैसे पुरुष को अहिंसा का पालन कर असत्य का डंका बजाना उचित नहीं है। सत्यधर्म और स्वधर्म के लिए तू युद्ध में प्रवृत्त हो।' "

विनोबा कह रहे थे। रात हो गयी थी। भोजन की घण्टी पाँच मिनट देर से हुई

थी। विनोबा ने कैदियों के सम्मुख हाथ जोड़े और हँसकर बोले, "मित्रो! महाभारत की गीता कोई ऐसी कहानी नहीं है जो एक दिन में समाप्त कर दी जाए। गीता कर्मयोग का वर्णन करती है। कर्म कोई भी हो, वह करना ही चाहिए। अब अपने सामने भोजन कर्म है। वह समय पर करना चाहिए। तो अब उठते हैं।"

कैदी मुक्त मन से हँस पड़े। उसी समय उठते हुए विनोबा बोले, "मराठी में एक छन्द है। उसमें भोजन को यज्ञकर्म माना गया है। वह कविता है :

मुख में कौर रखते समय नाम लो हरि का।
सहज यज्ञ होता है, नाम लेते हरि का।
जीवन करे जीवन्त, अन्न है पूर्ण ब्रह्म!
उदर-भरण को मानिए एक यज्ञकर्म!

आज से प्रात:कालीन भोजन के समय हम यह छन्द बोला करेंगे।"

भोजन के बाद लौटने पर सहज ही विनोबा को गागोदे के घर के आँगन में भोजन की पंगतों का स्मरण हो आया। स्पृहणीय अन्न पदार्थों से सजा हुआ केला का पत्ता, बैठने के लिए पटा, ताँबे का चमचमाता लोटा, देवगृह में फैलती हुई धूपबत्ती की सुगन्ध। पटा के चारों ओर रंगोली। भोजन के लिए बैठे हुए दादा, गोपालराव काका, पितामह, कोई आये हुए अतिथि, फिर विनोबा, बालकोबा और शिवाजी। यही क्रम होता था। पितामह कहते, "विनायक, श्लोक बोल!" और फिर एक के बाद एक श्लोक बोले जाते।

पितामह के पास बैठे हुए दादा कभी 'शाबाश' नहीं कहते थे। परन्तु कौतुक-भरी दृष्टि से देखते थे। वे सयाजीराव गायकवाड़ के राजदरबार में नौकरी करते थे। अतिशय परिश्रमी थे। उनकी सत्यनिष्ठा प्रसिद्ध थी। छुट्टी लेकर वे दीवाली पर घर आते थे। आते समय पुस्तकें लाते थे। रामायण-महाभारत की कहानियों की पुस्तक लाते थे। वैसे दादा अधिक बातें नहीं करते थे। परन्तु उनका प्रभाव घर के सभी अनुभव करते थे।

बचपन में माता जितनी निकटस्थ लगती थी, दादा उतने ही दूरस्थ लगते थे, पराये लगते थे। दादा का आदर्श मन पर अंकित था, परन्तु उससे भी अधिक बापू का प्रभाव था। बापू के प्रत्येक शब्द को, उनकी प्रत्येक कृति को मन स्वीकार करता था। दादा भी अनेक प्रयोग करते थे। गणित से वे प्रयोग सिद्ध करते थे। परन्तु बापू के प्रयोग उनके मन में समाये थे।

विनोबा को याद आया, जेल में प्रवेश करते समय उसी क्षण से उन्होंने उपवास आरम्भ कर दिया। उन्होंने यही बापू से कहा था। बापू को जैसे ही इसका पता चला उन्होंने तत्काल सूचना भेजी और उपवास समाप्त करवाया। परन्तु उपवास समाप्त

करने से विनोबा प्रसन्न नहीं हुए थे।

जब विनोबा वेलोर कारागार में थे तब कुछ दिनों तक उन्होंने मौन व्रत रखा था। उस समय उनको आत्मचिन्तन का एक नया मार्ग बड़ा स्पृहणीय लगा। दिनभर बातें करते समय मन यद्यपि कार्यरत रहता है तथापि वह मौनव्रत में अधिक कार्य करता है, विनोबा को ऐसा ही लगता था। मौनव्रत समाप्त हुआ और उसी दिन उनको पता चला कि येरवडा-कारागार में महात्माजी ने इक्कीस दिन का उपवास घोषित कर दिया है—11 फरवरी से 3 मार्च 1943 तक। सतत बीस दिनों तक विनोबा ने भी उपवास घोषित कर दिया। उस समय उनके मुख पर आश्चर्यजनक प्रसन्नता थी। यह देखकर उस अँग्रेज जेलर ने कहा भी, "बाबा! उपवास की इतनी प्रसन्नता किसलिए है?"

"यह कैसे बताया जा सकता है?"

"फिर भी?"

"जेलर साहब! भारतीय संस्कृति त्याग की संकल्पना पर खड़ी है। यहाँ की स्त्रियाँ वर्षानुवर्ष व्रत-उपवास करती रहती हैं—कभी पति के लिए, कभी बच्चों के लिए, कभी परिवार के लिए! महात्माजी का यह उपवास समाज के सुख के लिए है और मैं केवल उसको सहयोग दे रहा हूँ।"

"आप इतने दिन तक उपवास कर नहीं सकेंगे!"

"अधिक से अधिक क्या होगा जेलर साहब?"

वह थोड़ा झिझका और फ़िर बोला, "मृत्यु भी हो सकती है!"

"मृत्यु ही होगी! जिस बात से हम जीवन-भर डरते रहते हैं वही मृत्यु आ जाएगी—यही न? परतन्त्रता में मृत्यु स्वीकार करने की अपेक्षा स्वतन्त्रता की माँग करते हुए मृत्यु को स्वीकार करना सदैव अच्छा ही है।"

"आपको मृत्यु से भय नहीं लगता है?"

"यह प्रश्न आप हमारे देश के लाखों युवकों से पूछेंगे तब भी एक ही उत्तर मि गा—स्वतन्त्रता! स्वतन्त्रता के लिए मरण तथा पुनः जन्म लेकर मरण! लड़ते-ल‌ड़ मरण!"

"यू आर वेरी वेरी ग्रेट बाबा!" जेलर भावाभिभूत होकर बोला, "मैं अँग्रेज मनुष्य हूँ, फिर भी मैं दूसरे रिलीजन का और आचार, विचार, संस्कृति का आदर करता हूँ। कारण यह है कि मैं एक लेखक और अध्येता हूँ। मैं ग्रीक संस्कृति का भी आदर करता हूँ। परन्तु अब तक यह आदर अध्ययन से था, अब मैं प्रत्यक्ष धर्मग्रन्थ और प्रत्यक्ष संस्कृति का अनुभव कर रहा हूँ।"

वेलोर जेल के इस प्रसंग का स्मरण कर विनोबा को हँसी आ गयी। जेलर प्रतिदिन डॉक्टरों को लेकर आता था। दिन में दस बार स्वास्थ्य की पूछताछ करता था। भोजन का आग्रह करता था, प्रार्थना करता था। एक बार तो वह चिढ़कर बोला,

"बाबा! आप स्वयं को बहुत ग्रेट समझते हैं। शरीर को चाहे जैसे झुका देते हैं। उपासा रखते हैं। आपको मृत्यु का भय नहीं है, यह आप कहते हैं परन्तु बाबा! आप यह बात भूल रहे हैं कि इस जन्म के बाद फिर आपका जन्म नहीं है! इसी जीवन को जीना हमारे हाथ में है।"

विनोबा ने मुक्त मन से हँसकर कहा, "जेलर साहब! आपका मुझ पर जो प्रेम है, उसको मैं जानता हूँ। परन्तु यदि इतना ही जीवन जीना है तो फिर प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छानुसार क्यों न जीए? मैं कुछ न खाकर जीना चाहता हूँ अथवा न खाकर मैं मृत्यु मार्ग पर जाना चाहता हूँ, तो जाने का अधिकार मुझको है।"

"नहीं! आप कैदी हैं। आप ऐसा नहीं कर सकते!"

"जेलर साहब! आप शरीर को कैद कर सकते हैं और किया भी है, परन्तु मेरा मन! मेरे मन की भावनाओं को आप कैद नहीं कर सकते हैं।"

"परन्तु इस ज़ीवन में यह आग्रह क्यों?"

"आग्रह मृत्यु का नहीं, आग्रह स्वतन्त्रता का है। आग्रह राष्ट्रहितार्थ है। आपके कथनानुसार आगे जीवन न भी हो तो भी कोई बात नहीं। इसी जीवन में जो कुछ किया जा सकता है वह राष्ट्रहितार्थ करना गलत सिद्ध होगा क्या जेलर साहब? कदापि नहीं। हमारी संस्कृति में यह देह नश्वर माना गया है और आत्मा अमर माना गया है। आत्मा की मृत्यु नहीं होती। पुनरपि जननं-पुनरपि मरणं—यह चक्र अखण्ड चल रहा है।"

"तो इस जन्म की उस जन्म को पहचान भी कैसे होगी?"

"न हो पहचान! यह आत्मा नया शरीर धारण करेगा—अंगभूत गुणों के साथ! तब लोग कहेंगे, इसमें पिता के दोष हैं, गुण हैं।"

"परन्तु आप तो मरेंगे ही न? आपको इस जन्म में सब कुछ जानते हुए भी कुछ भी नहीं मिला। अगले जन्म में यह स्मृति नहीं रहेगी कि पिछले जन्म में हम कौन थे, तो फिर लाभ क्या है?"

"प्रत्येक बात में अपना लाभ देखने की यह आचारसंहिता नहीं है जेलर साहब! यहाँ लाभ दूसरों को मिले, कष्ट दूसरों के लिए किये जाएँ, अपने कारण दूसरों को लाभ मिले, यह हमारी शिक्षा है।"

"इन बातों को छोड़ो बाबा! पिछले एक वर्ष से मैं आपसे बातें करके और चर्चा करके ऐसा पागल हो गया हूँ कि स्वधर्म को भूल गया हूँ।"

विनोबा मन-ही-मन मुस्कराये। बोले, "भारतीय संस्कृति जितनी सरल है उतनी ही गूढ़ है जेलर साहब! यहाँ की हवा, यहाँ की प्रकृति, यहाँ की सृष्टि बचपन से ही दूसरों के लिए जीने की शिक्षा देती है।"

तमिलनाडु की उस वेलोर जेल की अपेक्षा यहाँ शिवनी में अधिक अपनत्व प्रतीत होता था। 'अपनत्व' शब्द पर ध्यान जाते ही बाबा ठहर गये।

महादेव भाई ने एक बार उनको स्थितप्रज्ञ कहा था, "बाबा! भगवद्गीता में कहा गया है कि 'सुख-दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ'—तदनुसार ही आपकी वृत्ति है। आप आश्रम में रहें, ऐवरेस्ट पर जाएँ, पाताल में, स्वर्ग में, कारागार में कहीं भी जाएँ, आपके लिए सब समान है। कारण यह है कि बाबा आप स्थितप्रज्ञ हैं।"

"सो कैसे?"

"प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्ममन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

भगवान श्रीकृष्ण का यह कथन आप पर लागू होता है।"

"गीता मेरा श्वास है। उसके आधार से मैं जीता हूँ। परन्तु महादेवभाई! मैं न तो अर्जुन जैसा हूँ और न श्रीकृष्ण जैसा हूँ, न ही मैं श्रीकृष्ण के कथनानुसार कर्मयोगी या स्थितप्रज्ञ हूँ। मैं केवल प्रयत्नवादी हूँ! मैं केवल प्रयोगवादी हूँ!"

और आज इस प्रयोगवादी विनोबा को 'अपनत्व' की प्रतीति हुई थी, तो फिर मैं स्थितप्रज्ञ कहाँ रहा?

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

—सर्वत्र स्नेहभाव रखकर, अशुभ का शोक न करते हुए; द्वेषभाव, क्रोध, मत्सर न रखनेवाला स्थिर बुद्धि का—स्थितप्रज्ञ—होता है। परन्तु मैं ऐसा कहाँ हूँ? मुझको तो क्रोध आता है अन्याय से, अस्वच्छता से, दाम्भिकता से, असत्य से चिढ़ उत्पन्न होती है। उस समय स्नेहभाव रखकर·सामंजस्यपूर्ण व्यवहार मैं कहाँ रख पाता हूँ?

उस दिन मैंने मौन रखा था। एक सरल स्वभाव के कैदी ने भोलेपन से मुझसे पूछा था, 'बाबा! तुम बोलते क्यों नहीं हो?' अन्य लोगों ने उसको बताया, परन्तु उस बात को स्वीकार करने को वह तैयार ही नहीं था। आते-जाते वह पूछता, 'बाबा! कुछ तो बोलो। न बोलना, न रोना स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है। बाबा! बोलो तो, कुछ तो बोलो! अरे लोगों पर गुस्सा आया होगा तो जोर-जोर से भगवान का नाम ले लो। कम-से-कम अपनी माँ को ही पुकार लो!'

मेरे मौन व्रत का अर्थ कोई क्या जानेगा और यह भोला मनुष्य तो उसको बिल्कुल ही नहीं समझेगा! शब्दों पर विजय प्राप्त करनी थी। और यह उत्कट इच्छा हो रही थी कि शब्दों के कोड़े उसको लगाये जाएँ! अन्त में, क्या किया जाए—जब यह समझ में नहीं आया तो उसके सामने अपना सिर पटक दिया! उसको दोनों हाथों के संकेत से जाने को कहा। वह अज्ञानी था, परन्तु मैं तो जानकार था! फिर भी परीक्षा देते समय भी सन्तुलन बिगड़ता जा रहा था! उस अँग्रेज जेलर ने न जाने क्या समझा,

परन्तु उसने उस कैदी को फिर इधर आने नहीं दिया! मौन भंग कर क्षण भर उसको यदि समझा दिया जाता तो क्या आकाश टूट पड़ता? परन्तु नहीं, क्रोध का आवेग रोका नहीं जा सका था।

यह क्रोध क्या अभी ही आया था? जमदग्नि-कुल में जन्म नहीं हुआ तो क्या हुआ? मैं औरों के साथ सचमुच अपनत्व का व्यवहार करता हूँ क्या? कोई कितना ही कष्ट दे, फिर भी उसको क्षमा कर देते हैं न! परन्तु मेरा वह स्वभाव ही नहीं है। बापू का स्वभाव मेरे पास नहीं है। वह ममत्व नहीं है। उतना सामंजस्य नहीं है।

महादेवभाई भले ही मुझको स्थितप्रज्ञ और वीतरागी समझें परन्तु 'तोरा मन दरपन कहलाए, भले-बुरे सारे कर्मों को देखे और दिखाए'—बात यही है। संसार से मन को छिपा सकते हैं, परन्तु मन की बात तो मन जान ही लेगा! महादेवभाई! आज तुम्हारा कथन याद आ गया और ऐसा लगा कि मेरे बारे में तुमको गलतफहमी हो गयी है। स्थितप्रज्ञ का अर्थ मुझसे जोड़ते समय तुमसे अधिक गलती नहीं हुई है। सिन्दूर लगा देने मात्र से ही देवत्व आ जाता है क्या?

विनोबा ने पुस्तिका खोली और वे लिखने लगे—सर्वसाधारण मनुष्य को सुख-दु:ख, भय, क्रोध, मोह, मद, मत्सर आदि गुण-अवगुण घेरे रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति के अनुरूप ये गुण-अवगुण उसमें कम अधिक मात्रा में होते हैं। किसी कार्य के समय, कर्तव्य के समय यदि मनुष्य को स्वार्थ ने ग्रस लिया तो साधारण मनुष्य का तो व्यक्तिगत नुकसान होगा परन्तु यदि वही राजा होगा तो राज्य का नुकसान होगा। किसान को वर्षा-पानी में काम करना पड़ता है, परन्तु उस समय उसको घर में रहने का मोह यदि हो गया तो फसल हाथ में नहीं आएगी!

अर्जुन को ही देखो! क्षात्र तेज से दीप्त वीर सम्मुख अपने सगे-सम्बन्धियों को देखकर मोहवश हो गया और कहने लगा, इनको मारने की अपेक्षा वह राज्य नहीं चाहिए और वह राज्यभोग भी नहीं चाहिए। वह तर्क करने लगा कि इससे कुलक्षय होगा और सन्तति वर्णसंकर होगी। उस समय श्रीकृष्ण ने पहला काम यह किया कि उसका मोहभंग कर उसको युद्धप्रवृत्त किया। स्वधर्म समझाया। कर्तव्य का ज्ञान कराया। जीवन के मूलभूत सिद्धान्तों की शिक्षा दी।

विनोबा लिख रहे थे। लिखते-लिखते दीपक की लौ फड़फड़ायी और बुझ गयी। घोर अन्धकार छा गया। विनोबा ने चश्मा उतारकर रख दिया और तकिया पर सिर रखकर सो गये। बैरक के ऊँचे झरोखे से चाँदनी की क्षीण-सी पट्टी बैरक में अन्दर आ गयी और उतने ही प्रकाश से बैरक उजली हो गयी।

श्रीकृष्ण—इस शब्द से ही अन्तर्तम में ऐसा ही प्रकाश पड़ गया है और उससे छोटा-सा अन्त:करण प्रकाशमय हो उठा है, यह विनोबा ने अनुभव किया। कल से गीता के दूसरे अध्याय के अन्तिम अठारह श्लोकों पर 'स्थितप्रज्ञदर्शन' इस विषय पर

अठारह दिन तक लिखना है, यह निश्चय कर लेने पर उनको मानसिक समाधान प्राप्त हुआ।

ऊँचे झरोखे से दिखनेवाले निरभ्र आकाश को देखकर विनोबा को 'दासबोध' में लिखी हुई परब्रह्म-विषयक समर्थ रामदास की पंक्तियाँ याद आ गयीं और वे गुनगुनाने लगे :

"ब्रह्म निर्मल निश्चल शाश्वत सार अमल विमल
सम्पूर्ण घन शून्य—गगन जैसे।"

गुनगुनाते हुए उनको नींद आ गयी।

8

बाहर हो रही मूसलाधार वर्षा से विनोबा की नींद टूट गयी। कल-परसों ही गर्मियों के बाद आयी हुई वर्षा ने रिमझिम बरसकर वातावरण शान्त किया था। और आज इतनी जल्दी आकाश में चारों ओर बादल कैसे घिर आये! विचार करते हुए वे बरामदे में आये। दसों दिशाओं में अन्धकार छा गया था। खूब लम्बा दिखनेवाला बरामदा अन्धकार में डूब गया था। 'सुबह तक वर्षा थम जानी चाहिए। नहीं तो सूरगाँव को जाने का नियम टूट जाएगा।'—विनोबा ने मन में कहा। अन्दर आकर उन्होंने घड़ी को देखा। उसमें साढ़े बारह बज रहे थे।

तीन वर्ष का निरन्तर कारावास समाप्त होने पर कुछ समय पहले ही अभी काम प्रारम्भ हुआ ही था वर्षा सिर पर आ गयी थी। सूरगाँव वैसे पाँच-छह मील दूर ही था। विकास के चरण उस ओर मुड़े ही नहीं थे। गाँव अस्वच्छ था। आरोग्य की दृष्टि से अज्ञानी था। विनोबा ने स्वच्छता का अभियान अपने हाथ में लिया था। बरसात से पहले गाँव को स्वच्छ करके शौचगृहों की सुविधा की जाय, इस उद्देश्य से वे प्रतिदिन प्रात:काल प्रार्थना के बाद फावड़ा और तसला लेकर बाहर निकलते और तीन-चार घण्टे काम करके वापस लौटते।

उसी समय पिताजी अस्वस्थ हुए तो बालकोबा को पिताजी के पास बड़ौदा भेज दिया था। महात्माजी से मिलने के लिए भी वे बहुत व्याकुल हो रहे थे परन्तु वे शिमला सम्मेलन में भाग लेने जानेवाले थे और फिर दिल्ली में रुककर लौटनेवाले थे। देश में

असन्तोष, अस्वस्थता और अधीरता थी। महात्माजी राजनीतिक झंझावात में खिंचते जा रहे थे, गतिमान राजनीतिक भँवर में घिरते जा रहे थे। कुल मिलाकर देश की गतिशील राजनीतिक हलचलों से महात्माजी की अहिंसा पर सबल आघात होने लगे थे। महात्माजी से मिलने की इच्छा हुई इसलिए उन्होंने पत्र लिखा :

'आदरणीय और प्रिय बापू!

आज आधी रात को मुझको अपने जन्मदाता पिताजी की और मुझ पर धर्मसंस्कार करनेवाले मेरे धर्मपिता की—दोनों की याद आ रही है। पिताजी वृद्ध हो गये हैं और आप अवस्था का विचार न करते हुए युवक को लज्जित करनेवाले कष्ट राष्ट्र के लिए सहन कर रहे हैं। दोनों के ही ऋण में पड़ा हुआ मैं आज धर्मसंकट में हूँ। जाऊँ तो जाऊँ कहाँ ?

माता के लिए जीने का विचार मन में नहीं आया और न पिताजी की भाँति गृहस्थाश्रम को स्वीकार करके भी योगी की भाँति जीवन बिताने का विचार कभी मन में आया। मन परिपूर्ण हुआ आपके दर्शनों से बापू! उस समय भी मन ऐसा ही चंचल था। जाऊँ तो कहाँ जाऊँ, यह सम्भ्रमावस्था थी। हिमालय पर जाकर योगी हो जाऊँ, संन्यासी हो जाऊँ, काशी में जाकर वेद पठन करूँ या क्रान्तिकारी बनकर राष्ट्रीय प्रवाह में विलीन हो जाऊँ—ऐसा कुछ करने को मन करता था। एक ओर था बंगाल, एक ओर था हिमालय, परन्तु दोनों रास्तों में खड़ी थी काशी। बचपन से ही ईश्वर के साक्षात्कार का असीम आकर्षण था। और उसके लिए मैं काशी गया था। दुर्गाघाट पर स्थित एक घर में तीसरी मंजिल पर रहता था। मेरे साथ मेरे दो मित्र थे। वर्ष था 1916 ई.।

गागोदे से पिता-माता के साथ हम बड़ौदा आये थे। पिता कर्मठ-धार्मिक सत्शील थे। बहुत दिनों तक वे मुझको घर पर ही पढ़ाते रहे। प्रात:काल पढ़ाते, दोपहर को करने के लिए गृहकार्य देकर ऑफिस जाते। घर आने पर किये हुए गृहकार्य को देखते। पुन: नया पाठ। उनको आलस नहीं आता था। लालटेन के प्रकाश में वे अभ्यास देखते थे। गणित, अँग्रेजी, चित्रकला—ये विषय उनको अच्छे लगते थे। त्रुटिरहित चोखा कार्य तथा रमणीय अचूकता गणित से ही प्राप्त होती है, उनको ऐसा ही लगता था।

मुझको गणित अच्छा लगने लगा। जीवन का प्रत्येक क्षण मैं गणित से जीना सीख गया। बचपन में बड़े-बड़े गणित के प्रश्न मैं सहज ही हल कर लेता था। उसी प्रकार आगे जीवन में मुझको जीवन के प्रश्न सहज लगने लगे। गणित से मेरा जो सम्बन्ध जुड़ा वह काशी में आने पर तभी समाप्त हुआ जब गणित की पुस्तकें गंगा में बहा दीं! फिर शेष रही सहजता—सहज गतिशीलता! पिताजी का प्रत्येक कार्य शास्त्रोक्त विधि-सम्मत होता था। उनकी अँग्रेजी उत्कृष्ट थी। प्रत्येक शब्द की स्पेलिंग, उच्चारण, धाराप्रवाह बोलने का अभ्यास उन्होंने किया था। इसी कारण मुझको भी अँग्रेजी अच्छी आने लगी। विद्यालय में जाने पर फ्रेंच भाषा सीखनी पड़ी। फ्रेंच भाषा

में तो मैं विद्यालय में प्रथम आया।

मेरी शरीरयष्टि साधारण ही थी। बचपन में बीमार पड़ने पर माता कहती, 'इधर से उधर हवा चले तब भी यह लड़का बीमार हो जाता है।' मुझको 'दासबोध' पुस्तक पुरस्कार में मिली। जैसा कोई एकपाठी होता है, मैं वैसा ही था। संस्कृत के जोशी मास्टर साहब मुझसे कहते, 'विनायक! तू याज्ञवल्क्य है—अद्‌भुत प्रज्ञावान् है।'

बापू! हो सकता है कि मैं वैसा ही रहा होऊँ! परन्तु आज उस प्रज्ञा का क्या हुआ? मैंने जनहितार्थ उस प्रज्ञा का क्या उपयोग किया? सौ पुस्तकें लिखीं, स्वयं प्रयोगात्मक जीवन बिताया, नवीन विचार सरणि का निर्माण किया—यह सत्य है; परन्तु बापू! इससे मैं हिन्दुस्तान को हिला देने का तथा समाज को नया मन्त्र देकर जाग्रत करने का कार्य नहीं कर सका। मैं जवाहरलाल की भाँति लोकप्रिय नेता नहीं हो सका। मैं स्वयं-ही-स्वयं को कष्ट देता हुआ एक मार्ग पर चलने लगा। आपके मार्ग को सशक्त बनाने लगा। वह मार्ग था सत्य का, अहिंसा का, कंचनमुक्ति का, ग्राम-सफाई का, ग्रामोद्धार का, स्वावलम्बन का और जीवन-शिक्षण का!

मैं बचपन से ही वैसा था। शिक्षक और मेरे मित्र मुझको अपना निकटस्थ समझते थे या नहीं, इसका मुझको स्मरण नहीं है। मैं चिड़चिड़ा था। मैं किसी को गले से लगाकर नहीं मिल सका। अपने घर में मैं राजा था। मेरा संसार पुस्तकें थीं। मेरा संसार माता थी। वह पिताजी एवं भाइयों तक ही सीमित था। परन्तु अँग्रेजी के सर वाडिया ने अँग्रेजी के साहित्य से मेरा जो परिचय कराया था वह मेरे काम आया। टेनीसन, वर्डस्वर्थ, थोरो, कार्लाइल, रस्किन, इमर्सन आदि प्रतिभावान मनुष्य मुझको पुस्तकों में मिलने लगे।

एक घटना याद आ रही है। मैं घर की छत पर वर्डस्वर्थ की कविता ऊँचे स्वर में बोल रहा था। नीचे से माता ने पुकारकर मुझसे पूछा, 'विन्या! सवेरे-ही-सवेरे यह येस-फेस क्या कर रहा है?' मैंने उसको कविता का अर्थ बताकर कहा, 'माँ! यह वर्डस्वर्थ की प्रकृति वर्णन की सुन्दर कविता है।' तब उसने सन्तोष से कहा, 'विन्या! मैं जानती हूँ कि तू कभी बुरा नहीं पढ़ेगा और बुरा नहीं करेगा। अँग्रेजी पढ़ना बुरा तो नहीं है परन्तु प्रातःकाल देवभाषा का उच्चारण कम-से-कम ब्राह्मण के घर में तो होना ही चाहिए।'

बापू! मुझमें संस्कृति के प्रति आकर्षण उसने ही उत्पन्न किया। वह ज्ञानेश्वरी और गीता को अच्छी तरह समझ नहीं पाती थी, इसलिए उसने कहा, 'विन्या! तू इतना पढ़ता है, लिखता है तो फिर मेरे लिए गीता का मराठी में अनुवाद क्यों नहीं कर देता है?' बापू! जब मैंने धुलिया की जेल में गीता का मराठी में अनुवाद किया तब उसको पढ़ने के लिए माता नहीं रही थी।

मैं सदैव विचार करता हूँ, मैंने किसके लिए क्या किया? नौ वर्षों तक मैं गागोदे

में रहा तब पूरे गाँव में भटकता रहता था। बड़ौदा की पाठशाला में जाने पर पुस्तकों में रमण करता था। मीलों तक घूमने जाता था। तालाब के किनारे बैठकर सैकड़ों श्लोक बोलता था। पाठशाला में नियमित नहीं पढ़ता था फिर भी कक्षा में प्रथम आता था। पिताजी खुश थे।

परन्तु मैं अस्वस्थ था। कभी घण्टों तक समाधि लगाकर ब्रह्म की प्राप्ति के लिए बैठा रहता था। कभी गाता था। कभी मन में जो आता वह करता था। पिताजी कपड़े को रंग देने के प्रयोग करते थे—कौन-सा रंग गर्मी से उड़ जाएगा, कौन-सा रंग पक्का रहेगा आदि। ऑफिस से आने पर वे निरन्तर प्रयोग करते रहते। माता साध्वी थी। पिताजी गृहस्थाश्रम में और अधिक वैरागी हो गये थे। उनको मधुमेह हो गया और गिनती करके नपा-तुला खानेवाले वे और अधिक नपा-तुला खाने लगे। वे केवल दोपहर को तथा माँ जो कुछ और जितना परोस देती उतना ही भोजन करते। माँ के जाने पर वे बोले, 'देवी मर गयी। मुक्त हो गयी। देव ने माया से मुक्त कर दी। वह मुक्त हो गयी और मेरी आसक्ति भी समाप्त हो गयी।' बापू! मेरा व्यवहार तो विक्षिप्त-सा रहता है। मौंजी बन्धन के समय मैंने अनजाने कहा, 'मैंने आजन्म ब्रह्मचर्य-पालन का संकल्प किया है। और आज के बाद इस सम्बन्ध में मुझसे कोई कुछ नहीं पूछेगा।' मेरे इस कथन से माँ को कैसा लगा होगा, यह तो वही जाने! परन्तु मेरे स्वभाव के कारण उसको ऐसा अवश्य लगा होगा कि यह तो ब्रह्मचारी रहे, —यही अच्छा है। वह कहती, 'विन्या! तू सब समझ गया है। तेरी चिन्ता मुझको नहीं है और शिवाजी तथा बालकोबा तेरा अनुकरण करेंगे, इसलिए उनकी चिन्ता नहीं है। तेरे पिता योगी पुरुष हैं। उनकी चिन्ता मुझको नहीं है। इस कारण मैं तो मुक्त हूँ।'

परन्तु सचमुच वह वैसी थी क्या? यह प्रश्न कभी-कभी मुझको भयभीत करता है। बचपन से मैं गौतम बुद्ध, रामदास, ज्ञानेश्वर, जगद्गुरु शंकराचार्य—इनके प्रति आकर्षित था। उन जैसा बनने के लिए प्रयत्नरत था। कठोर ब्रह्मचर्य का पालन करने का अर्थ है शरीर को सुघड़, सुदृढ़ करना, इस विचार से मैं इतना अभिभूत हुआ कि चिलचिलाती धूप में नंगे पैर चलना, कम खाना, धरती पर सोना—आदि प्रयोग मैं किया करता था। सबमें रहता हुआ भी मैं सबसे दूर था, ऐसा मेरा व्यवहार था। मैं उस समय भी अभिभूत था, अब भी मैं वैसा ही हूँ।

जब से मैं जेल से छूटा हूँ तभी से मैं पवनार से लगे हुए गाँव सूरगाँव को जा रहा हूँ। वहाँ नालियाँ लबालब भरी हुई थीं। चारों ओर गन्दगी थी। मैं प्रात:काल प्रार्थना के बाद हाथ में फावड़ा और सिर पर तसला रखकर वहाँ जाता हूँ। प्रतिदिन डेढ़-दो घण्टे काम करके लौटता हूँ। कल भी वहाँ जानेवाला हूँ। इस समय मूसलाधार वर्षा हो रही है इसलिए आपको पत्र लिखने बैठ गया हूँ।

जब मैं सेवाग्राम में था उस समय की एक घटना याद आ रही है। आप उस

समय वहाँ नहीं थे। सफाई करनेवाला मेहतर उस दिन नहीं आया था। वह बीमार था। उसके बदले उसका दस-बारह वर्ष का लड़का आया था। शौचगृह साफ करके मल से भरी हुई बालटी उसने सिर पर रखने का प्रयत्न किया। बालटी बहुत भारी थी। वह उससे उठ नहीं रही थी। मलमूत्र उसकी देह पर गिर रहा था। बालकोबा ने उसको देखा और उसने दौड़कर जाकर उसकी सहायता की। स्वयं ही बालकोबा ने वह बालटी वहाँ पहुँचायी जहाँ वह ले जाना चाहता था। जब मुझको यह ज्ञात हुआ तब आनन्द से मेरी आँखें आर्द्र हो गयीं। मुझको ऐसा लगा जैसे मुझसे पाँच वर्ष छोटा बालकोबा मुझसे पचास वर्ष बड़ा हो गया हो। अब स्मरण हो रहा है इसलिए कह रहा हूँ, उस समय जब कस्तूरबा जी को इस बात का पता चला तब उनको बड़ा क्रोध आया। आपकी प्रतीक्षा करती हुई वे चुप रहीं। जब आठ दिन बाद आप लौटे तब उन्होंने कहा, 'ब्राह्मण लड़के शौचगृहों की सफाई करें और सारी गन्दगी ढोकर ले जाएँ—यह मुझको अच्छा नहीं लगता है।'

'मुझको भी अच्छा नहीं लगता है। कल से हम दोनों यह काम करेंगे।' आपने कहा। तब कस्तूरबा ने चिढ़कर कहा, 'आपने एक बार मुझसे दूसरों के शौचगृह की सफाई करवायी थी। मैं रोयी थी—फिर भी आपको दया नहीं आयी थी। वैसे भी आपको मुझपर या हरिलाल पर दया नहीं आती है।' विषय बदल गया था। याद है न!

बापू! कुछ न कहकर आप कितना कर रहे थे! वैयक्तिक जीवन को भी आपने सामाजिक रूप दे दिया। सबके लिए समान नियम किये। कस्तूरबा या हरिलाल उनसे छूटे नहीं। उनके मन की भावना समझ लेने के लिए आपको समय भी नहीं मिला। ऐसा लगने लगा है कि जीवन का प्रत्येक क्षण लोकार्पण करनेवाला ऐसा नेता युग-युग में एक ही जन्म लेता है!

सचमुच, सन् 1916 की बात होगी। मैं लगभग इक्कीस वर्ष का रहा हूँगा। मैंने गृह-त्याग का निश्चय कर लिया। कठोर वैराग्य की दीक्षा देने वाली स्नेहमयी माता तथा योगी पिता से भी दूर जाने का विचार सोलहवें-सत्रहवें वर्ष से ही मन में आने लगा था। परन्तु माता की ममता छूट नहीं रही थी। तगारे और बेडेकर ये दो मित्र तैयार हो गये। गोपालराव काले से संस्कृत सीख ली। भारत के मानचित्र का अभ्यास किया। फिर इण्टरमीडिएट की परीक्षा के लिए पच्चीस मार्च सन् सोलह को बम्बई जानेवाली गाड़ी में बैठ गये। मैं और बेडेकर सूरत पर उतरकर काशी की गाड़ी में बैठ गये। मैंने पिताजी को पत्र से सूचित किया, 'मैं यात्रा के लिए जा रहा हूँ। मेरी चिन्ता मत करना। यात्रा के बिना शिक्षण पूर्ण नहीं होता है, यह पाश्चात्य शिक्षा-शास्त्री भी कहते हैं। मेरा प्रयत्न 'दासबोध' को अवश्य पसन्द आएगा। आप विश्वास रखें कि मैं कहीं भी जाऊँ, परन्तु मेरे हाथ से कोई भी अनैतिक कार्य नहीं होगा।'

पिताजी योगी थे तो क्या हुआ! घर का सबसे बड़ा लड़का गृहस्थ न बनकर

संन्यासी हो जाए—यह कौन चाहेगा? उनकी तो अपेक्षा यही होगी कि पुत्र घर का उत्तरदायित्व स्वीकार करनेवाला हो। परन्तु मैंने स्नेहमयी माता को छोड़ दिया और कर्तव्यकठोर पिता को छोड़ दिया। जब पिताजी क्रोध से तमतमाये तब माता ने शान्तिपूर्वक कहा, 'विन्या कहीं भी जाए, वह गलत आचरण नहीं करेगा।'

पिताजी समय का ध्यान रखते थे और मन पर संयम रखते थे। संगीत में उनकी अत्यन्त रुचि थी। मन में जो निश्चय कर लेंगे उसमें पूर्ण प्रवीणता प्राप्त कर लेना उनका स्वभाव था। भारतीय संगीत की उन्होंने एक मुसलमान गायक से शिक्षा ली। चौदह-चौदह घण्टों तक वे अभ्यास करते थे।

वैसे उनको क्रोध भी खूब आता था। मेरे पलायन करने से उनको कितना क्रोध आया होगा, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। उनकी मुखमुद्रा अत्यन्त सात्त्विक थी। तेजस्वी थी। वे पिटाई करते होंगे, यह कोई नहीं सोच सकता था। मुझको हँसी आती है। वे पिटाई भी करते थे तो विचार करके। हड्डी पर नहीं लगनी चाहिए। परन्तु एक दिन उन्होंने पिटाई करना बन्द कर दिया। प्रत्येक बात समझाने का उनका एक ढंग था। आज मुझको लगता है कि उनको जन्मजात उपनिषदों का ज्ञान था, नहीं तो उनके बिना इतना तत्त्वज्ञान उनके पास कहाँ से आ गया?

अब इस समय वे धुलिया में हैं। बालकोबा गये हैं। माता की मृत्यु के पश्चात् वे अकेले ही बड़ौदा में थे। अब बाबाजी मोघे बड़ौदा से आये हैं इसलिए यह मालूम पड़ गया कि वे बीमार हैं। बालकोबा उनको लेकर धुलिया चले गये। उनसे मिलने जाना है। जाना ही पड़ेगा। सन् 1918 में माता की मृत्यु हुई तथा अब सन् 1946 समाप्त हो रही है। इतने वर्ष वे अकेले रहे।

बापू! आपके आग्रह के कारण वे सेवाग्राम में आये थे। आपकी विचारधारा का उन पर गहरा प्रभाव था। वे भी आधुनिक विचारधारा के थे। वे चाहते थे कि हिन्दुस्तान का आधुनिकीकरण हो। आपकी ग्रामोद्योग की कल्पना उन्होंने मगनवाडी में साकार की। हस्तनिर्मित कागज का प्रयोग उन्होंने कर लिया था। उसी समय उन्होंने एक पत्र मुझको लिखा था। उस कागज का नीला रंग, उसकी स्याही तथा लेखनी भी उन्होंने ही तैयार की थी।

बापू! स्वावलम्बन का पाठ आपने भी मुझको दिया। मुझको स्मरण है, उस समय मैं काशी में था। उसी समय आप दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तान में लौटे थे तथा साबरमती में आपने कोचरब आश्रम शुरू किया था। जब वाराणसी विश्वविद्यालय में आपका भाषण हुआ था तब मैं वहीं था। दूसरे दिन समाचारपत्रों में मैंने वह भाषण पढ़ा और मैं उससे अत्यन्त प्रभावित होकर आपसे मिलने गया था। परन्तु आप वहाँ नहीं थे। फिर मैंने आपको पत्र लिखा था। याद है?

उसमें मैंने पूछा था, महात्माजी! आप यह कैसे कहते हैं कि हिंसा से अधिक

शक्तिशाली है अहिंसा? शस्त्र से राज्य उलट सकते हैं। अहिंसा से यह कार्य कैसे होगा? आप भाषण में अनेक बार निर्भयता शब्द का प्रयोग करते हैं परन्तु हाथ में सत्ता-शस्त्र और धन होने पर ही निर्भयता आ सकती है। तो ये शब्द आपने भाषण के लिए प्रयोग किये हैं या प्रयोग करके देखने के लिए?

काशी विश्वविद्यालय का शिलान्यास करने के लिए वाइसराय लॉर्ड हार्डिंग आये थे। अध्यक्ष थीं एनी बेसेण्ट। वे अन्तर्राष्ट्रीय थियोसोफिकल सोसाइटी की अध्यक्ष थीं। उन्होंने आपसे प्रार्थना की कि इस विषय के अनुरूप बोलिए। परन्तु आपने शासन की कठोर आलोचना की। श्रीमन्तों को फटकारा और हम गरीबों का पक्ष लिया। यह निर्भयता आपमें कहाँ से आयी? अहिंसा से? आपने आतंकवादी और क्रान्तिकारी लोगों को भी फटकारा तथा वाइसराय की मोटर पर बम डालने का विरोध किया। महात्माजी! आप शब्द से कौन-सा कार्य कर सकते हैं?

आपने कहा था, 'हमको अपना देश चाहिए। ब्रिटिश शासन नहीं चाहिए। वे चुपचाप अपने देश को लौट जाएँ।' बापू! ये आपके कठोर, निर्भय, आग्रहपूर्ण, दो टूक शब्द थे! 4 फरवरी सन् 1916 के। उस समय आज जैसी विस्फोटक स्थिति न होगी। शायद हो भी! परन्तु शस्त्र के बिना सामर्थ्य के शब्द सुनकर मैं प्रभावित हो गया था। फिर आपको पत्र लिखकर निश्चिन्त हो गया। परन्तु आपका पत्र आया, 'अहमदाबाद में इस पर चर्चा कर सकते हैं।'

वैसे काशी में मेरी व्यवस्था हो गयी थी। मैं निश्चिन्त था। कोई क्रोध करनेवाला नहीं था। यहाँ दो वर्ष होने जा रहे थे। शास्त्रार्थों में भाग लेता था। रात-बिरात घण्टों गंगा के किनारे बैठा रहता था। संस्कृत सीख रहा था। खूब पढ़ता था। एक बार द्वैत-अद्वैत पर वाद-विवाद हो रहा था। अद्वैतवाले जीत गये। तब मैंने उनसे कहा, 'अद्वैत की बात करते हैं और द्वैत पर वाद-विवाद करते हैं। यहाँ दोनों पक्ष पराजित हो जाते हैं।'

परन्तु बापू! आपके भाषण से मेरी शान्ति नष्ट हो गयी। मुझको स्मरण है कि 7 जून 1916 की अलस्सुबह मैं ऐलिसब्रिज पर होकर चलता हुआ कोचरब आश्रम के सामने खड़ा था। अन्दर जाऊँ या नहीं जाऊँ? काशी से यहाँ आने का साहस तो किया था परन्तु बापू! आप जैसे राष्ट्रव्यापी नेता से मिलने को मन उत्सुक होते हुए भी अत्यधिक भय लग रहा था! आश्रम की घण्टी बजी। आश्रमवासी जागे। आप दूर से कहीं दिखाई देते हैं क्या, यह मैं देख रहा था। परन्तु आपके दर्शन नहीं हुए थे। मेरी आँखों के सामने सुदृढ़, तेजस्वी, अनुपम, पुरुष-प्रतिमा थी!

सच तो यह था कि आपका फोटो मैंने एक बार ही समाचारपत्र में देखा था। उस फोटो में आप फेंटा डाले हुए थे। दक्षिण अफ्रीका के आन्दोलन का आद्यन्त वर्णन समाचारपत्रों में आया था, तब की बात है। राजनीति मेरा विषय नहीं था। मैं अँग्रेजी

समाचारपत्रों का पाठक भी नहीं था। यह कारण था कि आपकी प्रतिमा को मन में सँभालकर रखा था।

आश्रम में प्रार्थना हो गयी थी, फिर भी मैं बाहर ही घूम रहा था। अन्त में पाँच-छह लोग बाहर निकले। उनमें मामा फडके थे। उन्होंने मुझसे पूछा, 'तुम कोंकण के हो क्या?'

मैंने कहा, 'हाँ! परन्तु इस समय काशी से आ रहा हूँ। परन्तु आपने मुझको कोंकण का क्यों कहा है?'

'कोंकण के मनुष्य कहीं छिपते हैं क्या? तुम महात्माजी से मिलना चाहते हो न? तो जाओ!' उन्होंने जिस दिशा की ओर संकेत किया था उस ओर मैं गया। गोल फ्रेम का चश्मा धारण किये हुए व्यक्ति से किसी ने कहा, 'बापू! आपसे मिलने कोई आया है।' आपने मेरी ओर न देखते हुए सब्जी काटते-काटते एक चाकू मेरी ओर फेंक दिया और बोले, 'सब्जी काटने का काम करो।' मैं घुटनों के बल बैठ गया। सामने बड़ा लाल काशीफल रखा था। छोटे से चाकू से यह काशीफल कैसे काटा जाए? मैं विचार करने लगा। मैंने चाकू धरती पर रख दिया।

'तुम्हारा नाम क्या है?'

'विनायक नरहरि भावे।'

'सब्जी काटना नहीं आता है?'

'इतने छोटे चाकू से इतना बड़ा काशीफल कैसे कटेगा?'

महात्माजी ने कुछ न कहा। उन्होंने वह विशाल काशीफल अपनी ओर खींचा। बीच में चाकू गड़ाकर एक टुकड़ा निकाला और पूरे काशीफल को न काटकर थोड़ा-थोड़ा काटते रहे। देखते-ही-देखते आधे से अधिक काशीफल काट दिया।

'बड़े काशीफल को भी छोटा चाकू काट देता है। सिर्फ वह पैना होना चाहिए विनायक नरहरि भावे! बड़े-बड़े मनुष्य तलवार से काट दिये जाते हैं। छोटी बातों का मूल्य बहुत बड़ा होता है। बड़ी वस्तु से डरने से काम नहीं चलेगा।'

मैं समझ गया। जितना दिखाई देता है उतना सरल काम नहीं है यह। आप उठे। मेरी ओर हँसकर देखते हुए बोले, 'चलो विनोबा! तुम काशी से आये हो। थक गये होगे, भूख भी लग रही होगी।' इसी समय कस्तूरबा हाथ में खाद्य पदार्थ लेकर आ गयीं। मेरी ओर देखकर उन्होंने कहा, 'ठीक आपका पुत्र लगता है।'

'सो कैसे?'

'वैसा ही दुर्बल है इसलिए!'

'मैं दुर्बल नहीं हूँ बा!' आपने कहा और मन-ही-मन मुझको भी गुस्सा आ ही गया। आते-ही-आते किसी की शरीरयष्टि के बारे में बोलना...परन्तु मैं केवल हँस पड़ा।

दूसरे दिन से काम में लग गया। आठ-आठ घण्टे निरन्तर काम करता था। जो दिखाई पड़ जाए, जो सामने आ जाए, वही। बापू! तीन-चार दिन के बाद आपने मुझको बुलवाया और पूछा, 'विनोबा! तुमको यहाँ अच्छा लगता हो और यदि समाज-सेवा की इच्छा हो तो यहाँ रहो!' फिर मेरी शरीरयष्टि की ओर देखकर आपने कहा, 'बड़े दुर्बल दिखाई दे रहे हो! अपनी ओर ध्यान दो! आत्मज्ञानी लोग शरीर और मन को अलग समझते हैं परन्तु नीरोग शरीर में नीरोग मन होना चाहिए। देव मन्दिर पवित्र होना चाहिए, उसमें विचरण करने पर पवित्र भगवान को आनन्द मिलता है। दूसरी बात यह है कि इन दो-तीन दिनों में मैंने तुमको अविराम काम करते हुए देखा है। इसका अर्थ यह है कि तुम कष्टसहिष्णु और दीर्घ-उद्योगी हो। एक बात और ध्यान में आयी। तुम अपने बारे में बहुत कम बोलते हो। उस दिन तुम्हारी शिक्षा के सम्बन्ध में पूछा तो तुमने कहा, 'काशी जाने से पहले सभी प्रमाण-पत्र जलाकर मैंने नौकरी के रास्ते बन्द कर दिये थे।' परन्तु तुम ज्ञानी और विज्ञानी हो। शिक्षित तो हो ही, परन्तु संस्कृत के पण्डित हो। आज प्रातः तुम्हारी सुरीली आवाज सुनी और तुम्हारे मुख से प्रातःकालीन वेदमन्त्र सुनकर मैं अत्यधिक प्रभावित हो गया।'

बापू! जीवन में पहली बार ही मैं मन लगाकर अपने बारे में सुन रहा था। माँ कहा करती थी, 'विन्या तू भजन गाया कर। तेरी आवाज अच्छी है।' परन्तु आज एक सहृदय मानव ने मेरी जो स्तुति की उसने मुझको झकझोर दिया। बापू! मैं उस दिन को कभी नहीं भूल सकता। आप मेरे पास बैठे थे और मैं आपकी बातें सुन रहा था। कुछ देर बाद आपका हाथ मेरी पीठ पर आ गया। उस स्पर्श में कितना प्रचण्ड सामर्थ्य था कि वह सम्मोहन था या जीवन का आश्वासन था, यही समझ में नहीं आया। बापू! मैं आपके व्यक्तित्व से अभिभूत हो गया!

मैं कुछ नहीं बोला। मैं अबोल हूँ। शायद सभी लोग यही समझते हैं कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ। एक दिन बातों-ही-बातों में किसी ने कहा, 'भगवान की भक्ति करते-करते भक्त स्वयं को इतना बड़ा समझने लगते हैं कि वे भगवान को गाली भी देने लगते हैं।' मैंने उनसे कहा, 'यह बात नहीं है। परमेश्वर की भक्ति करते-करते एक दिन परमेश्वर अपने निकट आया-सा लगता है और तब उस स्नेहभक्ति से सख्यभक्ति का मार्ग प्रारम्भ होता है। इसमें गाली देने का प्रयत्न न होकर ईश्वर की समीपता बढ़ने का यह निदर्शक है। सरूपता, समीपता, सलोकता और सायुज्यता—ये भक्ति के प्रकार हैं।'

मैं बोल रहा था और बापू! आप कौतुक से मुझको देख रहे थे। आपने कहा, 'भक्ति से ईश्वर के पास शीघ्र पहुँचा जा सकता है।' ज्ञानी मनुष्य को ईश्वर के निकट पहुँचने में समय लगता है। आपकी बात सुनकर मेरे मन में आया, 'सचमुच बापू! आपके दर्शन से और अल्पकाल के साहचर्य से मैं अभिभूत हो गया हूँ। मैं भक्ति करके

ही आपके पास शीघ्र पहुँच सकता हूँ। मैं यदि ज्ञानी मनुष्य के जिज्ञासु प्रश्न लेकर तुम्हारे पास जाऊँगा तो आयु समाप्त होने तक भी आप तक नहीं पहुँच पाऊँगा।'

मैं स्वयं में ही मग्न था। शिष्टाचार के नाते किसी से बात करने की आवश्यकता भी मैं नहीं समझता था। वैसे मैं खूब बोलता था। परन्तु बापू! आपके सामने आते समय मैं स्वयं ही नम्र-सयुक्तिक और सरस शब्द बोलने लगता था।

बापू! आप ही तो मेरा निर्माण कर रहे थे, मुझको आधार दे रहे थे। जो कोई आता था उसको आप मेरे पास भेज देते थे। मैं बोलूँ, समाज के प्रत्येक घटक की कठिनाइयाँ मैं समझूँ, यही आप चाहते थे। भेंट का यह क्रम, मैं पवनार में आ गया तब भी आपने चालू रखा। एक दिन बंगाल का एक क्रान्तिकारी आपसे मिलने आया। आपने उसको मेरे पास भेज दिया। दो-चार औपचारिक वाक्यों के बाद मैं काम में तल्लीन हो गया। उसने यह बात आकर आपसे कही। तब आपने कहा, 'विनोबा दो वाक्य कहकर काम में मग्न हो गया न! इसका अर्थ यह है कि कम बोलो और अपना काम निष्ठा से तथा एकाग्रता से करो। हम काम कर रहे हैं—इसका उल्लेख भी मत कीजिए। उस काम का, एकाग्रता का दूसरे जो अर्थ लगाएँ वह उनको लगाने दो।'

मेरे शब्दों का, कृति का अर्थ आपने अपने स्वभावानुसार लगाया। परन्तु जब आपने मुझको बुलाकर पूछा, 'विनोबा! बात करने की यह कौन-सी रीत है! वह मनुष्य बंगाल से मिलने आया था तो फिर उसकी समस्या, उसका दुःख पूछना नहीं चाहिए था क्या?'

मैं तो जंगली पशु जैसा था। परन्तु बापू! आप मेरा निर्माण कर रहे थे। मुझको पालतू पशु बना रहे थे। आपके साहचर्य से ही मैंने समाज में रहना सीखा। और मैंने सेवा को ईश्वरपूजा का साधन माना। बापू! मेरे ईश्वर आप ही हो गये!

मैं ऐसा नासमझ नहीं था कि किसी को भी ईश्वरत्व अर्पित कर दूँ! बापू! बचपन से आज तक पढ़े हुए सन्त-साहित्य से उत्पन्न ईश्वरभक्त सन्त की धारणा तथा सामाजिक जीवन को समर्पित होकर ईश्वर की ओर जाने की कल्पना—ये दोनों बातें मैंने आप में देखीं!

आप मेरी कैसी परीक्षा लेते थे, यह मैं नहीं जानता परन्तु मैं आपके प्रत्येक कार्य को बड़ी सूक्ष्मता से देखता था। एक दिन आश्रम में रात का दूध खराब हो गया। वस्तुतः इन क्षुद्र बातों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए, परन्तु आपने पूछा, 'प्रतिदिन रात में दूध गरम कर कौन रखता है?' कोई कुछ नहीं बोला तब आप समझ गये कि यह कस्तूरबा का काम होगा। आपने अन्य आश्रमवासियों के सामने कस्तूरबाजी से पूछा, 'बा, यह दूध रात गरम नहीं किया था क्या?'

'नहीं, भूल गयी। थोड़ा आलस भी कर गयी। एक कप ही दूध बचा था। अब सुबह तो दूध आ ही गया है।'

'एक कप ही दूध क्यों बचा था?'

'क्योंकि कल आश्रम में अधिक लोग ठहरे हुए थे।'

'तो फिर एक कप दूध क्यों बचाया?'

'अपनी सफेद बिल्ली के लिए। अब उसको गरम करके दूँगी।'

'परन्तु समय पर दूध पीनेवाली वह बिल्ली बार-बार अपने पात्र की ओर गयी होगी! भूख से मनुष्य चिढ़ता है, चिल्लाता है; परन्तु मूक पशु को तो बिना माँगे ही देना चाहिए।'

'बापू! मैं प्रतिदिन ही यह काम करती हूँ। किसी दिन यदि ऐसा भी हो गया तो क्या आकाश टूट पड़ा?'

'आकाश तो नहीं टूटेगा परन्तु ध्यान न देने का स्वभाव बनता जाता है। आज मुझको दूध मत देना। एक कप दूध नष्ट हो गया, इसलिए यह दण्ड है। मुझको इसलिए कि मैं तुमको उचित शिक्षा न दे सका।'

कोई कुछ नहीं बोला। परन्तु बापू! आपने उस दिन दूध नहीं लिया और कस्तूरबा ने आपके क्रोध पर आठ दिन दूध नहीं लिया। आठ दिन बाद आपने स्वयं दूध का प्याला कस्तूरबा के हाथ में दिया और पूछा, 'आत्मपरीक्षण हो गया न! अब मन:शान्ति होने दो!'

कस्तूरबा इनकार न कर सकीं। परन्तु उनकी डबडाबयी आँखें देखकर मेरा मन उद्विग्न हो उठा। बापू! एक नियम सबके लिए करते समय आप इतने कठोर हो गये कि मैं घबड़ा उठा। और एक घटना याद आ रही है। उस दिन बैकुण्ठ चतुर्दशी थी। सच कहो तो उस दिन व्रत रखना प्रचलित रीति नहीं है। कस्तूरबा अस्वस्थ थीं। उन्होंने सहज ही कहा, 'आज मैं बैकुण्ठ चतुर्दशी को उपवास करूँगी। मेरे लिए खाना मत बनवाना।'

भोजन के समय उन्होंने सबसे पहले अपने लिए परोसा और वे आसन पर आकर बैठ गयीं। बापू, तुम बोले, 'बा! आज व्रत रखा है न?'

'नहीं तो!'

'मेरे ही सामने सुबह बैकुण्ठ चतुर्दशी की बात कही थी न! और यह भी कहा था कि मेरा खाना मत बनाना।'

'वह तो मैंने यों ही कह दिया था। उस समय भूख नहीं थी। सोचा, भूख नहीं है तो बैकुण्ठ चतुर्थी का उपवास ही कर लूँ। वह भी तब जब किसी के कहने से यह मालूम पड़ा कि आज बैकुण्ठ चतुर्दशी है। अब लगी है भूख। अब भोजन करूँगी।'

'बा!! आज आपके हिस्से का भोजन तो बना नहीं है।'

'तो उससे क्या हुआ? अचानक दो अतिथि आ जाते हैं तो उनकी भी व्यवस्था हो जाती है न?'

'वे अतिथि होते हैं। उनको आश्रम के नियमों का ज्ञान नहीं होता है और फिर अपनी संस्कृति तो यह कहती है कि अपने कौर से एक और अतिथि को देना चाहिए।'

इतनी देर सहज भाव से बातें करनेवाली कस्तूरबा सहसा बोलीं, 'तो फिर मैं खाऊँ ही नहीं?'

'नहीं! व्रत का नाम लेकर उपवास रखना और फिर ईश्वर को धोखा देकर भोजन करना—इसका कुछ अर्थ है क्या?'

बापू! आपने इतना कहा और कस्तूरबा वहाँ से उठकर चली गयीं। उसके बाद कई दिनों तक वे मौन रहीं।

आपका कठोर अनुशासित जीवन मैंने देखा है। आसक्ति का कहीं नाम तक नहीं था। अपने माता-पिता का जीवन मैंने देखा है। केवल तटस्थता ही दिखाई दी। आपके साथ चक्की चलाते समय, शौचगृह साफ करते समय मुझको आप जो दिखाई दिये वे असाधारण ही थे! परन्तु व्यक्तिगत जीवन को निछावर करनेवाले एकमेव आप थे।

एक दिन सी.एफ. एण्ड्रूज आश्रम देखने के लिए आये। तब आपने मेरा परिचय देते हुए कहा था, 'आश्रम में जो थोड़े से रत्न हैं उनमें एक यह अनुपम रत्न है। लोग यहाँ आते हैं, यहाँ से कुछ ले जाने के लिए परन्तु यह युवक आशीर्वाद की भाँति देने के लिए आया है।' उस समय मैं अभिभूत हो गया।

उस समय चरखे पर सूत कातकर उसके कपड़े बुनकर वे कपड़े पहने जाते थे। वे कपड़े बहुत मोटे और भारी होते थे। परन्तु मैं चरखे से बारीक सूत कातने के लिए भिन्न-भिन्न प्रयोग करने लगा। और आश्चर्य की बात यह कि मेरे बारीक और स्वच्छ सूत की प्रशंसा आप सबसे करते हुए कहते थे, 'मैंने कहा था न! यह लड़का आश्रम को बहुत कुछ देने आया है। इसका सूत देखो। इसका ढंग इससे समझ लो। इसके पीछे इसका जो गणित और शास्त्र है, उसको समझ लो। कृष्णदास गाँधी! आप इस विनोबा के शिक्षक हैं। परन्तु आपसे अधिक निष्णात आपका गुरु विनोबा हो गया। विनोबा! अब तुम यह सबको सिखाओ। विनोबा! तुझमें एक सद्‌गुण मैंने देखा है। तुम अत्यन्त परिश्रम से हाथ में लिया काम पूर्ण करते हो। उस काम में प्राण डाल देते हो। परन्तु मेरे सामने एक प्रश्न है। विनोबा! तुम इतना काम कर कैसे लेते हो?' मैंने हँसकर उत्तर टालना चाहा। परन्तु आपने पुनः पूछा, 'तुम इतने दुर्बल होते हुए इतने काम कैसे कर लेते हो?'

'बापू! यह सब शरीर-श्रम का काम करने की शक्ति मुझको मन देता है।'

'शरीर और मन भिन्न हैं?'

'निश्चय ही। शरीर मलिन होता है, शरीर थकता है, शरीर को कष्ट होता है, परन्तु मन सदैव प्रसन्न रहता है। वह पवित्र होता है। वह थकता नहीं है। मन को चिन्ता नहीं होती है। शरीर शरीर का काम करता है। मन आत्मा का सन्देश सुनता है।'

बापू! मेरा कथन सुनकर आप हँस पड़े। फिर एक बार बोले, 'विनोबा! एक काम है शरीर के लिए, उसमें मन की भी आवश्यकता है। गुजराती सिखाओगे?'

और जब मैं स्वच्छ गुजराती सिखाने लगा तो आप चकित हो गये! और आपने महादेवभाई से कहा, 'यह लड़का निश्चय ही बड़ा आदमी बनेगा। इसके गुणों की तारीफ करने के लिए शब्द ही नहीं हैं। नौ लाख का हीरा है यह!'

बापू! मैं सर्वसाधारण हूँ! घर से भागकर गया हुआ। न क्रान्तिकारी और न योगी। और न कोई प्रकाण्ड पण्डित! न त्यागी, न भोगी। जीवन की यह भाग-दौड़ किसलिए है? ऐसे कुछ प्रश्न मन से पूछने वाला। आपने मुझमें क्या देखा, भगवान जानें! आत्मभान और आत्मज्ञान मैं जानता हूँ, ऐसा मुझको लगता है। परन्तु मैं क्यों जी रहा हूँ? किसके लिए जी रहा हूँ? मेरे जीवन का ध्येय क्या है? मैं प्रवाहपतित, दुर्बल तथा शरीर और मन के प्रयोग करके स्वयं को ही सुखी करनेवाला हूँ? कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। या मैं सब कुछ समझता हूँ और समझकर भी नासमझ का-सा व्यवहार करता हूँ?

जन्मदाता पिता को छोड़कर आते समय कर्तव्य की अपेक्षा ब्रह्मज्ञान श्रेष्ठ लगा, माता के सीधे-सादे साहचर्य की अपेक्षा काशी के घाट पर आधी रात तक अथक बैठा रहना अच्छा लगा! किसी बात का मोह हो, ऐसी युवावस्था भाग्य में थी ही नहीं! जब विचार करता हूँ तो लगता है कि जीवन का यह लम्बा मार्ग अस्त-व्यस्त फैला हुआ है! मैं मार्ग पर चल रहा हूँ। कोई उद्देश्य है या निरुद्देश्य या दैवगति—कुछ समझ में नहीं आता! कम-से-कम इक्कीस वर्ष तक तो जीवन की कोई दिशा ही नहीं थी। आपके पास आने पर दिशा-ज्ञान हुआ!

उस दिन साबरमती के प्रवाह में डूबते-डूबते बचा! और बड़ी देर के बाद आपसे मिलने आया। आश्रमवासियों ने मुझको डूबते हुए, ऊपर आते हुए तथा पुनः तैरकर आते हुए देखा होगा! आपने मुझसे पूछा था, 'आज साबरमती ने घबड़ाहट पैदा कर दी फिर साबरमती ने ही तारा न?'

'बापू! मैं शरीर से मर सकता था—मन से यहीं होता!'

'विनोबा! शरीर के एक कोने में मन रहता होगा परन्तु कार्य करनेवाला शरीर ही जब नहीं होगा तब केवल मन लेकर क्या करना है? उस दिन काका कालेलकर के साथ तुम उनके पीछे-पीछे दौड़ते आये। यद्यपि अँधेरे के कारण दिखाई नहीं दे रहा था। शायद तुम्हारे मन को अँधेरे में दिखाई दे रहा हो परन्तु तुम्हारी आँखों को निश्चय ही दिखाई नहीं दे रहा होगा। शरीर के धर्म मन के नियन्त्रण में रहें, यह तो ठीक है विनोबा! परन्तु...'

और तुमने मुझको चश्मा लगाने को दिया। न दीखनेवाली वस्तुएँ दिखाई देने लगीं। तुमने ही पिताजी को सूचना दी कि मैं तुम्हारे पास हूँ। प्रत्येक बात का तुम्हारा

सूक्ष्म निरीक्षण मेरे गणित को मात कर रहा था। जब मैं निरन्तर बीमार रहने लगा तब अपने शरीर पर मुझको स्वयं ही लज्जा आने लगी! और तब मैंने एक वर्ष में स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने का निश्चय किया और यह निश्चय आपको बताया! आपने हँसकर कहा था, 'यहाँ सभी नियमों का विधिवत् पालन करने के बाद भी तुम शरीर से अस्वस्थ रहे हो, इसका अर्थ यह भी है कि तुम्हारा मन कहीं अन्यत्र है। दोनों पटरियों पर जीवन की गाड़ी चल सके, ऐसा कुछ करो!'

मैं वहाँ से चल दिया। दो वर्ष तक निरन्तर आपके साहचर्य में रहा था। आपकी असंख्य स्मृतियाँ साथ थीं। एक बार प्रभुदास गाँधी से मैंने कहा था, 'शरीर से कार्य करते हुए निरन्तर ईश्वर-चिन्तन करना चाहिए।' आज यही ध्यान में आया कि ईश्वर रूप बदलता रहता है। मुझको आप साक्षात् पिता लगे! साधक लगे! सामाजिक हितचिन्तक और मेरे लिए तो ईश्वर ही लगे! बचपन से ही गीता मन में रमी हुई थी। मैंने आप में कर्मयोगी के साक्षात् दर्शन किये। गीता के स्थितप्रज्ञ मुझको आप दिखाई दिये। अब्दुल गफ्फार खान से बातें करते हुए एक दिन आपने सत्य धर्म का वर्णन किया। उस समय कौरव-पाण्डव सेना में रथ खड़ा करके 'सत्य धर्म के लिए तू युद्ध-प्रवृत्त हो'—यह सन्देश देनेवाले श्रीकृष्ण मुझको आपके रूप में दिखाई दिये तथा शरीर एवं मन की दो अलग भूमिकाएँ मानकर जीनेवाला मैं आपके अन्तर की आवाज से अभिभूत हो गया।

आपके यहाँ से चलकर मैं वाई को गया। यहाँ एक संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित नारायण शास्त्री मराठे रहते हैं। मैं उनके पास गया। संस्कृति के प्रति अभिरुचि मन में थी ही। इसके अतिरिक्त शंकराचार्य का अद्वैतवाद मन को मुग्ध कर रहा था। भगवद्गीता, उपनिषदें, पतंजलि के योगसूत्र तथा मनुस्मृति का विवेचनापूर्ण अध्ययन प्रारम्भ हो गया। उस साहित्य रस में मैं आकण्ठ डूब गया। भगवद्गीता पर मेरा बचपन से ही पोषण हुआ था परन्तु प्रत्येक शब्द का गहन अर्थ तथा उसकी विवेचना से मैं श्रीकृष्ण के चरित्र से बारम्बार अभिभूत हुआ।

और शंकराचार्य के तत्त्वज्ञान से मैं पागल हो गया। मद्रास के पास के इस लड़के ने ब्रह्मदीक्षा लेकर हिमालय तक आकर हिन्दू धर्म को पुनरुज्जीवित किया, यह अद्भुत लगता था। बद्रीनाथ के हिमाच्छादित हिमालय पर जाने की उनकी उत्कट इच्छा तथा असीम आकाश के नीचे गूढ़-रम्य हिमालय पर उन्होंने जो दिन बिताये थे, वे दिन मैंने ही बिताये हैं, मुझको ऐसा लगने लगा। अलकनन्दा का हिमाच्छादित प्रवाह, उसमें डूबी हुई विष्णु की प्रतिमा। बौद्ध धर्म के प्रसार के समय उसको उखाड़कर फेंक दिया था। उस प्रतिमा की प्रतिष्ठापना। बद्रीनाथ—बद्रीनाथ की व्यास गुफा—वहाँ व्यासजी द्वारा गणपति को लिखने के लिए कहा हुआ महाभारत! वहाँ का मोक्षदायी परिसर! इन सबमें मैं उलझ गया। मेरी आँखों के सामने केदारनाथ की चढ़ाई दिखाई देने लगी।

उस पर स्वर्ग की ओर जानेवाले पाण्डव दिखाई देने लगे। एक-एक गिरते हुए अन्त तक जानेवाला युधिष्ठिर, शंकराचार्य जैसा लोकनेता तथा उसके द्वारा किया गया नेपाल, भूटान, मानसरोवर तक का मीलों का पैदल प्रवास—यह पढ़कर मन चकित हो गया। उस परिसर में मन उलझता ही गया। निरभ्र नीले आकाश में चमचमाते तारे, हिमालय की बर्फ पर फैला हुआ प्रकाश, प्रकाशित निःस्तब्ध दस दिशाएँ, घोर अन्धकार में निमग्न पर्वतराजियाँ—बर्फ की वर्षा में डूबा हुआ असीम गूढ़ वातावरण और उसमें बद्रीनाथ की पूजा करनेवाले शंकराचार्य! अद्वैत का साक्षात्कार—आत्मा-परमात्मा का एक रूप! जीव-शिव की एकता। स्वधर्म का ज्ञान। यह सब शंकराचार्य में अनुभव करते हुए वे मेरे गुरु ही बन गये! मैं उनका विनम्र शिष्य बन गया।

बापू! जब मैंने आत्मशोधन किया तब मेरे ध्यान में आया कि इक्कीस वर्ष की अवस्था तक मुझको तीन गुरु मिल गये थे—माता-पिता तथा पितामह के अमिट संस्कार लेकर मैं जीवन-भर घूमना चाहता था। वाई में आने पर ध्यान में आया कि मेरे आगामी जीवन के लिए मुझको तीन गुरु प्राप्त हो गये हैं। वे हैं ज्ञानेश्वर, शंकराचार्य और तीसरा क्रमांक बापू आपका है! आप तीनों का मुझ पर अमिट प्रभाव है। ज्ञानेश्वर की प्राकृत भाषा में लिखी गयी ज्ञानेश्वरी पढ़ते समय बार-बार यह प्रश्न मेरे सामने आया कि इस युवक को इतना असीम ज्ञान-विवेक और सौन्दर्य-आकलन हो कैसे गया? जीवन तत्त्व-ज्ञान, भाषा की सुबोधता और शब्द-लालित्य, सालंकारिता, सहजता तथा प्रगाढ़ जीवनानुभूति। यह सब कैसे प्राप्त हो गया? प्रत्यक्ष जीवन में कटु-कटुतर अनुभव लेकर भी अपने साहित्य में उसकी जरा-सी भी खरोंच न हो—यह देखकर महान आश्चर्य हुआ! प्रत्यक्ष जीवन के सामने जाकर, असन्तोष को पचाकर, लोकहितार्थ ज्ञानेश्वरी लिखकर जीवन को स्वयं ही समाप्त करने की माया ज्ञानेश्वर ही जानते थे। अभिभूत हो जाना मेरा स्वभाव नहीं है, परन्तु फिर भी आप तीनों के जीवन-दर्शन से मैं अभिभूत हो गया था।

उस समय हिमालय-भ्रमण कर आये हुए एक संन्यासी मुझसे बोले, 'तेरा भाषण-प्रवचन सुनकर ऐसा लगा जैसे साक्षात् शंकराचार्य बोल रहे हों! पुत्र, तेरा कल्याण हो!' उस आशीर्वाद से मेरे ध्यान में आया कि मैं ज्ञानेश्वर-शंकराचार्य से एकरूप हो गया हूँ।

मैं गीता पर प्रवचन दे रहा था। पचासवें प्रवचन में मैंने अन्त में स्वीकार किया, 'मुझको तीन गुरु मिले हैं। तीन ग्रन्थ मिले हैं। भगवद्गीता से बढ़कर जीवन-दर्शन देनेवाला और कोई नहीं है। उसी प्रकार तीन गुरुओं ने मेरा मार्ग प्रशस्त किया है। महात्मा गाँधी के जीवन में मुझको भगवद्गीता साकार दिखायी दी। वे मेरे गुरु साबरमती के तीर पर कोचरब आश्रम में रहते हैं।'

बापू! तदनन्तर आपके सम्बन्ध में मुझको सदैव जी भरकर बोलने की इच्छा

होती रही। कभी मौन रहकर आपका अनुभव किया, कभी एक-एक प्रसंग की अर्थ-संगति का विचार करता रहा। आश्रम में जिस प्रभाव से अभिभूत हुआ था वह आगे चलकर समाप्त हो गया।

बापू! मौंजीबन्धन के समय मैं देशसेवा तथा ब्रह्मचर्य के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हुआ था। परन्तु मेरी शरीरयष्टि वैसी नहीं थी। यहाँ प्रतिदिन दस-बारह मील घूमना, आठ-दस सेर चक्की से दलना और तीन-सौ सूर्य नमस्कार करना मैंने प्रारम्भ कर दिया। भोजन में भी मैं प्रयोग करता रहा। कभी नमक छोड़ा, कभी मसाला, तो कभी दूध। प्रकृति ठीक लगने लगी। उस समय मेरा खर्च पौने तीन आने था। बापू! मैंने आपको पत्र द्वारा उस समय सब कुछ बताया था। मैंने अपनी दिनचर्या भी आपको बतायी थी। अन्त में लिखा था, 'मैं आश्रम से एक वर्ष की छुट्टी ले आया हूँ। भिन्न-भिन्न प्रयोग किये हैं। साहित्य-प्रवाह में भी स्वयं को डाल दिया। अब मुझको क्या करना चाहिए—यह विनोबा का—आपको पितृतुल्य समझनेवाले आपके पुत्र का आग्रह है।'

और बापू! आपने पत्र भेजा था। मुझको आज भी उसका एक-एक अक्षर कण्ठस्थ है। मुझको याज्ञवल्क्य कहते हैं, वह असत्य नहीं है। सब कुछ मुझको याद रहता है। आपने लिखा था :

प्रिय विनोबा,

अनेक आशीर्वाद!

मुझको मराठी तो आती नहीं है। इसलिए टूटी-फूटी हिन्दी में लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। और फिर मेरे अक्षर भी बहुत क्लिष्ट हैं। यदि अक्षर-सुधार योजना चलायी जाए तो मैं पहला विद्यार्थी होऊँगा।

तुम्हारा पत्र मिल गया है। तुम्हारे लिए मैं किस विशेषण का प्रयोग करूँ—यही समझ में नहीं आ रहा है। तुम्हारा प्रेम और तुम्हारा चरित्र मुझको तुम्हारे मोह में डाल रहा है। तुम्हारी परीक्षा लेने में मैं असमर्थ हूँ। तुमने स्वयं अपनी जो परीक्षा ली है वह मुझको स्वीकार है। और तुम्हारे लिए मैं तुम्हारा पिता बनने को तैयार हूँ। तुम्हारे प्रति मेरा जो मोह था, वह तो तुमने पूरा कर दिया है। मैंने तो सदैव यह अनुभव किया है कि प्रत्येक पिता को अपने चरित्रवान् लड़के पर अभिमान होता है तथा उससे मोह होता है। और लड़का वही योग्य है जो प्राप्त गुणों का विकास कर सके। पिता सत्यवादी, दयालु और दृढ़संकल्पी हो तो लड़के को भी उनके गुण आत्मसात् करने चाहिए। विनोबा! यह तुम कर चुके हो। तुमने यह मुझसे सीखा है, इस पर मुझको विश्वास नहीं होता है। इसलिए, तुम जो पितृपद मुझको दे रहे हो उसको मैं तुम्हारी भेंट समझकर स्वीकार करता हूँ। मैं उस पद के योग्य होने का प्रयत्न करूँगा। फिर भी यदि मैं हिरण्यकश्यप बन जाऊँ तो तुम प्रह्लाद बनकर मेरा धिक्कार करना।

तुमने आश्रम के बाहर रहकर भी आश्रम के नियमों का पालन किया है—यह उचित ही किया है। तुम आश्रम में लौटकर आओगे, इसमें मुझको कोई सन्देह था ही नहीं! तुमको मामा फड़के बीच में मिले थे न! उन्होंने बताया था। तुम्हारा शरीर-स्वास्थ्य का कार्यक्रम पढ़ा। ईश्वर तुमको दीर्घायु करे और तुम्हारे हाथों से हिन्दुस्तान की सेवा हो, यही मेरी इच्छा है।

आगे आपने और भी बहुत कुछ लिखकर आशीर्वाद-सहित अपने हस्ताक्षर कर दिये थे।'

आज इस समय यह सब स्मरण कर विनोबा की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। महात्माजी से मिलने के लिए प्राण व्याकुल हो उठे। वे इस समय दिल्ली में या शिमला में होंगे। परन्तु केवल मिलने के लिए जाना, यह अपना स्वभाव नहीं है। मैं तो पवनार-सेवाग्राम की आठ मील की दूरी भी स्वयं पार नहीं करता हूँ, तो दिल्ली जाने का प्रश्न ही नहीं है।

अब पिताजी के पास जाना चाहिए। फिर भी मन बालकोबा के पत्र की प्रतीक्षा कर रहा था।

मन दोनों ओर को व्याकुल हो रहा था। पत्र अधलिखा छोड़कर वे लेट गये। परन्तु आँखों में नींद नहीं थी। मन में स्मृतियों की भीड़ हो रही थी। बाहर बरसात हो रही थी।

स्मृतियाँ भी कहाँ-से-कहाँ चली जाती हैं! पागल की तरह पीछे-पीछे दौड़ती हुई बचपन के गाँव में पहुँच जाती हैं। कभी पीछे कभी आगे झूले पर झुलाती रहती हैं। अब सन् 1946 का जुलाई का महीना चल रहा है और स्मृतियाँ आ रही हैं साबरमती के तट के कोचरब आश्रम तक की! अर्थात् 16-17 वर्षों की। इस समय पिताजी बीमार हैं और स्मृति आ रही है माता की मृत्यु की।

कोचरब आश्रम में दो वर्ष रहकर मैं वाई चला गया था। वहाँ से मैंने महात्माजी को पत्र लिखा था। पूर्व निश्चय के अनुसार एक वर्ष के पश्चात् उसी समय मैं आश्रम में लौट आया था। परन्तु उस समय वाई से गागोदा को जाना यद्यपि बहुत सरल था फिर भी मैं जा नहीं सका था। अपने कार्यक्रम में, प्रवचन में तथा विद्यार्थी-मण्डल में मैं इतना व्यस्त हो गया था कि बड़ौदा में माताजी से तथा गागोदा में पितामह से मिलने नहीं जा सका था। परन्तु इस व्यस्त कार्यक्रम में 'केसरी' के लेख मैं पढ़ रहा था। एक दिन लोकमान्य तिलक को मैंने पत्र लिखा—' 'केसरी' के ज्वलन्त लेख मैं पढ़ता हूँ। मैं महात्माजी के साहचर्य में दो वर्षों तक रहा हूँ। शंकराचार्य के अद्वैतवाद का, महात्माजी की अहिंसा का तथा भगवद्गीता के कर्मयोग का विचार मन में है। देश की स्वतन्त्रता का भी विचार करता हूँ। आपके मत से स्वतन्त्रता का ठीक-ठीक विचार

कौन-सा है ? आपने गीता रहस्य लिखा है। आज युद्ध-प्रवृत्त हुआ जाए या अहिंसा से सत्याग्रह किया जाए—आपका क्या विचार है ?'

और लोकमान्य तिलक का पत्र आया—'6 मार्च 1917 को पुणे में मिलो।' मैं तदनुसार पुणे में उनके घर गया। पुणे का भवन। उसमें चौक में झूले पर बैठे हुए लोकमान्य तिलक कुछ लिख रहे थे। उन्होंने सहज ही कहा, "आओ विनायक नरहरि भावे।"

और फिर उन्होंने कहना प्रारम्भ किया। निरन्तर अमोघ वक्तृत्व का झरना प्रवाहित होता रहा। कुछ देर बाद वे हँसकर बोले, "विनायक! तुम यदि पहले मेरे पास आ जाते तो मैं लेखनी से प्रहार करता! और तब तुम तलवार की खनखनाहट में क्रान्ति के मार्ग पर चलते! परन्तु तुम पहुँचे मन्दिर में—ईश्वर की प्रार्थना करके शान्तिमय मार्ग से उसको अपने काम में उलझाकर जीने का यह मार्ग मुझको कदापि स्वीकार नहीं है, कारण यह है कि सरल रास्ता छोड़कर लम्बे मार्ग से जाना उचित नहीं है। मैं जीवन-भर चिल्लाता रहा, पुकारता रहा, सुप्त महाराष्ट्र को जगाता रहा परन्तु अब थक गया हूँ। यदि तुम जैसे बुद्धिजीवी युवक मुझको मिल जाते तो मैंने सम्पूर्ण महाराष्ट्र को स्वतन्त्रता की लालसा से प्रज्वलित कर दिखा दिया होता! षण्ढ और गुलामों का जीवन बितानेवाले लोगों का धिक्कार करने में ही जीवन बीत गया। अब बुलन्द आवाज क्षीण होती जा रही है। ऐसे समय में तुम मिले हो विनायक! अब तुम तो शुद्ध-सात्त्विक ऋजु व्यक्तित्व का पाठ पढ़कर ऋषित्व की साधना करने निकले हो! पूरे वर्ष आश्रम से बाहर रहकर तुमने सन्त-साहित्य और द्वैत-अद्वैत का विचार किया है। कर्म से आचार किया, संयत आहार किया है। तुम ऋषि बनने निकले हो। कल ब्रह्मर्षि बनोगे। तुम्हारा रंग अब पक्का हो गया है। विनायक नरहरि भावे! तुम कल के दीपस्तम्भ हो! मैं देख रहा हूँ कि जंगल में रहकर जनहित की साधना करनेवाले ऋषि के रूप में ही तुम्हारा मार्ग निश्चित हो गया है।"

मैं भी खूब बोलना चाहता था, परन्तु जो मैं बोलना चाहता था वही लोकमान्य तिलक बोल रहे थे। उनकी आवाज स्पष्ट और खनखनाती हुई थी परन्तु शरीर से वे थके हुए लग रहे थे।

"किसी समय मैं चिल्लाकर कहता था कि मैं मृत्यु से डरता नहीं हूँ। 'स्वतन्त्रता प्राप्त होने तक मृत्यु मेरे पास न आये'—यह कहकर मैं मृत्यु को धमकाता था। परन्तु कथन मेरा था, कर्मगति मेरी थी। परन्तु दैवगति उसको मात कर सकती है—यह अब मैं समझने लगा हूँ। निश्चित समय का ज्ञान नहीं होता है, इसीलिए ईश्वर को अवसर मिल जाता है। अस्तु, विनायक नरहरि भावे! कल तुम्हारे हाथ में है। आज जीवन की सन्ध्या हो गयी है। फिर आना। परन्तु मिलेंगे ही—यह भरोसा नहीं है।"

बापू! एक ज्वलन्त प्रतिभा का—साक्षात् कर्मयोगी का तथा धाराप्रवाह वाणी का

दर्शन हो गया। फिर मैं आपके पास लौटा। उनके कथनानुसार यदि आपने मुझ पर पक्का रंग न लगाया होता तो शायद उस ज्वलन्त प्रतिभा को मैंने स्वीकार कर लिया होता।

मैं आश्रम में आया और कुछ दिन बाद ही माता की बीमारी का पत्र आ गया। बापू! आपने कहा, "प्रत्येक की दो माताएँ होती हैं। एक माता बीमार है, दूसरी बन्धन में है। सदैव मनुष्य के मन में दो प्रश्न उठते हैं—इधर जाऊँ या उधर? करूँ भी तो क्या करूँ? यहाँ जो उचित लगे वही उचित है। इस समय तुम माँ के पास जाओ विनोबा!"

और मैं माँ के पास आया। उस समय इन्फ्लुएन्जा का प्रकोप नया-नया था। वह प्रकोप जब बड़ौदा में आया तब उसकी कोई दवा नहीं थी। जब घर पहुँचा तब माँ ज्वर से कराहती हुई खाट पर पड़ी थी। पितामह और मेरा छोटा भाई दत्ता भी बीमार थे। पितामह ने कहा, "विनायक! अच्छा हुआ जो तुम आ गये। अब तुम प्रेम से अपनी माँ की ओर ध्यान दे सकोगे!"

ज्वर में माँ ने आँखें खोलीं। शरीर में अत्यधिक ज्वर होते हुए भी वह हँस पड़ी और कहा, "अच्छा हुआ विन्या! जो तू आ गया।" फिर तत्काल उसने कहा, "विन्या! आश्रम का काम छोड़कर तू क्यों आया है? बापू समझेंगे कि विन्या मन से दुर्बल है। काम आधा छोड़कर भाग जाता है। ऐसा मत कर विन्या!"

"नहीं माँ! मुझको पितामह का पत्र मिला—वह बापू ने पढ़ लिया था। मैंने तो अपने सारे सम्बन्ध ही तोड़ दिये थे। मैं मोह को जीतने का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु बापू बोले, 'तुम जाओ विनोबा! तुमको कर्तव्य-भावना से अवश्य ही जाना चाहिए।' "

"तू कर्तव्य-भावना से आया है विन्या?"

"माँ! तुम्हारा साहचर्य, तुम्हारी स्मृतियाँ, तुम्हारे संस्कार और तुम्हारा रूप-स्वरूप मुझको जीवनभर मोहित करता ही रहेगा। वह तो अमिट है। कर्तव्य अलग होते हैं। उनमें सामाजिकता अधिक होती है। उसमें ऋणमुक्त होने का भाग होता है। परन्तु मैं मोहवश या कर्तव्य-जैसे किसी विचार से तुमसे मिलने नहीं आया हूँ। तुम बीमार हो, यह पता चला। मिलने की इच्छा हो ही रही थी। तभी महात्माजी बोले, 'घूम आओ!' और मैं आ गया। माँ! तुमको सन्तोष हो रहा है न?"

"सचमुच विन्या! मैं सन्तुष्ट हूँ। मैं पहले भी सन्तुष्ट थी, अब भी हूँ। मस्तक पर सौभाग्य लिये मृत्यु—यह स्त्री की भाग्यरेखा होती है। आज यही स्थिति है। बच्चे सद्गुणी हों, इससे बढ़कर सौभाग्य क्या होगा विन्या?"

माँ ने मुझको एक कथा कही थी, उसका स्मरण हो आया। कथा में एक स्त्री प्रत्येक कार्य श्रीकृष्ण को अर्पण किया करती है। इतना ही नहीं, जिस गोबर-मिट्टी से वह चूल्हे को लीपती थी, उस गोबर-मिट्टी का बचा हुआ गोला वह स्त्री इस प्रकार फेंकती थी कि वह ठीक सामने के मन्दिर में श्रीकृष्ण की देह पर पड़ता था। पुजारी

उसको रोज धोता था। एक दिन वह बीमार पड़ी तब वह बोली, 'अब मैं क्या करूँ? अब मैं अपनी यह देह ही कृष्णार्पण करती हूँ।' उसने देह त्याग दी। और कृष्ण प्रतिमा भग्न हो गयी! कथा हास्यास्पद तो लगी थी, परन्तु वह माँ के जीवन से मिलती-जुलती थी। जीवनभर ईश्वर-चिन्तन करती हुई कार्यरत रहनेवाली माँ समाधान के साथ महायात्रा की तैयारी कर रही थी। उसी समय दत्ता का ज्वर बढ़ गया था। एक ही समय तीनों का काम था। दिन-रात एक करके की गयी सेवा को स्वीकार करती हुई माँ हँसते-हँसते ईश्वर का नाम ले रही थी। ज्वर में भी वह संयमित थी। वह बोली, "विन्या! तुमने मुझको सब चिन्ताओं से मुक्त कर दिया है। शिवाजी और बालकोबा तेरे पास ही हैं। बचा दत्ता, सो यह अगर जीवित रहा तो तू ले ही जाएगा। 'इनकी' कोई समस्या नहीं है। इनके पास इनके काम हैं।"

यह कहते-कहते ही सन्तोष से माँ ने आँखें बन्द कर लीं। दिन भर श्रम करने के बाद कोई सो जाए, ऐसे ही वह सो गयी। मृत्यु का इतना सहज और सुन्दर दर्शन तथा निद्रा और चिरनिद्रा इन दोनों की धुँधली सीमारेखाओं से उत्पन्न दर्शन को देखकर मेरा मन मृत्यु की सहजता का विचार करने लगा।

माँ का शव सामने था। मैं मन में सामवेद गा रहा था। अनेक सुन्दर ऋचाएँ मन में अवतरित हो गयी थीं। माँ की मृत्यु पर आक्रोश करने की इच्छा नहीं हो रही थी, अपितु अनेक सुन्दर अर्थों के परदे उठ रहे थे! माँ के होठों पर हँसी थी। मुखमण्डल पर समाधान था। माँ नहीं हैं, यह भावना ही मन को स्पर्श नहीं कर रही थी। कितनी अद्‌भुत बात थी। मुझको रोना चाहिए था, परन्तु रुलाई नहीं आ रही थी।

मैं कोने में बैठा था। मृत्यु की सहस्र कल्पनाओं के परे मुझको उषा काल की सुनहली राह दिखाई दे रही थी। किसी ने मेरे कन्धे को स्पर्श करते हुए कहा, "विनायक! माँ के शोक में मन को दु:खी मत करो। यों उसकी अवस्था अधिक नहीं थी। परन्तु वह स्त्री साधारण नहीं थी। वह ईश्वर-भक्त थी। ईश्वर ने उसको अपने पास बुला लिया।"

लोग मुझको सान्त्वना दे रहे थे, परन्तु मुझको सान्त्वना की आवश्यकता नहीं थी। माँ का शरीर मृत हुआ था, उसकी आत्मा हमारे ही पास थी। उसके अमिट संस्कार, उसकी स्मृतियाँ, सब कुछ तो वह छोड़ गयी थी।

'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय'—जीर्ण शरीर अब विश्राम कर रहा था। पितामह ने कहा, "विनायक उठ! श्मशान में चलना है।"

मेरी तन्द्रा टूटी। मैंने कहा, "श्मशान में माँ का अग्निसंस्कार उन परम्परागत ब्राह्मणों के हाथों से मत करवाइए!"

"ऐसी ही परम्परा है।"

"यह परम्परा मुझको स्वीकार नहीं है।"

"विनायक! लोक-परम्परा स्वीकार करनी ही पड़ती है।"

"परन्तु क्यों?"

"इसका मेरे पास उत्तर नहीं है।"

"दादा! यदि माँ से पूछा होता तो उसने यही कहा होता—विन्या! मेरी देह को अग्नि तू ही देना।"

"उसने कहा तो नहीं न! और यदि कहा भी होता तो लोक-परम्परा को मैं तोड़ना नहीं चाहता!"

बापू! उस दिन मेरी आँखों से बरसात हो रही थी। मैं घर पर ही रुक गया था। मैं जोर-जोर से गीता के श्लोक बोल रहा था। मैं क्यों इस तरह का व्यवहार करता हूँ? मैं स्वयं ही नहीं जानता। मैं समाज में रहकर भी अकेला ही क्यों जीता हूँ?—समझ में नहीं आता। समाज की रीति-नीति मैं स्वीकार क्यों नहीं कर पाता? उनको तोड़ने का स्पष्ट साहस मुझमें क्यों नहीं है? समझ में नहीं आता। मेरे मन में जो आता है वही मैं करता रहता हूँ, उसके परिणाम की चिन्ता न करते हुए। इच्छा होती है तो जोर-जोर से गाता हूँ। इच्छा होती है तो मौन रहता हूँ। यह सब किसलिए? कुछ समझ में नहीं आता।

मैं हूँ याज्ञवल्क्य। मैं तो पाँचवाँ वेद निर्माण कर सकता हूँ। मैं एकपाठी हूँ। विश्व का साहित्य कण्ठस्थ कर सकता हूँ। परन्तु मैं क्या करता हूँ? वेद निर्माण करना तो दूर रहा, ज्ञानेश्वर की भाँति पड़िया के मुख से वेद उच्चरित करवाने की सामर्थ्य भी मुझमें नहीं है।

जटाजूट बढ़ाकर मैं ऋषि नहीं हो सकता हूँ। सर्टीफिकेट फाड़कर फेंकने से मैं प्राध्यापक नहीं हो सकता हूँ। आखिर मैं हूँ कौन...यह मैं स्वयं ही नहीं जानता हूँ। मैं स्वयं को खोजने का बहुत प्रयत्न करता हूँ परन्तु सब व्यर्थ! माता की मृत्यु के पश्चात् मैंने वेदों का अध्ययन प्रारम्भ किया। बापू! मैं माँ के विचारों को भुला नहीं सका। वह कहती, "जितनी आवश्यकता हो उतना ही लेना चाहिए। थोड़े में मिठास है तथा अधिक लेना बदमाशी है। पेटभर भोजन और तन ढकने को वस्त्र इससे अधिक तृष्णा नहीं होनी चाहिए। परमेश्वर-चिन्तन तथा साधु-सन्तों के वचन—इसके अतिरिक्त मनुष्य को अन्य कुछ भी नहीं सुनना चाहिए। देशसेवा ही परमेश्वर की सेवा है।"

माता की मुझ पर श्रद्धा थी। उसी श्रद्धा से उसने मेरा निर्माण किया। जब मैं घर से चला आया था तब पिताजी ने कहा था, "जब भूखा रहना पड़ेगा तब अपने आप घर लौट आएगा।" तब माँ ने विश्वास के साथ कहा था, "वह वही करेगा जो उसके मन में होगा। नाटक-तमाशे के लिए तो वह घर छोड़कर गया नहीं है? वह कभी गलत काम नहीं करेगा।"

आज पिताजी की बीमारी की बात सुनकर ध्यान आया माँ का ही! पिताजी

अपने मत के आग्रही थे। माता की मृत्यु के पश्चात् वे अकेले ही रहे परन्तु उन्होंने हमको नहीं पुकारा।

और आज उनके पास गये हुए बालकोबा के पत्र की प्रतीक्षा करते हुए आप भी याद आ गये। सब कुछ याद आ गया। अब सोचता हूँ, जाऊँ तो जाऊँ कहाँ? आपसे मिलने जाऊँ या उनके पास जाऊँ?

प्रभात हो गया था। बाहर वर्षा यद्यपि रुकी नहीं थी तथापि रात्रि में जो वेग था वह कम हो गया था। विनोबा ने पत्र को पढ़ा और फिर उसको टुकड़े-टुकड़े कर उनको जल-प्रवाह में फेंक दिया।

आश्रम में प्रार्थना हुई। हाथ में फावड़ा और सिर पर तसला रखकर वे सूरगाँव की ओर चल दिये। आश्रमवासी कितना भी चाहें परन्तु विनोबा को रोकने की शक्ति उनमें नहीं थी।

आश्रम से बाहर निकलते ही वर्षा अधिक जोर से होने लगी। फिर भी वे चलते रहे। सूरगाँव में प्रवेश करते हुए एक जल प्रवाह निचले भाग में बहता हुआ जा रहा था। प्राय: सूखा रहनेवाला यह भाग पानी से लबालब भर गया था तथा सूरगाँव में प्रवेश करना असम्भव हो गया था। वर्षा हो ही रही थी। फिर भी विनोबा उस प्रवाह तक पहुँचे और प्रवाह में उतरे। परली ओर किनारे पर इसी असमंजस में लोग खड़े थे। विनोबा प्रवाह में चलते हुए कमर तक पानी में पहुँचे। आगे नीचे धरती अधिक ढालू हो गयी थी। तब फिर विनोबा वहीं से चिल्लाये, "आप सुन रहे हैं न! मन्दिर में विराजमान परमेश्वर से कह देना कि गाँव का मेहतर आया था परन्तु नाले के पानी ने जोर पकड़ लिया था, इसलिए वह आज गाँव में नहीं आ सका। परन्तु कल दूसरा रास्ता खोजकर वह आएगा।"

फिर विनोबा प्रतिदिन बरसात में निकलने लगे, तब बाबाजी मोघे ने कहा, "बरसात है। रोज भीग रहे हैं। मत जाइए। कब तक यह काम करेंगे?"

"कम-से-कम बीस वर्ष।"

"बीस वर्ष का क्या प्रयोजन है?"

"तब तक नयी पीढ़ी तैयार होकर काम करने लगेगी।"

विनोबा प्रतिदिन सूरगाँव में जाकर सफाई करने लगे। किसी को क्रोध आ रहा था, किसी को लज्जा लग रही थी। एक दिन चमत्कार हो गया। सदैव की भाँति विनोबा तुकाराम के अभंग गाते हुए चले जा रहे थे। सूरगाँव का सूखा नाला पार किया और वे चकित रह गये! सारा गाँव ऐसा स्वच्छ था मानो धो दिया हो! विनोबा की आँखें आर्द्र हो गयीं। स्वच्छ धुले हुए कपड़े पहने लोग विनोबा के चरणों में सिर झुकाने के लिए भीड़ करने लगे। सतत बोलनेवाले विनोबा ने गद्गद स्वर में पूछा, "आज यह सब क्या है?"

"बाबा! गाँव में गणपति उत्सव मनाया जाएगा। आपको अवश्य ही आना है।"

विनोबा ने एक शब्द भी नहीं कहा और वे तत्क्षण लौट पड़े। तब मोघे ने पूछा, "आज तो आप बड़ी जल्दी लौट आए?"

"क्रान्ति हो गयी। गाँव समझदार हो गया है। अब कल से दूसरा गाँव!"

इतना कहकर विनोबा अपने कमरे में चले गये और उन्होंने कमरे का द्वार बन्द कर लिया। कुछ देर बाद विनोबा की आवाज सुनाई देने लगी। मधुर स्वर में वे गा रहे थे :

नर-नारी-बाल सभी को नारायण
समझूँ मैं, ऐसा मेरा मन करो देव!
काम-क्रोध-द्वेष-निन्द्रा ये द्वन्द्व न मन में आएँ
सब कुछ देखूँ निस्सन्देह गोविन्दमय
सब विषयों से हो जाऊँ मैं विरक्त॥
मनसा-वाचा-काया से तव चरणों में
नत रहूँ—पूर्ण करो मनोरथ
कृपा करो नाथ—तुका कहे॥

9

विनोबा विगत अनेक दिनों से अस्वस्थ थे। अभी तक महात्माजी की ओर से कैसी भी जानकारी उनको व्यक्तिगत रूप से नहीं मिली थी। समाचारपत्रों के कालम के कालम भरे आ रहे थे—ब्रिटिशों की अत्याचार की कथाओं से तथा हिन्दुस्तानी लोगों के स्वतन्त्रता-आन्दोलनों से! राजनीतिक आन्दोलनों में वेग आ गया था। बंगाल में अन्धड़-वर्षा और बाढ़। उसके बाद पड़ा अकाल! लाखों मनुष्य मृत्यु के मुख में चले गये। शिमला सम्मेलन समाप्त होने पर महात्माजी तत्काल बंगाल गये। रवीन्द्रनाथ टैगोर की मृत्यु के बाद उन्होंने कलकत्ते में प्रवेश किया था। समाचार था कि वे शान्ति-निकेतन में ठहरे थे। दैवी प्रकोप और ब्रिटिशों के अत्याचार से पीड़ित लोगों को सान्त्वना देने के लिए वे वहाँ गये थे।

समाचारपत्रों में प्रतिदिन महात्माजी के निवास तथा भाषणों के सम्बन्ध में वृत्तान्त

आ रहा था। बंगाल से वे उड़ीसा तथा फिर मद्रास को गये। प्रत्येक स्थान पर भाषण देते हुए वे कहते, "अब ब्रिटिशों का शासन समाप्त होना चाहिए। अब उनको जाना चाहिए। एक ही नारा अब गूँजना चाहिए। वह यह कि 'अँग्रेजो! भारत छोड़ो!' कितने समय तक वे जेल में रखेंगे? कितने समय तक हिन्दुस्तानी लोगों की भावना को दबाएँगे? हमारी समस्याएँ, हमारे प्रश्न अब परदेसी लोग हल न करें। वे अपना राज्य देखें। हमको हमारे लोगों का शासन चाहिए। हमको ब्रिटिश शासन नहीं चाहिए।"

प्रतिदिन उनके भाषण से लोग जाग्रत हो रहे थे। अन्त में ब्रिटिश सरकार ने एक सलाहकार-समिति की स्थापना की। उसके अध्यक्ष वाइसराय ही बननेवाले थे। इस सलाहकार-समिति में हिन्दुस्तानी नेताओं के सहयोग की उनको अपेक्षा थी। परन्तु महात्माजी ने वह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। 'हमारी जीवन-नीतियों का विचार सम्पूर्णतः हिन्दुस्तानी समिति ही करेगी'—यह सन्देश भी उन्होंने भेजा।

जनमत के आदर करने का दिखावा करते हुए ब्रिटिश सरकार ने कुछ स्थानों पर काँग्रेस मन्त्रिमण्डल की स्थापना की। परन्तु उसी समय हिन्दू-मुस्लिम एकता में फूट डालने का कार्य भी उन्होंने प्रारम्भ कर दिया। इसी आधार पर पंजाब-बंगाल-सिन्ध प्रान्त में मुस्लिमों के मन्त्रिमण्डल स्थापित किये गये। इन मन्त्रिमण्डलों पर नियन्त्रण और अधिकार ब्रिटिश शासन का था। उसी समय मार्च 1946 में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री एटली ने घोषणा की कि जनमत का आग्रह होने के कारण पार्लियामेण्ट में हिन्दुस्तानी लोग पहले अपना संविधान तैयार करें। हिन्दुस्तान में असन्तोष की स्थिति देखकर एक कैबिनेट मिशन वार्ता करने के लिए हिन्दुस्तान में आया। उसमें लार्ड पैथिकलारेन्स, स्टैफोर्ड क्रिप्स तथा अल्बर्ट अलैक्जेण्डर प्रमुख थे। महात्माजी से उनकी लम्बी बातचीत हुई। अन्त में उन्होंने हिन्दू और मुस्लिमों को समान अवसर देने का निश्चय किया।

समाचारपत्रों में प्रतिदिन समाचार पढ़कर विनोबा अत्यधिक अस्वस्थ हो गये। ब्रिटिशों की कूटनीति ने उनको व्याकुल कर दिया। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए महात्माजी ने अपना जीवन अर्पण कर दिया था। विनोबा भी यह अनुभव करते थे कि हिन्दुस्तान में रहनेवाला प्रत्येक मनुष्य हिन्दू है। परन्तु यहाँ तो प्रत्येक सभा-बैठक में हिन्दू और मुस्लिमों को समान अवसर देने का ब्रिटिश सरकार का प्रयत्न तो ऐसा ही था जैसे कि, 'न तुझको न मुझको—डाल कुत्ते को।'

महात्माजी के मन की व्याकुल स्थिति को विनोबा समझ गये। हिन्दू भी उनके थे, मुस्लिम भी उनके थे। सर्वधर्म समभाव रखने के लिए वे सर्वधर्मीय प्रार्थना करते थे। वे कहते थे कि राम-रहीम एक ही हैं। कबीर के दोहे बोलते हुए वे कहते, 'विनोबा! अनेक वर्षों पहले हुए कबीर ने दोनों को ही खूब फटकारा है और दोनों में ही एकता को देखा है।' आश्रम में कस्तूरी की भाँति फातिमा भी थी। दोनों के धर्म

दो थे परन्तु मन अपनत्व की भावना से भरे हुए थे। आज राम और रहीम को अलग बताया जा रहा है। जिनका जीवन एक ही ध्येय से प्रेरित होकर स्वतन्त्रता की आकांक्षा कर रहा था वे लोग ही हमारा बंगाल, हमारा सिन्ध, हमारा पंजाब कहकर सत्ता के पदों पर अधिकार करने लग गये थे। सब कुछ हृदय-विदारक था।

कैबिनेट मिशन ने मन्त्रिमण्डल की स्थापना की तब उसमें हिन्दू-मुसलमानों की संख्या समान रखी। तब काँग्रेसी नेताओं का माथा ठनका और तब से हिन्दू-मुसलमानों के बीच दरार बढ़ती चली गयी। अन्त में बैरिस्टर जिन्ना ने ब्रिटिश सरकार से कहा कि यदि काँग्रेसी हिन्दू लोग मन्त्रिमण्डल में आने को इच्छुक न हों तो मुस्लिम लीग ही मन्त्रिमण्डल बना सकती है। इस बात को कैबिनेट मिशन ने अस्वीकार कर दिया। बैरिस्टर जिन्ना सन्तप्त हो गये। तत्पश्चात् उन दिनों इतने अमानवीय हत्याकाण्ड प्रारम्भ हो गये कि इतिहास के पृष्ठ अत्याचार के रक्त से रंजित हो उठे।

विनोबा अत्यन्त दु:खी हुए। उनके लिए यह जीवन की शोकान्तिका थी। महात्माजी की सम्पूर्ण विचारधारा कुचल दी गयी! नोआखाली में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे और सूर्य लज्जा से स्याह हो गया। महात्माजी के अस्वस्थ मन की तथा घटनाओं की जानकारी विनोबा को व्याकुल कर रही थी। ये साम्प्रदायिक दंगे कम न होकर वडवानल जैसे फैलते जा रहे थे।

अन्त में वाइसराय ने काँग्रेस अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरू को अन्तरिम मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित किया। परन्तु उसी समय दूसरी ओर हिन्दू-मुस्लिमों में फूट डालने का जोरदार काम भी ब्रिटिश शासन कर रहा था। अब दंगे भड़क रहे थे। इन दंगों की आग से राष्ट्र को बचाना असम्भव हो रहा था। यदि स्वतन्त्र राष्ट्र पाना है तो मन्त्रिमण्डल कीं रचना तथा कार्य आवश्यक थे। परन्तु मुस्लिम लीग पक्का इरादा कर चुकी थी कि अच्छे ढंग से कुछ भी नहीं करने देना है। दंगे बढ़ते जा रहे थे, राष्ट्र जल रहा था। निरपराधों की हत्याएँ हो रही थीं। अन्त में जवाहरलाल नेहरू ने इच्छा के विपरीत मजबूर होकर कुछ मुस्लिम नेताओं को मन्त्रिमण्डल में लिया। ब्रिटिश सरकार चुपचाप तमाशा देख रही थी। नोआखाली में सैकड़ों स्त्रियों को लूट लिया गया था। महात्माजी के शब्द हवा में विलीन हो गये थे। जिस एक शब्द को सुनने के लिए लोग कानों में प्राण ले आते थे, अपना जीवन अर्पण कर देते थे, जिस शब्द से दग्ध हृदय पर अमृत-सिंचन होता था, जिस एक अहिंसा शब्द के लिए लाखों लोग चुपचाप डटे रहते थे—वह शब्द क्षण भर में पुछ गया था। अहिंसा की धज्जियाँ उड़ गयीं। लज्जा की होली हो गयी।

महात्माजी की दशा से विनोबा विचलित हो उठे। श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष को यादवों का संहार देखते समय जो मानसिक वेदनाएँ हुई होंगी—उसकी कल्पना विनोबा ने की। दिनोंदिन देश की दशा बिगड़ती जा रही थी। इस उपद्रव-झंझावात में अहिंसा

चक्कर खा रही थी। शान्ति का गला घोंट दिया गया था। सत्य को आमूलाग्र उखाड़ा जा रहा था। मानवता का अन्त हो गया था।

हिन्दुस्तान के नये वाइसराय लॉर्ड माउण्टबेटन के आने से पहले ही ऐटली ने घोषणा की थी कि जून 1948 में मन्त्रिमण्डल व्यवस्थित रूप से कार्यभार सँभाल लेता है तो ब्रिटिश शासन यहाँ से अपने देश को चला जाएगा। परन्तु लोग अब अधीर हो उठे थे। संयम का अतिरेक हो गया था और हिन्दू-मुसलमानों में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे थे। अब भी लगभग एक वर्ष तक ब्रिटिश शासन को यहाँ रहना था। घोषणा हो गयी थी। भारतीय संविधान बन गया था। मन्त्रिमण्डल का निर्माण दोनों पक्षों को समान स्थान देकर किया गया था।

लार्ड माउण्टबेटन दिल्ली में आये और उन्होंने महात्माजी तथा बैरिस्टर जिन्ना दोनों को वार्ता के लिए आमन्त्रित किया। और विनोबा के हृदय की धड़कन बढ़ गयी। हिंसा और अहिंसा एक-दूसरे के सामने खड़ी थीं। अत्याचार और सदाचार एकत्र होनेवाले थे। विनोबा का अनुमान था कि इस समय निश्चय ही अनाचार का पलड़ा भारी होगा। उनके मन में विचार आया कि इस समय महात्माजी की सहायता के लिए जाना चाहिए, वे अकेले रह गये हैं, उनके शब्द हवा में विलीन हो जाएँगे!

परन्तु विनोबा कहीं नहीं गये थे। जन्मदाता पिता की हाल में ही धुलिया में मृत्यु हो गयी थी। बालकोबा का पत्र आया था। पिता अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। एकाकी जीवन में अपना कार्य स्वयं ही करके वे थक गये थे। उन्होंने बालकोबा से कहा, ''विनायक को बुलवा ले। ये साँसें अब अधिक नहीं चलेंगी। मुझको धुलिया ले चल।''

विनोबा धुलिया गये थे।

''दादा! इतने वर्षों तक आप स्वयं काम करते रहे हैं। कोई मनुष्य तो रख लेते!''

''अरे, नौकर रखने पर जब वह गलतियाँ करेगा तब मुझको क्रोध आएगा। इससे तो अच्छा है कि अपना काम स्वयं कर लिया जाय। मुझको याद है कि जब तुम कुछ गलतियाँ करते थे तो मैं उनको सहन नहीं कर पाता था और तुमको पीटता था।''

''और पीटते-पीटते एक दिन रुक गये। मैंने कारण पूछा तो मनुस्मृति का उद्धरण देकर आपने कहा, 'तू सोलह वर्ष का हो गया अर्थात् मेरे ही समान हो गया है। तुझको पीटना उचित नहीं है।' ''

नरहरि पन्त क्षीण हँसी हँसकर बोले, ''यह सच हो तब भी उस समय मैंने विचार किया था—मुझको बच्चों से मन से ही दूर रहना है। राग-लोभ आखिर मन में ही होते हैं न! तुम्हारी माता को दिवंगत हुए उन्तीस वर्ष हो रहे हैं। परन्तु उससे पहले भी मैंने गृहस्थ-जैसा व्यवहार किया ही कब था! माँ ने स्वयं को काम में जोत

लिया और अपने मनोरंजन के लिए उसने ईश्वर-संकीर्तन में मन लगाया। तुमने ब्रह्मचर्य की कठोर प्रतिज्ञा कर ली और गृहस्थाश्रम से पहले ही दूर मैं और अधिक दूरस्थ हो गया। जीवन का विचार करते हुए अब मेरे ध्यान में यह बात आयी है कि मैं कभी किसी के लिए जीवित नहीं रहा! जीवन का सुदीर्घ काल व्यतीत किया तो अपने लिए—अपने अस्तित्व के लिए और अपने सिद्धान्तों के लिए। किसी से भी किंचित् भी समझौता नहीं किया। किसी को कभी कुछ समझाने-समझने का प्रयत्न नहीं किया। तुम्हारी माँ ने एक काम अच्छा किया। मैं कुछ भी ध्यान नहीं दूँगा—यह विचार कर उसने तुम्हारे वैराग्य की रक्षा की और उसको प्रोत्साहित किया। अगर कोई साधारण स्त्री होती तो वह मेरे पीछे पड़कर भुनभुनाती ही रहती। वह तुमको कसमें खिलाकर विवाह करने को विवश कर देती। परन्तु उसने ऐसा कुछ नहीं किया।''

नरहरि पन्त अत्यधिक भावुक हो उठे थे।

चार-पाँच दिन के ज्वर से शान्तिपूर्वक उनकी मृत्यु हो गयी। उनका अन्त्येष्टि-संस्कार किया तथा घर के आँगन में ही उनकी देह की राख पूरित कर दी गयी। देह आखिर मिट्टी ही है। विनोबा ने विचार किया था कि देह मिट्टी में ही जाना चाहिए। लोगों को बड़ा विचित्र लगा। लोगों ने वैसा कहा भी। विनोबा ने मन-ही-मन विचार किया, 'लोग तो मुझको विक्षिप्त ही कहेंगे परन्तु मैंने यह कार्य वेद-सम्मत ही किया है। वेद में प्रार्थना है कि हे मात! तुम मुझको थोड़ा-सा स्थान दो, मुझको समा लो!'

प्रकट रूप में उन्होंने कहा, ''पिताजी का निवास यहाँ रहे, इसलिए उनकी राख यहाँ रखी है।''

विनोबा ने गड्ढे में राख रखी। उस पर मिट्टी डाल दी। फिर एक पत्थर रखा और उस पर लिखा, 'सभी सुखी हों यह कामना।'

रामदास स्वामी की पंक्ति विनोबा ने स्वयं भी आत्मसात् की।

नरहरि पन्त जब थे तब—'वे हैं'—यह प्रतीति क्षीण थी परन्तु उनके जाने पर विनोबा मन में काँप उठे। सांसारिक उत्तरदायित्व समझते हुए उन्होंने आज तक छोटे भाइयों की चिन्ता नहीं की थी। अब बालकोबा और शिवाजी छोटे नहीं थे परन्तु वे भी ब्रह्मचारी रहकर उन्हीं के कार्य में लग गये थे। विनोबा ने कभी उनसे उनकी इच्छा नहीं पूछी—यह अनुभूति भी उनको हुई। उनको यह भी अनुभूति हुई कि वे अवस्था में उनसे बड़े हैं। माता-पिता के जाने से रिक्त हुए स्थान की ओर भी उनका ध्यान गया!

नरहरि पन्त लाखों-करोड़ों में एक थे परन्तु लाखों-करोड़ों का पिता आज धर्मसंकट में पड़ गया था। हिन्दुओं की ओर से कुछ कहा जाए तो उफनता हुआ हिन्दू-मुस्लिम विक्षोभ और अधिक उफनेगा। यदि मुसलमानों को कुछ समझाकर कहा जाए तो कोई सुननेवाला नहीं था। सुन्दर प्रफुल्ल उपवन क्षण-प्रतिक्षण दग्ध हो रहा था।

विनोबा भयकम्पित हो उठे थे। लॉर्ड माउण्टबेटन ने महात्माजी के सामने देश-

विभाजन का प्रस्ताव रखा। महात्माजी ने कहा, "मुझको विभाजन स्वीकार नहीं है। हिन्दू और मुसलमान इस देश में अनेक वर्षों से बन्धुभाव से रहते आये हैं। इस समय उनका जो झगड़ा है वह स्थायी नहीं है। वे भी अमन चाहते हैं। अविचार का अन्धड़ अवश्य रुकेगा। राम-रहीम फिर एकत्र आनन्द से रहेंगे। आपका प्रस्ताव मैं स्वीकार नहीं कर सकूँगा। यह प्रस्ताव कोई समझौता नहीं है। चाहें तो अकेले बैरिस्टर जिन्ना ही मुस्लिम सरकार बना लें। परन्तु किसी भी परिस्थिति में विभाजन का मैं सख्त विरोध करता हूँ। मैं कदापि यह स्वीकार नहीं करूँगा। भारत अखण्ड रहे—यही उचित है।"

महात्माजी के वक्तव्य पर हिन्दुओं ने विरोध प्रकट किया—मुसलमानों के लिए वह विजयोत्सव था। काँग्रेस अध्यक्ष और काँग्रेस दल विचार करता रहा। विचार-विमर्श के बाद भी मार्ग नहीं मिल रहा था। अन्त में कार्यकारिणी को यह भयंकर अनुभूति हो गयी कि सिन्ध और बंगाल को अलग कर दिये बिना यह हत्याकाण्ड समाप्त नहीं होगा। काँग्रेस दल के सम्मुख दूसरा कोई विकल्प ही नहीं बचा। महात्माजी तथा बादशाह अब्दुल गफ्फार खान दोनों ही अन्त तक विभाजन को अस्वीकार करते रहे। प्रश्न किसी भी प्रकार हल नहीं हो रहा था। बार-बार बैठकें हो रही थीं। सभी काँग्रेसी नेता जैसे हतबल हो गये थे तथा वे उपद्रवों पर नियन्त्रण करने में असमर्थ सिद्ध हुए थे।

महात्माजी की स्थिति की कल्पना करते ही विनोबा तत्काल दिल्ली पहुँचे तथा काँग्रेस के नेताओं से घिरे हुए महात्माजी से वे मिले। विनोबा को देखते ही महात्माजी के होठों पर हँसी आ गयी तथा आँखों में जल भर आया।

"बापू! मैं प्रतिदिन पेपर पढ़ता हूँ। कोई भी शर्त आप स्वीकार मत कीजिए तथा भारत को अखण्ड रखिए।"

"मैं भी यही प्रयत्न कर रहा हूँ विनोबा! मैंने कभी यह सब नहीं चाहा था। गत वर्ष से ये दंगे भड़क रहे हैं। हजारों निरपराधों की मृत्यु, नोआखाली का भीषण काण्ड—यह सब देखकर मन विषण्ण हो गया है।"

"यह मैं स्वीकार करता हूँ। प्रलय-काल आ जाय तब भी चिन्ता नहीं। नवीन सृष्टि निर्मित होगी, परन्तु किसी भी स्थिति में देश का विभाजन नहीं होना चाहिए।"

"विनोबा! काँग्रेस दल में ही दो विचारधाराएँ हैं।"

"होने दें! बापू! आपकी बात मानकर सब एकमत हो जाएँगे।"

"विनोबा! मुसलमान क्या अपने नहीं हैं?"

"हैं! मन्त्रिमण्डल में अल्पसंख्यक मुस्लिमों को समान स्थान दिया तब विरोध हुआ। परन्तु विभाजन से दोनों राष्ट्र एक-दूसरे से शाश्वत शत्रुता करने लगेंगे। आज उनको देश के टुकड़े कुछ समय के लिए आनन्द दे सकेंगे परन्तु भविष्य में यह द्वेष विक्षुब्ध करता रहेगा। आप रोकिए सबको!"

महात्माजी मौन हो गये।

"बापू! आप इस प्रकार चुप क्यों हैं? क्यों नहीं दृढ़ता से खड़े होकर कहते हैं कि विभाजन मुझको स्वीकार नहीं है। अपने शब्द-सामर्थ्य को संसार को दिखा दीजिए बापू! दिखा दीजिए! बापू! मैं लेख लाया हूँ 'हरिजन' में प्रकाशित करने के लिए। उसका शीर्षक है—'भारत के टुकड़े न हों!' "

"विनोबा! लेख प्रकाशित होगा। परन्तु किसी के कहने से, सलाह से, विचार से कुछ होता है क्या? तुम यह समझते हो, परन्तु एक नेतृत्व अब समाप्त हो गया है, यह प्रतीति मुझको हो गयी है। तुम सदैव गीता के वचन मेरे सामने उद्धृत कर उनका अर्थ मुझसे जोड़ते आये हो। मैं तुमसे कहता भी था, 'विनोबा! मैं अत्यन्त साधारण हूँ। मेरी शक्ति कम है। परन्तु तुमने माना नहीं।' "

"और आज भी मैं यह नहीं मानूँगा! आपकी प्रत्येक कृति का अर्थ इतना सरल नहीं है बापू!"

"तुमने मुझको श्रीकृष्ण माना, पत्थर को देवता कहा। उसी श्रीकृष्ण के राज्य में आज गृह-कलह मचा हुआ है। जिस सत्यधर्म की संस्थापना के लिए भगवद्गीता कही गयी..."

"बापू! आज ये सभी सन्दर्भ अनावश्यक हैं। गृह-कलह मचा हुआ है—यह सत्य है। परन्तु आप मन को सुदृढ़ कीजिए। विभाजन का घोर विरोध कीजिए। यही उचित है।"

"विनोबा! मेरी मनःस्थिति अत्यन्त दोलायमान हो रही है। मैं तो विभाजन के विरुद्ध था ही परन्तु अब..."

"नहीं बापू! ऐसा मत कीजिए!"

"विनोबा! मैं क्या करूँ, यही समझ में नहीं आ रहा है। अन्त में नेतृत्व में शक्ति नहीं रही।"

"ऐसा आप क्यों समझते हैं? अल्पसंख्यकों को मन्त्रिमण्डल में समान स्थान दिया जाए—यह गणित भी कहाँ ठीक था? तब आपने 'हाँ' क्यों कही थी?"

"काँग्रेस अध्यक्ष जवाहरलाल हैं।"

"और वे आपके आदेश के बाहर नहीं हैं बापू! आपकी राजनीतिक ध्येय-नीति का उल्लंघन करने की शक्ति आज तो किसी में है नहीं! तब फिर आप ही स्वयं क्यों दुर्बल हो रहे हैं—यह समझ में नहीं आ रहा है। मैं फिर कहता हूँ बापू! विभाजन मत होने दीजिए! आप ही सदैव कहते रहे हैं न—विनोबा! तू मेरा गुरु है। तो फिर आज बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम् मान लीजिए। गुरु-वचन मानिए अथवा आप मुझको ऋषि कहते हैं तो ऋषि-कथन को सुनिए...परन्तु सुनिए अवश्य!"

बापू मौन रहे। बायाँ पैर मोड़कर, दोनों हाथ धरती पर टेककर वे नीची दृष्टि

किये बैठे रहे। विनोबा उनके पास जाकर बोले, "केवल एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही है। आप डर किससे रहे हैं? मुस्लिमों से? हिन्दुओं से? या क्षीण शक्ति होते जा रहे स्वयं के नेतृत्व से? हिंसाचार आज भी चल ही रहा है। आज अहिंसा-सत्य इन दो शब्दों का अर्थ समाप्त हो गया है। समाप्त हो जाने दीजिए। श्रीकृष्ण ने भी 'न शस्त्र धारण करूँगा मैं कर में'—यह प्रतिज्ञा की थी। फिर भी उन्होंने शस्त्र उठाया था। अहिंसा की संस्थापना के लिए भी कभी-कभी हिंसा करनी पड़ती है। यद्यपि शंकराचार्य कहते हैं कि यद्यपि सत्यं लोकविरुद्धं न करणीयं नाचरणीयम्!"

"पुराणों के उद्धरण वर्तमान स्थिति में सदैव लागू नहीं होते हैं..."

"तो फिर बापू! आपके मन में आखिर है क्या? या मन में कुछ और तथा जन में कुछ और है? आप इस प्रकार असमंजस में क्यों हैं? बहुसंख्यक हिन्दू आपके पक्ष में हैं। परन्तु विभाजन करने पर ये ही हिन्दू आपके ही तत्त्व के हत्यारे बन जाएँगे।"

"मैंने अभी तक अपनी स्वीकृति नहीं दी है।"

"आपके मौन को ही एक दिन स्वीकृति समझ लेंगे लोग!"

"मैं कौन हूँ विनोबा! जवाहरलाल जो और जैसा करेंगे वही होगा। क्योंकि मन्त्रिमण्डल उनके साथ है।"

"परन्तु जवाहरलाल आपका कहना नहीं टालेंगे। आप निश्चय तो करें!"

"विनोबा! मैं वृद्ध हो गया हूँ। देश की बागडोर सँभालना अब मेरे वश की बात नहीं है। मैं अब नया नेतृत्व तैयार नहीं कर सकता। किसी एक के न्याय से दूसरा अन्यायी सिद्ध होगा।"

"मुझको और कुछ नहीं कहना है। आप विभाजन का विरोध करें—इतना ही!"

"मैं ऐसा नहीं कर सकता विनोबा!"

"परन्तु आप अपने ही कल के शब्दों को आज क्यों बदल रहे हैं? कल तो आप विभाजन के विरोधी थे। आज समर्थक क्यों हो गये?"

"अराजकता बढ़ेगी—प्रलय-स्थिति बन जाएगी!"

"बन जाने दो! कुछ समय पश्चात् सारा अन्धड़ शान्त हो जाएगा। झाड़-पोंछ कर फिर सब स्वच्छ हो जाएगा।"

महात्माजी चुप हो गये। कहकर-समझाकर विनोबा थक गये थे। अन्त में निराश मन से वे आश्रम में लौटे। राजनीति में उनकी रुचि अधिक थी ही नहीं। अब महात्माजी के कारण उनके मन में आया कि राजनीति की ओर से पूर्ण रूप से मुख मोड़ लेना चाहिए।

विनोबा ने समाचारपत्र पढ़ना बन्द कर दिया। फिर वे दैनिक कार्यक्रमों में सदैव की भाँति व्यस्त हो गये। दिन बीत रहे थे।

और अकस्मात् 29 जनवरी की रात को वर्षा आ गयी। विनोबा लिख रहे थे। लिखते-लिखते बिजली चली गयी। विनोबा ने लालटेन जलायी। हवा से ज्योति फड़फड़ाकर वह बुझ गयी। विनोबा ने स्वयं से ही कहा, 'आज क्या प्रकाश रहेगा ही नहीं? अचानक वर्षा आती है, अचानक बिजली चली जाती है। ये कैसे कुसमय के संकेत हैं?' उठते-उठते धक्का लगने से स्याही दवात लुढ़क गयी—तब वे वहीं ठहर गये।

उनको तीव्रता से महात्माजी की याद आयी। महात्माजी सचमुच ही वृद्ध हो गये हैं। उनको आधार देने के लिए मुझको दिल्ली में रहना था। सन् 1942 से 45 तक तीन वर्ष जेल में काटने के बाद मुझको तन-मन से उनके साथ काम करना चाहिए था। वे अकेले रह गये। वे स्वयं को सँभालने में असमर्थ हो रहे हैं, इसीलिए उनको आधार की आवश्यकता है। शायद उनके मन में पहले से ही यह विचार था कि विनोबा स्वयं दौड़ते हुए आकर कुछ पूछेंगे। परन्तु विनोबा नहीं गये थे। और आज उनको बार-बार ऐसा लग रहा था—मैंने कहीं-न-कहीं गलती की है। स्वतन्त्र आश्रम, स्वतन्त्र अस्तित्व, स्वयं की कार्यप्रणाली, स्वयं के तत्त्व, स्वयं के सिद्धान्त और स्वयं के प्रयोग—इनसे महात्माजी जैसे नेता का भी मैंने अनादर किया है, यह अनुभूति विनोबा को हुई।

इसी बीच किसी ने यह कहा कि महात्माजी ने लार्ड माउण्टबेटन के विभाजन के प्रस्ताव को सम्मति दे दी है और विभाजन अटल हो गया है। उस दिन यह सुनकर विनोबा इतने सन्तप्त हुए कि उस दिन उन्होंने भोजन ही नहीं किया। वे कमरे से बाहर ही नहीं निकले।

इस सम्मति से देश में पुनः दंगे भड़क उठे। 14 अगस्त की रात को 12 बजे ब्रिटिशों ने भारत को स्वतन्त्रता दी। उस दिन महात्माजी ने मौन व्रत रखा। विनोबा को महात्माजी के मौन पर क्रोध आया। अपना स्पष्टीकरण देना छोड़कर कोई स्पष्टीकरण माँगे भी नहीं, इसीलिए महात्माजी ने मौन रखा है, विनोबा को ऐसा ही लगा।

पूर्व बंगाल और सिन्ध-कच्छ भाग में भीषण दंगे हुए। 15 अगस्त सन् 1947 का दिन भारतीय इतिहास की स्वतन्त्रता का सुवर्णपृष्ठ, निरन्तर रक्तरंजित हो रहा था। लोग किस बात से उत्तेजित होकर होश खो बैठे थे, यही समझ में नहीं आ रहा था।

भारत एक राष्ट्र हो गया। स्वतन्त्र राष्ट्र! उसी प्रकार दो राष्ट्र और बने। एक—पूर्व पाकिस्तान और एक पश्चिम पाकिस्तान। फिर भी स्वतन्त्रता का जयघोष दसों दिशाओं में गूँज उठा। आकाशव्यापी हो गया।

उस दिन विनोबा सदैव की भाँति खेत में काम कर रहे थे। कुछ शैक्षणिक संस्थानों ने उनसे कहा, "कोई सन्देश दीजिए न!" तब विनोबा ने कहा, "स्वराज्य मिल गया है। क्या अब एक दिन के लिए भी हम अँग्रेजी झण्डे को सहन करेंगे?"

सबने एक स्वर से कहा, "नहीं...कदापि नहीं!" विनोबा कहने लगे, "जिस प्रकार पुराने शासन का झण्डा हम लोगों को स्वीकार नहीं है उसी प्रकार प्राचीन पाठ्यक्रम तथा शिक्षा-पद्धति को ज्यों-की-त्यों रखने की इच्छा का अर्थ होगा अँग्रेजी शासन को सम्मति! महात्माजी ने पुन: नवीन जन्म लेनेवाले भारत के लिए नयी शिक्षा-पद्धति बतायी है। परन्तु वह अद्यापि स्वीकार नहीं की गयी है! यदि मेरे हाथ में सत्ता होती तो मैं विद्यार्थियों को तीन महीने की छुट्टी देकर कहता, 'जाओ बच्चो! डेढ़ सौ वर्षों के पश्चात् भारत को स्वतन्त्रता मिली है—उसका आनन्द लो! खूब खेलो! नाचो-गाओ! अपना स्वास्थ्य अच्छा करो! खेतों में जाओ! माता-पिता की सहायता करो! और उसी समय शिक्षण-संस्थानों से कहता कि तीन महीनों में शिक्षा की नयी योजना तैयार कर लो! तीन महीनों के बाद विद्यार्थी जब आएँगे तब उस पर क्रियान्वयन प्रारम्भ हो जाएगा।' "

यह सत्य है कि विभाजन स्वीकार करने के पश्चात् ही स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। अनेक लोगों ने विनोबा से अनेक प्रश्न इस सन्दर्भ में पूछे। कारण यह था कि महात्माजी के सन्दर्भ में विनोबा के अतिरिक्त निकटस्थ कोई था ही नहीं। और फिर विनोबा इन सब स्थितियों में उनसे मिलकर आये थे। जब लोग प्रश्न करते तब मन में विषण्ण विनोबा हँसकर कहते, "प्रभु की इच्छा।"

उस समय मिलने आये एक पत्रकार ने कहा, "विनोबाजी! जब हम महात्मा गाँधी के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं तब या तो आप मौन रहते हैं या फिर ईश्वरेच्छा कहकर प्रश्न टाल देते हैं। सत्य तो यह है कि आप राजनीति में कूद चुके हैं। राजनीति का आज तक आपने विरोध नहीं किया है। कई बार कारावास भोग चुके हैं। अब स्वतन्त्रता मिलने पर जी भरकर बोलना छोड़कर आप मौन हो जाते हैं। ऐसा क्यों? महात्माजी ने विभाजन को स्वीकृति दे दी—यह आपको अच्छा लगा क्या? इस प्रश्न का उत्तर आप नहीं देते हैं—इसका अर्थ यह है कि आप महात्माजी से सहमत नहीं थे!"

विनोबा ने हँसकर कहा, "भारत स्वतन्त्र हो गया है, किसको क्या विचार करना है और क्या प्रकट करना है—इसकी पूर्ण स्वतन्त्रता अब भारतवासियों को है।"

"परन्तु आप महात्माजी के सम्बन्ध में बोलिए!"

"मैंने किसी के भी सम्बन्ध में कुछ भी न कहने का निश्चय कर लिया है।"

पत्रकारों ने बहुत घुमा-फिराकर प्रयत्न किये परन्तु विनोबा ने उत्तर नहीं दिया।

"महात्माजी के सम्बन्ध में छोड़िए, परन्तु इस विभाजन के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया तो बता दीजिए!"

"कुछ दिन पहले सक्रिय कार्यकर्ताओं की एक बैठक गोपुरी में हुई थी। तब मैंने कहा था, विभाजन नहीं होना चाहिए। यह विभाजन देश की हिमालय-जैसी गलती

बन जाएगी।"

"अर्थात् आपको विभाजन स्वीकार नहीं था! आप यह कहना चाहते हैं कि महात्माजी ने उचित नहीं किया है।"

"महात्माजी को मेरा वक्तव्य अच्छा नहीं लगा था। उन्होंने कहा था, विनोबा यहाँ आ जाते तो अच्छा रहता।"

"परन्तु आप दिल्ली में बिरला हाउस में महात्माजी से मिले थे न!"

"मैं अपने पिता को देखने गया था!"

घुमा-फिराकर प्रश्न करनेवालों को विनोबा ने उचित उत्तर दे दिये थे। परन्तु कैसी भी प्रतिक्रिया उन्होंने प्रकट नहीं की थी।

विनोबा को सब कुछ याद था। पत्रकार प्रतिदिन आ रहे थे। वे प्रतिदिन नये स्मृतिपत्रक, निषेधपत्रक रख जाते थे। फिर भी विनोबा शान्त थे। परन्तु आज रात में असमय आनेवाली मूसलाधार वर्षा ने उनको अत्यधिक अशान्त कर दिया था। वे इतने अस्वस्थ तो माता की अथवा पिता की भी किसी वार्ता से नहीं हुए थे।

जनवरी की ठण्ड समाप्त नहीं हुई थी। प्राय: संक्रान्ति के बाद कम हो जानेवाली ठण्ड इस बार संक्रान्ति के बाद बढ़ गयी थी और ऐसा लगता था मानो कश्मीर की शीतलहर आ गयी हो! उस पर असमय की वर्षा! शरीर में कम्पन समा गया था। शरीर पर मोटे-मोटे कपड़े पहनकर भी ऊब नहीं आती थी। आँखों में न समानेवाली स्याही कोठरी में फैली हुई थी। उन्होंने कोठरी के दरवाजे खोलकर बाहर देखा। बरामदे में विराजमान राम-लक्ष्मण की प्रतिमा अँधेरे में डूब गयी थी। वे अन्दर मुड़े। उन्होंने दरवाजे कसकर बन्द कर लिये और गीता के श्लोक पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

और उनकी आँखों के सामने सम्पूर्ण भारत की स्थिति साकार हो उठी। कोहराम मचा हुआ था! गर्जन-तर्जन हो रहा था! शरीर काँपने लगा। किसको मारना है? ये भी मेरे हैं—वे भी मेरे हैं। न्याय दिया भी जाए तो किसको? स्वयं को या दूसरे को?

श्रीकृष्ण कह रहे थे, "किसको मारेगा? तू कौन है? वे तो मरेंगे ही। और जो मरेगा वह है शरीर। आत्मा तो अमर है। मृत्यु अटल है, अनिवार्य है। आत्मा अजन्मा है :

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूय:।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता। इसलिए शरीर के मोह को छोड़ अर्जुन!

परन्तु अर्जुन को श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में ही सन्देह उत्पन्न हो गया। तब श्रीकृष्ण

ने विवश होकर अपने विषय में कहना प्रारम्भ किया :

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चाऽर्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥

हे अर्जुन! पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतों को मैं जानता हूँ परन्तु मुझको कोई भी नहीं जानता। मुझको जानने के लिए श्रद्धा-भक्ति नितान्त आवश्यक है। मैं सर्वत्र हूँ। मेरा निवास उस परमधाम में है जहाँ :

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसार में नहीं आते, उस स्वयं प्रकाश परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही; वही मेरा परम धाम है।''

विनोबा अँधेरे में गीता बोल रहे थे। न जाने कितना समय बीत गया। वर्षा अब भी हो रही थी। परन्तु बिजली आ गयी थी। उन्होंने घड़ी में देखा—तीन बज रहे थे। सदैव जाग्रत होने का उनका समय हो गया था। वे उठकर बाहर आये। वर्षा रुक गयी थी परन्तु आकाश में बादल छाये हुए थे। आज खुलेगा ऐसा लगता नहीं है—वे मन में बोले और फिर प्रातः-स्नान से निवृत्त होकर लिखने बैठ गये।

आश्रमवासियों के उठने की घण्टी बजी। आश्रम में चेतना आयी। अभी दिशाएँ प्रकाशित नहीं हुई थीं। विनोबा बाहर आकर गाने लगे :

रघुपति राघव राजा राम, पतित-पावन सीताराम।
ईश्वर-अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान्॥

महात्माजी का प्रिय भजन आज अचानक उनके मन में कैसे आ गया, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था। उन्होंने बिना किसी कारण के महात्माजी से मिलने के लिए जाने का निश्चय किया। प्रार्थना प्रारम्भ हो चुकी थी। फिर भी मन उनसे मिलने को अधीर और अशान्त हो उठा था। प्रार्थना के बाद उन्होंने बाबाजी मोघे और जयदेव से कहा, ''मैं बहुत व्याकुल हो रहा हूँ। महात्माजी से मिलने जाऊँगा मैं।''

''वे अब यहीं आएँगे। सेवाग्राम छोड़कर गये उनको कितने महीने हो गये! और फिर, जिसके लिए वे गये थे वह काम अब पूरा हो गया है।''

''हो सकता है कि जवाहरलाल उनको रोक लें!''

''नहीं बाबा! वे निश्चय ही जल्दी आएँगे।''

''फिर भी मैं आज जाऊँगा।'' क्षण भर को विनोबा की अधीरता दिखाई दे ही गयी। फिर सँभलकर वे बोले, ''कब से विचार कर रहा हूँ जाने का! परन्तु जब एक

बार काम में उलझ जाता हूँ तो फिर उसको पूर्ण किये बिना शान्ति नहीं मिलती।"

विनोबा वहाँ से उठे। सदैव की भाँति वे खेत में काम करने गये। अभी वे खेत में पहुँचे ही थे कि आश्रम से दौड़ता हुआ गौतम आया।

"बाबा!..." उससे आगे न बोला गया।

"क्या हुआ?" आशंकित मन से विनोबा ने पूछा।

"बाबा! बापूजी की हत्या हो गयी। गोडसे नामक युवक ने की।"

विनोबा ने आगे कुछ सुना ही नहीं। फावड़ा नीचे रखकर वे धरती पर बैठ गये। उनके मन में आया कि आक्रोश करके आकाश हिला दें, परन्तु वे बैठे रहे। वर्षा से धरती गीली हो गयी थी। उस गीली धरती पर वे बैठे थे। सम्पूर्ण शरीर सन्तप्त हो रहा था। मृत्यु अनिवार्य है, अपरिहार्य है; फिर भी ऐसी मृत्यु उनको अपेक्षित नहीं थी। ऐसी कल्पना भी उन्होंने नहीं की थी। अब महात्माजी इस संसार में नहीं हैं, यह भयंकर अनुभूति उनको विदीर्ण कर रही थी।

दिशाएँ प्रकाशित हो उठी थीं परन्तु उनका मन स्याह पड़ गया था। आकाश बरसकर निरभ्र हो गया था परन्तु उनका मन लबालब भर आया था। अब महात्माजी कभी दिखाई नहीं देंगे। 'विनोबा' कहकर स्नेह से पीठ पर थाप नहीं मारेंगे। कोई निर्णय करने के लिए वे अब विनोबा को नहीं पुकारेंगे। चैतन्य से परिपूर्ण सेवाग्राम अब उनके बिना रिक्त हो जाएगा। अब आश्रम में उनके व्यक्तित्व के दर्शन कभी नहीं हो सकेंगे।

महात्माजी की मृत्यु की कल्पना ही कभी मन में नहीं आयी थी। कुछ देर बाद वे लौटे और स्वाभाविक स्वर में बोले, "हे राम!"

बाबा मोघे बोले, "महात्माजी के अन्तिम शब्द ये ही थे।"

विनोबा भरत-राम मन्दिर के सामने बैठ गये। उनके सामने अनेक लोग आकर बैठ गये। देखते-ही-देखते आश्रम का बरामदा लोगों से भर गया। कोई कुछ भी नहीं बोल रहा था।

"बाबा! कुछ तो बोलिए!"

"बाबा! ऐसा नहीं होना चाहिए था।"

"बापूजी से ऐसा बदला लिया! अपने ही मनुष्य ने अपने ही मनुष्य की हत्या कर दी। लज्जा से सिर झुक जाए, ऐसा काला कर्म है यह!"

"जो कुछ हुआ है वह दुर्भाग्यपूर्ण ही है।" धीरे-धीरे लोग कहने लगे।

"एक बार तो बोलो बाबा! महात्माजी की भटकती हुई आत्मा को उससे शान्ति मिलेगी। बोलो बाबा! बापूजी के लिए बोलो! उनको मौन श्रद्धांजलि अर्पण मत करो। बोलो! थोड़ा तो बोलो बाबा! आपको बापूजी की शपथ है।"

विनोबा का कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

"अब मुझको उन बापूजी की शपथ क्यों दे रहे हो जो इस संसार में हैं ही नहीं! वे मेरे पिता थे। मेरे लिए तो उनके प्रेम की शपथ ही पर्याप्त थी। उनके सम्बन्ध में क्या कहूँ? सारे शब्द जिसमें समा जाएँ ऐसे शब्द प्रभु थे वे। समस्त स्नेह जिसमें एकीभूत हो गया हो ऐसे स्नेहमय थे वे। वे किसी के भी शत्रु नहीं थे। प्रत्येक जन उनका था। वे सब पर समान भावना से प्रेम करते थे। बापू मेरे गुरु थे। उनकी असंख्य स्मृतियाँ मेरे पास हैं। उन्होंने जो अथाह स्नेह मुझको दिया है वह है मेरे पास। क्षणभर को उदासी आयी। क्षणभर को मन में आया कि अब अपना कोई नहीं है। परन्तु ऐसी बात नहीं है। बापू अमर हैं। वे प्रत्येक के—अच्छे-बुरे सभी के—मन में रहेंगे। मृत हुआ है उनका शरीर :

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

यह जब मुझको अनुभव हुआ तब मेरा मन शान्त हो गया। मेरे मन को शान्ति मिली बापू की प्रत्येक सार्थक कृति से। अहिंसा-सत्य-मौन सत्याग्रह-उपवास ये शान्ति के शस्त्र हैं। शस्त्र शब्द से भी अहिंसा की शान्ति ढह सकती है। परन्तु यह शान्ति की सामग्री विश्व में प्रत्येक देश के लिए आवश्यक है।

साम्राज्य और भोगलिप्सा, शस्त्र, धन और सत्ता पर साम्राज्य का निर्माण जब होगा तब संघर्ष और तदनन्तर विनाश अटल है। बापू द्रष्टा थे। बापू श्रेष्ठतम के संग्रहकर्ता थे। बापू गुणग्राही थे। शत्रुंजय थे और अब मृत्युंजय भी हैं। उनके सम्बन्ध में मैं क्या कहूँ? बापू जैसे आपके थे वैसे ही मेरे थे। मेरे निकटस्थ थे।..."

कहते-कहते विनोबा मौन हो गये। मन पर कितना ही संयम रखा हो फिर भी उनकी आँखों से सतत अश्रुधाराएँ बह रही थीं।

कुछ रुककर विनोबा कहने लगे, "बल्लभभाई पटेल ने रेडियो पर जो कहा था वह सुना था न—कठिन-से-कठिन परिस्थिति में संयम की परीक्षा होती है। आज हमको उस कथन का अर्थ समझकर उसका पालन करना चाहिए। बापू की मृत्यु एक दुर्घटना है। यह घटना आज ही क्यों हुई? प्रत्येक सत्शील मनुष्य की मृत्यु दुर्घटना से हुई है। उनको अपनी मृत्यु की जानकारी निश्चय ही हो गयी होगी। उसके बिना क्या वे आगामी भीषणता का संकेत दे सकते थे! अहिंसा शब्द की मृत्यु हो गयी और हिंसा ने विनाश का ताण्डव किया! जब सैकड़ों की मृत्यु हुई तभी वास्तव में बापू की भी मृत्यु हो गयी थी। जिस समय साधक की जीवन भर की तपस्या और सिद्धान्त समाप्त हो जाते हैं उसी क्षण उसकी मृत्यु हो जाती है।

बापू की मृत्यु की दुर्घटना की तुलना 5000 वर्ष पूर्व घटित श्रीकृष्ण की मृत्यु की घटना से कर सकते हैं। उस समय एक व्याध ने श्रीकृष्ण को हरिण समझकर बाण

मारा था। व्याध को जब ज्ञात हुआ कि वह हरिण न होकर श्रीकृष्ण का पैर है तब उसने पास जाकर श्रीकृष्ण से क्षमा माँगी। विषयुक्त बाण अपना कार्य कर चुका था। फिर भी श्रीकृष्ण ने स्नेहपूर्वक उससे कहा, 'मृत्यु तो किसी-न-किसी कारण से आनेवाली थी ही। मेरी मृत्यु का कारण तुम बन गये—बस इतनी-सी बात है! इससे तुम अपने को अपराधी मत समझो!' वह पागल युवक—जिसने बापू पर निरन्तर तीन गोलियाँ चलायीं—वह उस व्याध से भी अधिक अज्ञानी था। बापू ने गोली लगते ही उसको क्षमा कर दिया होगा। बापू मुक्त हो गये। कभी-न-कभी मुक्त तो होना ही था, परन्तु इस घटना से वे अमर हो गये। महात्माजी अमर हैं।"

"महात्माजी के स्मारक से लोगों को आगे प्रेरणा मिलेगी!" किसी ने कहा।

विनोबा ने चिढ़कर कहा, "मृत्यु आने तक उस मनुष्य को कष्ट दिये जाएँ और फिर स्मारक बनाकर उसका गुण-गान किया जाए—यह लोकरीति मुझको कदापि स्वीकार नहीं है। बापू एक व्यक्ति नहीं थे। वे एक महान संस्था थे। सम्पूर्ण विश्व उनका कुटुम्ब था। सबके दुष्कर्मों का, पापों का भार उन्होंने अपने सिर पर धारण कर लिया था। उनकी मृत्यु से सभी को पाप लगा है। अब उनके ध्येय और सिद्धान्तों को प्राणपण से स्वीकार करके तदनुसार आचरण करना ही हमारे हाथ में है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं, जो व्यक्ति दुष्कर्म करनेवाले व्यक्ति का त्याग न करके उसको अपने स्नेह से अपना लेता है तथा आसक्ति रहित होकर सत्कर्म करता है वही संशयरहित ज्ञानी और त्यागी होता है। उसमें आसक्ति होती है पवित्र-मंगल तथा शुद्ध सात्त्विक होने की।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः॥

जो मनुष्य अकुशल कर्म से तो द्वेष नहीं करता और कुशल कर्म में आसक्त नहीं होता—वह शुद्ध सत्त्वगुण से युक्त पुरुष संशयरहित, बुद्धिमान और सच्चा त्यागी है।

बापू ऐसे थे। शुद्ध कांचन थे। जिस समय बापू पर गोली चलायी गयी उस समय वे प्रार्थना के लिए जा रहे थे। अर्थात् उस समय परम मंगल ईश्वर के विचार के अतिरिक्त अन्य विचार उनके मन में नहीं था। इस कारण वे परमेश्वरस्वरूप हो गये। उनकी मृत्यु उनके जीवन से भी अधिक भव्य हो गयी!"

विनोबा तीन दिनों तक बापू के सम्बन्ध में बोलते रहे। और फिर बोलते-बोलते रुक गये। महात्माजी का जन्म गुजरात में हुआ। कुछ समय परदेश में बीता। तदनन्तर कोचरब आश्रम। और फिर गुजरात छोड़कर वर्धा में सेवाग्राम आश्रम में आकर रहे। पूरे हिन्दुस्तान में भ्रमण और दिल्ली में मृत्यु। तीन स्थलों की यात्रा पूर्ण हो गयी थी। महात्माजी का तेजस्वी जीवन समाप्त हो गया था। 'हे राम!' ये अन्तिम शब्द राममय हो गये थे। विनोबा बेहद रिक्तता अनुभव कर रहे थे।

महात्माजी की अस्थियाँ धामनदी के पात्र में विसर्जित कर दी गयीं। विनोबा ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से उनको वन्दन किया। बापू अनन्त में विलीन हो गये और विनोबा को अनन्त ब्रह्माण्ड का स्मरण हो आया। उन्होंने स्वयं को अत्यधिक कार्यमग्न कर लिया।

जीवन का एक अध्याय उन्होंने बन्द कर लिया और नये अध्याय का पृष्ठ उलटा।

10

इस बार आषाढ़ सूखा गया। और श्रावण में आषाढ़ जैसी वर्षा होने लगी। विनोबा के मन में आया, ऋतुएँ भी आजकल बदलती जा रही हैं। पहले संक्रान्ति के बाद ही ठण्ड कम होने लगती थी परन्तु अब ललिता पंचमी बीत जाने पर भी ठण्ड बनी रहती है। गर्मियाँ सदैव लम्बे-फैले रास्ते जैसी लगती थीं। गर्मियाँ समाप्त होने की प्रतीक्षा करते-करते धैर्य जवाब देने लगता था।

आज आश्रम में कोई नहीं था। श्रावण की मूसलाधार वर्षा में नित्यकर्मों से निवृत्त हुए भी देर हो चुकी थी। विनोबा अलमारी में रखी पुस्तकों को व्यवस्थित करने लगे। विभिन्न अवसरों पर कहे गये तथा लिखे गये विचारों की पोथियाँ बन गयी थीं। उन पोथियों से अलमारी भर गयी थी। समय मिले तो पढ़ो, समय मिले तो लिखो—यह करते-करते पुस्तकें तैयार हो गयी थीं। उन पुस्तकों को निकालकर वे बैठ गये। उनमें गीता से तो वे पहले ही प्रभावित थे और ज्ञानेश्वरी ने मन में निर्मल सौन्दर्य भावना को जाग्रत कर दिया था। वे अनेक बार ज्ञानेश्वरी पढ़ चुके थे परन्तु उसके प्रत्येक शब्द का सौन्दर्य बढ़ता ही गया था। भगवद्गीता उनकी साँस थी तो ज्ञानेश्वरी उस साँस की सुगन्ध थी।

आज भी ज्ञानेश्वरी खोलते ही उनको निवृत्ति-ज्ञानेश्वर-सोपान और मुक्ता दिखाई देने लगे। उनके माता-पिता अत्यन्त प्रगल्भ थे, इसमें सन्देह नहीं है। जीवन में षट्-रिपुओं से जब तक व्यक्ति मुक्त नहीं होता तब तक उसको कैसा भी ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। उस ज्ञान को प्राप्त कर लेने पर ही मनुष्य निस्सन्देह जीवन-मुक्ति के सोपान पर चढ़ सकता है। वैराग्य की दीक्षा लेकर पुनः गृहस्थाश्रम में लौटनेवाले विट्ठलपन्त और फिर चार बच्चों का जन्म—समाज से लांछित तथा उपेक्षित होकर समाप्त हुआ उनका जीवन—अकेले रह गये बच्चे और फिर समाज के विषाक्त शब्दों

को पचाकर सभी प्राणियों के प्रति प्रेमभाव रखनेवाले तथा अपनी समस्त शब्दसम्पदा विनम्र भाव से निवृत्तिनाथ को अर्पण करनेवाले ज्ञानेश्वर का स्मरण उनको हो आया— स्व-बान्धवों के द्वारा भी त्याज्य माने गये ज्ञानेश्वर! जनसाधारण की सेवा में जीवन बितानेवाले ज्ञानेश्वर! अपने जीवन का कार्य समाप्त हो गया है, यह समझकर जीवित समाधि लेनेवाले ज्ञानेश्वर! सन्तों के समूह में अपने तेज से प्रकाशित होनेवाले ज्ञानेश्वर विनोबा को निकटस्थ लगे।

उन्होंने ज्ञानेश्वरी अनेक बार पढ़ी थी। उन पर प्रत्यक्ष प्रभाव जैसा ज्ञानेश्वर के जीवन का तथा साहित्य का पड़ा था वैसा ही महात्माजी का पड़ा था। महात्माजी के जाने के बाद यद्यपि वे अहर्निश स्वयं को कार्यमग्न रखते थे तथापि मन में एक रिक्तता भर गयी थी और उस रिक्त मन में अनजाने ही महात्माजी की स्मृतियाँ जाग्रत हो उठती थीं। वे अपने मन को अठारह-अठारह घण्टे, कभी-कभी बीस घण्टों तक काम करके सतत पाठन में या संकीर्तन में व्यस्त रखते थे। कभी उनके मन में आता, मनुष्य कहता है कि मुझको मोह नहीं है, आसक्ति नहीं है, परन्तु उसको कोई-न-कोई मोह होता ही है। तभी तो वह ब्रह्मपद पर विराजमान होता है! भगवद्गीता को हजार बार पढ़कर भी तथा कर्मयोग और ज्ञानयोग को अच्छी तरह समझकर मन में धारण कर लेने पर भी निरपेक्ष-निष्काम सेवा का प्रयत्न करने पर भी कहीं आसक्ति, कहीं क्रोध और कहीं ममता छिपी रहती ही है। पूर्ण रूप से विरागी और योगी बना हुआ पुरुष भी ब्रह्मर्षि नहीं बन सकता है, यह सच है। विश्वामित्र ने राज्य का त्याग किया। वर्षों तक अरण्य में अनेक बार तपस्या की, मन को शुद्ध-शुद्धतर करने का तथा आसक्ति से दूर रहने का प्रयत्न किया परन्तु फिर भी वसिष्ठ ने कहा, 'यह ब्रह्मर्षि नहीं हो सकता है।' आज कभी-कभी जब लोग मुझसे कहते हैं, 'यह गृहस्थ-विरक्त है, निष्काम सेवा करता है' और ऋषि-तुल्य समझकर सम्मान करते हैं तब अपने सम्मान का क्षणभर मोह होता है।

मन को मैं क्या कम शिक्षित करता हूँ? ज्ञानेश्वर का जीवन आँखों के सामने होता है। शंकराचार्य की दुष्कर कार्यनिष्ठा—महात्माजी की प्रखर जीवन-निष्ठा तथा समाज-निष्ठा सामने होती है। और उनके जीवन का सार ही अपने जीवन का ध्येय बनता जाता है! आशीर्वाद के लिए श्रीकृष्ण रहते हैं। परन्तु इसी से तो विरागी नहीं बना जा सकता!

कभी-कभी ऐसा लगता है कि यदि महात्माजी जीवन में न आये होते तो ऋषिकेश में गंगा-तट पर विराजमान अनेक साधु-पुरुषों में एक मैं होता! शायद देवप्रयाग और परमधाम में मोक्ष की याचना करता हुआ तथा जीवन के रहस्यों को अनावृत करता हुआ मैं अद्वैत का पुरोधा बन जाता। बद्रीनाथ को देवलोक—परमधाम और मोक्षभूमि कहते हैं। उसी स्थान पर शंकराचार्य के शांकर भाष्य का तथा वेदों का

अध्येता बनकर मैं रहता। परन्तु मुझको समाज की समस्याओं को, सुख-दु:खों को तथा समाज के लोगों की आवश्यक परन्तु अधूरी रहनेवाली जरूरतों की ओर देखना सिखाया साबरमती के इस सन्त ने! पहले जीवन अद्वैत के विचार से विकसित होना चाहिए फिर समाज की समस्याएँ आत्मसात् कर समाज से अद्वैत सिद्ध किया जाय! यह उन्होंने सिखाया।

महात्माजी ने शिक्षा देने के लिए शिक्षण-कक्षाएँ प्रारम्भ नहीं की थीं। वे कभी किसी से कुछ नहीं कहते थे। परन्तु वे निरन्तर जनसेवा कर रहे थे। उसी सेवा के सम्बन्ध में बोलते थे। सब पर अतिशय प्रेम कर रहे थे। ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पण्डित होय—कबीर के इस दोहे के अनुसार उन्होंने प्रेमधर्म और सत्यधर्म को जाग्रत किया। समाजधर्म आत्मसात् कराया। कहाँ साबरमती का आश्रम और कहाँ वर्धा का सेवाश्रम! एक गुजराती मनुष्य मराठी लोगों की बस्ती में आया। 1920 के आसपास हुए काँग्रेस महासभा के नागपुर अधिवेशन के निमित्त से वर्धा के जमनालाल बजाज महात्माजी के सम्पर्क में आये। फिर तो वे बार-बार साबरमती के कोचरब आश्रम में आने लगे। आते ही वे कहते, "बापूजी! गुजरात के लोग सयाने हो जाएँगे। जरा मध्य प्रदेश में चलिए। वहाँ से आप पूरे हिन्दुस्तान की बागडोर को भली-भाँति सँभाल सकेंगे।"

"जमनालाल! मैं एक सादा मनुष्य हूँ। सतत प्रयत्न से स्वयं का निर्माण कर रहा हूँ और चलने का प्रयत्न कर रहा हूँ।"

"बापू! नम्रतापूर्वक आप जो चाहें सो कहें, परन्तु लोग आपकी बात नहीं टालेंगे। आपके प्रयत्नों को साकार करने के लिए आपका अनुकरण अन्य लोग भी करने लगे हैं। देश में आज अनेक शक्तियाँ हैं, उनमें आपकी अहिंसा की शक्ति बहुत बड़ी है। आप चलिए!"

"आप व्यर्थ ही आग्रह कर रहे हैं जमनालाल!"

"आप न आना चाहें तो न आएँ! श्रीराम ने भरत को अपनी पादुकाएँ दी थीं। भरत ने नन्दीग्राम में श्रीराम की पादुकाओं की पूजा की। मैं भी बापूजी का निवास पादुकाओं के रूप में वर्धा में चाहता हूँ।"

जमनालाल बार-बार आ रहे थे परन्तु महात्माजी तैयार नहीं हो रहे थे। अनेक आश्रम स्थापित करके उनमें कार्य करने को महात्माजी इच्छुक नहीं थे और अब तो लोग साबरमती के आश्रम को महात्माजी का आश्रम समझने लगे थे। ऐसे समय में सबके साथ आश्रम छोड़कर जाना तथा उसको वर्धा में स्थापित करना, सहज सम्भव नहीं था।

परन्तु एक बार जमनालाल ऐसे आये कि जाने का नाम ही न लें। उनका एक ही आग्रह था कि महात्माजी वर्धा में चलकर रहें! उन्होंने कहा, "बापूजी! इस बार

मैं जानेवाला नहीं हूँ। और जाऊँगा तो स्वीकृति लेकर ही जाऊँगा। मेरी पत्नी और बच्चे वहाँ तथा मैं अनिच्छापूर्वक यहाँ रहूँगा, तब इसका पाप आपको लगेगा!"

जमनालाल की गम्भीरता को महात्माजी ने अनुभव किया और पूछा, "विनोबा! इस प्रश्न का उत्तर कैसे दिया जाए?"

विनोबा ने हँसकर कहा, "प्रत्येक व्यक्ति बापू को चाहता है। परसों कलकत्ते का एक बंगाली बाबू आकर बोला, 'हमारे यहाँ सशस्त्र क्रान्ति का जोर है। सदैव सबकुछ अस्थिर और अशान्त रहता है। आप वहाँ चलिए!' बापू यदि श्रीकृष्ण जैसा चमत्कार कर सकें तभी सब सम्भव हो सकेगा!"

"कैसा चमत्कार?"

"प्रत्येक गोपी यह हठ करने लगी कि श्रीकृष्ण उसके साथ रहें। तब श्रीकृष्ण ने जितनी गोपियाँ थीं उतने ही मायावी रूपों का निर्माण किया। तब प्रत्येक गोपी श्रीकृष्ण को अपने साथ समझने लगी। यदि बापू ऐसा कुछ कर सकें तो प्रयत्न करके देख लें।"

"परन्तु विनोबा! बापूजी मुझको पाँचवाँ पुत्र मानते हैं परन्तु मेरा आग्रह मानते नहीं हैं।"

"विनोबा! मैं धर्मसंकट में हूँ।" महात्माजी बोले।

"बापू! आप आश्रम की स्थापना कर दें! रहने के लिए जाना है या नहीं, यह बाद में देख लेंगे। बीच-बीच में आप वहाँ जाते रहें!"

"हाँ, यह ठीक है।" महात्माजी ने समाधान की साँस छोड़ते हुए कहा, "देखो जमनालाल! मैं तुम्हारी बात स्वीकार करता हूँ, परन्तु अभी जल्दी ही मैं वहाँ नहीं जा सकूँगा।"

"मुझको स्वीकार है। आपके चरणों की धूल मैं सोने की थाली में रखकर पूजूँगा।" जमनालाल ने कहा।

बापू ने रमणीकलाल मोदी को सेवाग्राम आश्रम की स्थापना करने के लिए जमनालाल जी के साथ भेजा। परन्तु सात-आठ महीनों के बाद ही वे लौट आये। वर्धा की जलवायु उनको अनुकूल नहीं लगी। तब जमनालालजी ने महात्माजी से कहा, "आपकी कठिनाई मैं जानता हूँ बापूजी! आप विनोबाजी को सेवाग्राम में भेज दें!"

"सच तो यह हैं कि मैं विनोबा को नहीं भेजना चाहता। कारण यह है कि यहाँ राष्ट्रीय पाठशाला में उनकी अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु मगनलाल के कथनानुसार वर्धा की शाखा बन्द करने की इच्छा नहीं है। कारण यह है कि संस्था प्रारम्भ करना बड़ा सरल है, बन्द करना भी सरल है परन्तु संस्था को चालू रखना बहुत कठिन है। इसलिए जमनालाल के आग्रह पर मैं इच्छा न होते हुए भी विनोबा को भेजने को तैयार हूँ।"

अन्त में विनोबा रघुनाथराव धोत्रे, द्वारकानाथ हरकरे और उनके भाई भास्कर, केशो गाँधी तथा कृष्णदास गाँधी के साथ साबरमती से चल दिये। जमनालालजी ने इन लोगों को वर्धा शहर से बाहर मगनवाडी नामक स्थान दिया। परन्तु विनोबा को वह स्थान अधिक अच्छा नहीं लगा इसलिए फिर उन्होंने अपना बँगला तथा उससे लगी हुई आठ एकड़ भूमि उनको दी। उस बँगले में विनोबा ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। कुछ महीनों के बाद विनोबा के पहले से ही मित्र रहे गोपालराव काले, बाबा मोघे तथा बालूँजकर उनसे आकर मिल गये। इसी प्रकार बालकोबा भी आ गये।

अभी आये ही थे कि वहाँ एक बड़ा साँप निकल आया। गोपालराव काले हाथ में लाठी लेकर दौड़ते आये। बाबा मोघे भी कुदाल ले आये। "साँप...साँप..." चिल्लाने की आवाज सुनकर और लोग भी इकट्ठे हो गये। एक मोटा पीला और खूब लम्बा साँप विनोबा के कमरे के बाहर देहली पर पड़ा था।

विनोबा ने पूरी परिस्थति को देखा। फिर एकत्र लोगों से उन्होंने कहा, "मारो मत! उसको उसके रास्ते से जाने दो। कुछ देर का मेहमान है यह! अपने आप चला जाएगा। हाँ, एक काम कर सकते हैं। यहाँ कोई साँप पकड़ना जानता हो तो इसको पकड़ ले और खेत में छोड़ दे!"

"विनोबा! वह दरवाजे से अन्दर आ जाएगा। उसको मार देना चाहिए!"

"नहीं गोपालराव! ऐसा करना ठीक नहीं होगा।"

विनोबा चुपचाप बैठे रहे। लोग तटस्थ रहे। साँप सरकता हुआ विनोबा के कमरे में घुसा।

"बाबा! जिद मत कीजिए। उसको मारना ही ठीक है।"

विनोबा ने हाथ से मना किया।

साँप धीरे-धीरे सरकता हुआ विनोबा के आसन के पास आया। क्षणभर ठहरकर उसने फन ऊँचा किया और दूसरे ही क्षण वह खिड़की से बाहर चला गया। लोगों ने परमात्मा का आभार माना। तब विनोबा ने कहा, "साँप किसानों का मित्र है। वह अकारण किसी को कष्ट नहीं देता है। मेरी देह पर होकर सरकता हुआ निकल जाता फिर भी वह नहीं काटता। यह साँप तो विषैला था परन्तु नब्बे प्रतिशत साँप विषैले नहीं होते हैं, परन्तु साँप से डरकर ही लोग मर जाते हैं।"

विनोबा की बातें सुनकर भी लोग उनको मानने को तैयार नहीं थे।

"गोपालराव! हम लोग महात्माजी के सत्याग्रह-आश्रम में हैं। यदि हम अपने अहिंसा के सिद्धान्त को छोड़ देते तो..."

यह घटना सुनते ही जमनालालजी दौड़ते हुए आये और हाथ जोड़कर बोले, "यह घासबँगला पुराना हो गया है। यह खेती की भूमि है। साँप-बिच्छू आते ही रहते हैं। परन्तु यदि आप किसी को कुछ हो गया तो मुझको अच्छा नहीं लगेगा। मैं नये स्थान

की व्यवस्था करता हूँ।''

इतना कहकर वे अपने काम में लग गये। अपने कथनानुसार उन्होंने पक्का भवन बनवाया। सत्याग्रह आश्रम उसमें चलने लगा।

विनोबा के आस-पास पुस्तकों का पसारा था। बाहर अविराम वर्षा हो रही थी। महात्माजी का अविस्मरणीय सद्यः निधन और तदनन्तर उनकी स्मृतियाँ, ऐसा लगता था जैसे कल-परसों की बातें हों! सन् 1916 से 1948 तक वे सतत महात्माजी के साहचर्य में रहे थे। महात्माजी हिन्दुस्तान में कहीं भी क्यों न रहे हों, फिर भी विनोबा को सदैव वे अपने पास ही लगते थे। आश्रम प्रारम्भ हो जाने पर यद्यपि महात्माजी साबरमती में थे तथापि यहाँ की सारी संकल्पना-सिद्धान्त रीतियाँ ज्यों-की-त्यों यहाँ थीं। उन सिद्धान्तों का कठोर पालन करते हुए विनोबा ने नये-नये प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन सुबह सवेरे उन्होंने मोघे को बुलाकर कहा—

''मोघे! कल से एक नियम का पालन होना चाहिए।''

''क्या?''

''अपना भोजन स्वयं प्राप्त किया जाए!''

''अर्थात्?''

''अपनी कमाई से पेट भरा जाए। स्वयं श्रम किये बिना भोजन करना पाप है।''

''पाप-पुण्य आप मानते हैं बाबा?''

''पाप! यह शब्द सर्वसाधारण के लिए था। जो नैतिकता का अर्थ नहीं जानते, उनके लिए यह शब्द था। हम कष्ट सहन कर पैसा प्राप्त करें, यह उचित ही है।''

''परन्तु यह श्रम-विभाजन तो हो ही गया है।''

''मैं उस सम्बन्ध में नहीं कह रहा हूँ। सन्ध्या समय प्रार्थना के अवसर पर विस्तार से समझाऊँगा।''

बाबा मोघे विचार-मग्न हो गये। उन्होंने दोपहर तक सबको सूचना दे दी। विषय पर खूब चर्चा हुई।

सन्ध्या समय प्रार्थना के बाद विनोबा ने कहा, ''कल से अपने लिए अन्न स्वयं प्राप्त करने की योग्यता निर्माण किये बिना अन्न को खाना नहीं है।''

आश्रमवासी तैयार थे ही। उन्होंने पूछा, ''बाबा! हमको क्या करना है? और सब लोग यही करने लगेंगे तो आश्रम का काम कौन करेगा? इसके अतिरिक्त खेत में काम करने की मजदूरी, यहाँ प्रेस चलाने की मजदूरी और भोजन पकाने की मजदूरी समान कैसे हो सकती है?''

विनोबा ने कहा, ''यह तो आप ठीक कहते हैं। हम एक सूची तैयार करते हैं। खेत में काम, सूत-कताई, प्रेस का काम, स्वयंपाक, गोशाला—इन सबके हिसाब से पैसे दिये जाएँगे। अपनी रोटी स्वयं कमाना, यह तो सदैव स्वागत योग्य है।''

आश्रम में वे ही पुरुष और वे ही स्त्रियाँ थीं। प्रारम्भ में काम करने का विचार सबको अजीब-सा लगा, फिर भी आश्रमवासियों ने उसको सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया। कुछ दिनों में सब कुछ फिर पूर्ववत् हो गया। किसी की काम करने की इच्छा ही नहीं होती थी।

विनोबा ने प्रात:काल प्रार्थना के बाद कहा, "सबको भोजन समान ही मिलेगा परन्तु काम के घण्टे और मजदूरी का हिसाब रखा जाएगा। उसके बिना आश्रम में भोजन तैयार नहीं होगा।"

आश्रमवासी प्रात:काल से नियमों का पालन कर रहे थे। परन्तु भोजन के लिए मजदूरी मिलेगी, यह विचार कोई भी स्वीकार नहीं कर सकता। आश्रमवासी मन-ही-मन सन्तप्त हो उठे।

दोपहर के भोजन के पश्चात् विश्राम समाप्त हुआ और आश्रम का कामकाज प्रारम्भ हो गया। विनोबा बाहर ही खड़े थे। उन्होंने खाना पकाने के लिए जाती हुई पाँच स्त्रियों को बुलाया। वे आकर खड़ी हो गयीं।

विनोबा ने कहा, "केवल स्त्रियाँ ही भोजन पकाएँ और बर्तन माँजें, यह बात नहीं है। यदि तुमको और कोई काम अच्छा लगता हो तो उसको करो। स्त्रियाँ केवल यही एक काम करें, ऐसा नहीं है। तुम रोज हमको भोजन कराती हो परन्तु उसके लिए मजदूरी तुमने नहीं ली है, वह आज लो। और आज अपने ही हिस्से का भोजन पकाओ!"

वे स्त्रियाँ आश्चर्यचकित और सम्भ्रमित हो गयीं।

"बाबा! यह कैसे सम्भव है?"

"सम्भव है। नहीं है तो करना चाहिए। यदि कोई तुमसे कुछ कहता है तो उसको मैं उत्तर दूँगा। तुम कैसी भी चिन्ता मत करो।"

वे चुपचाप लौट गयीं।

सन्ध्या समय भोजन की घण्टी बजी। सब लोग हाथ-पैर धोकर भोजनशाला में आ गये। आज भोजन के लिए टाट-पट्टियाँ नहीं बिछी थीं, थालियाँ नहीं रखी थीं। पाकशाला से भोजन की कैसी भी गन्ध नहीं आ रही थी। चूल्हे से बर्तन उतारने की आवाज नहीं आ रही थी।

"आज थाली हम स्वयं ही ले लें क्या?"

"यहाँ स्वावलम्बन है। हम लोग तो इसके अभ्यस्त हैं न!"

संवाद चालू थे।

"दीदी! आज भोजन परोसना नहीं है क्या?" पाँचों ही स्त्रियाँ बाहर आकर खड़ी हो गयीं।

"बाबा ने आज कहा है कि भोजन नहीं पकाना है।"

"सो क्यों?"

"यह तो उन्हीं से पूछिए!"

भोजन की आशा से आये हुए आश्रमवासी अत्यधिक सन्तप्त हो उठे।

"यह तो सरासर अन्याय है!"

"यह तो अमानवीयता है!"

"पीठ पर मार लो पर ऐसे पेट पर तो मत मारो।"

सब क्रोध से तमतमाते भोजनशाला से बाहर आये। बरामदे में विनोबा खड़े थे—शान्त!

"आज आपके आदेश से भोजन तैयार नहीं हुआ।"

"हाँ! मेरे आदेश से नहीं हुआ।"

"परन्तु क्यों?"

"कारण यह है कि मैंने कहा था कि अपनी रोटी स्वयं ही कमानी है। मेरे कहने से आपने चार दिन काम किया है क्या? यह अन्नछत्र नहीं है। यदि यहीं पर स्वावलम्बन नहीं होगा, परिश्रम और सत्यता नहीं होगी तो आप समाज को क्या देंगे? दूसरे को उपदेश देने के लिए पहले उस पर स्वयं चलना पड़ता है। एकनाथ की कहानी आप जानते ही होंगे। एक माता अपने लड़के को लेकर उनके पास आयी और बोली, 'यह लड़का गुड़ बहुत खाता है। मानता ही नहीं है।' एकनाथ ने कहा, 'देवि! आठ-दस दिन बाद आना।' बाद में उन्होंने उस लड़के से वह कहा जो कहना था। उस लड़के ने गुड़ खाना छोड़ दिया। चकित होकर उस माता ने फिर एकनाथ से पूछा, 'यही बात आपने पहले ही क्यों नहीं कह दी थी?' तब एकनाथ ने कहा, 'तब मैं स्वयं गुड़ खाता था। तब मैं किस मुँह से उससे कहता कि गुड़ खाना अच्छा नहीं है।' संस्थाएँ आदर्श होनी चाहिए। पापी मनुष्य भी मन्दिर के सामने नत होता है। संस्थाएँ सदैव मन्दिर-जैसी पवित्र होनी चाहिए। वहाँ के लोगों को दिन-रात कष्ट सहकर आदर्शों का निर्माण करना चाहिए।"

विनोबा का कथन सबको असह्य लगा। भूखे पेट उनको तत्त्वज्ञान की बातें अच्छी नहीं लगीं। उनमें से एक बोला, "हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति जमनालालजी के खेतों से हो तो रही है!"

"अर्थात् स्वावलम्बन आपको स्वीकार नहीं है!"

"निरर्थक कष्ट हमको स्वीकार नहीं है।"

"ठीक है। जिसको आश्रम के नीति-नियमों का पालन न करना हो और जो ऐशो-आराम का जीवन बिताना चाहते हैं वे तत्काल यहाँ से चले जाएँ! यह आश्रम मेरा नहीं है, तुम्हारा भी नहीं है। परन्तु मैं यहाँ तुम्हारे नैतिक मूल्यों का संरक्षक हूँ। आप इसी क्षण जा सकते हैं!"

इतना कहकर विनोबा दूसरे कमरे में चले गये। फिर वे प्रात:काल होने पर ही बाहर आये। प्रार्थना के समय सब उपस्थित थे। विनोबा प्रसन्न मुस्कराकर बोले, "मुझको क्षमा कर दीजिए! मैं बहुत कठोर हूँ। बात इतनी ही है कि आज से हम कितने घण्टे काम करते हैं और कितनी मजदूरी प्राप्त करते हैं, वह हमारे भोजन के लिए पर्याप्त है क्या? इन बातों का विचार करना है।"

आश्रम में नव चैतन्य आ गया था। प्रत्येक व्यक्ति अधिकाधिक काम करने लगा था। उनमें एक थे साठ वर्ष के दिनकरराव। उन्होंने एक दिन विनोबा से कहा, "बाबा! अवस्था से तो मैं अधिक वृद्ध नहीं हूँ परन्तु इन सारे नीति-नियमों का मैं पालन नहीं कर सकता हूँ। प्रात:काल उठता हूँ तो खाँसी का ठसका आता है। थोड़ा काम करते ही दम फूल जाता है। मैं रोज अपनी रोजी-रोटी कमाने में असमर्थ हूँ। मैं घर से चला आया हूँ। अब मैं लौटकर जाऊँगा तो बच्चे नाक-भौं सिकोड़ेंगे। पत्नी नहीं है। बहुएँ कहेंगी, 'तुमको बार-बार मना किया था कि मत जाओ, फिर भी चले गये थे और अब लौट ही आये न!' आप जैसे युवकों का बल मुझमें नहीं है और योगी की भाँति शरीर और मन को मैं अलग नहीं कर सकता हूँ। मैं क्या करूँ?"

विनोबा बोले, "देखो दिनकरराव! नियम सबके लिए एक ही है। मैं उसको अपने लिए तोड़ नहीं सकता हूँ। मैं क्या करूँ, यह आप ही बताइए दिनकरराव! आश्रम में रहने के लिए तो नियम सबके लिए ही समान होते हैं न! यह मेरा, यह आपका, ऐसे अलग-अलग नियम नहीं हो सकते न!"

दिनकरराव लौट गये। विनोबा काम में लग गये।

विनोबा पुस्तकों को व्यवस्थित कर रहे थे कि उनको दिनकरराव के चार पंक्तियों के पत्र का स्मरण हो आया। उन्होंने पुस्तकों का पसारा एक ओर करके अलमारी में कागजों के नीचे रखा हुआ पत्र निकाला और उनकी आँखें आर्द्र हो गयीं।

विनोबा को कार्यरत दिनकरराव दिखाई देते थे। चार-पाँच महीनों के बाद बरसात में दिनकरराव विनोबा के पास आकर बोले, "आश्रम छोड़ने की मेरी इच्छा नहीं थी परन्तु अब मैं छोड़कर जा रहा हूँ। मैं सभी नियमों का पालन नहीं कर सकता हूँ। मैं केवल दोपहर के समय बैठे-बैठे किये जानेवाले काम ही कर सकता हूँ।"

दिनकरराव ने हाथ जोड़े। विनोबा ने हाथ जोड़े। दिनकरराव फाटक की ओर अग्रसर हुए और विनोबा चरखे पर सूत कातते रहे। लगभग डेढ़ महीने बाद विनोबा को पत्र मिला :

'पूज्य बाबा!

आप मुझसे छोटे हैं। योगी तथा ब्रह्मर्षि होने के कारण और आजन्म ब्रह्मचारी रहने के कारण सांसारिक कठिनाइयों ने आपको दुर्बल नहीं बनाया है। पत्नी, बच्चे, बहुएँ और समाज—इनकी बातें अविरत सुनते-सुनते मनुष्य की

आधी जिन्दगी बीत जाती है।

मेरी अवस्था साठ वर्ष की थी, परन्तु मेरा मन परले किनारे के पास पहुँच चुका था। बहुओं के राज्य में पत्नी के बिना मैं एकाकी था। अवस्था नहीं थी, परन्तु काम नहीं होते थे। आश्रम में नियम पालन करना कठिन लगा।

बाबा! सबके लिए समान नियम उचित है। परन्तु अवस्था का, उसकी बीमारी का, उसकी मानसिकता का विचार भी नियम-पालन के समय होना चाहिए। कार्यकर्ता निष्ठुर नहीं होना चाहिए। मुझ जैसों के लिए नियम-पालन के समय डॉक्टरी परीक्षा होनी चाहिए। कोई सदाचारी मनुष्य अकारण ही दु:खित न हो, यह सावधानी रखनी चाहिए तथा उसके लिए नियमों में शिथिलता होनी चाहिए। मेरा घर न रहा न आश्रम रहा। मैं अध्यापक था। मैं शिक्षण दे सकता था, परन्तु चार महीने मैं दमा से त्रस्त रहा। अन्त में अब मैं अपनी जीवनलीला समाप्त कर रहा हूँ। कर्तव्य कठोर नियमों का पालन न करनेवाले एक आश्रमवासी के रूप में आप मेरा नाम लिख लें। महात्माजी के आश्रम में मुझको जो प्रेम मिला था उसके कारण कर्तव्य कठोरता का अनुभव मुझको नहीं हुआ था। शायद मैं चार-पाँच महीने ही वहाँ रहा था, इस कारण भी ऐसा लग सकता है। मैं बचपन से ही दमा का रोगी हूँ, यह जानकर महात्माजी ने अनेक सुविधाएँ मुझको दी थीं। उन्होंने मुझको सलाह दी थी कि आठ महीने डटकर काम करो!

अस्तु! भविष्य में किसी भी आश्रमवासी को कठोर नियमों के पालन के कारण मृत्यु का वरण न करना पड़े।'

विनोबा को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह पत्र उनके कठोर कर्तव्य पालन की वेदी पर बलि दिये गये मनुष्य की शोकान्तिका हो! उस पत्र के बाद विनोबा ने सन्ध्याकालीन प्रार्थना के पश्चात् कहा था, "मेरे कठोर नियमों के कारण हत्या का पातक मेरे माथे पर लग गया है। मैं आप सबसे एक ही बात कहता हूँ, मन की शुद्धता से नियमों का पालन किया जाना चाहिए। दूसरे ने लाद दिये हैं, इसलिए उनको स्वीकार नहीं करना चाहिए। जब ऐसा होगा तब कोई मनुष्य सचमुच ही बीमार है, इसका पता चल जाएगा। कल से यहाँ एक अत्यन्त सेवानिष्ठ और प्रामाणिक डॉक्टर आएगा। इससे प्रामाणिकता को पुष्टि मिलेगी। एक बात मैं फिर कहता हूँ कि सच्चे मन से परिश्रम करना चाहिए। श्रम करने का अर्थ है ईश्वर की पूजा करना, यह समझना चाहिए। मैं अधिक क्या कहूँ? साधन की पवित्रता, जीवन की गम्भीरता, तपोनिष्ठ आचरण तथा चिन्तनशील कृति—इन सबका संगम होने पर संस्था आदर्श बन जाएगी।"

यह सब स्मरण कर विनोबा को मनस्वी दु:ख हुआ। अहिंसा के तत्त्व में दिनकरराव की मृत्यु समा नहीं सकती थी। वह एक लांछन था। उसका स्पष्टीकरण देने की भी उनकी इच्छा नहीं थी। उसके बाद विनोबा ने हजारों बार 'मन के श्लोक' बोले और

कहा—'हे ईश्वर! कैसी भी दुष्ट भावना से मैंने व्रताचरण कर सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न न तो स्वयं किया है और न आश्रमवासियों पर कठोर नियम लागू कर उनको कष्ट दिया है। फिर भी जाने-अनजाने मुझसे जो अपराध हो गये हैं उनको क्षमा कर दे।'

सबको समान तथा उचित न्याय देते समय भी कोई-न-कोई तो दुःखी होगा ही फिर भी विचार करने के बाद सब मेरे न्याय को समझ जाएँ, उनकी इतनी ही अपेक्षा थी। इसके बाद तो वे स्वयं के प्रति कठोर व्रताचरणी तथा आग्रही हो गये थे। देह से अधिकाधिक कठोर व्रत की पूर्णता कैसे की जा सकती है, इस बात की ओर उन्होंने अपना मन केन्द्रित कर दिया। वे न थकते हुए तथा न उकताते हुए अठारह-अठारह घण्टे काम करते थे, परिश्रम करते थे। देह के दुःख देह को भोगने चाहिए। उसमें रहनेवाले मन को सदैव प्रसन्न रहना चाहिए, यह उनका आग्रह था। आश्रमवासी निश्चित समय पर निश्चित काम कर स्वयं पूर्णता प्राप्त करें और स्वावलम्बन से रोजी-रोटी कमाएँ, आध्यात्मिक ऊँचाई को बढ़ाएँ और अपना विकास करें, वे मन से यही चाहते थे।

उनका विचार था कि काम कैसा भी हो उसको स्वेच्छा से करना चाहिए, ईश्वर का कार्य समझकर करना चाहिए तथा अपना-पराया-भाव न रखते हुए करना चाहिए। एक बार वल्लभ स्वामी का छोटा भाई भास्कर तमतमाता हुआ आया और बोला, "बाबा! यह तो आप अन्याय कर रहे हैं। मैं अधिक परिश्रम करता हूँ। मैं अधिक मजदूरी प्राप्त करता हूँ परन्तु आप सबमें समान बाँट देते हैं। सबको समान न्याय ही देना हो तो दो आने मजदूरी, डेढ़ रुपया मजदूरी और तीन रुपये मजदूरी आपकी दृष्टि में समान ही है। यह अन्याय नहीं है क्या?"

"नहीं भास्कर!"

"नहीं कैसे? आप तो गणितज्ञ हैं। यह हिसाब गलत नहीं है क्या?"

"व्यावहारिक गणित से तो गलत है परन्तु आश्रम के गणित से गलत नहीं है और मन के गणित से भी वह गलत नहीं है।"

"सो कैसे?"

"बताता हूँ। कार्ल मार्क्स ने कहा है कि समाज ऐसा बनना चाहिए जिसमें परस्पर ईर्ष्या-द्वेष न हो, जिसमें न कोई भिखारी होगा और न कोई धनाढ्य होगा। उसने यह सिद्धान्त संसार को दिया। ऐसा नया अर्थशास्त्र दिया कि संसार की स्पर्धा और ईर्ष्या समाप्त हो जाएँ।"

"बाबा! मैं अपनी मजदूरी के बारे में कह रहा हूँ।"

"मैं भी वही कह रहा हूँ। एडम स्मिथ और रिकार्डो ने श्रम का मूल्य अधिक माना। परन्तु श्रम अधिक करनेवाला सम्पत्ति दान करे—यह कसौटी मानी। भास्कर!

संसार में दो अर्थशास्त्र हैं। श्रम करके प्राप्त किये हुए पैसे का स्वयं उपयोग करना और दूसरा है पैसा कमाकर वह समाज को दान करना। पूँजीवाद को मात देने के लिए समाजवाद है।''

''बाबा! मैं अपनी मजदूरी और अपने श्रम की बात कर रहा हूँ!''

''भास्कर! आज संसार में जिसको देखो वही अपने बारे में बोल रहा है।''

''तो इसमें गलत क्या है? अगर आठ आने कमानेवाले और तीन रुपये कमानेवाले के लिए समान नियम हैं तो फिर वह हाड़-तोड़ श्रम क्यों करे?''

''तो फिर जो स्त्री आठ आने ही कमा रही है वह उतना ही खाए क्या, जितना वह आठ आनों में ले सकती है?''

''निश्चय ही!''

''भास्कर! बाइबिल की एक कहानी पर रस्किन ने एक पुस्तक लिखी है। उसका नाम है—अन टू द लास्ट। इस पुस्तक को पढ़कर महात्माजी इतने प्रभावित हुए कि उनका जीवन ही बदल गया। बाइबिल की वह कहानी इस प्रकार है, एक धनी विचारवान मनुष्य ने बगीचे में काम करने के लिए मजदूर बुलाये। कुछ मजदूर प्रातःकाल आ गये। कुछ दोपहर को आये और कुछ सायं समय आये। मालिक ने सबको जब समान पैसे दिये तब प्रातःकाल काम पर आये हुए मजदूर गुस्सा हो गये, दोपहर को आये हुए भी चिढ़ गये। मालिक ने कहा, 'मैंने तो किसी पर अन्याय किया नहीं है। यदि काम करनेवाले मजदूरों ने अपना पवित्र कर्म ठीक-ठाक नहीं किया है तो यह उनका दोष है, मेरा नहीं।' इसलिए महात्माजी ने साधन-शुचिता शब्द का प्रयोग किया था। हम जिस माध्यम का, जिस साधन का, उपयोग करते हैं वह शुद्ध होना चाहिए। उसमें बनावटीपन नहीं होना चाहिए। इसीलिए हम ईश्वर से सबके सुख की प्रार्थना करते हैं। समझ गये!''

विनोबा का कथन सुनकर भास्कर निराश होकर बोला, ''बाबा! मैं तो इतना ही समझा हूँ कि जी-तोड़ मेहनत से किये गये काम की यहाँ कोई कीमत नहीं है।''

विनोबा ने कहा, ''भास्कर स्वामी! तुम सर्वोदय आश्रम में रह रहे हो। सबका कल्याण चाहनेवाला आश्रम तुम्हारे परिश्रम का कौतुक तभी करेगा जब तुम सम्पत्ति दान करोगे, कांचनमुक्त और मोहमुक्त होंगे! हमारे आश्रम की एक प्रार्थना है। वह आचरण करने के लिए है, कण्ठस्थ करने के लिए नहीं है :

अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह
शरीर-श्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन।
सर्वधर्मसमानत्व, स्वदेशी, स्पर्शभावना
विनम्र व्रतनिष्ठा—ये एकादश सेव्य हैं॥

भास्कर! तुम अभी छोटे हो।

"बाबा! फिर भी आपका गणित कैसे भी मेरी समझ में नहीं आ रहा है!" इतना कहकर उदास मन से भास्कर वहाँ से उठकर चला गया।

वर्धा में आये हुए दो वर्ष हो गये थे फिर भी आश्रम में कहीं भी स्थिरता-सी प्रतीत नहीं हो रही थी। यद्यपि विनोबा यह समझते थे कि उन्होंने केवल यह ध्येय आश्रमवासियों के सम्मुख रखा है कि वे महात्माजी के सिद्धान्तों का कठोरता से पालन करें तथापि आश्रमवासियों को वह बहुत कठिन लग रहा था। भोजनशाला के विनोबा के प्रयोग उनको अधिक अच्छे नहीं लगते थे।

जिह्वा पर, रसना पर संयम रखने के लिए विनोबा ने बहुत-सी बातों को त्याग दिया था। सर्वसाधारण विदर्भवासी ज्वार खाते हैं, इसलिए गेहूँ की पतली फुलकियाँ बन्द करके ज्वार-बाजरा की रोटियाँ शुरू हो गयी थीं। मसालेदार चटपटे पदार्थ वर्ज्य थे। सब्जी और दाल, इनमें से कभी-कभी एक ही बात होती थी। रसना तृप्त होने का विचार तो था ही नहीं, उन्होंने मिताहार लेने का विचार प्रस्तुत कर दिया था। वे समझते थे कि शरीर को बहुत कम अन्न की आवश्यकता होती है। एक बार उन्होंने महीने भर तक नमक का त्याग करने को कहा, तब आश्रम में नये-नये आये हुए लड़कों की आँखों में पानी आ गया था। उनकी भोजन की मात्रा कम हो गयी थी। भास्कर ने तो भोजन छोड़ ही दिया था। सत्रह-अठारह वर्ष का भास्कर भोजन के अभाव में म्लान हो गया था, परन्तु वह विनोबा के पास नहीं आया था। विनोबा प्रतिदिन उसको देखते थे। एक दिन उन्होंने भास्कर को बुलवाया। उदास चेहरे से और लटे हुए शरीर से वह वहाँ आया।

"भास्कर! मुझसे गुस्सा हो गये हो?"

"नहीं।"

"तुम्हारा और मेरा गणित मिला नहीं फिर भी तुमने मेरे गणित को मान लिया। क्योंकि अनजाने तुम मुझ पर श्रद्धा रखते हो। तुम उसी वेग से काम करते रहे और अधिकाधिक सम्पत्ति दान करते रहे।"

"क्योंकि मैं निश्चय करके भी कम श्रम नहीं कर सकता था इसलिए केवल..."

"तुमको आनन्द मिला या दु:ख?"

"पहले अपने अस्तित्व की जानकारी हुई। फिर लोग काम नहीं करते हैं, इस बात का दु:ख हुआ। छोड़िए इन बातों को...आपको काम के बिना चैन नहीं पड़ता है न? मेरे मन में भी अब यह आता है कि लोग काम करें या न करें, मुझको काम करना है। इससे अन्य लोगों के प्रति मेरा गुस्सा समाप्त हो गया और दु:ख भी कम हो गया। परन्तु अभी आनन्द प्राप्त करने की स्थिति नहीं आयी है, यह सत्य है बाबा!"

"परन्तु आजकल तुम कुछ अधिक ही उदास दिखाई देते हो!"

"आखिर सुख-दु:ख हैं क्या? ये अपने मन पर ही निर्भर है न? यह बात मन सीखता नहीं है।"

"तुम मन को आखिर क्या सिखाते हो?"

"मैं सिखाता हूँ कि हे मन! तू कष्ट में आनन्दित हो। औरों के काम की ओर तू मत देख। तुझको जो सबसे अधिक मजदूरी मिल रही है वह तू अपने सहभागियों को सरलता से दे दे! सबके समान भोजन के लिए तू प्रयत्न कर और बाबा जो कहें उस आदेश का पालन करते हुए मिताहारी रह। बाबा कभी कहें कि दूध छोड़ दो, तो छोड़ दे। बाबा कभी कहें कि केवल साग खाओ, तो साग ही खा! बाबा कहें कि महीनेभर तक किसी में भी नमक मत डालो, तो वैसा ही खाने का प्रयत्न करो। बाबा! मैंने सब शान्ति से मान लिया। मन को समझाकर देख लिया। परन्तु बाबा! जब दोनों समय किसी पदार्थ में नमक नहीं होगा तो मैं उसको खा ही नहीं सकता। मेरी ही तरह और सब आश्रमवासी भी नहीं खा सकते। क्योंकि संकल्प आपका है, प्रयोग आपका है। संकल्प को सामर्थ्य का साथ अपने आप मिल जाता है। हम लोग दुर्बल हैं बाबा! मन मानता नहीं है। सादे दाल-चावल और साग-रोटी—बस इतने ही भोजन की अपेक्षा है बाबा! इस अपेक्षा को मैं जीत नहीं सकता बाबा! मैं विफल हो गया हूँ। मैं अपने मन को शिक्षित नहीं कर सका...नहीं कर सका!"

भास्कर की आँखों में आँसू थे। रोकने का प्रयत्न करने पर भी आँसू कपोलों पर आ गये थे। अन्त में आँसू पोंछता हुआ भास्कर जल्दी-जल्दी वहाँ से चला गया।

और विनोबा स्तब्ध रह गये। आश्रम के समस्त नियमों का पालन करने पर भी मैं उन पर बन्धन लादता जा रहा हूँ! वे प्रात:काल उठें, खेत में काम करने से लेकर शौचालय साफ करने तक वे सब कुछ करें, शारीरिक परिश्रम करें और जो सादा भोजन उनको मिल रहा है उस पर भी मैं प्रतिबन्ध लगा रहा हूँ! मैं जो आश्रम चला रहा हूँ वह तपस्या करनेवाले ऋषियों का तो है नहीं! फिर ये अत्याचार क्यों किये जाएँ? आत्मसंयम, आत्मपरिश्रम, स्वयं का मिताहार तथा एक-एक पदार्थ का त्याग करते हुए स्वयं रसना को संयम में रखना, ये सब ठीक हैं। मुझको देखकर जो वैसा करना चाहेगा वह कर ही लेगा। प्रत्येक स्थान पर मैं अपनी इच्छा लादता हूँ, यह उचित नहीं है। भास्कर अपने मन को नहीं परन्तु मुझको अच्छी शिक्षा दे गया है। अतिशय सभ्य और रमणीय भाषा में तेजस्वी अंजन लगा गया है। वह गलत नहीं है। गलती मेरी है। महात्माजी ने ऐसे कठोर नियम केवल अपने ऊपर लागू किये थे। मैंने वे औरों पर लाद दिये। स्वास्थ्य के लिए, संस्था के लिए तथा आदर्श जीवन के लिए नियम-पालन करना अत्यन्त आवश्यक है परन्तु अब आगे से मेरे प्रयोग मुझ तक ही सीमित रहने चाहिए। विनोबा ने मन-ही-मन पुन: संकल्प किया और सन्ध्या समय वे भोजनशाला में जाकर बोले, "आज बाबा भोजन बनाएँगे और बाबा ही परोसेंगे।"

विनोबा ने भोजनशाला का द्वार बन्द कर लिया। भोजन की घण्टी जब बजी तब बाबा ने दरवाजा खोल दिया।

थालियों में भोजन परोसा हुआ था। प्रत्येक थाली में हरा धनिया, नीबू, सब्जी, भात, फुलके और दाल की कटोरी थी। दूसरी कटोरी में दही था। थाली में भोजन-सामग्री देखकर प्रत्येक की आँखों में चमक आ गयी। थाली में आधे नीबू के टुकड़े के पास नमक देखकर प्रत्येक की आँखें आर्द्र हो गयीं। उनके चेहरों पर आनन्द छिप नहीं रहा था। वह बह रहा था। भास्कर आया और यह सब देखकर वह गद्‌गद होकर रोने लगा। सब भोजन करने लगे। भास्कर सिर नीचा किये रो रहा था। आधा भोजन कर लेने के बाद अन्य लोगों का ध्यान भास्कर की ओर गया। तब भास्कर ने उठकर विनोबा के पैर पकड़ लिये।

विनोबा ने उसको उठाकर पास बैठाया और उससे कहा, ''मैं बहुत कठोर हूँ। इस बात की आज मुझको पुन: अनुभूति हुई। भास्कर! मैं भी तो एक विद्यार्थी ही हूँ।''

भास्कर विनोबा का हाथ पकड़कर उनको उठाकर लाया तथा उनको भोजन करने के लिए बैठाया। तब विनोबा की आँखें भी आर्द्र हो गयीं।

विनोबा पुस्तकों को यथास्थान रखने लगे। सहसा आय-व्यय की पुस्तिका उनके हाथ में आ गयी। उसमें एक स्थान पर लिखा था—'एक रुपया बारह आने आमवाले को।' उनको हँसी आ गयी और वह घटना याद आ गयी। उस वर्ष आँधी में आम के पेड़ों से सैकड़ों कच्चे आम धरती पर गिर पड़े। एक आमवाला आश्रम के सामने खड़ा था तथा ग्राहक उससे भाव-ताव कर रहा था। अन्त में आमवाला बोला, ''तीन रुपया सैकड़ा तो दे दो!'' परन्तु उसने सवा रुपया दिया। तब वह रुआँसा होकर बोला, ''चलो ले लो!'' विनोबा यह सब देख रहे थे। उन्होंने आमवाले को पास बुलाया और एक रुपया बारह आने उसको दिये। वह भावाविभूत होकर बोला, ''बाबाजी! आप मेरे माई-बाप हैं!''

वैसे तो मैं किसी का भी माई-बाप नहीं था। एक रुपया बारह आने में उसने सहज ही वह पद मुझको दे दिया था। उन्होंने वह आय-व्यय पुस्तिका फाड़ डाली। उसमें अनेक कागज भी रखे हुए थे। एक फटा हुआ पत्र था। वह इसमें कैसे आ गया था—यह विनोबा को याद नहीं आया। महात्माजी ने साबरमती से उनको लिखा था :

'प्रिय विनोबा,

वैसे तो पिछले कुछ वर्षों से सत्याग्रह आश्रम की स्थिति अत्यन्त उत्तम है। वर्ष में एक बार एक महीना यहाँ रहने के लिए जब तुम आते हो तब तुम बताते ही हो। उससे अधिक विस्तार से लोग भी कहते हैं। तुम्हारा शुद्ध और कठोर व्रताचरण, तुम्हारे खेत में प्रयोग और भोजन के प्रयोग, तुम्हारा संयम, तुम्हारी प्रसन्न वृत्ति, तुम्हारी ईश्वरनिष्ठा और सत्याचरण देखकर तथा सुनकर

मन प्रसन्न हो गया। तुमसे बढ़कर महान आत्मा और इसीलिए आत्मीय कोई कभी मेरे जीवन में आया ही नहीं। तुम्हारे आने से मैं स्वयं को अत्यन्त भाग्यशाली समझता हूँ।'

जब पत्र मिला था तब विनोबा ने उसको पढ़कर फाड़ दिया था। तब कमलनयन ने पूछा था, "किसका पत्र है?"

विनोबा ने शान्तिपूर्वक कहा था, "बापू का।"

"तो फिर फाड़ क्यों दिया?" कमलनयन ने फटे हुए पत्र के टुकड़े जोड़कर उसको पढ़कर कहा था, "बाबा! यह अमूल्य पत्र आपने क्यों फाड़ दिया?"

"इसलिए फाड़ दिया कि मनुष्य कितना ही बड़ा हो जाय, फिर भी उससे गलती हो ही जाती है।"

"उन्होंने आपको महान आत्मा और आत्मीय कहा है, इसमें क्या गलत है?"

"कमलनयन, उन्होंने अकेले मुझको ऐसा कहा है, यही बापू की भूल है। मुझसे भी अधिक काम करनेवाले अनेक हैं। अनेक उनके निकट सम्पर्क में भी आये हैं।"

"परन्तु बापूजी ऐसी गलती कर ही नहीं सकते। वे मनुष्य की परख करना अच्छी तरह जानते हैं।"

"हो सकता है कि उन्होंने गलती न की हो! परन्तु इस पत्र को सँभालकर रखकर मुझको गलती नहीं करनी चाहिए। इस पत्र से मैं स्वयं को अकारण श्रेष्ठ समझता रहूँगा।"

विनोबा ने वे टुकड़े कूड़ेदान में डाल दिये और निःश्वास छोड़ा। बापू ही नहीं रहे। उनके पत्र रखकर मैं उनकी स्मृतियाँ ही अपने पास रखता। मनुष्य के चले जाने पर उसकी स्मृतियों को भी वास्तव में आना बन्द कर देना चाहिए। सन् 1916 से आज 1948 तक मैं बापू के साहचर्य में रहा हूँ। उनका आत्मीय, उनका शिष्य था मैं तो फिर ऐन वक्त पर बापू ने मेरी बात क्यों नहीं सुनी? बापू की मृत्यु के पश्चात् यही एक प्रश्न बार-बार विनोबा को तंग कर रहा था।

शायद बापू की मृत्यु इसी प्रकार आनी थी, इसीलिए ऐसा करने की उनकी इच्छा हुई होगी! अस्तु! मृत्यु आने से पहले उनको मृत्यु दी गयी। मृत्यु की आहट उन्होंने सुनी ही नहीं! उनकी मृत्यु से देश सन्न रह गया! बापू—बापू थे। राष्ट्रपिता थे। विनोबा के सामने बापू की मृत्यु की घटना आ खड़ी हुई और उनकी आँखें आर्द्र हो गयीं। फिर आँखें पोंछकर विनोबा कपाट में पुस्तकें रखने लगे।

1921 में विनोबा वर्धा में आये और 1923 में उन्होंने 'महाराष्ट्र धर्म' नामक 48 पृष्ठों की मासिक पत्रिका प्रारम्भ की। प्रतिमाह 48 पृष्ठों की सामग्री विनोबा स्वयं लिखते थे। विषय भिन्न-भिन्न होते थे परन्तु लेखन का उद्देश्य जनहित था। पहले अंक की कुछ प्रतियाँ विनोबा ने सँभालकर रखी थीं। उनमें एक प्रति वह थी जो बापू को

भेजी गयी थी। उस प्रति में बापू का पत्र भी था। बापू ने लिखा था, 'अनेक शुभकामनाएँ तो तुमको दे ही रहा हूँ परन्तु विनोबा! तुम ब्रह्मर्षि ही नहीं, लेखक और कवि भी हो यह मुझको आज ज्ञात हुआ है। लेखक के लिए सतत लेखन कार्य आवश्यक है। लिखते ही रहो।'

'महाराष्ट्र धर्म' में विनोबा के सामाजिक चिन्तनपरक लेख होते थे। कुल अड़तालीस पृष्ठों की सामग्री वे लिखते थे। झण्डा सत्याग्रह के समय यह मासिक कुछ समय के लिए बन्द हो गया था। तब महात्माजी का पत्र आया था, 'तुम झण्डा सत्याग्रह से लौट आये हो। अब मासिक पुनः शुरू कर दो।' परन्तु अनेक कारणों से विनोबा सतत लेखन नहीं कर पाते थे। ईश्वर-निष्ठा, राजनीति और सावधान-वृत्ति इस त्रिविध नीति से युक्त महाराष्ट्र धर्म मासिक बन्द हो गया। आगे चलकर 'स्वराज्य' नामक साप्ताहिक निकाला गया। तीन वर्ष तक वह भी चला। विनोबा उसके सम्पादक थे। सम्पादक का काम गोपालराव काले देख रहे थे। इसमें गाँधीजी के अनेक लेख प्रकाशित हुए परन्तु विनोबा के 'महाराष्ट्र धर्म' की बराबरी यह साप्ताहिक नहीं कर सका। आखिर में वह भी बन्द हो गया।

यदि जमनालालजी झण्डा सत्याग्रह में जाने का आग्रह ही नहीं करते तब? समाचारपत्रों से नागपुर के झण्डा सत्याग्रह की जानकारी मिल गयी थी। जवाहरलाल नेहरू नागपुर में थे। विनोबा महात्माजी की सूचना की प्रतीक्षा कर रहे थे। ठीक क्या करना चाहिए, इसका निर्णय नहीं हो पा रहा था। देश में स्थान-स्थान पर जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के विरोध में प्रदर्शन हो रहे थे। विरोध सभाएँ हो रही थीं। प्रत्येक स्थान पर विनोबा नहीं पहुँच सकते थे। 18 मार्च 1923 को महात्माजी के कारावास का स्मृति दिन पूरे देश में मनाया गया। स्थान-स्थान पर राष्ट्रीय झण्डे लेकर घोषणा करते हुए जुलूस निकाले गये।

नागपुर की सिविल लाइन्स में एक प्रचण्ड जुलूस नारे लगाते हुए निकला था। उसमें जिले के सब लोग आये थे। टीले की ओर से तथा रेलवे लाइन की ओर से आकर लोग मिल गये थे। जुलूस का आकार बढ़ता गया तथा उसके नारे भी आकाशव्यापी हो गये। सिविल लाइन्स के पास जुलूस को रोककर कार्यकर्ताओं को बन्दी बना लिया गया। फिर भी जुलूस भंग नहीं हुआ था। जवाहरलाल नेहरू ने हिन्दुस्तान के कार्यकर्ताओं का आह्वान किया कि वे इस अत्याचार का तथा जुलूस पर प्रतिबन्ध लगाने का विरोध करें। यह पहला सत्याग्रह था, जिसका स्वरूप अखिल भारतीय था। वह झण्डा के निमित्त से प्रारम्भ हुआ। सत्याग्रह के रूप में राष्ट्र ने प्रथम झण्डा गाड़ दिया!

विनोबा को याद आया। प्रातःकाल जमनालालजी के पास से एक मनुष्य सन्देश लेकर आया था, 'मैं सत्याग्रह के लिए जा रहा हूँ। आश्रम से कम-से-कम तीन मनुष्य चाहिए—एक बाबा, दूसरे शिवाजीराव और तीसरे गोपालराव।' अन्त में स्वयंसेवक के

रूप में अनेक मनुष्य नागपुर में इकट्ठे हो गये। प्रतिदिन जुलूस और प्रभातफेरियाँ निकल रही थीं। भाषण हो रहे थे। राष्ट्रीय आन्दोलन गतिशील हो उठा था।

एक सभा में विनोबा ने कहा था, "नागपुर अब साधारण शहर नहीं रह गया है। धर्मक्षेत्र बन गया है। कुरुक्षेत्र की लड़ाई अब यहाँ लड़ी जा रही है। यतो धर्मस्ततो जय:—यह सिद्धान्त है। ब्रिटिश सरकार कितनी ही बलवान हो, सत्याग्रह के आगे और सत्याग्रही के आगे उसको झुकना ही पड़ेगा।"

दूसरे दिन प्रात:काल। ब्राह्ममुहूर्त का समय था। कस्तूरचन्द के बड़े मैदान में लगे हुए तम्बुओं को सिपाहियों ने घेर लिया। एक-एक को पकड़कर वे पुलिस-वैन में ठूँसने लगे। उसी समय मैं भी जाग गया। मैंने पूछा, "क्यों भाई! यह गड़बड़ी कैसी है?"

"जो आदमी सबको भड़का रहा है उसको हम पकड़ने आये हैं।"

"रात को सोये थे?"

"क्यों?"

"कुछ नहीं। यों ही पूछा। इतनी सुबह आये हो। घरवाली ने टोका नहीं?"

"ड्यूटी करनी है।"

"हिन्दुस्तानी हो ना?"

"दीखता नहीं क्या?"

"दीखता तो है, लेकिन समझ में नहीं आ रहा है कि तुम किस भड़कानेवाले को पकड़ने आये हो! किस-किसको पकड़ोगे भाई? अपने ही भाइयों को पकड़ोगे? पकड़ लो! डाल दो जेल में! वे सब गुनहगार हैं। उनको पागल कुत्ते ने काटा है। तुम समझदार हो, सयाने हो। सब पागलों को पकड़ लो भाई! अपनी माँ की स्वतन्त्रता चाहनेवाले ये लोग, पकड़ लो उनको! तुमको ड्यूटी करनी है। तुम्हारी माँ या घरवाली को पकड़ेंगे तो कैसा लगेगा? भाई पकड़ो, तुम अपनी ड्यूटी करो।"

वह हिन्दुस्तानी सिपाही सिर झुकाकर पीछे लौट गया परन्तु अँग्रेजी सिपाहियों ने विनोबा को पकड़कर अजनी के मध्य में स्थित कारागार में डाल दिया।

प्रात:काल जेलर के आने पर विनोबा ने उससे कहा, "मुझको जेलर साहब से मिलना है।"

यह सुनते ही जेलर चलते-चलते ठिठककर मुड़ा। ऐसा साहस किसी ने आज तक नहीं किया था। उसने पूछा, "कहिए, क्या काम है?"

"मैं यहाँ रहने आया हूँ। इसलिए यहाँ के नीति-नियम, दिनचर्या—मुझको एक बार समझा दीजिए। किसी भी नियम का रंचमात्र भी उल्लंघन न हो, इसलिए मैं आपसे यह सब पूछ रहा हूँ।"

"आप चिन्ता मत कीजिए। यहाँ जेल का डिसिप्लिन रहता है। समय-समय पर

वे आज्ञाएँ प्रसारित होती ही रहती हैं।''

''यह मैं स्वीकार करता हूँ परन्तु...!''

विनोबा पूछते रहे—जेलर समझाता रहा। आज तक इस प्रकार सब बातों को समझ लेनेवाला कैदी न जेलर ने कभी देखा था, न जेल ने। यह देखकर ऑफिस के लोग चकित हो रहे थे।

तीन-चार महीनों में ही छुटकारा मिल गया। परन्तु उस समय विनोबा ने प्रथम बार कारागार में पदार्पण किया था। एक वर्ष का कठोर सश्रम कारावास उनको दिया गया था। दण्ड मिलते ही विनोबा ने अपना वेश बदल दिया। घुटने तक आनेवाली चड्डी, बिना बाँहों की बनियाइन, कमर में बाँधने को अँगोछा और सिर पर टोपी। टोपी से श्रेणी निश्चित की जाती थी। शक्तिशाली को सफेद, मध्यम को काली तथा बीमार को पीली टोपी। लाल टोपी का अर्थ था—धोखादायक! ये टोपियों के प्रकार थे। एक मोटी चटाई, दरी, थाली, कटोरा, छाती पर लकड़ी का बिल्ला, उस पर कैदी का नाम तथा नम्बर रहता था। सिपाही नम्बर बोलकर उनको बुलाते थे।

विनोबा ने मार्ग से आते-जाते कभी कारागार को देखा था। उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि कभी कारागार में रहना भी पड़ेगा! वर्धा रोड पर अजनी के मध्यवर्ती कारागार में जब उनको लाया गया तब अनजाने वे मन-ही-मन काँप उठे। दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष, उन घने वृक्षों से गुजरनेवाला वर्धा रोड। बायीं ओर सघन वृक्ष-राजि में विद्यमान यह कारागार! थोड़ी दूर तक चलने पर मुख्य दरवाजा, फिर प्रशस्त आँगन, उस आँगन के सामने कैदियों की कोठरियाँ!

विनोबा को स्वयं ही आश्चर्य हुआ, अनजाने मन क्यों काँप गया? जेल में पहले के कैदी अब नम्बर के अनुसार प्रचण्ड गेट के छोटे दरवाजे से बाहर निकाले जा रहे थे। बड़े-बड़े अपराधी, कुछ वर्षों का दण्ड भोगकर बेहया बने ये कैदी विशाल गेट के छोटे दरवाजे से झुककर बाहर निकल रहे थे। विनोबा तथा अन्य कैदी बाहर ठहरे हुए थे। अन्दर से बाहर आये हुए कैदी विनोबा से तथा अन्य नये आये हुए कैदियों से पूछ रहे थे, ''किस जुर्म में पकड़े गये हो भाई?''

''अपने देश का निशान ले जाने के जुर्म में एक साल की कड़ी सजा मिली है।''

''समझ में नहीं आता कि इन छोटी-छोटी बातों के लिए तुम जेल में क्यों आये हो?''

''हम अपने आप थोड़े ही आये हैं। हमको पकड़कर लाया गया है।''

''पकड़कर ही लाया जाता है भाई! मैं कहता हूँ कि इन छोटी बातों से तो एक बड़ी बात करके जेल में आना चाहिए था।''

एक सन्तप्त कैदी विनोबा से बातें कर रहा था।

''फिर क्या करते? हम खुद तो आये नहीं हैं न?''

"यही तो बात है। ऐसी मस्ती में जीना चाहिए कि लोग देखते रहें। लोग जलन महसूस करें और भाई! मरना हो तो ऐसे मरो कि जीवन की इच्छा पूरी हो जाए! जीते-जीते मरना और मर-मरकर जीना—यह भी कोई जिन्दगी है?"

विनोबा क्षणभर सम्भ्रम में पड़ गये। वह क्या कहना चाहता है, यह विनोबा समझ नहीं सके। वे सकते में पड़ गये, 'स्वयं को ब्रह्मर्षि समझता है, अपने कार्य के प्रति अत्यन्त आदर रखता है, निष्ठा रखता है। साहित्य पर प्रेम करता है। तो फिर बता न पन्द्रह वर्षों से जेल में रहनेवाले इस कैदी के शब्दों का अर्थ? बता सकता है? द्वैत-अद्वैत के भँवर में चक्कर काटनेवाला तू!' कठोर कार्यनिष्ठ तथा दूसरे के मन को जाननेवाला हूँ मैं! तो बता सकता हूँ क्या उसके जीवन का अर्थ—मरकर जीने का अर्थ?

विनोबा ने हँसकर विनम्रता से कहा, "भाई! मरकर भी कैसे जीते हैं? और जीवन की कौन-सी इच्छा पूरी करके तुम यहाँ सड़ने आये हो?"

वह कैदी हँसकर बोला, "भारत माता को मैं स्वतन्त्र देखना चाहता हूँ। महात्माजी जैसे लोगों पर मेरा विश्वास नहीं है। लातों के भूत बातों से नहीं मानते। मैंने एक अँग्रेज अधिकारी को मार डाला। सौ लोगों को परेशान करनेवाला एक आदमी तो चला गया। हिन्दुस्तान के सारे लोग एक साथ इसी तरह उठ जाएँ तो अँग्रेज लोगों के पैरों की धूल तक नहीं रह सकती यहाँ! इसलिए मैंने कहा था कि निशान के लिए तुम जेल में आये हो, इससे तो अच्छा होता कि एक अँग्रेज जानवर को मारकर तुम यहाँ आते!"

कैदियों की गिनती करनेवाला सिपाही गरज उठा। तभी वह कैदी हँसकर बोला, "अच्छा भाई! अब मिलने का समय नहीं है। लेकिन मेरी आखिरी इच्छा पूरी करोगे?"

विनोबा भयभीत हो गये। आखिरी इच्छा—इन शब्दों में उनको ब्रह्माण्ड का स्मरण हो आया। उन्होंने कहा, "अपनी इच्छा बताओ।!"

वह बोला, "एक तो महात्माजी को सन्देश दे दो कि अपना अहिंसा-सत्याग्रह बन्द करें। उससे कुछ होनेवाला नहीं है। दूसरा एक सन्देश, जो भी आदमी आपको मिले, उससे कहना कि जीते-जीते एक काम करो, एक अँग्रेज अफसर को मार डालो, थोड़ी गन्दगी हटाओ। तब फिर मरने की इच्छा पैदा होगी और सौ बार जन्म लेने की इच्छा होगी। वन्दे मातरम्!"

सिपाही उसको खींचता हुआ ले गया। तब विनोबा ने पास ही खड़े हुए दूसरे कैदी से उसके बारे में पूछा, तब वह बोला, "पाँच दिनों के बाद पुणे की जेल में इसको फाँसी लगनेवाली है।"

विनोबा कारागार में आते-आते सुन्न हो रहे थे! अहिंसा शब्द का महान अर्थ, जीवन का तत्त्वज्ञान, मृत्यु का सहर्ष वरण और पुनर्जन्म की इच्छा—यह गीता का सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान एक गँवार मनुष्य क्षणभर में उनको बता गया। जब से वे अच्छा समझने लगे थे तब से गीता उनका आदर्श तथा आधार थी। उसी के अनुसार जीने का

प्रयत्न वे कर रहे थे। परन्तु इस मनुष्य ने जो कार्य किया था वह गीता में कहा गया जीवन का तत्त्वज्ञान था। मैं आश्रमवासियों को गीता का अर्थ बार-बार बताता हूँ। वह अर्थ यह मनुष्य अपने स्वभाव धर्म के अनुसार बता गया। विनोबा की समझ में ही नहीं आ रहा था—अहिंसा या हिंसा! अहिंसा के लिए हिंसा अर्थात् सत्याचरण के लिए असत्याचरण! सदाचार के लिए भ्रष्टाचार तथा नीति की संस्थापना के लिए अनीति का आश्रय लेना उचित है क्या? 'नहीं'—उनके मन ने कहा। उस गँवार मनुष्य का वह स्वभाव-धर्म था। परन्तु सबके स्वभाव-धर्म ऐसे नहीं होने चाहिए। उसके हाथ से जो कुछ घटित हुआ, उसका कोई उपचार नहीं था। संसार की दृष्टि से उसका मार्ग सही था या गलत था, इसका उसने विचार नहीं किया। परन्तु कभी-कभी सत्य धर्म की संस्थापना के लिए युद्ध में प्रवृत्त होना गलत तो नहीं है!

—परन्तु वह समय कौन-सा है—इसका तो ज्ञान होना चाहिए न! और प्रत्येक मनुष्य हिंसा को माने क्या?

—नहीं।

—तो फिर युद्ध क्यों होते हैं? साम्राज्य के विस्तार के लिए ही न?

—इसीलिए शस्त्र सत्ता, धन सत्ता, राज्य सत्ता का मोह नहीं होना चाहिए।

—तो क्या सब ऋषि या संन्यासी बन जाएँ?

विनोबा के मन में यह अन्तर्द्वन्द्व बड़ी देर तक चलता रहा। अन्त में उन्होंने यह अनुभव किया कि परिस्थिति के अनुसार निर्णय लोकमानस संघटित रीति से लेता ही रहता है! परन्तु उस मनुष्य के शब्द, उसके मृत्यु के द्वार में उच्चरित शब्द 'वन्दे मातरम्' विनोबा को स्वयं ही कहीं-न-कहीं लज्जित कर गये! पाँच दिनों तक सतत उस मनुष्य की याद विनोबा को आती रही। फिर उन्होंने जेलर से पूछा, "उस मनुष्य को फाँसी हो गयी?"

"हाँ! निश्चित दिन ही हो गयी। भला मनुष्य था। उसने अपने युवक पुत्र से कहा था, 'तू एक ही काम कर। अत्याचार सहन मत कर। राष्ट्र के लिए लड़ता हुआ मर।' और जब उस मनुष्य को फाँसी हुई तब वह बोला, 'मेरी एक ही इच्छा है। मुझको कैदियों के सामने जोर से बोलने दो—वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम्!' "

विनोबा स्तब्ध रह गये। अहिंसा की शक्ति का उन्होंने अनुभव किया था। परन्तु स्वतन्त्रता के लिए तथा देश के लिए लड़ते समय सर्वस्व दान करते समय प्रसन्नता की सामर्थ्य का उन्होंने अब अनुभव किया!

विनोबा को जेल में कूटने का काम मिला। अकोला की जेल में गन्दगी अधिक थी तथा व्यवहार अमानवीय एवं अपमानास्पद था। यहाँ विनोबा कंकड़ तोड़ने लगे। आठ फुट गिट्टी तोड़ते हुए विनोबा भजन गाते। जेलर तथा कैदी प्रसन्न हो गये। आन्दोलनों का जोर बढ़ रहा था। गिरफ्तार नेताओं को मुक्त करने की माँग जोर पकड़

रही थी। आखिर विनोबा तथा अन्य सबको जेल से छोड़ दिया गया। तभी महात्माजी का पत्र आदेश के रूप में विनोबा को प्राप्त हुआ। दक्षिण भारत में वाइकोम में असहयोग आन्दोलन चल रहा था, उसके संचालन के लिए विनोबा को जाना था।

यह गाँव त्रावणकोर के पास था। पवनार से वहाँ जाना सरल था, परन्तु भाषा ज्ञान न होने के कारण पराये प्रदेश में अधिकार का प्रदर्शन करना कठिन ही था। फिर भी महात्माजी की आज्ञा को टालना सम्भव नहीं था।

वाइकोम में शिवशंकर का मन्दिर हरिजनों के लिए भी खोला जाए, इसके लिए सत्याग्रह प्रारम्भ हो गया था। मन्दिर के पुजारी तथा ब्राह्मण वर्ग हरिजनों को प्रवेश नहीं करने दे रहे थे। इतना ही नहीं, मन्दिर के सामने से जानेवाले मार्ग से हरिजनों का आना-जाना निषिद्ध था।

विनोबा के सामने प्रश्न था कि लोग स्वयं को राष्ट्रीय प्रवाह में न डालकर आपस में ही क्यों लड़ रहे हैं?

वाइकोम को जाते समय बीच में शंकराचार्यजी का जन्मगाँव कालडी था। शंकराचार्यजी का विनोबा पर अत्यधिक प्रभाव था। बचपन से ही विनोबा की शंकराचार्य के प्रति अगाध श्रद्धा थी। उनके जन्मस्थान पर भी वे जाना चाहते थे। परन्तु प्रतिदिन यात्रा करते समय वहाँ के अत्याचारों की बातें सुनकर वे पहले वाइकोम को गये। परिस्थिति का निरीक्षण कर विनोबा ने सारे सूत्र अपने हाथ में ले लिये। स्वयंसेवकों की टुकड़ियाँ उन्होंने बनायीं। एक-एक टुकड़ी मन्दिर की ओर जाने लगी तो पुलिस उनको रोकने लगी। अनेक टुकड़ियाँ—एक के पीछे एक—जा रही थीं। पुलिस रोक रही थी, पिटाई कर रही थी और जेल में डाल रही थी, परन्तु स्वयंसेवक सतत आकर मिल रहे थे, उनकी टुकड़ियाँ बनायी जा रही थीं, भेजी जा रही थीं। मानसून शुरू हो गया। दक्षिण किनारे पर झंझावात के आघात होने लगे। पुलिस कमिश्नर बोले, "अब यह सब रुक जाएगा। अकाल से आये हुए मनुष्य को यह बरसात निगल जाएगी। वर्धा से आया है न! घबड़ाकर पलायन कर जाएगा। नहीं तो बीमार पड़ जाएगा।"

वर्षा हो रही थी। रास्ते जलपूर्ण हो गये। स्थान-स्थान पर गड्ढों में कीचड़ हो गयी। गड्ढों की गहराई का अन्दाज नहीं होता था। दिन मलिन और रात गहन-गम्भीर! सर्द! परन्तु स्वयंसेवकों की संख्या कम नहीं हो रही थी। वे मन्दिर की ओर जा रहे थे। परन्तु अब पुलिसवाले ही बरसात से उकता गये थे।

पुलिस कमिश्नर ने आकर विनोबा से कहा, "क्यों कष्ट उठा रहे हो! दुर्बल हो! वर्षा से बीमार पड़ जाओगे। अच्छा हो कि लौट जाओ! दूर प्रदेश में कष्ट मिलने पर..."

विनोबा ने कहा, "साहब! कष्ट तो आपके लोगों को उठाने पड़ रहे हैं। दिन-रात पुलिस-सेना यहाँ तैनात रहने से उनको बड़ा कष्ट हो रहा है। उनके घरवाले

कितनी चिन्ता करते होंगे, आप विचार तो करें! मैं तो ब्रह्मचारी हूँ।"

वे वैसे ही लौट गये। परन्तु अब लोग जाग्रत हो गये थे। देश के सभी समाचारपत्रों में वाइकोम में होनेवाली घटनाएँ छपने लगी थीं तथा निषेध प्रारम्भ हो गया था। अन्त में बरसात से पुलिस अधिकारी और सिपाही थक गये। पुलिस अधिकारी विनोबा के पास आकर बोले, "एक वर्ष तथा चार महीनों से यह संघर्ष चल रहा है। आखिर पुलिसवाले थक गये। हम अपनी ओर से यह लड़ाई समाप्त कर रहे हैं। आपके धैर्य के प्रति, आपके स्वास्थ्य के प्रति तथा आपके परिश्रम के प्रति हम सशंक थे परन्तु आज यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि आपने जो धैर्य प्रदर्शित किया है, वह अनुपम है।"

जब विनोबा सत्याग्रह को सफल करके लौटे तब महादेव भाई देसाई का पत्र उनको मिला। उसमें लिखा था, 'विनोबाजी! आपके सम्बन्ध में क्या लिखूँ, यही समझ में नहीं आ रहा है। मैं लेखक हूँ। शब्द-सामर्थ्य को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। परन्तु आपके लिए मैं केवल एक शब्द का प्रयोग करना चाहता हूँ, चमत्कार! साहित्य, गणित, गायन, पाठान्तर, भाषाविज्ञान, समाजशास्त्र, स्वराज्यशास्त्र, वेद, पुराण आदि का सुबृहत् अध्ययन करने के पश्चात् भी आप इतने विनम्र और मजदूर से अधिक मजदूरी करते हैं कि देखनेवाला समझेगा कि यह गाँव का श्रमिक है। यह सब कैसे सम्भव किया आपने?'

विनोबा ने गलती से ही यह पत्र अपनी लेखन पुस्तिका में रख लिया था। उन्होंने वह पत्र फाड़कर फेंक दिया। फिर बिखरा सामान व्यवस्थित कर वे उठे। आकाश अब भी घनाच्छादित था, रिमझिम वर्षा रुक नहीं रही थी। भोजन की घण्टी बजी, परन्तु आज भोजन की इच्छा नहीं हो रही थी। सत्य तो यह था कि यज्ञकर्म के रूप में वे नियमित मिताहार लेते थे, परन्तु जब से महात्माजी की मृत्यु हुई थी तब से वे मन-ही-मन अस्वस्थ हो उठे थे। कभी-कभी भोजन की इच्छा ही नहीं होती। लिखते-लिखते सहसा रुक जाते। कभी-कभी अन्दर से तरंग उठती, मन भर उठता! यों प्रत्यक्ष कोई परिणाम दिखाई नहीं देता था। अठारह-अठारह घण्टे वे काम करते थे। शरीर को खूब थका देते। नींद आ जाने पर भी रात में अचानक आँख खुल जाती। फिर वे रात में आँगन में आकर निरभ्र आकाश में तारों को देखते रहते।

उन तारों को देखते हुए उनको माता का कथन याद आ जाता। माता कहती थी, "विन्या! जो मनुष्य पुण्यशाली होते हैं वे आकाश के चमकते तारे होते हैं।"

"माँ! जो चमचमाती हैं वे तारिकाएँ होती हैं। तारे ऐसे नहीं चमकते हैं।"

"यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। आकाश में उनको स्पष्ट तारों का स्थान मिलता है।"

माता की मृत्यु होने पर उन्होंने आकाश की ओर देखा था तब सचमुच ही उनको असंख्य तारिकाओं में एक तेजस्वी तारा चमकता दिखाई दिया। तब उनके मन में आया, सचमुच ही पुण्यात्मा मरने के बाद तेजपुंज हो जाते हैं! माँ उनमें निश्चय ही होगी।

महात्माजी की मृत्यु के समय सहसा मूसलाधार वर्षा हो उठी थी। परन्तु उसी रात निरभ्र आकाश में एक तेजस्वी तारा नया-नया अवतीर्ण-सा लग रहा था। वे मन में मुस्कराये। परमात्मा ने ध्रुव को ऐसा ही अटल स्थान दिया था। एक-एक पुण्यात्मा के नाम से एक-एक तारिका का निर्माण करते-करते सचमुच आकाश ग्रह-नक्षत्रों से भर गया होगा। कभी-न-कभी कुछ तारे बिखर जाते होंगे तब उनका स्थान ऐसे ही तारे ले लेते होंगे!

एक गणितज्ञ मनुष्य के मस्तिष्क की विक्षिप्त कल्पना किसी को बतायी जाए तो वह कहेगा, "बापू के जाने के बाद बाबा शायद पागल हो गया है।"

"शायद यही सम्भव है।" इतना कहकर विनोबा ने तकिया पर सिर रख दिया।

11

विनोबा अचानक जाग गये। उन्होंने आँखें खोलकर समय का अनुमान लगाया। शायद आधी रात बीत चुकी थी। एक बार आँख खुल जाने पर फिर उनकी सोने की इच्छा नहीं होती थी। वे बाहर आये।

आश्रमवासी गहरी नींद में थे।

मार्च का महीना आधा बीत चुका था। इस बार तो ग्रीष्म ऋतु ने विदर्भ में आते ही अपने पैर दृढ़ता से जमा लिये। फरवरी का महीना अभी समाप्त नहीं हुआ था कि धरती तपने लगी थी। दिन गरम लूओं से तथा रात गरम वातावरण से आधी रात तक असह्य हो उठी थी। अभी तो आधा मार्च, अप्रैल, मई तथा जून के दूसरे सप्ताह तक ठीक समय पर मृग-नक्षत्र के बरसने तक का समय बीतना था।

सन्ध्या समय मिलने के लिए कुछ लोग आये थे। उन्होंने कहा, "इस बार वर्षा कम हुई है, इसलिए ठण्ड लगी ही नहीं और सर्दी में ही ग्रीष्म ऋतु अतिथि बनकर आ गयी।"

उनका ग्रीष्म को 'अतिथि' कहना अच्छा लगा था विनोबा को। उन्होंने कहा था, "सचमुच अतिथि का आगमन कभी अच्छा लगता है कभी अच्छा नहीं लगता। परन्तु यदि वह ऋतुओं का स्वामी हो तो? भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, 'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्' और ऋतुओं में मैं वसन्त हूँ।"

वे बोले थे, "श्रीकृष्ण का कहना ठीक था, परन्तु उन्होंने भयंकर तप्त कर

देनेवाली ऐसी ग्रीष्मऋतु देखी ही न होगी।''

रात में देर तक विनोबा 'अतिथि' शब्द का विचार करते रहे थे। अपने मन में प्रसन्न होते हुए उन्होंने मन को सावधान किया था, 'रात बहुत बीत चुकी है। चन्द्रकला आकाश के मध्य में पहुँचते-पहुँचते अधिक तेजस्वी हो जाएगी। नीरव शान्ति में सृष्टि ने अपनी लक्ष-लक्ष रत्नजटित मंजूषा खोल ली होगी!' विनोबा बिछौने पर लेटे हुए आकाश के चमचमाते वैभव को देख रहे थे। अब सोना चाहिए, इस विचार पर ध्यान केन्द्रित करने पर उनको नींद आ गयी।

परन्तु फिर आँख कैसे खुल गयी? किसी के पुकारने की आवाज आ रही थी। किसने पुकारा था? कभी--कभी घटना की संगति न लगने की अनुभूति होती है परन्तु प्रत्येक घटना का अर्थ आज नहीं तो कल ज्ञात हो ही जाता है। विनोबा विचार कर रहे थे कि रात में देर से सोने पर जो नींद आयी उससे इतनी प्रसन्नता क्यों हो रही थी! फिर वह पुकार किसकी थी जिससे उनका तन-मन प्रसन्न हो गया था!

'कल रात में मैं 'अतिथि' शब्द का विचार कर रहा था। ईश्वर का अतिथि के रूप में आना और घर बार को प्रसन्न करके लौट जाना, यह विचार मुझको कितना अच्छा लगा था! ईश्वर की कल्पना ही इतनी मनोरम और प्रिय लगती है कि जीवन के सारे अर्थ सन्दर्भ सहित वहाँ आकर ठहर जाते हैं! ग्रीष्म ऋतु से अतिथि आए और अपने प्रथम चरण से ही सारी सृष्टि में बहार लाकर अगले चरण में फिर सबका लोप कर दे! और जाते समय धरती को सहस्रधारा का वरदान दे दे! धरती पर आया हुआ अतिथि ग्रीष्म!'

विनोबा को रात में आये विचारों का स्मरण हुआ...वे कुटी से बाहर आये। बेला की सुगन्ध का झोंका आया...अब नींद का आना सम्भव ही नहीं था। वे धीरे-धीरे चलते रहे। आश्रम के सामने का मार्ग पार करने पर थी धाम नदी!

धाम नदी को देखकर उन्होंने हाथ जोड़े। वे नदी तक आये। धाम नदी मोक्षदायिनी थी। कभी उन्होंने कहा था, 'इस नदी के पास जो आश्रम है वह है—परमधाम—मोक्ष तक ले जानेवाला मार्ग।' परन्तु आज नदी में पैर डालकर बैठने पर उनको लगा कि यह लोकमाता है। माता सदैव मंगलदायिनी होती है—शुभचिन्तक और कर्तव्य कठोर होती है। आज तो वह उनको स्नेहमयी प्रतीत हुई।

वे नदी में कटि तक जल में चलते गये। शान्त लेटी हुई नदी जाग्रत हो गयी। सहस्र स्नेहशील लहरें उछलने लगीं। उस स्नेहपूर्ण स्पर्श से विनोबा की आँखों में आँसू आ गये। वे नदी के पात्र में खड़े थे। वातावरण प्रसन्न था! नीरव शान्ति! असीम आकाश का लावण्य और मन में खिला हुआ पारिजात!

इस अपूर्व प्रसन्नता का कारण क्या था, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था। असंख्य बार वे इस नदी के पास आये थे। सदैव वे काले पत्थर पर बैठते थे। आज

भी वे भीगे शरीर से बैठे थे।

'लोकमाता! अविरत कार्यरत रहनेवाली। वही मेरी प्रेरणा है। अनेक दुरूह समस्याओं का समाधान इसकी उपस्थिति से हुआ है। अपने मन के प्रश्नों के उत्तर यहाँ मिले हैं। आज अकस्मात् नींद क्यों खुली—इस प्रश्न का उत्तर यहीं मिलेगा। मात! प्रश्न का उत्तर अत्यन्त साधारण भी हो सकता है, परन्तु मन बारम्बार उस प्रश्न का उत्तर माँग रहा है!'

आश्रम में उठने की घण्टी बज गयी थी। ब्राह्ममुहूर्त में शुचिर्भूत होकर ईशोपनिषद् का पाठ करने की परिपाटी पुरानी थी। आश्रम के सभी निवासियों के लिए एकत्र प्रार्थना, यह तो अब एक नियम ही बन गया था।

सच तो यह था कि कभी मूसलाधार वर्षा में या कँपानेवाली ठण्ड में इस मुहूर्त पर किसी को जगाया नहीं जाता था। महात्माजी की भाँति मैंने भी अनुशासन और प्रार्थना को अपनी शक्ति माना था और आश्रमवासियों ने भी सहज ही उसको स्वीकार कर लिया था।

'किसी के मन में कभी कुछ आता होगा, परन्तु मैंने उसका विचार नहीं किया। अनुशासन सबके लिए है। अपने लिए तो और अधिक है।' यह विचार करते हुए वे नदी में स्नान करके आश्रम की ओर मुड़े।

उनकी दृष्टि पूर्व की ओर गयी। निस्तेज होती हुई तारिकाएँ तथा पूर्व में विकसित होता गुलाबी स्वप्न देखकर उन्होंने मन-ही-मन नमस्कार किया। उन्होंने मुख से 'जय श्री राम हरी' का जप प्रारम्भ कर दिया। परन्तु सदैव एकाग्र रहनेवाला मन आज उन्मुक्त होकर भटक रहा था—न जांने कहाँ-कहाँ!

अकस्मात् उनको अपनी माता की याद आ गयी। रात के उत्तरार्द्ध में मुझको जगानेवाली कहीं माता ही तो नहीं थी, यह विचार आते ही वे ठिठक गये और तत्काल उन्होंने उच्च स्वर से अथर्वशीर्ष बोलते हुए आश्रम की ओर चलना प्रारम्भ कर दिया। ईश्वर के अस्तित्व जैसी निराकार माता को उन्होंने विचारों से जरा दूर किया, परन्तु चलते-चलते वह बीच-बीच में झाँकने लगती थी।

आश्रम में प्रार्थना प्रारम्भ हो गयी। ईशोपनिषद् के मन्त्र वातावरण में गूँज उठे। ब्राह्ममुहूर्त का समय ऋषि-मुनियों की साधना का था। प्रार्थना के पश्चात् वे अपनी कुटी में आये। सामने एक पत्र देखा। रात में उन्होंने उस पत्र को पढ़ा था तथा उसका उत्तर भी उन्होंने लिख दिया था, 'हम सम्मेलन में आ रहे हैं—वह भी पदयात्रा करते हुए।'

उस पत्र में शिवरामपल्ली में अप्रैल में होनेवाले सम्मेलन में आने का निमन्त्रण दिया गया था। सर्वसेवा संघ के शंकरराव देव ने लिखा था, 'आप सन् 1950 में उड़ीसा में अनगुल में हुए सम्मेलन में उपस्थित नहीं थे। वास्तव में आपकी उपस्थिति को लोग आवश्यक मानते हैं। गाँधीजी के सर्वोदय मन्त्र के आप उद्गाता हैं। अब आपको यहाँ

अवश्य ही आना चाहिए। महात्माजी के सिद्धान्त और ध्येय की यहाँ नितान्त आवश्यकता है। बढ़ते हुए हिंसाचार के लिए अहिंसा की आवश्यकता है और अहिंसा के लिए आत्मशुद्धि की आवश्यकता है। वह आत्मशुद्धि आप ही कर सकते हैं बाबा! यहाँ कम्युनिज्म का तथा अतिवादी विचारों का प्रभाव बढ़ रहा है। कोई किसी की नहीं सुनता है। यहाँ के जमींदार धनी और सबल हैं। मजदूर दरिद्रता में हैं। अतिवादी अवसर मिलते ही सबको लूट लेते हैं। इस घमासान में साधारण मनुष्य पिस रहा है। एक ही भूमाता की ये सन्तानें आपस में लड़ रही हैं। विनोबा! आप आइए! नहीं तो इस सर्वोदय का कोई अर्थ नहीं रहेगा।'

पत्र पढ़ने पर 'एक ही भूमाता की ये सन्तानें' ये शब्द मन में समा गये। महात्माजी की मृत्यु के पश्चात् कुछ ही समय व्यतीत हुआ था कि उनके आचार-विचारों का प्रभाव समाप्त-सा हो गया। सूर्य अपनी समस्त किरणें समेट कर प्रस्थान कर जाए और देखते-ही-देखते अन्धकार घिर आए—ठीक यही दशा हो गयी थी। उनकी हत्या के साथ ही उनके वैचारिक कर्मशील जीवन का भी अन्त उपस्थित होते देखकर विनोबा चिन्तित हो उठे थे। स्थान-स्थान पर भड़कते हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगों में विलुप्त होती मानवता को वे देख रहे थे। शंकरराव देव ने यथार्थ विचार रखे थे। कल-परसों सारा हिन्दुस्तान महात्माजी के एक शब्द से—'निःशस्त्र क्रान्ति—अहिंसा से क्रान्ति'—इस विचार से प्रभावित था। उनकी एक पुकार से हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सारा हिन्दुस्तान जाग गया था। उनकी मृत्यु ने सारा चित्र ही बदल दिया था। राम-रहीम एक दूसरे के सामने ताल ठोंककर खड़े थे। और बढ़ रहा था प्रचण्ड लोभ! उनकी वाणी कहाँ अदृश्य हो गयी थी? विनोबा विचलित हो उठे थे।

रात में प्रार्थना के पश्चात् तेलंगाना प्रदेश में जाने के विचार से उन्होंने कहा, "हैदराबाद के पास स्थित शिवरामपल्ली के सर्वोदय सम्मेलन का निमन्त्रण आया है। उनकी इच्छा है कि मैं उस सम्मेलन में उपस्थित होऊँ! वास्तव में आश्रम में जो कार्य मैंने हाथ में लिया है उसमें सर्वोदय की कल्पना अभिप्रेत है। उसको छोड़कर जाने को मेरा मन नहीं करता है, यह सच है, फिर भी शिवरामपल्ली के लोगों को सर्वोदय की अधिक आवश्यकता है। यह माता की पुकार है। यह ईश्वर की आज्ञा है। इसलिए हम कल प्रातःकाल प्रस्थान करेंगे।"

"इतनी जल्दी? सम्मेलन में तो पर्याप्त समय है!"

"यह आनन्दयात्रा है। हम लोग पैदल जाएँगे।"

"सो क्यों?" किसी ने दबे स्वर में पूछा।

विनोबा के मुख पर रहस्यमयी मुस्कराहट छा गयी।

"ईश्वर-प्रदत्त पैरों का ऐसा सुन्दर उपयोग कब होगा?"

"सचमुच पैदल जाना है?"

"आनन्दब्रह्म की अनुभूति के लिए।" एक क्षण रुककर विनोबा कहने लगे, "सहज...नितान्त सहज भाव से हम लोग पैदल जाएँगे।"

सहज शब्द की सहजता अत्यन्त सहज हो गयी थी। लोकमानस का दर्शन करते हुए कल-परसों ही विवेकानन्द भी तो बेलूर मठ से कन्याकुमारी तक पैदल गये थे। फिर इन महापुरुषों को लोकजीवन के दु:खों से मोह हो गया। उन्होंने अनजाने सारे दु:ख लोगों से ले लिये और उनको सुख के हरे पौधे सौंप दिये।

प्रतिदिन की वार्ताएँ कानों में पड़ रही थीं। महात्मा गाँधी की मृत्यु के बाद पूरे हिन्दुस्तान में हिंसाचार बढ़ गया था। अहिंसा-तत्त्व समूल नष्ट हो गया था। जिस एकता के लिए महात्माजी ने अपना पूरा जीवन दाँव पर लगा दिया था—वह कार्य उनकी मृत्यु के पश्चात् क्षणभर में समाप्त हो गया था, यह प्रतीति विनोबा को हो गयी थी। भाषण-प्रवाह में उन्होंने सखेद कहा था, "मनुष्य में राक्षसत्व ही अधिक होता है, वह सिर्फ उस पर देवत्व का पुट चढ़ाता है। उसको साम-दान-दण्ड-भेद का प्रयोग कर मनुष्य बनाया जाता है। यह कार्य महापुरुष अपना जीवन दाँव पर लगाकर करते हैं। परन्तु यदि उनकी प्रणाली का इस प्रकार शीघ्र ही अन्त होना है तो फिर किसलिए वे अपने जीवन को दाँव पर लगाते हैं?"

और दूसरे ही क्षण उन्होंने स्वाभाविक सहजता से कहा, "क्षण भर को लगता है कि सब कुछ समाप्त हो गया। परन्तु ऐसा नहीं होता है। महापुरुष लोगों के मनों में दृढ़मूल हो जाते हैं। ऐसा लगता है कि समाप्त हो गया, परन्तु उनके विचार बीज बनकर समाये रहते हैं। जिसमें सारे हिन्दुस्तान को हिला देने की शक्ति थी ऐसा महापुरुष इस प्रकार सहसा नहीं मरता है। उसके विचार संस्कृति में रम जाते हैं।"

विनोबा का अनुभव सत्य था, परन्तु तेलंगाना की समस्या भिन्न थी। उपभोग के लिए द्रव्यार्जन का अतिरेक हों गया था। कुछ लोगों को अधिकाधिक पाने की आकांक्षा थी तो कुछ लोगों को कुछ भी नहीं मिल पा रहा था। इन दोनों में संघर्ष प्रारम्भ हो गया था। देश में जितने अधिक भाग होंगे उतनी ही अधिक उसकी समस्याएँ भी होंगी। देश का विभाजन सरल था, परन्तु देश को अखण्ड रखना कठिन था। तेलंगाना में जमींदार और मजदूर—भूपति और भूमिहीन—इनका संघर्ष था। बलवान् अत्याचार कर रहे थे। प्रतिदिन मनुष्य मर रहे थे, मारे जा रहे थे। जीवन कठिन और मृत्यु सस्ती हो गयी थी। वहाँ का स्थायी भाव हिंसाचार ही हो गया था।

प्रतिदिन महात्माजी के स्वप्न के टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे। उनकी मृत्यु के बाद भड़के दंगों की प्रतिध्वनि समाचारपत्रों में गूँज रही थी। समाचारपत्रों में सम्पादकीय लेखों में जवाहरलाल नेहरू को महात्माजी का राजनीतिक शिष्य तथा विनोबा को महात्माजी का आध्यात्मिक शिष्य बताया जा रहा था। साधारण जनता बड़ी आशा से उन दोनों की ओर देख रही थी।

मदालसा देवी ने विचार किया कि तेलंगाना में आध्यात्मिक शिष्य का क्या काम है ? विनोबाजी बुद्धिमानों को उपदेश देकर उनकी चेतना जाग्रत कर सकते हैं परन्तु आर्थिक प्रश्न—अधिकार के तथा अत्याचारों के प्रश्नों को वे कैसे हल करेंगे ? विनोबाजी को मृत्यु का भय नहीं था परन्तु उस राज्य में जाकर किसी से कुछ कहा जाए, यह भी सोचा नहीं जा सकता था। मदालसा देवी विचारमग्न हो गयीं। दो दिन पहले ही वे यहाँ आयी थीं। विनोबा के प्रति उनके मन में अत्यन्त आदर था। परन्तु हिंसाग्रस्त प्रदेश में जाकर वे क्या कर पाएँगे, इस विषय में वे शंकित थीं। विनोबा ने उनके मन की उलझन का अनुमान लगाकर कहा, ''पदयात्रा से मनुष्य आपस में जुड़ते हैं। मन का भय समाप्त होता है। इसके अतिरिक्त हम ईश्वर के निकट जाते हैं। प्रकृति में ईश्वर की स्पृहणीय प्रतिमा है।''

कोई कुछ नहीं बोला। प्रत्येक के मन की आशंका उसकी मुखमुद्रा पर दिखाई पड़ रही थी।

विनोबा कह रहे थे, ''मनुष्य को भय ने ग्रस लिया है। सच कह रहा हूँ न भाऊ पानसे ? विचार करके देखें कि जीवन कितना है—सत्तर वर्ष! इसमें आधा जीवन नींद में तथा स्वयं के लिए बीतता है। शेष पैंतीस वर्षों के जीवन में काम का समय निकाल देने पर दस-पन्द्रह वर्ष का समय बचता है, इस समय को मनुष्य विचारपूर्वक बिताए तो नर का नारायण हो जाएगा अथवा फिर नरक में जाएगा। अपनी माता की कहानी आपको सुनाता हूँ। हमारे घर के कटहल के पेड़ों पर जब कटहल लगते और आम के पेड़ अमियों से भर जाते तब माता कहती, 'विन्या जा! ये कटहल के टुकड़े और अमियाँ गाँव में बाँट आ। जो स्वयं की स्वयं ही खा जाता है वह राक्षस है और जो दूसरों को देता है वह देव है।' उसकी संस्कृति की यह व्याख्या कितनी सीधी-सादी थी! मनुष्य जब राक्षस बन जाते हैं तब मानवता का लोप हो जाता है। इस बात को वह अपढ़ स्त्री जानती थी। आज उसको भूल गये हैं। भाऊ! हमको प्रयत्न करना है, तन-मन से प्रयत्न करना है। उसके बाद कुछ निश्चय करेंगे।''

मदालसा देवी ने कहा, ''परन्तु वहाँ...''

वाक्य का उत्तरार्ध विनोबा ने हँसते हुए पूर्ण किया, ''वहाँ मृत्यु का भय है, यही न महादेवी ? मृत्यु का भय कितना है! अनाम वीर को मृत्यु के सामने जाते देखते हैं तो मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। मृत्यु सतत हमारे साथ गतिशील रहती है। वह कब हमारे पैरों में अपने पैर फँसा देगी, इसका रंचमात्र आभास हमको नहीं होता है। जो अदृष्ट चिरन्तन-अपरिहार्य-अटल है उससे भय किसलिए ? सामने खम्भा है। यह अन्धे मनुष्य को दिखाई नहीं देता है, परन्तु सनयन मनुष्य को वह दीखता है। खम्भे से बच सकते हैं। मृत्यु का स्वागत किया जा सकता है। सच हे न गौतम ?''

वे हँसने लगे।

सन्ध्याकाल की प्रार्थना के बाद विनोबा बरामदे में बैठे थे। दूर धाम नदी अस्पष्ट-धूमिल दिखाई दे रही थी। अपनी कुटी के बाहर प्रांगण में खण्डित मूर्ति की ओर वे देखते रहे। मन में विचार आया, 'कभी किसी काल में शिल्पकार ने इन शिल्पकृतियों को सजीव किया था। परन्तु फिर वे काल के उदर में लुप्त हो गयीं और आज खण्डित होने पर भी सम्मान से प्रतिष्ठित हैं। इन प्रतिमाओं के लिए मध्यकाल प्राणघाती सिद्ध हुआ था। ऐसे ही लगता है कि भारत पुनः अखण्ड होगा, सम्मानित होगा, वैमनस्य समाप्त होकर यह जाग्रत होगा, अपने प्राचीन वैभव से फिर गौरवान्वित होगा! मुझको मृत्यु का भय नहीं है। लगता है जैसे ईश्वर ने एक अभेद्य कवच मेरी देह पर लपेट दिया है। यह कवच महात्माजी का है। उनकी जीवनभर की शुचिर्भूत साधना का है! तेलंगाना के बढ़ते हुए हिंसाचार को अहिंसा और सर्वोदय की अत्यन्त आवश्यकता है।'

विनोबा मन में निश्चय करके उठे।

रात में वे बरामदे में ही सोये। आकाश में तारिकाओं की एक लम्बी पट्टी उनको दिखाई दे रही थी। असंख्य दृश्य-अदृश्य तारिकाओं की पट्टी देखते हुए उनके मन में आया, 'तेलंगाना के दूरस्थ गाँव में ऐसे ही लोग हैं। जैसे उल्कापात होता है वैसे ही एक-एक का जीवन समाप्त होता है—समाप्त कर दिया जाता है। यह संघर्ष पेट के लिए है। बेरोजगारी का तथा उससे उत्पन्न क्रोध का यह परिणाम है। मनुष्य-मनुष्य में अन्तहीन संघर्ष चल रहा था। साने गुरुजी कहते थे, 'हम सब बन्धु हैं।' धुलिया के कारागार में वे मेरे साथ थे। करुणा की मूर्ति, सहनशीलता का सागर और प्रेम का सागर, वे आज होते तो...'

कभी-कभी साने गुरुजी उद्वेलित होकर कहते थे, 'यह भूमाता सबकी है। रक्त सबका एक है। स्वतन्त्रता से पूर्व लड़कर आप मृत्युंजय बन गये थे और अब स्वतन्त्रता के प्रभात में आप हत्यारे बन गये। रक्त से लिखी गयी स्वतन्त्रता कथा अब रक्त से ही पोती जा रही है। अपने लिए अपनी फुलकिया पर घी डालनेवाले भूखों के मुख से कौर छीनकर पशु बन गये हैं...'

साने गुरुजी का कथन सत्य था। इन लोगों को कैसे समझाया जाए? धन और अधिकार से उन्मत्त बने लोग कुछ सुनेंगे क्या? तेलंगाना के ये जमींदार रक्त के लाल रंग से भूमाता के हरे वस्त्र को रँगने जा रहे हैं! रात में बड़ी देर तक इस विचार के कारण विनोबा को नींद नहीं आयी।

नदी से आश्रम तक आते-आते विनोबा को पुनः 'भूमाता के पुत्र' इस शब्द का स्मरण हो आया। ईशोपनिषद् का पाठ समाप्त हो गया। प्रातःस्मरणीय ऋषि की भाँति विनोबा को ध्यानस्थ देखकर सब शान्त बैठे रहे।

सूर्य अभी उदित नहीं हुआ था। प्रातःकाल चार बजते ही आश्रम की घण्टी बज गयी थी। उसके बाद आधा-पौन घण्टा बीत गया। मदालसा देवी के मन में यह बात

आ रही थी कि पूर्व दिशा को गुलाबी स्वप्न दिखाई देते हैं और इस योगी को तेलंगाना के जाग्रत स्वप्न दिखाई पड़ रहे हैं!

विनोबा आसन से उठते हुए बोले, "अब चलना चाहिए!"

कुछ समय बाद ही वे कुटी के बाहर आँगन में आकर खड़े हो गये। उनके आसपास महादेवी दीदी, मदालसा देवी, दामोदरदास मूँदड़ा, दत्तोबा, दास्ताने तथा भाऊ पानसे के साथ कुछ लोग थे। विनोबा ने हाथ जोड़कर उदित होते सूर्य को नमस्कार किया और मन में कहा, 'हे उदित होते भास्कर! अन्धकार दूर करके प्रकाश देने का सामर्थ्य तुझमें है। निद्राधीन लोगों को जाग्रत करने की शक्ति भी तुममें है। तुम चेतना का मन्त्र हो। आज से प्रारम्भ होनेवाली पदयात्रा में मेरा सहयोग करो। हे देव भास्कर! तुम्हारा अनुशासन और तुम्हारी चेतना का संचार मुझमें हो!'

धाम नदी अब स्पष्ट दिखाई दे रही थी। विनोबा ने उसकी ओर देखकर कहा, "हे लोकमाता! तुम्हारा स्वभाव है अविरत प्रवाहित होना तथा प्रसन्न भाव से कार्यरत रहना—तुम्हारे इन गुणों का संचार मुझमें हो!"

उन्होंने हाथ जोड़े। दोनों हाथ ऊँचे कर आश्रमवासियों को नमस्कार किया और फिर उन्होंने कहा—"जय श्रीराम-जय श्रीराम!"

वे आश्रम से बाहर आये। सामान बैलगाड़ी में रख लिया था। वे चलने लगे। साथ ही अन्य सब भी चलने लगे। मुख से 'जय श्रीराम—जय श्रीहरि' का नाम-जप चल रहा था। महादेवी दीदी व्यवस्थित पद-निक्षेपों को देख रही थीं। ऊपर से दुर्बल दिखाई देनेवाला शरीर, छोटे पैर, पैर भी अशक्त-से लगनेवाले परन्तु पद-निक्षेप थे सशक्त और आत्मविश्वासपूर्ण!

धाम नदी का पुल पार कर वे वर्धा की ओर चल दिये। चलते-चलते पवनार पीछे रह गया। विनोबा अपनी गति से चल रहे थे। भाऊ पानसे चलते-चलते रुक गये थे। विनोबा ने पीछे की ओर न देखते हुए ही कहा, "भाऊ! दूर जाना है, यह ध्यान रहे!"

"रास्ते का पत्थर लग गया इसलिए..."

"रास्ते में पत्थर तो होते ही हैं। उनको हटाकर चलना चाहिए न!"

"मुझको पत्थर दिखाई नहीं दिया!"

"मार्ग पत्थरों का है या सादा सरल पैदल-मार्ग है या राजमार्ग है, यह बात पैरों को बतानी नहीं पड़ती है भाऊ!"

"परन्तु पैर ही पत्थर को लग गया!"

"इसीलिए तो कहता हूँ कि मन को इधर-उधर से हटाकर पैरों की ओर केन्द्रित करो!"

"परन्तु मन कहाँ-कहाँ ध्यान रखेगा विनोबाजी?" महादेवी ने पूछा।

"मन की गति अनुपम है। यह मन एकाग्र हो सकता है। मन का विकेन्द्रीकरण भी हो सकता है। मन सबमें जाकर भी अपनी जगह रह सकता है। एक ही मन के सैकड़ों केन्द्र हैं। सूक्ष्मातिसूक्ष्म केन्द्र हैं। मन सभी केन्द्रों से सम्पर्क साधता है। परन्तु कभी-कभी हम ही अपने मन का केन्द्रीकरण कर लेते हैं।"

अर्जुन की भाँति रण में शस्त्र डालकर भाऊ पानसे ने मन-ही-मन कहा, 'हे श्रीकृष्ण! मैं सम्भ्रमित हूँ। तुम्हारे पद-चिह्नों पर पद-निक्षेप करने की शक्ति मुझमें नहीं है। कारण यह है कि तुम तक पहुँचने के प्रयत्न में मुझको सभी मार्ग तुम्हारे ही पदतल में आये हुए दिखाई देते हैं। अब मुझमें कैसा भी विचार करने की शक्ति नहीं है।'

विनोबा ने मानो उनकी मनोदशा जानकर हँसकर कहा, "भाऊ! मन की सम्भ्रमित अवस्था अच्छी नहीं होती। अब साक्षात् वर्धा तुम्हारे आगे है। सभी प्रश्न स्वयं लक्ष्मीनारायण से ही कहना।"

वर्धा आ गया था। यहीं से वे दक्षिण की ओर मुड़नेवाले थे। उनके आने का समाचार सुनकर जमनालाल और जानकी देवी बजाज लक्ष्मीनारायण मन्दिर की सीढ़ियों पर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

जमनालाल ने कहा, "आइए विनोबाजी! आज आपका हार्दिक स्वागत करते हुए तथा आगे की पदयात्रा के लिए शुभेच्छा देते हुए मैं आनन्दित हूँ। उदित होते सूर्य का सम्पूर्ण तेज धारण कर आप आये हैं। अब सफलता निश्चित है।"

तत्काल जानकी देवी बोलीं, "विनोबाजी! सर्वोदय का विचार लोगों तक पहुँचाने के लिए आपकी यह यात्रा अनिवार्य थी।"

विनोबा ने कहा, "जानकी देवी! सच तो यह है कि इतनी जल्दी मैं आश्रम से बाहर नहीं जाना चाहता था। मुक्ति के प्रयोगों को आचरण में लाकर लोगों के मन में सर्वोदय का संचार होने पर ही मैं जाना चाहता था। उसी प्रसंग में अनेक प्रयोग भी मैंने प्रारम्भ कर दिये थे। मेरी इच्छा थी कि रचनात्मक कार्य पूर्ण हो जाते तब..."

तभी जमनालाल बोले, "रचनात्मक कार्य करने के लिए ही आपको आमन्त्रित किया गया है विनोबाजी!"

विनोबा ने कहा, "यह सच है जमनालालजी! शिवरामपल्ली के सर्वोदय सम्मेलन का आमन्त्रण मुझको मिला है। स्वभावत: कोई भी कार्य सामने आने पर मैं उसको भगवान की इच्छा समझकर स्वीकार कर लेता हूँ। इसीलिए मैं चल पड़ा हूँ। आगे ईश्वरेच्छा!"

जानकी देवी ने कहा, "ईश्वर पर आपका अटल विश्वास है!"

विनोबा बोले, "अब आप ही बताइए जानकी देवी! लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की सीढ़ियों पर खड़ा होने पर मैं ईश्वर को ही मानूँगा न? यदि आपके घर की सीढ़ियों पर होता तो निश्चय ही आपको मानता। सच है न? और वैसे तो मैं सबको ही नमस्कार

करता हूँ।"

विनोबा सीढ़ियों से नीचे उतरे और वहाँ एकत्र सबको नमस्कार किया। सबके मुखों पर प्रसन्नता छा गयी।

दोपहर का भोजन हास्य-विनोद में सम्पन्न हो गया। प्रतिक्षण अपनी प्रसन्नता से प्रसन्न करनेवाले विनोबा के विनोदी संवादों से जानकी देवी परिचित थीं। वे बोलीं, "गंगा का अलकनन्दा का रूप कितना एकाकी है, तदनन्तर मन्दाकिनी, भागीरथी, गंगा हो जाने पर वह अनेक बार अनेक प्रवाहों से पूर्ण होती है। देवप्रयाग में तो तीन प्रवाहों का संगम है। विनोबाजी! आप अकेले निकले थे परन्तु यहाँ तक आते-आते सचमुच ही यात्रा हो गयी है। प्रत्येक गाँव में अनेक प्रवाह आकर आपसे मिलेंगे। यात्रा समृद्ध होगी। हम दोनों इस यात्रा में नहीं हैं—यही दु:ख है।"

विनोबा हँस पड़े।

जानकी देवी बोलीं, "विनोबाजी! आप जहाँ भी जाएँगे, रहेंगे, वहीं आप तन-मन से कार्य करेंगे। आप जहाँ कहीं भी रहें, सानन्द रहें, परन्तु आप जल्दी आइएगा। आपके बिना आश्रम में चेतना नहीं आएगी।"

"जानकी देवी! किसी के आने-जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। चेतना तो अपने मन का भाव है।" अत्यन्त सहज भाव से विनोबा ने कहा, "अब यदि मेरे बिना आश्रम सचमुच ही रिक्त हो जाएगा तो उस रिक्तता को भरने के लिए मुझको जल्दी आना नहीं पड़ेगा।"

दूसरे दिन प्रात:काल विनोबा चल दिये। अत्यन्त आनन्दित होकर वे गाने लगे, "धर्म जगे जागृति का..." यात्रा उनके पीछे-पीछे चल रही थी। वर्धा की सीमा तक जमनालाल और जानकी देवी चलते आये थे।

"विनोबाजी! जल्दी आइएगा। देवमन्दिर में देवमूर्ति होती है तभी अच्छा लगता है।" जानकी देवी ने पुन: कहा।

"इस प्रकार किसी को देवत्व नहीं देना चाहिए। पत्थर का देवता बनाने के लिए भी शिल्पकार को साधना करनी पड़ती है तथा मनुष्य को देवत्व प्राप्त हो इसके लिए जीवनभर सद्गुणों के विकास की साधना करनी पड़ती है। जानकीदेवी! विनोबा रिक्त पात्र है।"

विनोबा ने यह कहा तो जानकी देवी बोलीं, "परन्तु उस पात्र में पानी है और वह दूसरों का जीवन है।"

विनोबा बोले, "प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन को गढ़ता है—यह नहीं कह सकते हैं। परन्तु यदि सत्प्रेरणा से जीवन को गढ़ने की प्रेरणा उत्पन्न हो जाय, तब भी अच्छी भावनाओं का उदय हो गया, यही कहना पड़ेगा।"

विनोबा ने दोनों हाथ ऊपर कर नमस्कार किया।

जानकी देवी बोलीं, "विनोबाजी, आप योगी हैं। कहीं भी रमने लगेंगे...कृपया जल्दी आइएगा।"

विनोबा केवल हँसे। जानकी देवी के मन में आया, सचमुच यह पुरुष कभी कहीं आसक्त नहीं होगा। इनकी आसक्ति सर्वोदय के पास आकर ठहर जाती है। यह पुरुष कीचड़ में रहकर कमल बनना जानता है। प्रवृत्ति में निवृत्ति से जीना जानता है। श्रीकृष्ण ने गीता कही। असंख्य बार वह पढ़ी गयी है, परन्तु गीता को जीवन में कदाचित् ही कोई उतारता है। आप जो कहते हैं, वही ठीक है, गीता आपकी साँस है। आप कहीं भी रमेंगे, कहीं भी रह लेंगे। सुख-दुःखे समे कृत्वा...इस प्रकार आप रहेंगे। परन्तु हम लोभी मनुष्य हैं। सब 'यह चाहिए, वह चाहिए' कहनेवाले! ऐसे ही हम आपको भी चाहते हैं बाबा!

विनोबा चलने लगे थे। उनके पीछे लोग चल रहे थे। 'साक्षात् वल्कलधारी श्रीराम अत्यन्त आनन्द से वन-गमन को चल पड़े और कौसल्या व्याकुल हो गयीं'— यह दृश्य मदालसा देवी देख रही थीं। विनोबा ने अब गाना प्रारम्भ कर दिया था।

12

"बाबा! हम साधारण मनुष्य हैं। हमको घर की प्रत्येक बात से मोह है। हमको अपना भी भय लगता है।"

जब एक वृद्ध पुरुष ने यह विनोबा से कहा तब उन्होंने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। उस वृद्ध पुरुष की आँखों में आँसू आ गये। उसने तत्क्षण विनोबा के हाथों को कसकर पकड़ लिया।

"बाबा! इस गाँव में कोई किसी का नहीं है। साथ-साथ रहने पर भी कोई पुकारे तो सहायता के लिए कोई नहीं आता है।"

"तुमको डर किससे लगता है?"

"इस गाँव में जमींदार के आदमी आते हैं। वे सारी फसल ले जाते हैं; मारपीट करते हैं। इस डर से हमारा गाँव घर में ही दबा रहता है।"

"जमीन की फसल चली जाने पर तो फिर तुमको कोई डर नहीं रहता होगा!"

"नहीं बाबा! हमको आदत ही हो गयी है ऐसी!"

एक अत्यन्त साधारण छोटे-से गाँव में विनोबा पहुँचे थे। सेवाग्राम से पवनार

और पवनार से तीन सौ मील दूर स्थित शिवरामपल्ली तक की यह यात्रा थी। अनेक छोटे-छोटे गाँव प्रतिदिन मिलते थे। विनोबा प्रात: तीन बजे उठकर चलने लगते। प्रात: नौ और दस बजे के बीच वे गाँव में ठहरते। गाँव के लोगों से मिलते। उनकी समस्याओं को जानते। उनको धैर्य बँधाते। वह वृद्ध अभी तक बेहद घबड़ाया हुआ था। विनोबा ने पुनः पूछा, "किसलिए घबड़ा रहे हो तुम लोग?"

एक अन्य वृद्ध पुरुष व्याकुल होकर बोला, "क्या बताऊँ बाबा? डर मन में समा गया है। रात-बिरात भी डर लगता है। रात में नींद नहीं आती।"

वह वृद्ध पचास-साठ वर्ष का था। चेहरा काला पड़ गया था। हाथ खुरदुरे। सिर पर बाल नहीं। मुख पर उदासीनता। विनोबा को लगा, पिछला गाँव प्रसन्न था। यह गाँव उदास है। यहाँ घर की खिड़कियाँ और दरवाजे बन्द थे। स्त्रियों की एक झलक प्रात:काल पानी लाते समय मिली थी, बस! आँगन में शौच-स्नानगृह नहीं थे। बच्चे आँगन में या रास्ते में खेलते दिखाई नहीं दे रहे थे। सर्वत्र शान्ति छायी थी। लगभग एक हजार लोगों की बस्ती थी वह गाँव! विनोबा प्रात:काल से ही चल रहे थे, परन्तु गाँव दिखाई नहीं दे रहा था। लहलहाती फसल के खेत चारों ओर थे। परन्तु मनुष्य नहीं थे। मनुष्यों की बस्ती भी पास नहीं थी। और बड़ी देर बाद यह गाँव दिखाई दिया था।

विनोबा के साथ चार-पाँच स्त्रियाँ, कुछ पुरुष और बैलगाड़ी में सामान देखकर—विशेष रूप से स्त्रियों को देखकर खिड़की थोड़ी-सी खोलकर बाहर देखते हुए लोग दिखाई दिये। तब विनोबा चकित हो गये थे। एक घर के सामने खड़े होकर उन्होंने आवाज दी परन्तु उत्तर में किसी ने खिड़की खोलकर पुन: बन्द कर ली।

विनोबा बोले, "यह गाँव भय से ग्रस्त है!"

फिर उन्होंने आगे जाकर दरवाजे को थपथपाया तथा तेलुगु भाषा में दरवाजा खोलने की प्रार्थना की। उसी समय उस वृद्ध मानुष ने पहले दरवाजे को थोड़ा-सा खोला और फिर विनोबा को देखते ही उसने दरवाजा खोल दिया। महादेवी दीदी, मदालसा देवी, दत्तोबा दास्ताने तथा भाऊ पानसे अन्दर आये।

वृद्ध ने विनोबा से कहा, "बाबा! हम आपको जानते नहीं हैं—परन्तु आप बहुत बड़े हैं। हमको ऐसा लग रहा है जैसे हमारे घर साक्षात् देवता आ गये हों?"

उस घर में पन्द्रह-बीस लोग थे। वे सब सटकर खड़े हुए दरवाजे से विनोबा को देख रहे थे। सब चटाइयों पर बैठ गये थे। विनोबा उन लोगों के मुख पर आश्चर्य को देख रहे थे।

"कहाँ से आये हैं बाबा?" उनमें से एक पुरुष ने पूछा।

"सेवाग्राम से!" विनोबा ने जानबूझकर कहा।

उस वृद्ध पुरुष की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी, "बाबा! सच कहता हूँ, आप मुझको गाँधीबाबा ही लगे, इसीलिए मैंने दरवाजा खोला। हमने उनको कागज के एक

टुकड़े पर देखा था। उनका फोटो मैंने सँभालकर रखा है। आइए, दिखाता हूँ।''

विनोबा आश्चर्य से उठे। वृद्ध पुरुष का वह घर—दस-बारह अन्धकारमय कोठरियों का भवन था। मिट्टी से लिपे हुए, नारियल के पेड़ों से सुशोभित, ढलती हुई दीवारें, जिन पर खपरैल पड़ी थी, ऐसे घर में महात्माजी का दर्शन होगा, यह विनोबा ने सोचा भी नहीं था।

विनोबा तीर-चार कोठरियाँ पार कर उस वृद्ध पुरुष के पीछे-पीछे गये। एक अँधेरी कोठरी में समई जल रही थी। बालाजी की पाषाण-प्रतिमा के पास अनेक छोटी पीतल की देवमूर्तियाँ थीं। विनोबा ने हाथ जोड़े और तेलुगु में पूछा, ''तुम्हारे घर में इतने देव हैं, फिर तुमको डर किसका लगता है?''

वृद्ध ने कहा, ''हम अपने दुर्बल मन से डरते हैं। आज आप गाँधीबाबा के आश्रम से यहाँ तक चलकर आये हैं। आपको डर नहीं लगा, परन्तु हमको हमारे ही गाँव में डर लगता है।''

विनोबा ने पूछा, ''परन्तु गाँव में डर कैसा है? रात का अँधेरा समाप्त होने पर दिन में कोई डरता नहीं है। और फिर गाँव के लोग तुम्हारे ही हैं न?''

वृद्ध ने कहा, ''सच कहते हो बाबा! इस गाँव में सारी जमीन जमींदार की है। हम पुरुष उसमें काम करते हैं, अपना खून-पसीना एक करते हैं परन्तु दो बार का भोजन कठिनाई से मिलता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य घर में साग-सब्जी उगाता है। परन्तु जमींदार के क्रूर आदमी बार-बार गाँव में आकर सब कुछ नष्ट कर देते हैं। इसलिए गाँव को डर लगता है।''

विनोबा हँस पड़े।

''क्यों हँसे बाबा?''

''जमींदार के पास कितने आदमी हैं?''

''कोई जानकारी नहीं है। जमींदार बड़े गाँव में रहता है। उसके लोग यहाँ रहते हैं।''

''ऐसे कितने लोग हैं? पचास-सौ-दो सौ?''

''कितने हैं—जानकारी नहीं है।''

''जानकारी नहीं है न? तो फिर मैं बताता हूँ। वे लोग होंगे लगभग पचास-सौ! गाँव के तुम लोगों की संख्या के सामने कुछ नहीं हैं। फिर उनसे क्यों डरते हो?''

''उनसे डरना पड़ता है बाबा! उन्हीं के भरोसे पर हम पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवन बिता रहे हैं। वे ब्राह्मण हैं हम नीची जाति के हैं। उनकी सेवा करना हमारा धर्म है।''

विनोबा प्रश्न कर रहे थे। वह उत्तर दे रहा था। सन्ध्या समय गाँव की चौपाल पर गाँव का मुखिया आया। उसके आमन्त्रण से सारा गाँव चौपाल पर एकत्र हो गया। विनोबा पेड़ के सहारे बैठे थे। सबके आने पर वे पालथी मारकर बैठ गये।

विनोबा कहने लगे, "यहाँ कैसी भी न्याय व्यवस्था नहीं है। मैं गाँव के मुखियाजी के पास गया तथा मैंने यह सभा आमन्त्रित की है। मेरे भाइयो! मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, क्यों आया हूँ—इन प्रश्नों के उत्तर मैं एक वाक्य में दे सकता हूँ। मैं विनोबा हूँ। गाँधी बाबा का शिष्य। मैं सेवाग्राम से शिवरामपल्ली को जा रहा हूँ। जाते-जाते मार्ग में अनेक गाँव मिले, वैसे ही आपका गाँव भी दिखाई पड़ा। हम गाँव में प्रविष्ट हुए। गाँव में शान्ति है। लोग घरों में रहते हैं या नहीं, यह सन्देह होने लगा। इसलिए दो-चार घरों के दरवाजे खटखटाये। परन्तु दरवाजे खुले ही नहीं। फिर सामने बैठे हुए उस अण्णा ने दरवाजा खोला। और तब मुझको आश्चर्य हुआ कि इतने मनुष्य चोरी-चोरी छिपकर कैसे रह सकते हैं! मेरे भाइयो! यहाँ इस स्थान पर एक भी स्त्री नहीं आयी है, ऐसा यह पहला ही गाँव मुझको दिखाई दिया है। बाबा आया है। उसको बोलना ही चाहिए। परन्तु क्या बोलूँ मैं? अनेक जन्मों के बाद मनुष्य का जन्म मिलता है। यह सत्य है न?"

"हाँ!" किसी ने कहा।

"पिछला जन्म कौन-सा था, यह तुमको मालूम नहीं है और अगला जन्म कौन-सा होगा, यह भी तुम नहीं जानते हो?"

"नहीं जानते!" वृद्ध पुरुष ने कहा।

"परन्तु तुम यह तो जानते हो कि जन्म के बाद मृत्यु आती है। मृत्यु निश्चय ही आएगी। सत्य है न?"

"सत्य है बाबा! सत्य है।"

"तो फिर जो अटल है उससे डरने से कैसे काम चलेगा? उसी प्रकार जमींदार के लोग आकर तुमको कष्ट देते हैं, इसलिए तुम लोग मृत्यु से भी अधिक उन लोगों से डरते हो! तुम सब मिलकर एक बार जमींदार से इन सब बातों को कहो। तुम लोगों की संख्या बहुत है। तुम्हारे कष्टों की जानकारी जमींदार को है। यदि तुम कहोगे कि हम कल से खेती नहीं करेंगे तो बड़े गाँव में रहनेवाला जमींदार खेती नहीं कर सकता है। तुम सब जाकर विनम्रता से जमींदार से ये सब बातें कहो, 'हम श्रम करेंगे, परन्तु हम पर अत्याचार मत कीजिए। हमको सुख से जीने दीजिए। निर्भय होकर रहने दीजिए। प्रत्येक गाँव भयमुक्त होकर सुख से रहेगा तभी वास्तविक निर्भय समाज का निर्माण होगा।' तुमको एक कहानी सुनाता हूँ..."

विनोबा ने भगीरथ से पूर्व की सात पीढ़ियों का इतिहास बताया और कहा, "मेरे भाइयो! यह बाबा तुमसे इतना ही कहता है कि भगीरथ से पूर्व की सात पीढ़ियाँ हिमालय की गंगा पृथ्वी पर लाने के लिए मर मिटीं। यहाँ तुमको सुख की, आनन्द की मुक्त गंगा लानी है। इस पीढ़ी को प्रतिकार करने में कष्ट होगा परन्तु तुम्हारी आगामी सन्तान रास्तों पर आनन्द से नाचेगी। यहाँ विद्यालय खुलेगा। बच्चे पढ़ेंगे-

लिखेंगे। यहाँ का अँधेरा दूर होगा। यह धरती तुम्हारी माता है। यह माता भेदभाव नहीं करती है। उसकी इच्छा होती है कि सबको समान भाग मिले औरतुम लोग उसकी इच्छा के विरुद्ध बँटवारा करते हो। तुम श्रम करते हो और वे सब कुछ ले जाते हैं। वे अत्याचार करते हैं और स्वतन्त्र घूमते हैं तथा तुम लोग अत्याचार सहन करते हो और स्वयं को घर में बन्द कर लेते हैं। यदि तुम सब ऐसे ही घुटकर मरना चाहते हो तो फिर जमींदार से कह दो। अपने कथन में बल आने दो। हो सकता है कि जमींदार सज्जन गृहस्थ हो। उसको गाँव में होनेवाली घटनाओं की जानकारी न हो। उसको जानकारी करने दो। नहीं तो इसी प्रकार आगे की पीढ़ियाँ अँधेरे में घुटती रहेंगी। इस गाँव में वृद्ध लोग हैं। वे पहले यह काम करें।''

''वृद्ध लोगों को घर सँभालने दो। हम युवक जमींदार के पास जाकर अपनी बात कहते हैं। हम कष्ट सहेंगे, परन्तु अत्याचार नहीं।''

''नहीं लड़को! हमारी अवस्था हो चुकी है। अब हम जीवित रहे तो क्या और जीवित न रहे तो क्या, एक ही बात है। पितामह-प्रपितामह तथा उनके भी पितामह सभी जमींदार को ही देव मानते आये और अत्याचार करनेवाले को राक्षस समझते आये। परन्तु राक्षसों को पार करके देवों तक पहुँचने का कष्ट भी हमने नहीं किया। क्यों नहीं किया, भगवान जानें!''

''कष्ट क्यों नहीं किया, यह मैं बताता हूँ। भय के कारण, केवल भय के कारण। भय तुम्हारे मन में पैठ गया है, गहराई तक! इसीलिए ऐसा हुआ है।''

''सच कहते हो बाबा! हम युवक हैं। हमारी शक्ति का आपने हमको स्मरण करा दिया है। हमारे लिए आप देवता हैं।''

रात के अँधेरे में आज गाँव जग रहा था। न जाने कितने वर्षों के बाद आज मन में चाँदनी खिल रही थी। वृद्ध और युवक—सबके मन जाग्रत-उत्सुक और अधीर हो उठे थे। विनोबा वृक्ष के नीचे बने चबूतरे से शान्तिपूर्वक उतरे। आज नित्य की भाँति सन्ध्याकाल की प्रार्थना के लिए बहुत विलम्ब हो गया था। और फिर यह मण्डली अब प्रार्थना बोलने की स्थिति में नहीं थी, यह विनोबा ताड़ गये।

महादेवी दीदी, मदालसा देवी तथा अन्य लोग उस वृद्ध पुरुष के पास थे। विनोबा, भाऊ पानसे तथा दत्तोबा दास्ताने घर आये। सबसे अधिक वृद्ध स्त्री उनके सामने आकर खड़ी हो गयी।

''माता बैठो!'' विनोबा ने तेलुगु में कहा।

उस स्त्री की आँखें सजल हो उठीं। बहुओं ने भोजन परोसा। वह वृद्ध स्त्री बार-बार अपनी आँखें पोंछ रही थी। विनोबा बोले, ''माता! दुबारा मिलना शायद असम्भव ही है। इस बाबा को याद रखोगी न?''

यह सुनते ही वह वृद्ध स्त्री गद्गद हो उठी। कोई कुछ नहीं कह रहा था। शब्द

के बिना सम्भाषण प्रारम्भ हो गया था।

सेवाग्राम से निकले हुए अब बारह दिन हो गये थे। प्रतिदिन नये गाँव में नये अनुभव प्राप्त करते हुए विनोबा इस गाँव में आ पहुँचे थे। किसी ने सेवाग्राम में कहा था, ''विनोबाजी! आप पदयात्रा करते हुए एक महीने बाद शिवरामपल्ली में पहुँचेंगे। आपके कांचनमुक्ति के प्रयोग के अन्तर्गत रेलयात्रा नहीं आती है क्या?''

विनोबा ने हँसकर कहा था, ''जीवन का समय बचाने के लिए देश में विमान भी तो हैं। और कांचनमुक्ति का अर्थ यह नहीं है कि रेलयात्रा मत करो! उसका अर्थ है—स्वयं के लिए आवश्यक स्वयं अर्जित करना। तथा अधिक लोभ न करते हुए उस लोभ से संयमपूर्वक स्वयं को दूर रखा जाय—यह भी मुझको अभिप्रेत है। मैं पदयात्रा केवल इसलिए कर रहा हूँ कि इसी निमित्त से मैं भारत के अन्तस् को देख सकूँगा। दो बातें मैं लोगों से सीखूँगा और सम्भव हुआ तो दो बातें मैं उनको सिखाऊँगा।''

''कितना बोलना पड़ेगा आपको?'' अन्य किसी ने प्रश्न किया था।

विनोबा ने कहा था, ''बोलने के अतिरिक्त बाबा को और आता ही क्या है?''

अब विनोबा विचार कर रहे थे, परन्तु यहाँ आकर ध्यान में आया कि अधिक बोलना ही नहीं पड़ा और काम हो गया था। चेतना की एक चिनगारी जल उठी थी। आज नहीं तो कल वह प्रज्वलित होगी ही। विनोबा को अत्यधिक शान्ति मिली।

भोजन हो जाने पर उस वृद्ध स्त्री ने विनोबा के हाथ धुलाये। वैसे विनोबा को यह सब अच्छा न लगता परन्तु उस वृद्धा के लिए उन्होंने यह सब कर लिया और हाथ धुल जाने पर उस स्त्री ने उनके हाथ अपने आँचल से पोंछ दिये। विनोबा को पहले संकोच हुआ परन्तु फिर वे गद्‌गद हो उठे। उन्होंने कहा, ''माता!''

और दूसरे ही क्षण वे अपनी भावनाओं को न रोक सके।

उनको अपनी माता की याद आ गयी। सब काम कैसे प्रेम से करती थी! किसी पर क्रोध नहीं...किसी से द्वेष नहीं। भोजन पकाते समय वह भजन गाती। भोजन करने को बैठने पर वह पूछती, 'और क्या चाहिए? खाना कैसा लगा?' 'और खाओ'—कहकर आग्रह करती। वह कहती, 'विन्या! फूँक मारने पर उड़ जाएगा तू! ऐसे कैसे काम चलेगा बाबा! तुझे क्या चारदीवारी में ही जीवनभर रहना है? खूब खाओ और हृष्ट-पुष्ट बनो!' ऐसे वाक्य विनोबा माता से प्रतिदिन ही सुनते थे। जो पदार्थ अच्छे लगते, उनको वे खूब खाते। शेष कटोरी के नीचे छिपा देते। माता हँसकर कहती, 'विन्या! इस तरह ढकने से सत्य छिपता नहीं है। और फिर, दूसरा धोखा खा सकता है परन्तु स्वयं को धोखा नहीं दिया जा सकता!' विनोबा बात सुनकर हाथ धोने चले जाते। जब आते तब माता अपना आँचल आगे कर देती। विनोबा उसके आँचल से हाथ पोंछते हुए कहते, 'माँ! कल थाली में कुछ मत डालना!' वह प्रसन्न होकर हँसती।

इस क्षण विनोबा को अपनी माता का स्मरण हो आया! उस अपरिचित वृद्धा

स्त्री ने जो स्नेह-स्पर्श किया उसको मन में संचित करते हुए विनोबा वहाँ से उठे और आकर चटाई पर लेट गये। उनको याद आया कि धुलिया के कारागार में रहते समय साने गुरुजी प्रतिदिन रात में माता की कहानियाँ सुनाते थे। विनोबा ने जब वे कहानियाँ सुनीं तब उनको लगा था कि श्याम की माता[1] अर्थात् स्वयं साने गुरुजी की माता कैसी थी!

वह माता सात्त्विक थी, स्नेहमयी थी, अपनी माता जैसी। ऐसा उनको उस समय भी लगा था और आज भी लगा। एक प्रसंग विनोबा की आँखों के सामने खड़ा हो गया। श्याम पत्थर की चौकी पर बैठकर स्नान कर रहा है। स्नान कर लेने पर वह माता से कहता है, 'माँ! अपना आँचल इस चौकी पर फैला दो जिससे मेरे पैर गन्दे न हों!' माता ने कहा, 'श्याम! पैर गन्दे हो जाएँगे इसलिए तू मुझको आँचल बिछाने को कह रहा है। पैर गन्दे हों, इसलिए तू इतनी चिन्ता कर रहा है तो तेरा मन मैला न हो, इसके लिए तुझको कितनी चिन्ता करनी पड़ेगी?' उस समय माता के कहे हुए वाक्य ने साने गुरुजी के भावी जीवन में कितना गम्भीर अर्थ भर दिया होगा! मेरी माता भी ऐसी ही थी। उसके छोटे-से वाक्य में गम्भीर अर्थ भरा हुआ रहता था। माता का विचार करते-करते उनको भारतमाता की पुकार सुनाई दी। कल तक उसकी स्वतन्त्रता के लिए अनेक अनाम वीरों ने आत्मसमर्पण किया था। उसको स्वतन्त्र किया था। परन्तु वह स्वतन्त्र होने पर भी मन से स्वतन्त्र नहीं हुई थी। अपनी ही सन्तान में जो असमानता थी वह उसको कसकती होगी और भारी मन से वह कहती होगी, 'बाबा रे! जिसको कम मिलता है, जिनको अत्यधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं 'उन बच्चों की अश्रुपूर्ण आँखें मैं अपने आँचल से पोंछती हूँ, परन्तु उनके लिए मैं कुछ कर नहीं पाती हूँ।' विनोबा की आँखों से अश्रुधारा बह चली!

आज सभी स्मृतियाँ माता की थीं। 'मुझको कठोर आचरण करनेवाला कठोरव्रती के रूप में जाना जाता है—वैसा ही मैं दिखाई भी देता हूँ। परन्तु मेरे मन में माता बसी हुई है। वह मेरे मन में व्याप्त है। उसके अमिट संस्कार रक्त में घुलमिल गये हैं। स्वयं अनेक कष्ट सहकर भी अपने पुत्रों पर सुख की छाया करनेवाली मेरी माता साधारणों में असाधारण थी। वह शिक्षित नहीं थी, परन्तु वह जो कुछ कहती थी उसके एक-एक वाक्य का गहन अर्थ अब जीवन के मध्य में ज्ञात होता है!'

विचार करते-करते ध्यान में आया कि उनको अनेक गाँव ऐसे मिले थे जिनकी कोई पहचान नहीं थी। सेवाग्राम से पवनार और पवनार से वर्धा तथा वर्धा से तीन सौ मील दूर स्थित शिवरामपल्ली तक पहुँचने में तीस दिन लगेंगे तथा तीस गाँव उनको मिलेंगे। इसी प्रसंग में अनेक छोटे गाँव उनको मिलनेवाले थे। उनमें आज का गाँव याद रहेगा।

---

1. साने गुरुजी मराठी के प्रसिद्ध लेखक हैं। श्यामची आई (श्याम की माता) उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है।

स्मृति-वन में भटकते हुए उनको नींद आ गयी। सदैव की भाँति वे प्रात: तीन बजे उठे और उसी समय अन्य लोग उठकर बाहर आये। वृद्ध पुरुष के द्वार के सामने गाँव के समस्त स्त्री-पुरुष एकत्र थे।

''इतनी जल्दी उठ गये?'' विनोबा ने आश्चर्य से पूछा।

''बाबा! आपने हमको सोने ही कहाँ दिया!''

''क्यों?''

''हम सभी लोग देर रात तक जगे थे। फिर घर जाकर आपके विचार सुनाये। तब स्त्रियाँ बोलीं, 'बाबा के दर्शन करने हैं!' हम स्नान करके चल दिये।''

विनोबा शान्त रहे। मन भर आया था।

उनमें से एक व्यक्ति बोला, ''बाबा! हम जमींदार के पास जाएँगे। जमींदार हमारे साथ कैसा व्यवहार करेगा या और अधिक अत्याचार करेगा, यह हम नहीं जानते। परन्तु यह भूमि हमारी माता है, यह हम जान गये हैं। माता का विचार कर हम इतने प्रसन्न हैं कि इस आनन्द से नाचने-गाने को मन करने लगा है। बाबा! आप जानेवाले हैं। आप साधु-संन्यासी हैं। आपसे कितना ही आग्रह किया जाए फिर भी आप एक स्थान पर नहीं रहेंगे। और आपको जाना ही चाहिए। हम जैसे सोये हुए गाँवों को जगाकर नया विचार देने के लिए! परन्तु बाबा! हम आपको भूलेंगे कभी नहीं!''

विनोबा की आँखें आर्द्र हो गयीं। उन्होंने दोनों हाथ उठाकर गाँववासियों को नमस्कार किया। फिर वे चलने लगे। नया गाँव—नये लोग—नया परिसर! उनको ऐसा लगता कि जैसे विवेकानन्द को भारत के सारे मार्ग पूर्व-परिचित लगते थे वैसे ही उनको भी लग रहे हों! इसलिए कि समस्त भूमि अपनी ही तो लगती है।

वे चलते जा रहे थे। चलते-चलते अनेक विचार उनके मन में आ रहे थे। उन्होंने श्रीराम नाम का जप प्रारम्भ कर दिया और अपने विचार उन्होंने श्रीराम नाम के जप में विलीन कर दिये।

चलते-चलते जब नये गाँव में प्रवेश किया तब वातावरण में ठण्डक बढ़ गयी थी। तीन-चार दिन वर्षा हो गयी थी। कल रात तक पानी पड़ा था। और दिन की समय-सारणी ही बदल डाली थी! वातावरण अत्यन्त प्रसन्न लग रहा था। दूर तक फैली हुई कृषि भूमि, उसमें लहलहाती हुई फसल तथा खेतों की मेंड़ों पर खड़े पेड़! मानो अपने बच्चे की रक्षा करने के लिए खड़े थे। उदित होते सूर्य के कारण मनोरम वातावरण!

चलते-चलते विनोबा बोले, ''पहले ऋषि-मुनि जंगल में क्यों रहते थे, इसका कारण मैं जान गया हूँ। वृक्ष-लताएँ हमारे पड़ोसी हैं, यह बात तुकारामजी कहा करते थे। ऐसे चिन्तामुक्त रमणीय वातावरण में वृक्ष-लताओं से नाता जोड़कर समाज के कल्याण के लिए अहर्निश प्रयत्न करना, निर्विघ्न साधना करना तथा आत्मबल की

प्राप्ति के लिए ईश्वर-चिन्तन करना ऋषि-मुनियों का कार्य था। घने अरण्य में रहकर लोक-कल्याण के लिए तत्पर रहने के उनके विचार को आज के वैज्ञानिक अपने कक्ष में एकाग्रता से काम करके कर रहे हैं।''

''शायद इसीलिए ऋषि-मुनि दीर्घजीवी होते थे!''

''सम्भव है। मनुष्य प्रकृति की ओर तथा प्राकृतिक पदार्थों की ओर उन्मुख हो जाए तो वह दीर्घायु और उत्साही बन सकता है। किसी समय हिमालय पर जाकर साधु-संन्यासी होने का विचार मैंने किया था।''

''बाबा! यदि आप चले गये होते तो आज ऐसी पदयात्रा किसने निकाली होती? फिर आपका साथ हमको कैसे मिला होता?''

''यह सत्य है। किसको किसका साथ कितना मिलता है, यह निश्चित करनेवाले हम कौन होते हैं? और निश्चित करके मनुष्य बदलना इतना सरल तो नहीं है! और फिर बाबा ऐसे-वैसे नहीं हैं। ईश्वर ने उनको ठोंक-बजाकर भेजा है।''

''किसलिए?''

''किसलिए? अरे तुम लोगों को ठीक करने के लिए। तुम कहते होगे, बाबा पर पदयात्रा का भूत सवार है। यह गलत है। लोक-कल्याण के नये-नये मार्ग स्वीकार करनेवाला महात्माजी जैसा दूसरा कोई नहीं है। ईश्वर ने मुझसे कहा है...''

''बाबा! आप ईश्वर को मानते हैं?''

''आपको क्या लगता है?''

''सच कहा जाय तो...''

''कहिए...दत्तोबा कहिए न! महादेवी! आप बोलिए। बाबा को बाबा का दर्शन कराइए। बाबा स्वयं को देवदूत नहीं समझता है।''

''बाबा! हम आपको क्या समझते हैं, यह हमको ही ज्ञात नहीं है। कह नहीं सकते, परन्तु आप वैराग्य का धधकता अंगार हैं। अनुशासन के कठोर अनुपालक हैं तथा ऋषियों का जीवन समाज में जीनेवाले अहिंसा के पुजारी हैं आप! इसके अतिरिक्त सरस्वती के भूषण हैं। आप ऐसे अगम्य हैं कि आपको समझने में बहुधा भूल हो जाती है।''

दत्तोबा वही कह रहे थे जो सत्य था, जो उन्होंने अनुभव किया था। गौतम की पीठ पर हाथ रखकर विनोबा ने कहा, ''कहो गौतम! बाबा ऐसा ही है क्या?''

गौतम बोला, ''बाबा! मैं तो इतना जानता नहीं हूँ। मैं तो गुरुजनों के प्रति अपार श्रद्धा रखता हूँ। बचपन से ही आश्रम में पलते हुए मेरे माता-पिता कहा करते थे, 'ये तेरे धर्मपिता हैं।' उन्होंने यह कभी न कहा होता तब भी मैंने यही माना होता। जब कभी मैं हनुमानस्तोत्र पढ़ता हूँ तब उसकी 'बढ़ते-बढ़ते भेद गये शून्य मण्डल' इस पंक्ति में मुझको आपकी प्रतिमा दिखाई देती है।''

"बाबा को बड़ा मत करो। यह बाबा को अच्छा नहीं लगता है। कारण यह है कि विश्व में असंख्य लोग अपार साधनाएँ कर रहे हैं। ऐसे में महात्माजी के आशीर्वाद की छाया में यदि बाबा बड़ा लग रहा है तो इसका अर्थ यह है कि आप बाबा को चने के पेड़ पर चढ़ाकर गिराना चाहते हैं।"

विनोबा कहते जा रहे थे। प्रतिदिन की भाँति। परन्तु कभी-कभी विनोबा उनके साथ चलते-चलते मन से दूर हो जाते थे। ऐसा लगता जैसे वे अगम्य और अज्ञात प्रदेश की ओर चले गये हों! प्रतिदिन प्रत्यूष में तीन बजे निकलते समय आठ-दस लोग साथ होते थे। फिर आगे गाँव के लोग कुतूहलवश उनके साथ चलने लगते। आज भी ऐसा ही हुआ था। वार्तालाप विनोबा और दत्तोबा दास्ताने के बीच प्रारम्भ हुआ था। परन्तु गाँव के कुछ लोग उनके साथ चल रहे थे। कोई-कोई टूटी-फूटी हिन्दी में पूछ बैठता, "आप कहाँ से आये हैं? क्यों आये हैं? पदयात्रा क्यों कर रहे हैं? इससे क्या फल मिलेगा?" विनोबा कभी परिहास में—कभी मन:पूर्वक—कभी चिन्तित होकर तो कभी प्रेमपूर्वक उत्तर देते थे। आज भी साथ चलनेवाले एक युवक ने पूछा—

"बाबा! आप ईश्वर को मानते हैं क्या?"

"क्यों भई! ईश्वर के सम्बन्ध में तुमको सन्देह है?"

"नहीं। वैसा कुछ नहीं है। यह प्रश्न आपके लिए है।"

"तुम अपने माता-पिता को मानते हो?"

"क्यों नहीं! उनके ही कारण तो मैं हूँ।"

"मान लो कि कुछ समय के बाद तुम्हारे माता-पिता का स्वर्गवास हो जाता है। फिर भी तुम उनको मानोगे?"

"कमाल करते हैं बाबा! मेरी मृत्यु तक ही क्यों, उसके बाद भी मेरे बच्चे कहेंगे कि मैं उनका बेटा था और वे मेरे माता-पिता थे।"

"पीढ़ियाँ बीत जाने पर भी..."

"मेरी हँसी क्यों करते हैं बाबा?"

"नहीं...हँसी क्यों करूँगा? थोड़ी देर पहले अपना परिचय देते हुए तुमने कहा था कि तुम हैदराबाद विश्वविद्यालय के स्नातक हो। सुशिक्षित युवक की मैं हँसी क्यों करूँगा?"

"पीढ़ियाँ बीत जाने पर भी वे ही मेरे माता-पिता रहेंगे और मैं उनके पुत्र के रूप में जाना जाऊँगा।"

"तो फिर तुमको ईश्वर के अस्तित्व में सन्देह क्यों है? पीढ़ियाँ बीतने पर, युग बीतने पर क्या हो गया! ईश्वर तो है न?"

"एक ईश्वर की हम सब इतनी सन्तान कैसे हैं?"

"तैंतीस कोटि देवताओं की इतनी सन्तानें तुम्हें कम लगती हैं?"

"परन्तु देवता की कल्पना ही अवैज्ञानिक लगती है। आज विज्ञान ने ईश्वर का अस्तित्व नकार दिया है और उसका अस्तित्व आज हो, इसका क्या प्रमाण है?"

"पागल युवक! पानी में वृक्ष की छाया देखकर हम कहते हैं या मानते हैं कि पानी के निकट कोई वृक्ष है। न देखते हुए भी वह अनुमान करते हैं। उसी प्रकार प्रकृति के विविधरंगी और विविधगुणी जो रूप आज दिखाई पड़ रहे हैं, उनका निर्माता कोई-न-कोई होगा ही न? उसको ईश्वर कहते हैं।"

वह युवक जोर से हँसा। उसके साथ आया उसका मित्र बोला, "प्रतिमा और प्रतीकों का विचार पुराना हो गया है। आज जेट विमान का युग तथा फास्ट फूड का समय है। मेरे पिता कुछ समय पहले ही विदेश से आये हैं। वहाँ की प्रगति के अनुपात में भारत अत्यन्त पिछड़ा हुआ लगता है। इसका कारण ईश्वर तथा अन्धश्रद्धा—ये ही हैं।"

मदालसा देवी और महादेवी दीदी को बेहद क्रोध आया परन्तु विनोबा शान्त थे। उनकी सब बातें सुन रहे थे। भारत के सम्बन्ध में अनुदात्त कथन सुनकर भी वे शान्त थे।

तब भाऊ पानसे बोले, "बाबा! आप कुछ नहीं कहेंगे क्या?"

"नालायक माता के नालायक पुत्र से बातें करने से क्या लाभ?"

यह सुनते ही वह युवक बोला, "खबरदार! जो मेरी माता के सम्बन्ध में कुछ कहा तो! और आपको मुझे नालायक कहने का कोई अधिकार नहीं है।"

"मैं सौ बार कहूँगा!"

"तो फिर ठहर, मैं अभी तेरा सर्वनाश करता हूँ।"

उस युवक ने एकदम विनोबा पर हाथ उठाया। विनोबा ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "तुम मुझे मार सकते हो! तुम्हारी न देखी हुई माता को मैंने नालायक कह दिया तो तुमको गुस्सा आ गया। तो फिर मेरी भारतमाता को नालायक कहने का अधिकार तुमको किसने दिया? डेढ़ सौ वर्षों से जो मेरी माता परतन्त्रता में थी उसको स्वतन्त्र कराने के लिए लाखों लोगों ने आत्माहुति दे दी। उस मेरी सुजलाम् सुफलाम् भूमि से तुम इसी क्षण चले जाओ। भारतमाता को गालियाँ देने का तथा उसका अपमान करने का अधिकार तुमको किसने दिया? कहो...किसने दिया?"

वह युवक निरुत्तर हो गया। सिर झुकाकर बोला, "गलती हो गयी...बहुत बड़ी गलती हो गयी!"

विनोबा ने स्नेह से कहा, "मुझको क्षमा करना युवक! मैं तुम्हारी माता को नालायक नहीं कहना चाहता था...वह मेरी माता के समान ही आदरणीया है...सचमुच आदरणीया है।"

उस युवक ने बीच रास्ते में विनोबा के पैर पकड़ लिये। उससे विनोबा ने कहा,

''ईश्वर आत्मबल है। वह निष्ठा और विश्वास है। जीवन का आधार है। जब मैंने शिवरामपल्ली को पैदल जाने का विचार किया तब लोगों ने अनेक प्रश्न किये। तब मैंने उनसे कहा, 'मेरा कार्यक्रम और उद्देश्य एक ही है और वह यह कि मैं स्वयं हरिनाम लेता जाऊँगा तथा दूसरों को नाम लेना सिखाऊँगा! कारण यह है कि रामनाम के अतिरिक्त अन्य कोई शक्ति मुझको दिखाई नहीं दी जिससे कार्य सिद्ध हो जाएँ! यह श्रीराम दशरथ के पुत्र हैं, इसलिए मैं इनको नहीं मानता हूँ। वह निर्बलों का राम है। सशक्त कवच है। लाखों-करोड़ों की युगों-युगों से उस पर श्रद्धा है। यह श्रद्धा ही भारतीय मन का धर्म है।' ''

''तो फिर विज्ञान जो कहता है?'' पहले युवक ने प्रश्न किया।

''ज्ञान और विज्ञान—धर्म के रूप हैं। ईश्वर के अस्तित्व से उसका सम्बन्ध है। आत्मा, चेतना, भावना—इन अदृश्य बातों का अस्तित्व हम मानते हैं न? उसी प्रकार ईश्वर आत्मा है, चेतना है तथा भावना है तथा इनके अतिरिक्त स्वधर्म है।'' विनोबा ने कहा।

उस युवक ने पूछा, ''अभी आपने ही कहा था कि ईश्वर और धर्म अलग हैं और अब आप कह रहे हैं कि स्वधर्म और ईश्वर एक ही हैं, यह कैसे?''

विनोबा कहने लगे, ''भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में भी स्वधर्म शब्द का प्रयोग किया है। उस समय तो कहीं के भी धर्म नहीं थे। आज यद्यपि अनेक धर्म भारत में हैं तथापि व्यक्ति अपने अर्थात् स्वधर्मानुसार ईश्वर को माने—यह बाह्य भाग हुआ। तुम्हारा मूल स्वभाव तुम्हारा धर्म है और हम भारतीयों का मूल स्वभाव ईश्वर को मानना है, ज्ञानपूर्वक साकार-निराकार रूप में मानना! इस मूल प्रवृत्ति के अनुसार देखें तो स्वधर्म और ईश्वर कुछ भिन्न नहीं हो सकते हैं!''

''बाबा! मैं आपके साथ चल सकता हूँ क्या? मैं आपसे बहुत कुछ पूछना चाहता हूँ। अभी मेरा समाधान नहीं हुआ है।'' पहले युवक ने कहा।

दूसरा युवक बोला, ''मैं तो शिवरामपल्ली का ही हूँ। मैं आपके साथ चलूँ तो आपत्ति नहीं होगी न? आपने मुझको क्षमा कर दिया न?''

विनोबा ने उसके सुदृढ़ कन्धे पर हाथ रखकर हँसकर कहा, ''युवक मित्रो! घुटने तक धोती पहने तथा गले में अँगोछा लपेटे इस बाबा के साथ चलने में तुमको लज्जा तो नहीं लगेगी?''

वे दोनों हँसे, ''हम जेट विमान में भी नहीं बैठेंगे और पैदल चलेंगे। बाबा! हम आपकी शरण में आये हैं।''

गाँव पास आ गया था। सबके पैर जल्दी-जल्दी पड़ रहे थे।

''बाबा! यहाँ से हैदराबाद पचास-साठ मील होगा। तीन दिन का रास्ता है।''

''ज्यादा दिन लगेंगे। प्रातः तीन से नौ-दस बजे तक दस-बारह मील चल पाते

हैं। उस हिसाब से ही चल रहे हैं।"

कुछ मील चलकर वह दूसरा युवक थक गया था। गाँव के पास वह जैसे ही रुका, वैसे ही विनोबा ने उसका हाथ पकड़ लिया और वे गाने लगे :

"श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥"

विनोबा बिल्कुल नहीं थके थे। उनकी मधुर और ऊँची चढ़ती आवाज सुनकर दूसरे युवक ने मन में कहा, 'ये ईश्वर का ही रूप हैं। चैतन्य रूप हैं। आनन्ददायक और मुक्त योगी हैं ये।'

विनोबा गाँव में रुके। उनकी यात्रा में अनेक जन आकर मिल गये। भाऊ पानसे पहले पहुँचकर ठहरने की व्यवस्था करके आ गये थे। विनोबा वहाँ गये। उनके साथ सभी गये। वे युवक धीरे-धीरे चलते हुए वहाँ पहुँचे। विनोबा हाथ में तकली लेकर उससे सूत कात रहे थे। युवक चकित थे।

13

प्रात:काल के तीन बजे। सारा गाँव सो रहा था। विनोबा उठ गये थे। उनके साथ ही चलनेवाले लोग भी उठ गये थे। उन दोनों युवकों को बार-बार जगाना पड़ा। विनोबा ने स्वयं उनको उठाया। वे दोनों उठ नहीं पा रहे थे। विनोबा बोले, "मित्रो! तुम सोते रहो, हम चलते हैं।"

यह सुनते ही वे दोनों तत्क्षण उठकर उनके साथ चलने लगे।

गाँव शान्त था। वातावरण शान्त था। सृष्टि स्वप्न देख रही थी। असीम सौन्दर्य का कोष खोलकर प्रकृति पारिजात के फूलों को जाग्रत कर रही थी। विनोबा मुक्त कण्ठ से गा रहे थे। वे दोनों युवक चल रहे थे, मानो नींद में चल रहे हों! पूर्व से अरुण की सवारी आयी और उदयाचल पर भास्कर के पदचिह्न तत्काल दिखाई पड़े। वे दोनों युवक प्रकृति का सौन्दर्य देख रहे थे। उनकी नींद अब समाप्त हो गयी थी।

"बाबा! आप प्रतिदिन इसी प्रकार उठते हैं?"

"हाँ! एक दिन उठने से आचरण नहीं होता है। अपना मन है न, वह होता है आलसी, लोभी और कामचोर—ठीक नादान लड़के जैसा! उसको रास्ते पर लाना पड़ता है।"

"मैं तो आज पहली बार उठा हूँ। जीवन के पच्चीस वर्षों में पहली ही बार। परन्तु आगे भी उठ सकूँगा, कह नहीं सकता।"

"जो कुछ निश्चय किया जाता है, उसका करना सरल नहीं होता है मित्र! साधना करना कठिन होता है। शरीर इतना आलसी हो गया होता है कि उसको उस ओर ले जाना कठिन होता है। परन्तु यदि मन कोई निश्चय कर ले तो फिर उसको आचरण में लाना कठिन नहीं होता है।"

"स्त्रियाँ ही ऐसे कठिन व्रत करती हैं।"

"बिल्कुल ठीक कह रहे हो मित्र! प्रत्येक स्त्री माता होती है। अपने बच्चों के और परिवार के कल्याण के लिए वह व्रत-उपवास करती है। यह करने के लिए उससे कौन कहता है? यह उसका प्रेम होता है। उसका साध्य होता है कुटुम्ब-कल्याण!"

"और आपका साध्य?"

"बाबा अत्यन्त साधारण मनुष्य है। वह केवल साधना कर सकता है। वह केवल प्रयोग जानता है। बाबा के स्वप्न बड़े हैं परन्तु उन स्वप्नों को पूर्ण करने के लिए अकेले बाबा का बल कम है।"

"ऐसा कौन-सा स्वप्न है आपका?"

"मित्र! मेरा स्वप्न है—सर्वोदय। सबका विकास। सबको समान भोजन मिले—यह उसी का भाग है। प्रत्येक का मानसिक विकास होना चाहिए। सर्वोदय शब्द को सब जानते हैं। सबका जीवन सम्पन्न होना चाहिए! वह सम्पन्न होगा निरन्तर कष्ट से, साधना से और मानसिक समृद्धि से। 'अभ्युदय' को हम जानते हैं। 'सर्वेऽपि सुखिन: भवन्तु'—यह प्रार्थना हम जानते हैं, परन्तु तदनुसार आचरण करने के व्रत और साधना नहीं जानते हैं।"

"मैं तो इतना ही जानता हूँ कि व्रत शीघ्र समाप्त होता है और साधना समाप्त नहीं होती है।"

विनोबा हँस पड़े।

"क्यों हँसे बाबा? मैंने कुछ उलट-सुलट कहा है क्या?"

"व्रत करना भी कष्टसाध्य है। साधना भी कष्टसाध्य है। व्रत की पूर्णता फलप्राप्ति में है। साधना भी फल-प्राप्ति के लिए होती है। परन्तु निष्काम साधना वही है जो अपने लिए नहीं अपितु औरों के लिए अथवा सर्वोदय के लिए की जाती है। व्रत तो जीवनभर के लिए भी हो सकता है। लोकसेवा का व्रत मृत्यु तक समाप्त नहीं होता है। परन्तु साधना अखण्ड और अपार होती है। साधन-शुचिता भी उसमें अपेक्षित है। भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं, 'अर्जुन मैं तुमको अभ्यास से ही प्राप्त होऊँगा। अभ्यास का कर्म भली-भाँति करो।' अभ्यास का अर्थ है—साधना। ईश्वर की प्राप्ति के लिए तपस्या! जब तक सिद्धि प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक जो अखण्ड-अव्याहत

प्रयत्न किया जाता है वह साधना है। अभ्यास प्रतिदिन करना पड़ता है। अन्त में अभ्यास करना संस्कार बन जाता है और संस्कार से जन्म होता है साधना का!"

विनोबा बोल रहे थे परन्तु वे दोनों युवक मौन हो गये थे।

"क्यों भई, मेरे बोलने से थक गये क्या?"

"सचमुच थक गये बाबा! ईश्वर की भाँति सभी कुछ अगम्य है।"

"कल तुमने ही पूछा था न कि तुम्हारा ईश्वर पर विश्वास है या नहीं? और दूसरे ने कहा था, 'विज्ञान में ईश्वर का अस्तित्व कैसे है?' "

"बाबा! हमारे प्रश्न समाप्त हो गये हैं। कल से सुनते-सुनते सुनने की इच्छा तो होती है परन्तु एक अक्षर भी समझ में नहीं आ रहा है। ऐसी साधना हम नहीं कर पाएँगे। इतना चलना भी कठिन है, इसलिए यहीं से हम आपसे विदा लेते हैं।"

विनोबा ने उन दोनों को अपने पास लिया, उनके मस्तक पर अपना हाथ फिराया और कहा, "बाबा से उकता गये हो क्या? अरे यह बाबा नाचना जानता है, गाना जानता है और तरह-तरह के विनोद भी जानता है।"

"यह बात नहीं है बाबा! आपके साथ हम चल ही नहीं पाएँगे। आज आपके साथ गाँव में रुकेंगे...और फिर..."

"कल से तुम लोग हमारे साथ हो परन्तु अपना नाम नहीं बताया!"

"हम इतने साधारण मनुष्य हैं कि अपने नाम बताकर क्या करना है बाबा?"

"तुम्हारे नाम हैं जय और विजय!"

"बाबा! आप कैसे जान गये हमारे नामों को?"

"मैं चमत्कारी बाबा नहीं हूँ। संयोग से तुम्हारे नाम सुनाई दे गये। तुम लोग साथ नहीं चल सके, इसका दु:ख मत करो। तुमको असमर्थता का ज्ञान हो गया, यह विकास की पहली सीढ़ी है। जाओ, सुखी रहो!"

विनोबा चलते जा रहे थे। जैसे अपने विचारों में तल्लीन हों! मदालसा देवी देख रही थीं। विनोबा हँस पड़ते, परिहास करते और फिर गम्भीर हो जाते। उनका मूल स्वभाव कौन-सा था? इन्द्रधनुष के रंगों की भाँति उनके स्वभाव के रंग भिन्न-भिन्न थे, परन्तु वे एक-दूसरे में मिले हुए थे, यही सत्य था।

यह गाँव इस बात की सूचना दे रहा था कि हैदराबाद निकट आ रहा है। यह गाँव धनी, सुशिक्षित और सम्पन्न था। गाँव में धर्मशाला थी, मुसलमानों की अधिकता थी। गाँव में स्त्रियों का आवागमन न के बराबर था। यही कारण था कि विनोबा के साथ स्त्रियों को देखकर लोग आश्चर्यचकित हो रहे थे। विनोबा पास आ रहे थे। वे उर्दूमिश्रित हिन्दी में पूछ रहे थे। दीदी महादेवी और दत्तोबा उनको उत्तर दे रहे थे।

"ये साधू आदमी कौन है? आपकी यात्रा की वजह क्या है?"

"ये हैं विनोबा। महात्मा गाँधी के शिष्य।"

महादेवी का यह कथन दत्तोबा को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा, "आप विनोबाजी को नहीं जानते हैं?"

किसी के चेहरे पर जानने का भाव नहीं था।

विनोबा धर्मशाला तक आये और सीढ़ी पर बैठ गये। कोई एक मनुष्य आगे आया और उसने विनोबा के चरणों को स्पर्श किया। फिर उसने धीरे-से बाबा के पैर दबाना प्रारम्भ कर दिया। विनोबा ने अत्यन्त स्नेह से उसके हाथ पकड़ लिये।

"बाबा! आप थके हुए आये हैं इसलिए..."

"मेरा मन कहता है कि मैं ही तुम्हारी सेवा करूँ..."

"क्यों बाबा?"

"जिसमें यह भावना है वहाँ ईश्वर का नैतिक अधिष्ठान है।"

वह लज्जित हो गया। बोला, "बाबा! मैं साधारण मनुष्य हूँ। मैं आपके शब्दों को भी समझ नहीं पा रहा हूँ। मैंने महात्माजी को नहीं देखा है, परन्तु आपको देख लिया। मेरा जीवन धन्य हो गया।"

उस युवक की आँखों में जल भर आया।

एक मनुष्य ने विनोबा से कहा, "मैं बेलगाँव का ब्राह्मण हूँ। वहाँ मुसलमानों की नौकरी करता हूँ। जीवन के लिए नौकरी तो आवश्यक है परन्तु यहाँ बड़ा परायापन लगता है। अपने लोग यहाँ नहीं हैं। यह भाग मुसलमानों का है। हमारे नातेदार यहाँ आने में डरते हैं। अल्पसंख्यक हिन्दुओं का जीवन यहाँ संकट में है। बाबा, आप कौन हैं? और क्यों घूम रहे हैं? आपको डर नहीं लगता है?"

विनोबा ने हँसकर कहा, "तुम्हारे तीन-चार प्रश्नों के उत्तर मुझको देने हैं। प्रथम मैं कौन हूँ? वैसे देखा जाय तो इस प्रश्न का उत्तर मैं अनेक वर्षों से खोज रहा हूँ। इस शरीर को विनोबा भावे कहते हैं। परन्तु वास्तव में मैं कौन हूँ—यह प्रश्न फिर भी शेष है। फिर भी अपने बाहरी स्वरूप का उत्तर मैं दे सकता हूँ। मैं महाराष्ट्रियन हूँ और ब्राह्मण हूँ।"

उसने पूछा, "लेकिन कोंकणस्थ या देशस्थ?"

विनोबा मुस्कराकर बोले, "मैं देश में रहता हूँ इसलिए 'देशस्थ' तथा काया (शरीर) का प्रयोग करता हूँ इसलिए 'कायस्थ' और कोंकण से आया हूँ इसलिए 'कोंकणस्थ' हूँ। और अन्त में मैं स्वयं में होने के कारण 'स्वस्थ' भी हूँ। सब कुछ हूँ मैं। सच पूछो तो यह प्रश्न तुमने मुझसे क्यों किया है यह समझ में नहीं आ रहा हूँ। मैं हिन्दू हूँ—इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं मुसलमान नहीं हूँ। मैं हिन्दुस्तान में रहता हूँ, इसका अर्थ यह नहीं कि मैं तुर्कस्थान में नहीं हूँ। मैं हरिजनों के आश्रम में हूँ, तो अहमदाबाद और गुजरात में नहीं हूँ, यह बात नहीं है!"

वह गृहस्थ भ्रम में पड़ गया। उसके भ्रान्त मुख को देखकर विनोबा बोले,

"शरीर हैदराबाद में तो मन हिन्दुस्तान में ही नहीं बल्कि सारे संसार में भ्रमण कर आता है। यहाँ-वहाँ सब मनुष्य एक ही हैं। वे सब मेरे ही हैं।"

उन दोनों में वार्तालाप हो रहा था, उस समय अनेक मुसलमान युवक उनके चारों ओर एकत्र हो गये थे। उनमें से एक ने पूछा, "बाबा! धर्म का अर्थ क्या है?"

विनोबा ने कहा, "वृत्ति की व्यापकता तथा संस्कार की निकटता ही धर्म है तथा धर्म की संकीर्णता ही है साम्प्रदायिकता।"

वह युवक विचारमग्न हो गया। अब तक उसने कुरान पढ़ा था। धर्म का अभ्यास किया था। युवावस्था में ही वह मौलवी हो गया था। सब उसका सम्मान करते थे। धर्म की यह व्याख्या सुनते ही वह स्वयं के अज्ञान का अनुभव करने लगा। थोड़ी देर बाद उसने कहा, "बाबा! आप हमारी सभा में आ सकेंगे?"

"अवश्य आ सकूँगा।" विनोबा ने कहा।

सन्ध्या समय सभा निश्चित हुई। अच्छी आबादीवाला गाँव था। शिक्षा का प्रसार भी था तथा आधुनिक विज्ञान से परिचित भी था। विनोबा को वहाँ सभा में भाषण देना था।

सन्ध्याकाल के चार बज गये थे। धूप की गर्मी असह्य हो रही थी। बाहर निकलने की इच्छा भी नहीं हो रही थी। महादेवी ने कहा भी, "बाबा! ऐसी गर्मी का समय क्यों निश्चित किया? इस गर्मी में कोई नहीं आएगा। यहाँ गर्मी का अत्यधिक प्रभाव है।"

विनोबा बोले, "आएँगे लोग। मुसलमान लोग धर्म के मामले में और संस्कार के मामले में आग्रही और कर्मठ हैं। वे आएँगे।"

पौने पाँच बज रहे थे। धर्मशाला में पंखे लगे हुए थे। विनोबा ने वे बन्द कर दिये थे। परन्तु किसी ने कुछ नहीं कहा था। कल से विनोबा की कुछ भी खाने की इच्छा नहीं हो रही थी। गौतम ने जब उनकी देह को हाथ लगाकर देखा तो वह खूब गरम लगी। उसने कहा, "बाबा! ग्रीष्म ऋतु की यह पदयात्रा आपको कष्टदायक होगी, यह मैं पहले ही समझ रहा था, परन्तु मैंने कहा नहीं था। अब आपको ज्वर आ गया है।"

"गौतम! तू मेरी बहुत चिन्ता करता है। अरे ज्वर शरीर को आया है। मन को नहीं आया। शरीर का ताप अपना काम करेगा। मैं अपना काम करूँगा।"

"बाबा! शरीर में मन होता है न?"

"परन्तु मन में शरीर नहीं होता है। मन से विश्व-भ्रमण किया जा सकता है। शरीर की सीमा है। अब सीमित शरीर की कक्षा पार करनेवाले मन की बात सुनी जाए या शरीर की?"

"बाबा! शरीर को ज्वर आने पर मन को कष्ट होगा ही। शरीर के अन्तर्गत ही

मन होता है इसलिए शरीर और मन अलग नहीं किये जा सकते।''

''उनको अलग करना भी सीखना पड़ता है गौतम!''

गौतम की समझ में कुछ भी नहीं आया। शरीर से मन को अलग किया ही क्यों जाए? शरीर से मन को अलग कर दिया तो यह शरीर खोखा-जैसा खाली हो जाएगा। मन तो दिखाई न देनेवाले ईश्वर के अस्तित्व जैसा है। परन्तु शरीर है इसलिए मन है। ज्वर शरीर को अलग तथा मन को अलग कैसे आएगा?

गौतम ने कुछ कहा नहीं परन्तु विनोबा का कथन वह स्वीकार नहीं कर सका। दो-तीन बार वह देह को हाथ लगाकर देख गया। तीसरी बार वह जब नमकीन जल की पट्टियाँ लेकर आया तब विनोबा ने कहा, ''विक्रमादित्य की कथा में जो वैताल है ठीक वैसी ही तुम्हारी स्थिति है। प्रश्न असंख्य हैं। विक्रमादित्य के उत्तर देने पर कुछ देर के लिए लौटना तथा पुनः आ जाना, यही स्थिति है तुम्हारी। तुम्हारी भावना मैं जानता हूँ। वह नमकीन जल यहाँ लाओ...''

गौतम सकुचा गया। फिर भी उसने वह जल उनके हाथ में दे दिया। विनोबा ने उसको सारे शरीर पर लगा लिया और फिर तत्काल स्नान कर लिया। गौतम बचपन से ही विनोबा के ये प्रयोग—साधारण जन जिसको पागलपन समझते थे—देखता आया था। ये बड़े लोग स्वयं पर तरह-तरह के प्रयोग करके देखते थे। उनका शरीर मन की एक प्रयोगशाला ही थी। एक लड़के को जब ज्वर आया तो महात्माजी ने उसको मिट्टी के गड्ढे में गले तक दबाकर रखा था। महात्माजी के सत्य के प्रयोग साधारण जन को पागलपन ही प्रतीत होंगे! गौतम ने कहा कुछ नहीं, परन्तु विनोबा की बातें उसको अच्छी नहीं लगीं।

पाँच बजे विनोबा तैयार होकर बैठे थे। उन्होंने गौतम को पुकारकर कहा, ''जरा मेरी देह को हाथ लगाकर देखो तो!''

गौतम ने उनकी देह को स्पर्श कर देखा कि शरीर एकदम ठण्डा था। गौतम बोला, ''आपका शरीर ठण्डा है। पाँच बजे सभा में धूप में जाएँगे तो आपको कष्ट होगा!''

विनोबा कुछ न कहकर बैठे-बैठे सूत कातने लगे। दो प्रौढ़ मुसलमान अदब से अन्दर आये। सलाम करके थोड़ी दूरी पर वे बैठ गये। विनोबा तत्काल उठकर उनके पास गये और उनके हाथ पकड़कर उनको कालीन पर अपने पास बैठाया। वे संकोच से भर उठे, ''बाबा! आप ब्राह्मण हो और हम...''

विनोबा ने कुछ न कहा। फिर वे उठकर बोले, ''आप चलिए...मैं तैयार हूँ!''

विनोबा झटपट चलते हुए बाहर आये। बाहर तेज धूप थी। गौतम डरा हुआ था। वे दोनों ताँगा लेकर आये थे। विनोबा ताँगे में बैठ गये। गरम झोंकों से शरीर तप्त हो रहा था। विनोबा की देह पर धोती तथा ऊपर अँगोछा लपेटा हुआ था। कानों पर रूमाल

बँधा था। स्वयं काते हुए सूत के कपड़े! गौतम को विनोबा की चिन्ता सता रही थी।

थोड़ी देर बाद ताँगा एक प्रशस्त विद्यालय के सभा-कक्ष के पास रुका। उर्दूशाला का नाम पढ़ने का विनोबा ने प्रयत्न किया। फिर वे बोले, ''मनुष्य के अगम्य मन जैसे ही ये अक्षर हैं।''

वे अन्दर आये। प्रशस्त व्यासपीठ पर वे फर्श पर बायाँ पैर मोड़कर बैठ गये। सम्मुख मुस्लिम समाज अधिक संख्या में एकत्र हुआ था। आते समय विनोबा ने उन दो मुसलमानों से गाँव की स्थिति की जानकारी प्राप्त कर ली थी, 'हम चाहते हैं अमन-शान्ति। हम चाहते हैं कौमी एकता और हम चाहते हैं अहिंसा से सवालों के हल! हम चाहते हैं आपस में मेलजोल। सब कुछ होने पर भी यह गाँव अपने स्वरूप को भूला हुआ है।' विनोबा ने सब सुना था।

व्यासपीठ पर बैठकर सब पर दृष्टि डालते हुए विनोबा के मन में विचार आया, पहले गाँव के विषय में बोला जाए, उसके बाद ही धर्म के विषय में। और विनोबा ने हिन्दी में बोलना प्रारम्भ किया—

''महात्मा गाँधी सदैव कहा करते थे, अहिंसा से सारे प्रश्न हल हो जाएँगे। विज्ञान अहिंसा भी है और हिंसा भी है। विज्ञान यदि बम बनाता है तो वह हिंसक कृति है। परन्तु यदि कृषि में क्रान्ति लाने को साधनों का निर्माण किया जाता है तो अहिंसा से जनजागृति और जनकल्याण भी किया जा सकता है।

''सर्वोदय का अर्थ है—सबका विकास। अब विकास कैसे होगा? इसका उत्तर है, दूसरों की भावनाओं का विचार करने पर। मेरा एक परिवार है। मेरे घर चार बच्चे हैं। वैसे ही दूसरे के पास हैं। जैसे मुझको खाने को चाहिए वैसे ही उसको भी चाहिए। मैं अपना खाकर अगर यह विचार करूँगा कि दूसरे का कैसे खा सकता हूँ, तो इससे भावना का नाश होगा। मेरे घर पचास आम हैं। दस आम अगर मैं पड़ोस के बच्चों को दे देता हूँ तो देने में आनन्द मिलेगा, लेने में मिलेगा! अपने हाथ देने के लिए होने चाहिए, परन्तु ऐसा किसी मामले में नहीं होता है।

''मेरा और मैं—यह वृत्ति है। यदि 'मैं' से 'हम' तक विस्तार हो जाए तो मनुष्य की वृत्ति भी विस्तृत होती जाती है। अहिंसा के लिए प्रेमभावना अनिवार्य है। अहिंसा से क्रान्ति हो सकती है, प्रचण्ड राज्य उखड़कर गिर सकता है, यह बात हमको महात्माजी ने सिखा दी है।

''अहिंसा में प्रेम बहुत बड़ी शक्ति है। भयमुक्त समाज प्रेम पर आधारित होता है। महात्माजी से एक बार पूछा था, 'सत्य और अहिंसा—इनमें आप किसको स्वीकार करेंगे?' तब महात्माजी ने कहा था, 'मैं सत्य का पुजारी हूँ। उसकी उपासना करते हुए मुझको अहिंसा का साक्षात्कार होता है।' परन्तु मैं कहता हूँ कि 'अहिंसा' यह शब्द सकारात्मक है। 'अ' शब्द में 'स' है—यह शब्दार्थ चमत्कार है। अहिंसा का प्रेमभाव

हो तो परस्पर असत्य कभी बोलना ही नहीं पड़ेगा। असत्य बोलना—यह मानसिक हिंसा ही है। मित्रो! सन्त कबीर कहते हैं—ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय। इन ढाई अक्षरों में तीनों लोक जीतने की शक्ति है। परस्पर स्नेहभाव—यह अहिंसा का मूलमन्त्र है।''

सब शान्तिपूर्वक सुन रहे थे। विनोबा का प्रत्येक शब्द ठोस था। बीच-बीच में वे अनेक उदाहरण देते थे। बीच में ही एक मनुष्य उठकर बोला, ''बाबा! एक धर्म के लोग आपस में लड़ते हुए एकत्र रहते हैं। घर में दस भाई एकत्र रहते हैं, लड़ते हैं, पुनः एकत्र रहते हैं—ऐसा ही एक धर्मबन्धु का होता है। परन्तु अन्य धर्म के लोगों को सदैव हमसे डर लगता है। उनको उनका धर्म श्रेष्ठ लगता है, हमको अपना। फिर शुरू होता है वाद-विवाद और गुत्थमगुत्था। तब क्या किया जाय?''

''ठीक कहते हैं! दुरुस्त कहते हैं!'' ये कथन श्रोताओं की ओर से सुनाई दिये। विनोबा ने दोनों हाथ उठाकर उनको शान्त करते हुए कहा, ''महात्माजी कहते थे कि सर्वधर्म समभाव होना चाहिए। उसको मानना चाहिए। सर्वधर्म समभाव की स्थापना के लिए श्रीरामकृष्ण प्रयत्नशील रहे। हिन्दू-मुसलमान, राम-रहीम एक हैं—यह कबीर ने कहा तथा उसी विचार को महात्माजी ने अधिक विस्तार से कहा। महात्माजी ने हम सबको एक बड़े स्थानक के पास लाकर छोड़ दिया है। यहाँ से हम सबको आगे जाना है।

''एक बार जगन्नाथपुरी में नारायण देसाई की माता तथा कस्तूरबा प्रभु के दर्शन करने गयी थीं। वहाँ से लौटने पर महात्माजी अत्यन्त चिढ़ गये। सहज ही क्रोध न करनेवाले महात्माजी का रौद्ररूप देखकर कस्तूरबा ने कहा, 'मैं प्रभु के दर्शन करने को गयी—इसमें मैंने क्या गलती की?' महात्माजी ने कहा, 'जब वहाँ हरिजनों को तथा अन्य धर्म के लोगों को प्रवेश नहीं करने दिया जाता है तब वहाँ क्यों जाया जाय? सर्वधर्म समभाव शब्द का अर्थ केवल सुनने के लिए और पढ़ने के लिए है क्या?'

''यही प्रश्न मैं आप लोगों से पूछता हूँ। संसार का कोई भी धर्म ले लीजिए—'आपस में शत्रुता मत करो, प्रेम करो। शान्ति रखो।'—यही सब कहते हैं न? प्रत्येक धर्मग्रन्थ की संस्कृति मानवता की ही शिक्षा देती है न? कुरान का उदाहरण सुनिए—एक तूफानी रात में एक मुसाफिर आश्रय माँगने के लिए एक घर के पास गया। उस घर में अन्न का एक दाना भी नहीं था। घर के मालिक ने बच्चों को कहानी सुनाकर तथा पत्नी को समझाकर सुला दिया था। उसी समय दरवाजे पर खट्खट् हुई। उसने दरवाजा खोला। भूखे-थके हुए उस मुसाफिर को उसने अन्दर ले लिया। पत्नी को जगाकर उसने चूल्हा जलाने को कहा और फिर वह ताजा मांस लेकर आया। पत्नी चकित हो गयी। लड़कों को जगाया। मालिक को छोड़कर सबने भोजन किया। बाद में उसने पत्नी को बताया, 'मेहमान अल्लाह होता है। वह भूखा नहीं रहना चाहिए,

इसलिए मैंने अपने प्रिय घोड़े को मार दिया था।'

"यही कथा हिन्दू धर्म में इस प्रकार है—श्रीयाल चाँगुण अपने लड़कों को मारकर उसका मांस अतिथि को देता है। थोड़े परिवर्तन के साथ यही कथा बाइबिल में है—तूफानी रात में एक यात्री एक घर में जाता है। वह घायल है। घर का मालिक उसके घावों पर पट्टी बाँधता है, भोजन खिलाता है। आधी रात के बाद मालिक यात्री को नींद से जगाकर कहता है, 'तेरे पिताजी ने मेरे बेटे की हत्या की है। तू यहाँ से जा। मेरा क्रोध सीमा पार करे उससे पहले ही तू चला जा।' और वह उसको घर से बाहर धकेल देता है।

"बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म में अहिंसा सबसे अधिक श्रेष्ठ मानी गयी है। ये सब धर्म हमको क्या बताते हैं? क्या सिखाते हैं। केवल प्रेम और मानवता। यहाँ गाँव में अल्पसंख्यक हिन्दुओं से आप लड़ें, यह उचित है क्या?"

"हम लड़ते नहीं हैं परन्तु उन लोगों को डर लगता है।"

"कभी कारण जानने का प्रयत्न किया है?"

"वे हमसे कहते हैं, 'यह भूमि हमारी है, तुम लोग जबर्दस्ती आ गये हो!' वे लोग यह भी कहते हैं कि अब पाकिस्तान बनने पर भी तुम लोग जाते क्यों नहीं हो?"

"तो फिर इसका कारण क्या है?"

"बाबा! हम कहाँ जाएँ? हमारे दादा-परदादा ने यहीं जन्म लिया और यहीं हमने साँस ली। यहाँ की मिट्टी से हमारा नाता है। हम कहीं कैसे चले जाएँ?"

"आप लोग कहीं मत जाइए। कोई आपसे जाने के लिए नहीं कहता है और अब आप जाएँगे भी नहीं। परन्तु भारत में रहकर भारत के प्रति आपमें प्रेम रहना चाहिए। लोकतन्त्रीय शासन में आपके साथ समान व्यवहार किया जाता है। फिर जिस भूमि पर हम हैं उस मिट्टी पर ईमान रखकर ही प्रत्येक को रहना चाहिए। हिन्दू युवकों में परदेश का पागलपन घुस गया है। खाना यहाँ का और रहना यहाँ—परन्तु गुण अँग्रेजों के गाने! यह नहीं होना चाहिए। कल-परसों महात्माजी ने देश को जगाया, देश को हिलाया! हिन्दू-मुसलमान समान हैं, जात-पाँत क्षुद्र विचारों से परिपूर्ण है। क्षुद्रताओं से मनुष्य को बाहर निकलना चाहिए, इस बात को महात्माजी अनुभव करते थे। अभी उनकी मृत्यु नहीं हुई थी कि उनकी मानवता के निःस्वार्थ सिद्धान्तों को स्वार्थी लोगों ने धूल में मिला दिया। उनकी मृत्यु के बाद स्थान-स्थान पर उपद्रव हुए। यह सब कुछ ठीक नहीं हुआ। किसी परिवार के मुखिया के जाते ही घर में झगड़े-मारपीट और खून होने लगे—ठीक ऐसे ही हुआ यह। सत्य तो यह है कि आपने मुझको बुलाकर उचित नहीं किया हैं। मैंने जो अनुभव किया है वह कहा है।"

सारी सभा शान्त थी। व्यासपीठ से उतरते हुए विनोबा बोले, "जिस धरती पर हम रहते हैं वहाँ की एक रीति-नीति-परम्परा होती है, वह हम सबको माननी चाहिए,

तभी आपस में बन्धुत्व-भाईचारा रह सकता है।''

उस मुस्लिम बहुल गाँव ने ऐसे विचार आज तक नहीं सुने थे। एक ओर उनके मन में चिढ़ उत्पन्न हो रही थी तो दूसरी ओर सब बातें उनको ठीक लग रही थीं। भाषण में आये हुए मौलवी ने जाते-जाते विनोबा को रोककर पूछा, ''आपको शेर की गुफा में आने पर डर नहीं लगा?''

''नहीं!''

''क्यों?''

''आखिर डर एक ही होता है मौलवी! और वह है खुदा का डर। और वह डर अपने ही अन्दर रहता है। अगर हम खुदा की ओर से नेक काम कर रहे हैं तो डर किस बात का? मन में एक और डर होता है—मौत का डर! मौत तो अटल है, तो फिर उससे क्या डरना?''

''विनोबाजी! हम आपकी कद्र करते हैं। आपके अहिंसा के विचार वाकई सोचने लायक हैं।''

''ये मेरे विचार नहीं हैं, महात्माजी के विचार हैं।''

''वो तो आपके गुरु हैं!''

''वो मैं नहीं जानता, लेकिन मैं उनके विचारों का वाहक हूँ।''

मौलवी को अनुभव हुआ कि प्रत्येक प्रश्न का उत्तर बाबा के पास निश्चय ही है। उसने कहा, ''विनोबाजी! कुछ दिन यहाँ ठहर जाइए!''

विनोबा हँसकर बोले, ''महात्मा जी इस देश में रहकर इतने वर्षों तक सिखाते रहे। परन्तु उनके जाते ही उनके सिद्धान्त समाप्त हो गये। मैं यहाँ चार दिन रह जाऊँ तो उससे कुछ फरक पड़ जाएगा क्या?''

दत्तोबा दास्ताने, भाऊ पानसे तथा स्थान-स्थान पर मिले हुए लोग विनोबा के साथ थे। पदयात्रा जब प्रारम्भ हुई थी तब बीस-पच्चीस लोग थे। प्रत्येक गाँव में इस गंगा के प्रवाह में बाढ़ आ जाती। प्रत्येक स्थान का कोई-न-कोई मनुष्य पदयात्रा का सदस्य बन जाता। इस प्रकार यात्रा में वृद्धि होती गयी थी। गाँव में जाने पर इतने लोगों के भोजन की व्यवस्था लोग स्वयं आगे बढ़कर करते थे। पदयात्रा आते ही लोग आनन्द से उसका स्वागत करते। सत्रह-अठारह घण्टे ठहरने के बाद विनोबा को जब विदा करने का समय आता तब गाँववालों की आँखें भर आतीं। यह सब देखकर विनोबा मन में कहते, 'भारतीयों का धर्म आतिथ्य है, प्रेम करना है। अगर ऐसा न होता तो लोग इतने लोगों को सम्मानपूर्वक भोजन न कराते। न देखे हुए व्यक्ति पर ये प्रेम कर रहे हैं। यह संस्कृति ऊपर से दिखाई नहीं पड़ती है परन्तु भारतीयों के मन में गहरी समायी हुई है।' परसों की बात है, कोई अनजान स्त्री अपने छोटे लड़के को विनोबा के पैरों पर रखती हुई बोली, ''बाबा! इसको आशीर्वाद दो! मैं इसको खूब बड़ा करूँगी।''

"लड़के के पिता कहाँ हैं ?"

"देश के काम आ गये।" यह कहते हुए उसका आनन्द से प्रफुल्लित मुखमण्डल विनोबा को दिखाई दिया।

"घर पर कौन है ?"

"बूढ़ी सास हैं। कोई चिन्ता नहीं है बाबा! सब कुछ करूँगी मैं। लड़का महात्माजी जैसा आकाश के समान महान होना चाहिए।"

यह सुनकर विनोबा भावाभिभूत हो गये थे। वे अनुभव करने लगे थे—मैं इतना कठोर हूँ, अनुशासन मेरा मूलमन्त्र है। अनुशासन में छूट किसी को नहीं होती है। मेरा हृदय पत्थर का है—यह मैं स्वयं ही कहता हूँ। परन्तु गाँव की एक-एक घटना मुझको अभिभूत कर देती है और तब लगता है कि देश को सचमुच ही पदयात्रा की आवश्यकता हैं। लोकजागृति के लिए देश के कोने-कोने में जाना आवश्यक है। मैं भारत को भी कहाँ जानता हूँ! आज स्वतन्त्र भारत का स्वप्न साकार हो गया है। लोकशासन की स्थापना हुई है, इसलिए यहाँ के नेताओं को भारत के प्रत्येक गाँव में रहनेवाले इन श्रद्धालु लोगों तक आना ही चाहिए!

एक छोटे-से गाँव में पदयात्रा ठहरी हुई थी। जब से गाँव में प्रवेश किया था तभी से गाँव के लोग बड़ी संख्या में उस यात्रा में सम्मिलित हो गये थे। विनोबा जब चलकर आते थे तब उनको भोजन और विश्राम मिले—यह आग्रह रहता था मदालसा देवी, दत्तोबा दास्ताने तथा अन्य लोगों का। परन्तु इन छोटे-छोटे गाँवों से साग-रोटी की गठरी सिर पर तथा कमर पर बच्चे को लादे किसी जाती हुई स्त्री की ओर देखते ही विनोबा की आँखें नम हो जातीं। मन आनन्द से परिपूर्ण हो जाता!

"बाबा! आप भोजन कर विश्राम कर लीजिए। हम सब ठहरते हैं।" यह सुनकर विनोबा दूर तक दृष्टि डालते। भरी दोपहरी में सूर्य आकाश के मध्य में होता। पेड़ों की छाया भी अधूरी होती। ऐसे समय में ये सब लोग दोपहरी-भर मेरी प्रतीक्षा करेंगे—यह चिन्ता उनको व्याकुल करती। भोजन करते समय अथवा तत्पश्चात् आराम करते समय दूर से आते हुए स्त्री-पुरुष दिखाई पड़ते। उनके मन में विचार आता—ईश्वर...जिसको ईश्वर कहते हैं वह यही है। इस असीम प्रेम-श्रद्धा की समता नहीं हो सकती! क्यों मेरे पास आते हैं ये लोग ? उनमें कौन-सी भावना है ? ये लोग एक दर्शन के लिए आते हैं। चार शब्द सुनने के लिए आते हैं। सचमुच मेरा, इनका क्या ऋणानुबन्ध है ?

विनोबा निकलकर बाहर आते। विचार-चक्र चलता ही रहता—आज तक कितने ही साधु-सन्तों ने देशयात्रा की होगी तथा ऐसे ही असीम आनन्द का अनुभव किया होगा! महात्माजी के कहने से अनेक स्थानों पर मैं गया तथा अनेक अनुभव प्राप्त किये। परन्तु यह अनुभव विलक्षण है। मुझ जैसे प्रवृत्ति में निवृत्ति खोजनेवाले ब्रह्मचारी

को द्रवित कर देनेवाला है। एक बार एक चंचल बालिका बोली, "बूढ़े बाबा!" वह शब्द ईश्वर की प्रसन्न पुकार-सा प्रतीत हुआ!

उस दिन उस प्रचण्ड सभा में गाँव-देहात के लोग थे। क्या बोला जाए, यह नहीं सूझ रहा था। कोई प्रश्न या समस्या नहीं आयी थी। चारों ओर से आवाज आ रही थी, "बाबा बोलिए...बाबा बोलिए...!" क्या बोलना है, यह पहले से निश्चित नहीं था।

विनोबा कहने लगे, "मेरी माता-बहिनो! मेरे गुरुजन और भाइयो! मैं आपके सामने हाथ जोड़ता हूँ। दूर-दूर से मीलों चलकर आप यहाँ आये हैं। साक्षात् परमेश्वर का यह विराट् रूप देखकर मेरा आनन्द से कण्ठ भर आया है। वास्तव में मैं पवनार के परमधाम आश्रम में कंचनमुक्ति का प्रयोग कर रहा था। उसको छोड़कर शिवरामपल्ली को जाऊँ—यह बात मन में भी नहीं थी परन्तु सहसा इच्छा हुई और चला आया। आप सबसे मिला जाय, शायद यह ईश्वर का संकेत था। आज प्रत्येक मनुष्य लोभी हो गया है—'पैसा...हाय पैसा...और पैसा' करने लगा है! ऐसे देश के एक प्रश्न की ओर मेरा मन गया और मैं विचार करने लगा। पैसे का मोह मुझको कभी नहीं था। बहुत पहले से ही मैं यह विचार करता रहा हूँ कि कम-से-कम पैसों से मैं अपना खर्च कैसे चला सकता हूँ! और तब मुझको विचार आया सबका! केवल स्वयं चार पैसे प्राप्त करके उनसे दो-तीन पैसे खर्च करने से देशोन्नति नहीं होगी बल्कि प्रत्येक संस्था भी धन से—कंचन से मुक्ति की ओर जानी चाहिए। यदि पैसों का ढेर खर्च करके संस्था खड़ी होनी है तो उससे देश का पैसा संस्था की ओर जाएगा—जनता की ओर नहीं जाएगा, यह विश्वास मुझको हो गया। मैंने इस विचार को कार्यरूप देने का निश्चय किया। गत वर्ष से मैं परमधाम आश्रम में कहने लगा, 'अब इस संस्थान को लोगों की सहायता पर—धन दान पर अवलम्बित न रहकर स्वयंपूर्ण होना चाहिए।' मेरा यह प्रयोग नया नहीं था। माता-बहिनो! यह प्रयोग तुम्हारा ही था। देहात का प्रत्येक घर स्वयंपूर्ण होता है। कृषि से मिलता है अन्नधान्य—वस्त्रों के लिए कपास। प्राथमिक आवश्यकताएँ पूर्ण करने का साधन खेती है। पहले के ऋषि-मुनि खेती करते थे और स्वयंपूर्ण होते थे। ऋषियों का प्रत्येक आश्रम स्वयंपूर्ण था। धन का आकर्षण ही सामाजिक पतन का तथा भ्रष्टाचार का मूल केन्द्र है। पैसा आने पर अधिकार चाहिए और अधिकार मिलने पर पैसा चाहिए। पैसा अधिक होने पर नैतिक अध:पतन और एक नागरिक के नैतिक अध:पतन का अर्थ है कुटुम्ब का सर्वनाश। यह परिमाण बढ़ता ही जाएगा। साधु-सन्तों ने इसीलिए लोभ की निन्दा की थी। वे माया से मुक्त रहते थे। सामाजिक परिवर्तन के लिए—रामराज्य की संकल्पना के लिए कंचनमुक्ति आवश्यक है—यह मेरा सुदृढ़ विचार था। आश्रमवासियों के साथ पहले खेत में साग-सब्जी उगायी। खेत में कुआँ था। उस कुएँ से पानी खींचने में श्रम होता ही था। मैं आपको कष्टों के बारे में क्या बताऊँगा? दिन-रात आप लोग भूमाता की सेवा करते हैं। आप ईश्वर के लाड़ले बेटे

हैं। ऋतु कोई भी हो—आपके हाथ भूमाता के चरणों को स्पर्श करते रहते हैं। जैसे भक्त के पैर मन्दिर के मार्ग पर चलते हैं वैसे ही आपके पैर खेत के मार्ग पर चला करते हैं। भगवान मन्दिर में नहीं है। हजारों परिश्रम करनेवाले लोगों के साथ वह भी परिश्रम किया करता है। पुष्पित और फल-भार से झुके वृक्ष देखकर मनुष्य का मन नाचने-गाने लगता है। ऐसी है यह ऋषियों की खेती। बैलों से खेती न की जाए, ऐसा तो नहीं है। इंजन लगाकर कुएँ से पानी न निकाला जाए, ऐसा भी नहीं है। बैल अपने जीवन का अविभाज्य अंग है और इंजन विज्ञान की सम्मति है। आधुनिकता की ओर जाना मनुष्य की प्रगति है। अन्त में सभी कुछ स्वीकार किया जाए, यह आज की अनिवार्यता है। स्वयं पूर्ण होना, स्वावलम्बी बनना—यह आज की बेकारी दूर करने का एक मार्ग है। प्रत्येक मनुष्य यदि इस ओर ध्यान देने लगेगा तो स्वावलम्बन में उद्योगशीलता तथा उद्योगशीलता में निरन्तरता और निरन्तरता से लक्ष्यपूर्ति की ओर जाना—यही देश की प्रगति की ओर पैर बढ़ाना है। तात्पर्य यह है कि मैं बहुत बड़ा विचार करने का ही अभ्यस्त हूँ। आज ही नहीं, तो पहले से ही कृषि प्रधान भारत को जल-सम्पत्ति का वरदान प्राप्त है। आज अनेक साधन उपलब्ध हैं। आज हिमालय से गंगा नहीं लानी है, बल्कि देश की जल-सम्पत्ति का समुचित उपयोग करना है। आज दिनोंदिन जनसंख्या बढ़ रही है। ऐसे समय में आकाश के जल के अतिरिक्त भूगर्भ की गंगा की शोध आवश्यक है। भगीरथ प्रयत्न वहाँ करने हैं, क्योंकि जनसंख्या के अनुपात में भूमि बढ़नेवाली नहीं है। नये औजार, नये सुधरे हुए बीज तथा अत्याधुनिक गणितीय तन्त्र—इसका भी विचार हमको करना है। गणित की मैं मनोरंजक बात बताता हूँ। मैं पक्का गणितज्ञ मनुष्य हूँ। मैंने बुवाई के लिए बैलों के बिना भूमि जोतने का निश्चय किया। उस समय आश्रम में अनेक युवक थे। कुछ सुदृढ़ मनुष्य भी थे। कुदाल-फावड़े लेकर वे भी खेत में पहुँचते। मैं खोदना प्रारम्भ करता तो वे भी करते। एक कुआँ खोदना था। वे जल्दी-जल्दी कुदाल चलाते और थककर बैठ जाते। मैं हिसाब लगाकर खोदता। आखिर मेरा गणित जीता। वे थक गये—मैं नहीं थका तथा उनसे डेढ़ गुना ज्यादा काम मैंने किया। आप कहेंगे, यह बाबा बहुत बोलता है। आपके सामने खूब बोलने की, मन की बातें कहने की इच्छा हो रही है। इस कृषि के प्रयोग में एक बात और मेरे ध्यान में आयी। वह यह कि इस प्रयोग से सर्वोदय होगा और साम्यवाद आएगा। सर्वोदय अर्थात् सबका विकास। स्वयं स्वत: का विकास करना—इसी से सबका विकास होगा। भारत में अनेक वाद उत्पन्न हो गये हैं, फिर भी इस कंचनमुक्ति से सर्वोदय होगा तथा सत्तारहित और भ्रष्टाचार-विरहित समाज का निर्माण होगा, इसमें सन्देह नहीं है। रामराज्य अचानक ही नहीं बन जाते हैं। रामराज्य की मानसिकता तैयार करनी पड़ती है। राम की अयोध्या में कभी दरवाजे पर ताले नहीं लगते थे। स्वयं सुख से जीओ तथा दूसरों को जीने दो—यह विचारधारा थी। आश्रम में इस विचारधारा का प्रयोग चल

रहा था। कुछ प्रयोग शीघ्र पूर्ण हो जाते हैं—कुछ में समय लगता है। 'कंचनमुक्ति' प्रयोग की आज समाज को अत्यन्त आवश्यकता है।''

विनोबा ने अपने भाषण को विराम दिया। पर्याप्त समय तक वे बोले थे। बोलने के बाद तालियाँ बजेंगी, यह आशा थी। परन्तु लोग शान्त थे। स्तब्ध थे। विनोबा ने आश्चर्य से पूछा, ''आप लोग इतने स्तब्ध क्यों हैं?''

''बाबा! आप बोलते रहिए। हम सुनते रहेंगे।''

विनोबा हँस पड़े।

ऐसे अनेक अनुभव इस पदयात्रा ने दिये थे। दो दिन बाद ही वे शिवरामपल्ली में पहुँचनेवाले थे। वर्धा से यहाँ तक आने में भाषा बदलती गयी—लोग बदलते गये तथा रीति-रिवाज बदलते गये। अनेक धर्मों के तथा अनेक जातियों के लोग, परन्तु सबके मन में प्रेम-आतिथ्य भावना एक ही थी। यह प्रेम-भावना सारा संसार जीत सकती है! विविधता में एकता! पुष्पमाला का प्रत्येक पुष्प अलग रंग-गन्ध का, परन्तु संस्कृति का सूत्र मात्र एक ही। मानवता के मूल विचार पर आधारित मन्त्र मात्र एक ही!

संस्कृति की व्याख्या करते समय होनेवाला अनुभव अनुपम था। शिवरामपल्ली के सर्वोदय-सम्मलेन में क्या बोलना है—यह विचार करते हुए विनोबा सूत कात रहे थे।

14

तेलंगाना प्रान्त में शिवरामपल्ली गाँव। सर्वोदय सम्मेलन का स्थान। सन् 1951। लगभग महीने-भर तीन सौ मील की दूरी चलकर, गाँव-गाँव में मिलते हुए, सभाएँ करते हुए विनोबा एक दिन पहले ही शिवरामपल्ली में पहुँचे। अनेक कार्यकर्ता वहाँ विनोबा की प्रतीक्षा कर रहे थे।

तेलंगाना में प्रमुख रूप से तीन सत्ताएँ कार्यरत थीं। आतंकवादी, कम्युनिस्ट तथा वहाँ के जमींदारों की सत्ताएँ थीं—शस्त्रसत्ता, धनसत्ता तथा राजसत्ता। ये तीनों सत्ताएँ कभी परस्पर, परन्तु अधिकतर लोगों से टक्कर ले रही थीं। तेलंगाना में प्रवेश करने का अर्थ था सिंह की गुफा में प्रवेश करना! अहिंसा की प्रबल शक्ति और प्रखर आत्मविश्वास लेकर विनोबा तेलंगाना में पहुँचे थे।

तेलंगाना में हिंसक गतिविधियाँ चरम पर थीं। मृत्यु की अनेक घटनाएँ हो चुकी थीं। पुलिस अपना काम कर रही थी। परन्तु जीवन-मरण की इन समस्याओं को

सुलझाने में उनको विफलता का मुँह भी देखना पड़ा था। गाँधीजी की मृत्यु के पश्चात् उनका सर्वोदय और अहिंसा अब आत्मोदय और हिंसा में परिवर्तित हो गये थे।

विनोबा ने अपने भाषण में कहा :

''सर्वोदय का अर्थ क्या है ? सबका उदय, सबका उत्कर्ष तथा सभी का विकास। हम सदैव एक प्रार्थना कहते हैं :

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

इसका अर्थ स्पष्ट करता हूँ, यह मानसिक विकास है। यह आदर्श केवल वैचारिक नहीं है अपितु व्यावहारिक है। हम उसको आचरण में ला सकते हैं। यह आदर्श अप्राप्य और असाध्य नहीं है। यह कष्टसाध्य सर्वोदय प्राणी है। सर्वोदय का आदर्श है अद्वैत! मेरा-पराया इस भाव की समाप्ति! उसकी रीति है समन्वय। सर्वोदय की दृष्टि में जीवन विज्ञान है और कला भी सर्वोदय की पृष्ठभूमि है। आध्यात्मिक साधना भारतीय संस्कृति की आधारशिला है। शान्तिपूर्वक समाधान यह अर्थ उसमें निहित है। शस्त्रसत्ता पाशविक सत्ता है तथा अमानवीय वृत्ति का द्योतक है। यह सत्ता विश्व में कहीं भी सामाजिक तथा मानसिक शान्ति की प्रस्थापना नहीं कर सकती है। वैज्ञानिक नये-नये आविष्कार करके विश्व को आत्मनिर्भय करने का प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु आत्मनिर्भय तथा सामाजिक निर्भय होने में अन्तर है। मैं ईश्वर से नहीं डरता हूँ—इस कथन में स्वयं की उच्चकोटि की निर्भयता हो सकती है, परन्तु उससे सामाजिक शान्ति की प्रस्थापना नहीं होती है। बलपूर्वक कुछ प्राप्त करने के प्रयत्न में कुछ भी सिद्ध नहीं होता है। शस्त्रसत्ता किसी को भी मानसिक समाधान नहीं दे सकती है। हाँ, शस्त्रसत्ता के बढ़ते हुए अत्याचार अवश्य हमको दिखाई पड़ते हैं।''

विनोबा धाराप्रवाह बोलते रहे। सभी प्रान्तीय कार्यकर्ता तथा स्थानीय कार्यकर्ता मन लगाकर उनका कथन घट में रख रहे थे। महात्माजी के बाद सामाजिक कार्य को आध्यात्मिक स्पर्श करनेवाला देश में कोई नहीं है—इस बात की अनुभूति कार्यकर्ताओं को उस दिन हो गयी।

''मनुष्य धनसत्ता को अधिकाधिक चाहता है। आज सारा संसार ही धनलिप्सा से पीड़ित है। निरन्तर उसी धन की प्राप्ति से अधिक को और अधिक करते-करते, सम्पत्ति का गुणा करते-करते, नैतिक अवमूल्यन तथा सामाजिक चेतना का क्षरण हो रहा है—इस ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। 'मैं कमाता हूँ—मैं उस पैसे को चाहे जहाँ खर्च करूँगा'—यह भावना राष्ट्रघाती है। कल-परसों परमधाम आश्रम से चलने तक हम पिछले डेढ़-दो वर्षों से कंचनमुक्ति

का प्रयोग कर रहे थे। स्वावलम्बन स्वयंपूर्णता तथा सह-अस्तित्व—इसका साक्षात्कार हमने कर लिया है। संस्थाओं को कंचनमुक्ति का प्रयोग कर स्वयं को तथा इसी व्याज से समाज को शुद्धि देनी चाहिए। धनलिप्सा राष्ट्रविघातक तो है ही, परन्तु आगे चलकर इसी से विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं।

"सामाजिक सुव्यवस्था-शान्ति तथा उत्कर्ष के लिए राज्यसत्ता भी नितान्त आवश्यक है। राज्यकर्ता विचारवान्-संघटित-नीतिमान तथा सामाजिकता के ज्ञाता होने चाहिए। राज्यसत्ता शस्त्र की सहायता से टिकनेवाली नहीं होनी चाहिए अथवा धन के बल पर टिकनेवाली भी नहीं होनी चाहिए। राज्यसत्ता कार्यों पर तथा लोकप्रियता पर अधिष्ठित होनी चाहिए।

"सर्वोदय के लिए लोकतन्त्र का शासन आवश्यक है। सर्वोदय का क्रम ही यही है—अनुशासन से अधिक अनुशासन की ओर तथा सत्ता से लोक-स्वतन्त्रता की ओर—लोक-कल्याण की ओर और नियन्त्रण से आत्मसंयम की ओर और कर्तव्य की ओर जाना। लोकतन्त्र धनसत्ता से तथा शस्त्रसत्ता से दूर रहना चाहिए।

"आज विश्व में यही हो रहा है। एक देश दूसरे देश पर आक्रमण करता है। महायुद्ध के बाद होनेवाला विनाश देखता है। फिर भी, स्वजनों की मृत्यु देखकर भी शस्त्रबल पर जगत्-जेता होना चाहता है। ऐसे समय में सर्वोदय विचारधारा साम्ययोग की सहचरी हो सकती है।"

विनोबा अविरत बोल रहे थे। मन में घुमड़ते हुए, स्थान-स्थान पर अनुभव में आये हुए महात्माजी के शब्द अमृत-तुल्य झर रहे थे।

11 मार्च सन् 1948 को सेवाग्राम में जो परिषद् हुई थी उसका स्मरण उनको हो रहा था। डॉ. राजेन्द्रप्रसाद उस परिषद् के अध्यक्ष थे। उस समय रचनात्मक कार्य करनेवाले सभी कार्यकर्ताओं को आमन्त्रित किया गया था। उस परिषद् में पण्डित जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, आचार्य कृपलानी, डॉक्टर प्रफुल्लचन्द्र घोष, शंकरराव देव, काका साहब कालेलकर, जयप्रकाश नारायण, देवदास गाँधी, किशोरलाल मशरूवाला, श्रीकृष्णदास जाजू, रंगनाथ दिवाकर, राजकुमारी अमृतकौर, जयरामदास दौलतराम—आदि-आदि प्रतिष्ठित लोग उपस्थित थे। महात्माजी की मृत्यु के बाद डेढ़ महीने के अन्दर ही विनोबाजी ने देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति पर यह पहली परिषद् रिक्त देवमन्दिर में बुलायी थी। परिषद् के संयोजक रघुनाथ धोत्रे ने कहा था, "गाँधीजी ने अपनी मृत्यु से पहले एक विचार रखा था। वह था, लोकसेवक संघ की स्थापना करना। उस सम्बन्ध में विचार-विमर्श हो ही रहा था कि महात्माजी की मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु जिस ढंग से हुई तथा उसके बाद जो हिन्दू-मुस्लिम दंगे भड़के, देश में द्वेष का, हिंसा का, अत्याचार और अनाचार का जो

ज्वालामुखी फटा, इस बढ़ते हुए द्वेषानल को अहिंसा के मार्ग से शान्ति कैसे मिलेगी तथा सर्वोदय समाज का निर्माण कैसे हो सकेगा—यह प्रश्न है।"

सबके सामने यही एक प्रश्न था। स्वतन्त्रता देश को प्राप्त हुई, अभी एक वर्ष नहीं बीता था। स्वतन्त्रता के लिए सारा देश एकत्र हो गया था। सहसा महात्माजी की मृत्यु के बाद सारा देश उनकी विचारधारा को अर्धचन्द्र देने को तैयार हो गया, यह समझ में न आनेवाली बात थी। यह ठीक ऐसा हो रहा था जैसे परिवार के मुखिया के निधन के बाद स्वच्छन्द हुए परिवार के सदस्य एक-दूसरे का नाश करने लगें! प्रत्येक सक्रिय कार्यकर्ता व्याकुल हो गया था।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "देश का आधार चला गया! लोकमानस की श्रद्धा चली गयी! मेरा मन अत्यधिक अस्वस्थ और चिन्तित है। कारण स्पष्ट है। देश के सामने इतने बड़े लोकतन्त्र को चलाने का कार्य है। विकास की योजनाओं का श्रीगणेश होना है। दासता के चंगुल से मुक्त होने पर घानी बैल जैसे गोलाकार उसी घेरे में घूमता रहता है, वैसी ही मानसिकता लोगों की बन गयी है। इससे बाहर निकलकर सर्वोदय करना है। सबका विचार करने के लिए मुझको बहुत कम समय मिलता है। लगभग एक-डेढ़ वर्ष से ही अपने हाथ में यह सत्ता आयी है। हिन्दू-मुसलमान दोनों को खुश करने में हमने महात्माजी को खो दिया है। और उनकी मृत्यु के बाद भी यह अन्धड़ कहीं भी थमा नहीं है! बड़ी संख्या में पाकिस्तान से निर्वासित लोग भारत में आने लगे और असंख्य समस्याएँ उत्पन्न हो गयीं। अपने देश के मुसलमान उधर नहीं जा रहे हैं परन्तु उधर के हिन्दू मात्र निर्वासित हो रहे हैं। ऐसे समय में चिन्ताग्रस्त होकर मैं सर्वोदय का विचार किस पद्धति से प्रस्तुत करूँ, यही समझ में नहीं आ रहा है।

"महात्माजी की खादी तो महत्त्वपूर्ण है ही। परन्तु आज की ज्वलन्त समस्या है, भारत में आनेवाले निर्वासितों की टोलियाँ और धधकते हुए दंगे! इन बातों की हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी। देश के अधिक टुकड़े न होने देकर देश को कैसे बचाया जाय, यह गम्भीर समस्या भी हमारे सामने है। जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है उसका तथा एकता का विचार प्रथम आवश्यक है। रचनात्मक कार्य का विचार बाद में कर लेंगे। महात्माजी का एक विशेष गुण यह था कि उन्होंने सामाजिक कार्य को राजनीति से जोड़ दिया था। किसी देशव्यापी समस्या की ओर वे उँगली उठा देते तो सारा भारत चुपचाप उधर चल देता था। आज स्वतन्त्रता की रक्षा ही समय की परम आवश्यकता है। सामाजिक उन्नति तथा सर्वोदय—इनकी अपेक्षा मुझको आज राष्ट्रविरोधी आन्दोलन तथा समाजविरोधी आन्दोलनों पर प्रतिबन्ध लगाना महत्त्वपूर्ण लगता है। स्वतन्त्रता का केवल उदय हुआ है। परन्तु उसका विचार न करके लोग व्यक्तिगत स्वार्थ की ओर झुक गये हैं। महात्माजी के लोकसेवक संघ की तरह आज काँग्रेस है। काँग्रेस एक

पुराना संगठन है। उसकी एक परम्परा है—एक अनुशासन है। उस काँग्रेस ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति का अपना उद्देश्य पूरा कर लिया है। अब एक उद्देश्य है—देश को सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान करने का। सभी संगठन काँग्रेस में आकर मिल जाएँ—इससे राष्ट्र बलवत्तर होगा।"

विनोबा सुन रहे थे। महात्माजी के विचार-आचारानुसार जीवन बिताते हुए उन्होंने जिन बापू का साक्षात्कार किया था वे सभी संस्थाओं के उद्देश्यों से परे जानेवाले थे। वे 'बापू' थे। उनको कैसा भी स्वार्थ नहीं था। फिर भी उनका संगठन, उनका सर्वोदय का विचार, उनकी लोक-सेवक संघ की कल्पना—यह सब काँग्रेस से बहुत ऊपर था। विनोबा को लगा कि जवाहरलाल जिस दृष्टि से बापू की ओर देख रहे हैं वह दृष्टि नितान्त भिन्न है।

अत्यन्त संयत आवाज में विनोबा ने भाषण प्रारम्भ किया, "मैं पण्डित जवाहरलाल नेहरू को यहाँ काँग्रेस के तथा सरकार के प्रतिनिधि के रूप में न देखकर मैं उनको गाँधी परिवार के एक सदस्य के रूप में देख रहा हूँ। वे और मैं—हम दोनों विगत पच्चीस वर्षों से इस परिवार में हैं परन्तु हम दोनों आज पहली बार यहाँ मिल रहे हैं। इसमें दोष न उनका है और न मेरा है। गाँधीजी का परिवार बहुत बड़ा है। उस परिवार के सभी सदस्य परस्पर निकट आ जाएँ—यह इतना सरल नहीं है। पण्डितजी ने जिन समस्याओं का आकलन किया है वे सत्य हैं, परन्तु राजसत्ता पर आसीन मनुष्य ही इन समस्याओं का निराकरण कर सकता है। हम सब परस्पर सहयोग करते हुए उनकी समस्याओं का विचार मात्र कर सकते हैं। कारण यह है कि उनकी समस्याएँ देश की समस्याएँ हैं। वे कहें और हम उसको करने में सहायता करें। नयी बनी हुई सरकार की आलोचना हो रही है। निकम्मे लोग ही निरर्थक आलोचना कर रहे हैं। सरकार रचनात्मक कार्यों की विरोधी नहीं है। हम लोग खादी को स्वावलम्बी बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं और यदि हम ऐसा नहीं कर सके तो यह सरकार की ही नहीं—अपनी गलती होगी।"

पण्डित जवाहरलाल जी के राजसी व्यक्तित्व से सारे अभिभूत थे—परन्तु विनोबा की सोद्देश्य तथा अत्यन्त सादगीपूर्ण वृत्ति से लोग प्रभावित हुए थे।

विनोबा ही आगे बोले, "जो सब प्रश्नों का केन्द्रबिन्दु है वह है साधन की पवित्रता, प्रत्येक बात की ओर देखने की तटस्थ वृत्ति। इस सम्बन्ध में तो हम सब एकमत हैं। यदि हम सब केवल एक लक्ष्य निःस्वार्थ सेवा को प्राप्त कर लें तो अनेक प्रश्न सहज हल हो जाएँगे।"

पण्डितजी बीच में ही उठकर बोले, "मैं विनोबाजी के इस विचार से पूर्ण सहमत हूँ। हम सबको मूलभूत प्रश्नों की ओर आत्मीयता से देखना चाहिए। अनेक अज्ञात वीरों के बलिदान से जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है उसको हमको स्थायी बनाना है।

स्वतन्त्रता के शत्रु बाहर नहीं हैं, अपितु हम ही हैं। इस प्रकार लूटपाट, अग्निदाह और हिंसाचार देश में चलता रहेगा तो देश का एक सूत्र में बँधा रह जाना कठिन हो जाएगा। विनोबाजी के कथनानुसार आत्मशुद्धि भी अत्यन्त आवश्यक है। जब बुरे विचारों का प्रभाव बढ़ जाता है तब सामाजिक नैतिकता का अध:पतन हो जाता है।"

पण्डितजी कुछ रुके, फिर अत्यन्त विनम्रता से बोले, "मैंने आपके सामने अपने मन की चिन्ता रख दी है। इससे अधिक मैं क्या कर सकता हूँ? आज रात को ही मैं दिल्ली को लौट जाऊँगा और अन्य समस्याओं में उलझ जाऊँगा। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि यह परिषद् जो भी निर्णय करेगी उसको मेरा पूर्ण समर्थन होगा। आप मुझको केवल एक सहयोगी समझें।"

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद इस परिषद् के अध्यक्ष पद पर विराजमान थे। स्वतन्त्रता के बाद प्रथम प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू थे, तो राष्ट्रपति थे डॉ. राजेन्द्रप्रसाद। उन्होंने अपनी सीधी-सादी शैली में कहा, "आज हम लोग अत्यन्त नाजुक परिस्थिति में यहाँ एकत्र हुए हैं। इस परिवार का प्रमुख ही आज यहाँ नहीं है। परिवार-प्रमुख की अनुपस्थिति में हम लोगों पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ गया है। महात्माजी ने आपके सामने सत्य और अहिंसा का मार्ग रखा था। उन्होंने साधन की पवित्रता की जो बात कही थी उस पर तो सम्पूर्ण विश्व को विचार करना चाहिए। गाँधीजी ने जो मूलभूत मानवीय सिद्धान्त प्रणाली की बात कही है, वह समय की आवश्यकता है। और नि:स्वार्थ संगठन ही यह कार्य कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में अधिक मार्गदर्शन विनोबाजी ही कर सकते हैं।"

विनोबा की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वह तो किसी भी मंच के या संगठन के सदस्य नहीं थे। 'गाँधी-प्रणीत जीवन-दर्शन से मैं अनुप्राणित हूँ। इतना ही नहीं, बल्कि महात्माजी के पास रहकर पारस का स्पर्श करके भी मैं अभी तक लोहा ही हूँ! उनका प्रयोगशील सफल जीवन समझ लेना बहुत कठिन है! परन्तु जितना समझा है उसके आधार पर यह निश्चित है कि सर्वोदय यह जीवन का मन्त्र ही निस्सन्देह लक्ष्य होना चाहिए।'

रात में दिल्ली को प्रस्थान करने से पूर्व पण्डित जवाहरलाल ने हाथ जोड़कर विनोबा से कहा, "विनोबाजी! पच्चीस वर्षों में पहली बार हम लोग मिल रहे हैं। बापू बार-बार आपका नाम लिया करते थे। मन में आपकी एक प्रतिमा निर्मित हो गयी थी। वह प्रतिमा सहज ही अदृश्य हो गयी है। आप पूर्णरूपेण गाँधीजी के मानसपुत्र हैं— आपके प्रयोगशील तप:पूत जीवन को देखकर यही मन में आया। यहाँ आने से पूर्व ही आपके कार्य की जानकारी मुझको मिल गयी थी। बापू के प्रति मेरे मन में अत्यन्त आदर था। अनेक बार विचारों में मतभेद हुआ, परन्तु उस आदर में कहीं कोई कमी नहीं आयी थी। विनोबाजी! आज आपको देखकर मुझको तीव्रता से बापू का स्मरण

हुआ। बापू का अनादर करने का विचार किसी भी व्यक्ति के मन में नहीं था। वही स्थान आज आपने पा लिया है।''

विनोबा ने कहा, ''पण्डितजी! महात्माजी के आचार-विचार का परिपालन मैं ब्रह्मचारी क्या कर पाऊँगा? उनके अनुभव के आधे-अधूरे पाठ मैं पढ़ रहा हूँ! एक परिवार-प्रमुख, एक राष्ट्रप्रमुख और एक तत्त्ववेत्ता होना इतना सरल तो नहीं है।''

पण्डित जवाहरलाल बोले, ''सरल बिल्कुल नहीं है, परन्तु आपके लिए यह सहज है। मेरे लिए आप मेरे बापू हैं। भविष्य में हम लोग जल्दी ही मिलेंगे। यदि ऐसा नहीं हुआ तो मैं ऐसा कर लूँगा। परन्तु एक बात है, बापू के प्रेम के कारण मैं दौड़ा आता था। मुझ पर आपका जो प्रेम है, उसके कारण मैं आपको पुकारूँगा और मिलने को बुलाऊँगा, तब आप इनकार मत कीजिएगा।''

पण्डितजी का आग्रहपूर्ण कथन, विनम्र भाषण, एक-एक शब्द से प्रेम का प्रकट होना तथा अत्यन्त विश्वास से बोलना—यह सब विनोबा को अच्छा लगा। उनका राजकुमार-जैसा रूप भी अच्छा लगा था। विनोबा ने उनके दोनों हाथ कसकर पकड़ लिये थे। बिना कुछ कहे ही पण्डितजी विनोबा के आश्वासन-सूचक अर्थ को समझ गये।

पण्डितजी के चले जाने पर विनोबा देर तक सर्वोदय की भूमिका का विचार करते रहे। दूसरे दिन प्रातः तीन बजे विनोबा उठे। और उनको एकदम बापू का हँसता मुखमण्डल याद आ गया। वे टिप्पणी लिखने बैठ गये। परिषद् में जो विचार रखने थे, उनकी टिप्पणी लिखते समय उनको ऐसा आभास हुआ जैसे महात्माजी उनके आसपास ही हों!

उन्होंने एक आलेख तैयार किया। उसमें जातिविहीन समाज-रचना तथा सर्वोदय समाज की सशक्त रूपरेखा तैयार की। मनुष्य को मनुष्य के साथ मनुष्य के रूप में व्यवहार करते समय जात-पाँत, धर्मभेद आदि नहीं मानने चाहिए। मद्यपान राष्ट्र विकास का रोड़ा है। उससे दूर रहना चाहिए। खादी और ग्रामोद्योग ये बेकारी दूर करने का एक साधन हो सकते हैं। सामाजिक-मानसिक तथा बाह्य आरोग्य को भी आवश्यक समझना चाहिए।

भारत एक विशाल देश है। इस विशाल देश में हजारों जातियाँ हैं। संसार के प्रमुख धर्म यहाँ हैं। परस्पर स्नेहभाव बना रहने के लिए महात्माजी के कथनानुसार एक राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार होना चाहिए। अँग्रेजों ने अपनी भाषा संसार में सब पर लादी है। यहाँ कुछ भी लादना नहीं है। स्वेच्छा से भाषा का प्रसार होना चाहिए। भारतीय पुरुष विकास क्रम में सदैव अग्रसर रहते हैं। समाज ही पुरुष प्रधान है परन्तु स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार मिलने चाहिए। जब तक पुरुषों के समान स्त्रियाँ उन्नत नहीं होंगी तब तक राष्ट्र का पूर्ण विकास नहीं हो सकेगा।

भारत विविधताओं से भरा हुआ है। प्रत्येक प्रान्त की एक और देशव्यापी भावना

होनी चाहिए। प्रान्त विकास देश विकास का पूरक होना चाहिए। उसी प्रकार आर्थिक समता होनी चाहिए। यह समता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्त्रियों को समाज में दूसरा स्थान तथा उनके श्रम को दूसरा वेतन मिलता है—इसका प्रमुख रूप से विचार होना चाहिए।

कृषिप्रधान भारत में खेती की ओर अधिक, या कहिए कि सर्वाधिक, ध्यान दिया जाना चाहिए। श्रमिकों की प्राथमिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। उनका एक संगठन होना चाहिए। दलित-पददलित तथा वनवासियों के कल्याण की योजना बननी चाहिए। विद्यार्थी सजग रहना चाहिए। ज्ञान-विज्ञान की कसौटियों पर वह उत्तीर्ण होना चाहिए। इसके लिए उसकी आवश्यकताओं का पूर्ण होना आवश्यक है। विद्यार्थी अपनी समस्याएँ एकत्र होकर रखें। देश में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती रहेंगी, तब पूरे देश को एक होकर उन समस्याओं के निराकरण के लिए तैयार रहना चाहिए। देश में कुछ समस्याओं की ओर सदैव ध्यान देते रहना चाहिए। उनका एक भाग कुष्ठ रोग है। अनाथ—गरीब और अधिक गरीब न हो जाएँ, इसलिए उनकी ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। पर्यावरण तथा प्रकृति—इस ओर भी ध्यान केन्द्रित रहना चाहिए।

ऐसे अनेक विचार विनोबा के मन में घूम रहे थे। जब ये विचार विनोबा ने परिषद् में प्रस्तुत किये तब किसी की इच्छा नहीं हुई कि इनका विरोध करे। हाँ, इसी निमित्त से उस पर चर्चा हो गयी।

> आज सर्वोदय सम्मेलन में शिवरामपल्ली के कार्यकर्ताओं से विनोबा ने कहा, "11 मार्च सन् 1948 को सर्वोदय की दृष्टि से चर्चा करनेवाली समिति में जब सर्वोदय के विचारों से सहमत हुए लोगों ने एक प्रस्ताव रखा तब एक संगठन की स्थापना हुई। उसका नाम 'सर्वोदय समाज' रखा गया। उसमें साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर जोर दिया गया था। संगठन का उद्देश्य था—गाँधीजी के सत्य और अहिंसा के मूल सिद्धान्तों पर आधारित समाज का निर्माण। जाति-पाँति विरहित, शोषणरहित तथा विकासशील समाज की रचना। संकीर्ण साम्प्रदायिकता का स्पष्ट निदर्शन हमको महात्माजी की मृत्यु में होता है। यह देश का कलंक है और इस कलंक को दूर करने के लिए असाम्प्रदायिक समाज आवश्यक है। विघातक वृत्तियों का पतन होना चाहिए। सत्य-अहिंसा-सदाचार आवश्यक है। आज आवश्यकता शान्ति दल की नहीं है—बल्कि मानसिक शान्ति की है। डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने 'हरिजन' में लिखा था कि बहुत दिनों से गाँधीजी की इच्छा थी कि देश में शान्ति की स्थापना के लिए एक संगठन बनाया जाय। शान्तिसेना की कल्पना उनकी ही थी। यह सेना पुलिस की तरह काम नहीं करेगी, बल्कि यह सेना पहले से ही सदाचार का पाठ पढ़ाएगी। अहिंसक

विचारों से शान्ति की स्थापना बहुत बड़ी क्रान्ति हो सकती है। इसके अतिरिक्त समन्वय भावना से किया गया कार्य समाज को बल प्रदान करेगा। अपनी स्वयं की दैनिक चर्या भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

अपने दैनन्दिन जीवन में प्रत्येक कार्य को एक व्रत का स्वरूप दिया जाना चाहिए। व्रत का अर्थ है संस्कारों की निरन्तरता। संस्कार का अर्थ है निरन्तर कार्य करने की वृत्ति और वृत्ति का अर्थ है मनुष्य का स्वयं निर्मित स्वभाव। जब जन्म से गुण-दोषयुक्त स्वभाव को दूसरे के सुख की दृष्टि से निर्मित किया जाता है तब वह स्वभाव दिनचर्या का दर्पण बन जाता है।''

विनोबा निरन्तर बोल रहे थे। कार्यकर्ता शान्त बैठे थे। निरन्तर डेढ़ घण्टे बोलकर भी विनोबा उकताये नहीं थे, न कार्यकर्ता ही उकताये थे। विनोबा के मधुर, सुसंस्कृत, काव्यमय शब्द प्रत्येक के मन को स्पर्श कर रहे थे।

विनोबा ने जब अपना भाषण समाप्त किया तब एक अभिमन्त्रित नाद वातावरण में भर गया था। कार्यकर्ता सुध-बुध भूलकर उस उत्कृष्ट नाद को सुन रहे थे।

रात में सोने से पूर्व प्रार्थना के समय विनोबा ने कहा, ''गत वर्ष सर्वोदय सम्मेलन में उपस्थित नहीं था न! सो उस समय की बातें भी कह दी थीं।''

एक ने कहा, ''बाबा! आपका बोलना इतना अच्छा लगता है कि मन करता हैं कि सुनते ही रहें...''

बाबा ने उसको बीच में रोकते हुए कहा, ''मैं अपने मधुर शब्द आपको सुनाने नहीं आया हूँ। कुछ ठोस कार्य होना चाहिए—यह अपेक्षा है। व्याकुल मन से बोला गया शब्द तथा मन:पूर्वक किया गया कार्य ईश्वर के चरणों में अर्पण होता है। ऐसे समय में अपनी अन्तरात्मा बोला करती है।''

सोते समय विनोबा का मन प्रसन्न था। सहसा वनपुष्पों की उग्र गन्ध लेकर वायु का झोंका आया। आकाश में चमचमाते तारों की एक लम्बी पट्टी विनोबा को दिखाई दी और दिखाई दिये सप्तर्षि। एक से बढ़कर एक श्रेष्ठ ऋषि। अपने कर्तव्य से अलौकिक और अटल पद प्राप्त करनेवाले। और विनोबा को अपने आनन्द का पता चल गया! प्रकृति का रूप समय-समय पर उनको प्रसन्न करता रहता था। उनके होठों पर हँसी आ गयी। माता कहा करती थी, ''विन्या! अरे तेरे पैर में भँवरा है।''

''भँवरा क्या होता है माँ?''

''इधर आ, बताती हूँ। पैर में चक्र होने पर मनुष्य घूमता ही रहता है।''

विनोबा ने अपने दोनों पैर आगे करके कहा था, ''दिखाओ भँवरा-चक्र दिखाओ!''

फिर माता ने उनके हाथ की उँगलियाँ अपने हाथ में लेकर कहा था, ''तेरी आठ उँगलियों पर चक्र हैं तथा दो पर शंख हैं। चक्रधारी मनुष्य भाग्यवान् होते हैं।''

''और पैर में चक्र हों तो वह भटकनेवाला कैसे होता है?''

"विन्या! तेरे प्रश्न विलक्षण होते हैं। भटकनेवाला मनुष्य भी भाग्यवान् हो सकता है। स्वामी रामदास बारह वर्षों तक घूमते ही रहे थे न?"

"तो फिर उन्हें भटकनेवाला कहें क्या?"

"जब तू कुछ करने के लिए भाग जाएगा और लोकोपयोगी कार्य करते हुए भटकेगा तब लोग तुझको भटकनेवाला नहीं कहेंगे क्या? कहेंगे—यह विनोबा काम करनेवाला भाग्यशाली मनुष्य है। परन्तु अब तो तुम बिना कारण ही भटकते रहते हो।"

"मैं कार्य-शोधन का प्रयत्न कर रहा हूँ माता!"

माँ प्रसन्न होकर हँसी थी। तारिकाएँ देखते हुए विनोबा को अपनी माता का हँसना तथा उनका कथन याद आया और उन्होंने मन में कहा, 'माँ! मैं भाग्यशाली मनुष्य हो गया हूँ। मुझको एक राष्ट्रमाता मिल गयी है। मेरे पैर में चक्र है माँ! मैं भटक रहा हूँ। अब लौटकर तुमसे कुछ कहूँ, तो तुम तो अब हो ही नहीं! यह कमी कभी-कभी व्याकुल कर देती है। फिर ये तारे मेरी ओर देखकर हँसते हैं और कहते हैं, 'अरे विन्या! द्वैत-अद्वैत की बातें तू ही कहा करता है। तू ही आत्मा में परमात्मा का रूप देखता है और तुझमें विद्यमान तेरी माता तुझको दिखाई नहीं देती है?' मैं सचेत होता हूँ। मन में हँसता हूँ। हाँ, तुम्हारी प्रत्येक बात सच है। मेरे पैर में चक्र ही है।'

सेवाग्राम की परिषद् समाप्त होने पर तथा सर्वोदय समाज का निर्माण हो जाने पर तत्काल ही पण्डितजी का पत्र आया—'पच्चीस वर्षों में हम पहली बार मिले थे। परन्तु अब जल्दी मिलने की इच्छा होने लगी है। आप शीघ्र दिल्ली आ जाइए। यहाँ निर्वासितों की अनेक समस्याएँ हैं। इनके समाधान के लिए आप आइए।'

और केवल पन्द्रह दिन बाद 30 मार्च को विनोबा श्रीकृष्णदास जाजू तथा जानकी देवी बजाज के साथ दिल्ली गये।

आगत निर्वासितों की संख्या बहुत अधिक देखकर पण्डितजी चिन्ताग्रस्त हो गये थे। लेकिन विनोबा ने कहा, "पण्डितजी! मातृभूमि के आकर्षण से तथा स्वधर्म-पालन के लिए वे यहाँ आये हैं। उन्होंने इतने वर्ष वहाँ बिताये। तब वह उनको अपना देश लगता था। आज सब कुछ छोड़कर निर्वासित के रूप में वे यहाँ आये हैं। उनको अभय देना अपनी संस्कृति है।"

"विनोबाजी! केवल इसीलिए मैंने आपको आमन्त्रित किया है।"

विनोबा राजघाट पर महात्माजी की समाधि के पास बनी हुई झोंपड़ी में ठहरे। उन्होंने पहले ही दिन निर्वासितों से कहा, "आपको केवल सान्त्वना देना ही मेरा उद्देश्य नहीं है। आज देश में जो विद्वेष और हिंसाचार बढ़ रहा है उसको प्रेम और अहिंसा के मार्ग पर चलकर समाप्त करना मेरा उद्देश्य है। सेवाभावी संस्थाएँ ही यह सद्भाव निर्माण कर सकती हैं।"

विनोबा दिल्ली के अनेक भागों में घूम रहे थे। समझा रहे थे। शान्त रहने की

सलाह दे रहे थे। निर्वासितों को जितना दुःख अपना घरबार-सम्पत्ति-सगे सम्बन्धी छोड़कर आने का था, उससे अधिक दुःख इस बात का था कि अपनी जन्मभूमि-कर्मभूमि छोड़कर अपने देश में वे जिस अधिकार से लौटे थे वह प्रेमपूर्वक पास आने का अधिकार भी उनको नहीं मिला था। वे लोग रोते थे। तब विनोबा उनसे कहते, "सब कुछ ठीक हो जाएगा!"

परन्तु विनोबा के कथन पर वे विश्वास नहीं कर पाते थे। उनकी युवा लड़कियाँ भगाकर ले जायी गयी थीं। किसी को पुत्रशोक था तो किसी को पतिशोक। कँपकँपाती ठण्ड में भी उनको पसीना आ जाता था।

दिल्ली में अप्रैल का महीना शुरू हुआ। अभी गर्मी शुरू ही हुई थी कि अचानक बरसात आ गयी थी। तीन दिन तक मूसलाधार वर्षा होती रही। उस अनपेक्षित वर्षा से जनजीवन अस्त-व्यस्त हो गया। फिर भी विनोबा की दिनचर्या बदली नहीं थी। जब विनोबा निर्वासितों की छावनी में जाते तब निर्वासितों की आँखों की अजस्र अश्रुधारा देखकर उनका मन भर आता!

देश की स्वतन्त्रता का प्रातःकाल हुआ ही था कि चारों ओर से दिशाएँ धुँधली होने लगी थीं। वे लोगों को समझाते थे। परन्तु अनेक बार उनके मन में विचार आता, 'मैं लोगों को आश्वस्त करता हूँ, मैं उनको अपनत्वपूर्ण सान्त्वना दे; शब्द सुनाता हूँ परन्तु मेरे शब्दों से उनके बिछुड़े हुए बच्चे-स्त्रियाँ वापस कैसे आएँगे? उनके निस्तेज नयनों में विश्वास की ज्योति कैसे आएगी? मैं कहता हूँ, 'जो हो गया है उसको भूल जाओ—सचमुच भूल जाओ!' परन्तु इस प्रकार कहने से कोई अपने बच्चों को, बलात्कारित स्त्रियों को और अपनी कर्मभूमि को भूल सकता है क्या? व्यर्थ हैं मेरे शब्द!'

हिन्दू धर्म विशाल और सर्वव्यापक है। उसमें अनेक धर्मों का समावेश है और फिर भी उसका स्थान अबाधित है। धर्म एक धारणा है—मूल कल्पना है। संस्कृति की जड़ें उसमें दूर्वा के अंकुरों की भाँति दृढ़मूल हो गयी हैं। हम हिन्दू धर्म की व्यापकता को संकीर्ण और असहिष्णु बना देंगे तो काम नहीं चलेगा। हिन्दू धर्म यदि संकुचित हो गया तो देश की अखण्डता संकट में पड़ जाएगी। भारत को सैकड़ों वर्षों के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है। उसके लिए अनेक ने बलिदान किया है। अन्त में अहिंसा का मार्ग ही हमको स्वीकार करना पड़ा है। इससे हिंसा और द्वेष मन से निकालकर शान्तिपूर्वक जीवन बिताएँ। इसी में राष्ट्र का कल्याण है।

एक बार जानकी देवी से बातें करते हुए उन्होंने कहा था, "अन्नवस्त्र और आश्रय ये प्राथमिक आवश्यकताएँ पूर्ण होने पर भी मनुष्य को विश्वास की आवश्यकता होती है। यही विश्वास निर्वासितों को दिया जाना चाहिए।"

"यह धीरे-धीरे होगा!"

"मैं प्रार्थना के समय कहता हूँ, ईश्वर पर विश्वास रखो। मैं लोगों से कहता हूँ, इन भौतिक सुख-सुविधाओं की ओर अधिक ध्यान मत दो। जीवन इन बातों से बहुत ऊपर है। मैं उपनिषद् की याज्ञवल्क्य की कहानी कहता हूँ। जब याज्ञवल्क्य ने संन्यास लेने का निश्चय किया तब अपनी दोनों पत्नियों को पास बुलाकर उन्होंने पूछा, 'मैं यहाँ से जानेवाला हूँ। मेरे बाद तुम दोनों क्या चाहती हो? धनसम्पत्ति या वैचारिक परिपूर्ण जीवन? एक ने धन-सम्पत्ति माँगी। दूसरी ने आध्यात्मिक सम्पत्ति माँगी। जीवन की परिपूर्णता और मृत्यु के पश्चात् भी परिपूर्णता केवल आध्यात्मिक जीवन ही दे सकता है, यह बात सुजान पत्नी जान गयी। परन्तु ये लोग इस बात को कितना समझ पाएँगे? आज वे अत्यन्त दु:खी हैं।' "

विनोबा घूम रहे थे। कालकाजी, पुराना किला, बेला रोड, तीस हजारी, हरिजन कालोनी, किंग्जवे आदि अनेक रिफ्यूजी कैम्प थे। विनोबा चाहते थे कि इन निर्वासितों की व्यवस्था करने में देर न हो। उनके आँसू सूखने से पहले उनके जीवन को स्थिरता प्राप्त हो जानी चाहिए। विनोबा के साथ अन्य अनेक लोग यह सेवा-कार्य कर रहे थे।

इसी समय विनोबा डॉक्टर जाकिर हुसैन के जामिया मिलिया इस्लामिया स्कूल में गये थे। हिन्दू-मुसलमानों के दंगों में उस विद्यालय के पुस्तकालय की तीन लाख रुपयों की पुस्तकें जलकर राख हो गयी थीं। यह देखकर विनोबा की आँखें अश्रुपूर्ण हो गयीं।

विनोबा अपनी झोंपड़ी में लौट आये, परन्तु जला हुआ पुस्तकरहित पुस्तकालय उनको याद आता रहा। पुस्तक लिखते समय लेखक को जो कष्ट उठाने पड़ते हैं तथा एक-एक पुस्तक इकट्ठी करने में जो कष्ट सहन करने पड़ते हैं उन कष्टों को लोग भूल गये और कुछ क्षणों में पुस्तकालय का विनाश कर दिया! भाषा कोई भी हो, विश्व के किसी भी लेखक का साहित्य हो, परन्तु इस प्रकार का अशोभनीय कार्य करनेवाले लोग निश्चय ही असंस्कृत हैं। यह विनोबा ने अनुभव किया।

विनोबा को जीवनानुभूति प्रस्तुत करनेवाले ऋषियों का स्मरण हो आया। भोजपत्र पर एक-एक शब्द में अक्षर ब्रह्म को साकार करनेवाले और ज्ञान का सन्देश देनेवाले ऋषि प्रत्येक काल में जन्म लेते रहते हैं तथा अक्षर-साधना करते रहते हैं। वे मानवीय सिद्धान्तों की स्थापना करते हैं। उनके एक-एक शब्द से मोती झरते हैं। वे सौन्दर्य के लक्ष-लक्ष मोती ज्ञान के चित्र में जड़ देते हैं। एक-एक मोती का मूल्य जीवन का दान देकर प्राप्त किया हुआ होता है। सूर्य की प्रथम किरण दसों दिशाओं के अन्धकार को जैसे समाप्त कर देती है वैसे ही इस अक्षर ब्रह्म से ज्ञान का एक-एक कण जीवन में प्रकाश और आनन्द बिखेरता है। और उसका विध्वंस?

विनोबा काँप उठे! विध्वंस करनेवालों को यह कल्पना भी नहीं थी कि उन्होंने कितनी हानि कर दी है! विनोबा विचार कर रहे थे। विचार करते-करते उनका मन

दिल्ली तक चला गया था। यह मन भी बड़ा विचित्र है। चाहे जब आगे-पीछे दौड़ने लगता है। कहीं की भी घटना कभी भी याद आ जाती है। जो घटना कल घटित हुई है वह कालान्तर में कल घटित हुई-सी याद आती रहती है। आज सर्वोदय सम्मेलन के निमित्त से उनको दिल्ली में जो दस महीने निवास किया था उसका स्मरण हो गया था और मन इस्लामिया विद्यालय के पुस्तकालय में भटककर आ गया था। मन अस्वस्थ हो गया था। दिल्ली का मन पुनः शिवरामपल्ली में आ गया था।

शिवरामपल्ली का सर्वोदय सम्मेलन इच्छानुसार सम्पन्न हो गया। लोग प्रेमभाव से आये। अब देखना यह था कि कितने लोग कितने समय तक सर्वोदय का कार्य करते हैं। विचार और कार्य में जब संगति होती है तभी जीवन सार्थक होता है। यही नियम राष्ट्रजीवन में भी है। केवल प्रस्ताव पारित करने से कुछ नहीं होता है। इस राष्ट्रपुरुष को ठोस कार्य के लिए पद-निक्षेप करना चाहिए। स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी। एक कठिन उद्देश्य सिद्ध हो गया। परन्तु उसके बाद उत्पन्न होनेवाली समस्याएँ अधिक गम्भीर हैं। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान बने हुए दो टुकड़े अब परस्पर संघर्ष करते रहेंगे। सुविचार तथा नीरोग राष्ट्र मन बनाने के लिए प्रयत्न वास्तव में दोनों ओर से होना चाहिए। निर्वासित लोग आगे चलकर प्रस्थापित हो जाएँगे। यहाँ के मुसलमान शान्त हो जाएँगे। महात्माजी की मृत्यु से उत्पन्न भय कम हो जाएगा। यह सब एक दिन अवश्य होगा। परन्तु तब तक राष्ट्रघाती शक्तियाँ यदि देश में जोर पकड़ने लग गयीं तो अहिंसा शब्द तथा उसके सिद्धान्त पुस्तकों में ही रह जाएँगे।

एक महापुरुष के अस्त होने का अर्थ होता है राष्ट्रपुरुष के जीवन में आनेवाली सन्ध्या! यह एक अनुच्छेद का अन्त होता है। ऐसे समय में नयी राष्ट्रशक्तियों का उदय तथा दूसरे प्रगल्भ अनुच्छेद का प्रारम्भ आवश्यक होता है।

अहिंसा ही शान्ति है।

अहिंसा ही प्रेम है।

अहिंसा ही सत्य है और जीवन की सुन्दर प्रणाली है।

क्रान्ति के पश्चात् जैसे उत्क्रान्ति होती है उसी प्रकार हिंसाचार से त्रस्त होने पर हिंसा अपने तेज के साथ प्रकट होगी। संसार का प्रत्येक धर्म नया तेज प्राप्त करेगा। आज भ्रष्टाचार तथा हिंसाचार से स्वतन्त्रता अचेत हो रही है। ऐसी दशा में अहिंसा शब्द जहाँ-का-तहाँ जम न जाए, इसके लिए आज मुझको उसका अर्थ बारम्बार समझाना पड़ेगा। वैसे ही जैसे अँधेरे में मशाल जलाकर रखते हैं!

इस विचार से विनोबा को अत्यन्त शान्ति मिली। उन्होंने मोड़े हुए पैर सीधे किये और बायीं ओर करवट लेकर आँखें बन्द कर वे सो गये। अर्धरात्रि में सहसा उनकी आँख खुल गयी। फिर सोने का प्रयत्न करने पर भी नींद नहीं आयी। वे राम-रक्षा-स्तोत्र बोलने लगे और महात्माजी के अन्तिम शब्द 'हे राम' उनके मन में गूँजने लगे।

यद्यपि गाँधीजी की हत्या का कारण गोडसे नामक मनुष्य था तथापि हिन्दू-मुसलमानों के बढ़ते हुए दंगे तथा देश-विभाजन से उत्पन्न क्षोभ—इन दो राष्ट्रविस्फोटक बातों का परिणाम था कि एक राष्ट्रप्रेमी मनुष्य ने वह हत्या कर दी। देश का विभाजन हो गया और निर्वासितों की प्रचण्ड संख्या जत्थों में भारत में आने लगी। पण्डितजी को राष्ट्र की समस्याओं का सहसा सामना करना कठिन लगा और उन्होंने मुझको बुलवा लिया। सच तो यह था कि महात्माजी के जाने के बाद एक रिक्तता उत्पन्न हो गयी थी। किसी भी बात में रस नहीं रहा था। परन्तु एक के जाने पर दूसरा मरता तो नहीं है न? बल्कि उसका उत्तरदायित्व और बढ़ जाता है। विनोबा विचारों में खोये हुए थे।

महात्माजी की मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही सर्वसेवा संघ की स्थापना हुई। उस समय राष्ट्रनेताओं ने मन में प्रतिज्ञा की थी कि प्रत्येक फरवरी में सर्वोदय-यात्रा निकला करेगी तथा यह कार्य अविरत चलता रहेगा।

प्रथम पुण्यतिथि पर राजघाट पर महात्माजी को श्रद्धांजलि अर्पण करते समय विनोबा का मन गद्‌गद हो उठा था। एक-न-एक दिन मृत्यु तो आएगी ही, यह बात विनोबा जानते ही थे परन्तु उनको लगता था कि वे बहुत-सी बातें महात्माजी से पूछना चाहते थे, लेकिन पूछ नहीं सके थे।

विनोबा श्रद्धांजलि अर्पण कर दिल्ली से जब लौटे तब उनको भयंकर उदरशूल होने लगा। वे उसकी ओर दुर्लक्ष करते थे परन्तु मन व्याकुल हो उठता था। भाऊ पानसे बारम्बार कहते, "बाबा! डॉक्टर को दिखा दें!" परन्तु वे सहन करते रहे। डॉक्टरों का विरोध करते रहे। अन्त में उनकी वेदना असह्य होती देखकर मोघे डॉक्टर को लेकर आ ही गये। विनोबा अल्सर से पीड़ित थे। वह अल्सर तेजी से बढ़ रहा था। औषध-सेवन से उसके ठीक होने की आशा नहीं लगती थी। परन्तु अब कष्ट कम हो गया था। भोजन पर उन्होंने कमाल का नियन्त्रण कर लिया था।

उसी समय सेवाग्राम में विश्व-शान्ति की परिषद् हो रही थी। विनोबा उस परिषद् में भाग लेने के लिए पवनार से पैदल चल दिये। तब आश्रमवासियों ने प्रार्थना की कि आठ-दस मील पैदल चलकर न जाएँ। परन्तु विनोबा ने उनकी बात अनसुनी कर दी थी।

विनोबा को आज भी लगा, 'मैं अपनी विचारधारा के प्रति अत्यन्त आग्रही हूँ। स्वयं को कष्ट देने में, पीड़ित करने में तथा देह की उपेक्षा करने में ही मुझको सदैव आनन्द मिला है।' देह-दुःख को सुख मानते रहो, यह सूक्ति मानो उनके रक्त में मिली हुई थी। उन्होंने देह-दुःख को ही सुख मानने की वृत्ति बना रखी थी। विश्व-शान्ति परिषद् में भाषण देते हुए विनोबा ने कहा, "मुझको दुःख इतना ही है कि आज मैं यहाँ अल्सर से पीड़ित हूँ। अहिंसा शब्द में मन को कष्ट देना भी उचित नहीं है। परन्तु

आज का विषय यह नहीं है। 'आज अणु-बम के कारण देश में विनाश-क्रीड़ा तो नहीं होगी'—यह एक गम्भीर ज्वलन्त प्रश्न उत्पन्न हो गया है। इसका उत्तर यह है कि अणु-बम तैयार करने से देश का विकास होगा। अणु-बम से अहिंसा को किंचित् भी भय नहीं है। बल्कि प्रत्येक मनुष्य के मन में परस्पर पनपता हुआ द्वेष अणु-बम से अधिक घातक है। वास्तविक भय मनुष्य द्वारा प्रयुक्त शस्त्र और शब्द दोनों का ही है।''

'परन्तु मैं दैववादी कब से हो गया हूँ?' इस प्रश्न से ही वे चकित हो गये थे। महात्माजी की मृत्यु के बाद वे चाहते थे कि उनकी भी मृत्यु हो जाय! क्या इसीलिए वे ये वेदनाएँ सहन कर रहे थे, 'अपना मरण मैंने देखा स्वनेत्रों से!' यह विनोबा ने अनुभव किया। और उन्होंने महात्माजी के राम नाम पर 'रामनाम—एक चिन्तन' नामक पुस्तक लिखी।

सेवाग्राम में और पवनार में छोटे-बड़े कार्यक्रम सतत चलते रहते थे। 6 मार्च 1951 को सर्वसेवा संघ की बैठक में शिवरामपल्ली के सर्वोदय सम्मेलन में पैदल जाने का विनोबा ने निश्चय किया। दूसरे दिन विनोबा कुछ लोगों को साथ लेकर पवनार से सेवाग्राम और वहाँ से फिर आगे चल दिये।

सर्वोदय सम्मेलन उत्तम सम्पन्न हो गया था। देश के गण्यमान्य पुरुष तथा सैकड़ों स्वयंसेवी कार्यकर्ता वहाँ एकत्र थे। सम्मेलन की अभूतपूर्व सफलता पर सभी आनन्दित थे। विनोबा लौट पड़े। कंचनमुक्ति के तथा स्वयंपूर्ण होने के प्रयोग छोड़कर वे शिवरामपल्ली के सर्वोदय सम्मेलन में आये थे। उनको यह सन्तोष था कि पदयात्रा तथा सम्मेलन निर्विघ्न सम्पन्न हो गये थे।

सम्मेलन समाप्त होने के पश्चात् दूसरे दिन प्रात:काल ही वे हैदराबाद को चल दिये। हैदराबाद में वे एक दिन रुके। जेल में लोगों से तथा जेल में विद्यमान साम्यवादियों से भी मिले। वैभव सम्पन्न जमींदार, अतिवादी साम्यवादी—इन सबके बीच पिसनेवाले लाचार मजदूर और कृषि-श्रमिकों के सम्बन्ध में देर रात तक चर्चा होती रही थी। विनोबा ने कहा, ''खेत में काम करनेवाले मजदूरों को भरपेट भोजन भी न मिल सके तो स्वतन्त्रता मिली ही किसलिए है? जमींदारों को ही झुकना चाहिए।''

बहुत वाद-विवाद हुआ था परन्तु निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकला था। रातभर विनोबा की आँखों के सामने गर्मी-सर्दी और बरसात में श्रम करनेवाले मजदूर और उनके साथ पशु-जैसा व्यवहार करनेवाले जमींदार घूमते रहे। विनोबा का मन व्याकुल हो उठा—आँखें सजल हो गयीं।

दूसरे दिन हयातनगर में विश्राम था। उस दिन भी चर्चा का विषय था—कौमी एकता-देश की एकता। विनोबा ने कहा, ''मित्रो! प्रेम के बिना एकता की कल्पना सम्भव ही नहीं है। परस्पर स्नेहभाव, सर्वधर्म स्नेहभाव तथा उच्च-नीच सहभाव जब तक नहीं होगा तब तक एकता की कल्पना भी नहीं की जा सकती।''

तीसरे दिन विनोबा हैदराबाद जिले के बतसिंगरन गाँव में ठहरे थे। छोटा-सा गाँव। स्वच्छ-साफ-सुथरा परन्तु उदास। एकदम शान्त। फिर विनोबा ने रात में भजन गाया तो उसको सुनने के लिए सब इकट्ठे हुए। रात में भजन-कार्यक्रम समाप्त होने पर विनोबा एक झोंपड़ी में गये। एक मटकी में चावल पकाये थे। परिवार में सात-आठ जन थे और मटकी में भात थोड़ा-सा था। केले के पत्ते पर थोड़ा-थोड़ा भात सबने खाया। छोटा लड़का अधिक भात माँग रहा था परन्तु भात था ही नहीं! उस स्त्री ने खुरची हुई मटकी लड़के के सामने रख दी। वह लड़का रोते-रोते हँसने लगा।

विनोबा झोंपड़ी के द्वार से लौटे तब उनकी आँखें भीगी हुई थीं। स्वतन्त्र भारत की यह दशा देखकर वे उदास हो गये थे।

विनोबा नलगोंडा जिले के पोचमपल्ली गाँव में पहुँचे। गाँव में शिक्षित लोग साम्यवादी विचारधारा के थे। गाँव की जनसंख्या लगभग तीन हजार थी। विनोबा आ रहे हैं—यह पता चलते ही गाँव की सीमा पर उनका स्वागत वैदिक मन्त्रों से किया गया। अंजलि भरकर फूल बिखेरते हुए उनको विद्यालय में उनके विश्रामस्थल तक लाया गया। विनोबा विश्राम करें—यह विचार कर स्थानीय कार्यकर्ता घर लौट गये। दो-तीन दिन से विनोबा का मन अशान्त था। कार्यकर्ताओं के जाते ही विनोबा उठे और प्रत्येक झोंपड़ी में झाँकने लगे। वहाँ की दरिद्रता—उपासमार और अस्पृश्यता देखकर उनका मन व्याकुल था। परन्तु वे उन लोगों के लिए कुछ नहीं कर सकते थे, यह प्रतीति उनको हुई। मन में अनेक प्रश्न थे परन्तु उत्तर नहीं मिल रहे थे।

विनोबा लौटनेवाले थे कि अनेक हरिजन उनके पास आये। उनमें से एक बोला, "गाँधी बाबा!"

विनोबा एकदम स्तब्ध हो गये।

वह बोला, "बाबा! गलती से गाँधी बाबा कह गया।"

"वे बहुत बड़े थे।"

"वे देवता थे। आपका नाम भी सुन रखा था। आप यहाँ इन गरीबों के गाँव में आये इसलिए आपके दर्शन हो गये। नहीं तो हमें भला दर्शन कहाँ होते!" उनमें से एक जरा शिक्षित हरिजन ने कहा।

शेष हरिजन विनोबा के चारों ओर एकत्र हो गये थे। परन्तु वे कुछ कह नहीं पा रहे थे। जैसे-तैसे एक व्यक्ति साहस करके बोला, "हम लोग बहुत गरीब हैं, बेकार भी हैं और दु:खी भी हैं। हमारी कुछ मदद कीजिए!"

"मैं क्या मदद कर सकता हूँ?"

"बाबा! हम पैसा नहीं चाहते हैं। हम काम चाहते हैं, उस काम से जो पैसा मिलेगा, वह चाहते हैं हम। मेहरबानी करके हमको थोड़ी-सी जमीन दिलवा दें तो हमारे कुटुम्ब का खाने का प्रश्न हल हो जाएगा।"

विनोबा तीन दिनों से झोंपड़ियों में—हरिजन बस्ती में तथा गरीबों की बस्ती में जो कुछ देख रहे थे उससे वे उदास हो गये थे, व्याकुल हो गये थे। तीन दिन से जो प्रश्न उनके सामने आया था उसका उत्तर उनको नहीं मिल रहा था। व्याकुल होकर वे कुछ देर चुप बैठे रहे। क्षणभर को उनके मन में विचार आया—यदि आज महात्माजी होते तो वे इस प्रश्न का क्या उत्तर देते? विनोबा को स्वयं पर ही लज्जा आयी। महात्माजी उनको ब्रह्मर्षि कहते थे। कुछ उनको भौमर्षि कहते थे तो कुछ उनको ज्ञानर्षि कहते थे। परन्तु आज वे स्वयं से ही असन्तुष्ट हो उठे थे। साधारण मनुष्य के प्रश्न का उत्तर वे नहीं दे सके थे। न तीन दिन से उस प्रश्न को वे भूल सके थे। वे हरिजन बड़ी आशा से विनोबा के मुख की ओर देख रहे थे। अन्त में विनोबा ने कहा, "तुम्हारे गाँव में आये मुझको एक घण्टा भी नहीं हुआ है। स्नानादि करने के बाद हम सब मिलकर पहले सूत कातेंगे। जिस पाठशाला में मैं ठहरा हूँ वहाँ तुम लोग आओ। हम सब मिलकर विचार करेंगे और तब तक मैं भी विचार कर रखता हूँ। तुम लोगों को जमीन मिलने से प्रश्न हल हो जाएगा। परन्तु वह कैसे हल होगा—यह विचार करेंगे।"

विचार करते हुए विनोबा लौटे। तीन-चार घण्टे स्नान-भोजन और विश्राम में व्यतीत हो गये। विनोबा अस्वस्थ थे। सायं समय जब वे लोग आशा लेकर आएँगे तब उनको क्या कहा जाय, यह विचार कर वे अत्यन्त व्याकुल हो उठे थे।

दोपहर समाप्त होने को था कि हरिजनों के चालीस परिवार वहाँ आ गये। विनोबा सूत कात रहे थे। तकली के साथ विचार गतिशील नहीं हो पा रहे थे। क्या किया जाय? इन लोगों को कैसे समझाऊँ? यही प्रश्न बार-बार उनके सम्मुख आ रहा था। विनोबा ने सूत कातना बन्द कर दिया और वे सामने खाट पर बैठ गये। तब तक गाँव के चार-पाँच सौ लोग वहाँ आ गये थे। पिछली बार बात करनेवाला हरिजनों का वही प्रतिनिधि उठकर विनम्रता से बोला, "बाबा! हम लोग बड़ी आशा लेकर आये हैं। हमको निराश न कीजिए। हम लोग धरती माता की सेवा करेंगे—उससे हमारे बाल-बच्चों का पेट भरेगा। बाबा! हम पर दया कीजिए।"

विनोबा ने सहज भाव से पूछा, "तुम लोगों को कम-से-कम कितनी जमीन की आवश्यकता है?"

वह प्रतिनिधि परिवार के वृद्ध मुखिया के पास गया। उससे बातें कर वह विनोबा के पास आकर बोला, "हम चालीस परिवार हैं। प्रत्येक परिवार को केवल दो एकड़ जमीन मिल जाय, बस यही आशा है।"

विनोबा को फिर ब्रह्माण्ड याद आ गया! कोई उत्तर उनको नहीं सूझ रहा था। वे थक गये, निरुपाय विवश होकर बोले, "तुम्हारी समस्या मैं सरकार को बताऊँगा। समस्या सचमुच कठिन है। परन्तु ईश्वर पर भरोसा रखो। उसकी इच्छा से तुम्हारी समस्या का निश्चय ही समाधान होगा।"

और यह कहते हुए उनके मन में आया कि ईश्वर का नाम तो ले ही लिया है तो सामने खड़े हुए कुछ लोगों से ही पूछा जाय! कदाचित् 'ना' कहेंगे या कुछ 'हाँ' भी कह दें! और तीन दिन से अँधेरे में डूबे विनोबा के मन में आशा की किरण चमक उठी। उन्होंने सामने देखा। उनको पूरा गाँव सामने बैठा दिखाई दिया। गाँव के छोटे-बड़े सभी वहाँ आये थे। वे प्रसन्न हो गये और उन्होंने पूर्ण आत्मविश्वास से पूछा, "इन चालीस गरीब परिवारों को पेट भरने के लिए—परिश्रम करने के लिए केवल अस्सी एकड़ अर्थात् प्रत्येक परिवार को दो एकड़ जमीन चाहिए। ऐसा कोई दाता यहाँ है?"

उसी समय भीड़ में एक गृहस्थ उठकर खड़े हो गये। उनकी वेशभूषा से उनके वैभव की जानकारी हो रही थी। उन सज्जन ने कहा, "मेरे पास बहुत जमीन है। सत्पात्र को मैं जमीन दान भी करना चाहता हूँ। मेरे पिताश्री की इच्छा थी कि दो सौ एकड़ जमीन में से आधी जमीन दान कर दी जाय। महाराज! उनकी इच्छानुसार मैं अपनी सौ एकड़ जमीन आपको देता हूँ। आप उसको स्वीकार करेंगे तो यह आपका मेरे ऊपर बड़ा उपकार होगा।"

विनोबा ने यह सुना और उनका सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो गया। आनन्द से कण्ठ अवरुद्ध हो गया। आँखों से जलधाराएँ बहने लगीं। विनोबा को शब्द नहीं सूझ रहे थे। सामने रामचन्द्र रेड्डी हाथ जोड़कर दान स्वीकार करने की सम्मति माँग रहे थे।

विनोबा उठकर उन सज्जन के पास गये और अँगोछे से अपने सजल नयनों को पोंछते हुए बोले, "आज ईश्वर तुम्हारे रूप में आया है रामचन्द्र रेड्डी!"

जमींदार दान करके आनन्दित था। चालीस परिवारों के आनन्द का पारावार न था। विनोबा ने पुनः आँखें पोंछीं और कहने लगे, "ग्रामीण मित्रो! मैं खाली हाथ यहाँ आया था और खाली हाथ कल यहाँ से चला जाऊँगा। दान देनेवाले और दान लेनेवाले यहीं हैं और बीच में खड़ा है ईश्वर। धरती माता की सेवा के लिए ये चालीस परिवार कल से श्रम करेंगे। और मैं मन-ही-मन भूदान के नये मार्ग का जप करता हुआ यहाँ के दाता का नाम मानस-पटल पर अंकित कर कल यहाँ से चला जाऊँगा। परन्तु पोचमपल्ली गाँव को विनोबा जीवनभर भूल नहीं सकेंगे। मित्रो! मेरे पास आगे कुछ कहने के लिए शब्द नहीं हैं।"

विनोबा अत्यन्त गद्गद हो उठे थे। यह आनन्दोत्सव ईश्वर के साक्षात्कार का था।

आधी रात के बाद विनोबा की आँख खुल गयी। पोचमपल्ली के अद्भुत आनन्द से मन भरा हुआ था। असंख्य तारों से भरे आकाश को वे मुग्ध होकर देखते रहे। पारिजात की गन्ध फैली हुई थी। थोड़ी देर बाद उठना है—यह विचार करते हुए वे पुनः सोने का प्रयत्न करने लगे।

15

प्रात:काल की प्रार्थना के बाद विनोबा सूत कात रहे थे। सामने अनेक कार्यकर्ता बैठे हुए थे। विनोबा तन्मय हो गये थे। कुछ देर बाद वे गुनगुनाने लगे :

"वेद-वेदान्त-गीतानां विनुना सार उद्धृत:।
ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्ति जीवनं सत्यशोधनम्॥"

किसी ने पूछा, "बाबा! कैसा वेदमन्त्र बोल रहे हैं?"

विनोबा बोले, "यह मन्त्र बाबा ने बनाया है। जीवन का एक मार्ग बनाना चाहिए। जीवन का एक मन्त्र होना चाहिए।"

एक ने पूछा, "हर बार हम निश्चित मार्ग से ही तो नहीं जाते हैं। अगला मार्ग कौन-सा होगा, यह हमको ही कहाँ ज्ञात होता है!"

विनोबा ने कहा, "यह सत्य है, परन्तु जीवन का एक ध्येय निश्चित कर लेने पर फिर मार्ग कोई भी क्यों न हो, अपने मार्ग पर जीवन का सार मात्र अपने मन में सुदृढ़ रखें, वही है जीवनमन्त्र!"

उसने पूछा, "अर्थात्?"

विनोबा बोले, "जैसे बाबा के जीवन का उद्देश्य क्या है? खाना-पीना, मौज-मस्ती करना और घर-संसार बच्चों की ओर देखना? नहीं! बाबा के जीवन का मन्त्र है, पहले स्वयं का संस्कार करना, संस्कृति की रक्षा करना और..."

कोई बोल उठा, "ऋषितुल्य जीवन बिताना, आदर्श के लिए जीवन का निर्माण करना!"

विनोबा ने हँसकर कहा, "आप सत्य कहते हैं। यह मेरी विद्यार्थी अवस्था है। मैं लोगों के आदर्श मन में धारण कर तदनुसार चलने का केवल प्रयत्न करता हूँ। आदर्श का निर्माण करने के लिए चौदह वर्ष का विजन-वास और उसके पश्चात् सुखों का त्याग आवश्यक होता है। बाबा को क्या त्याग करना पड़ता है? कुछ नहीं। इसलिए बाबा केवल प्रयत्न कर रहा है। अस्तु! आज आप किसलिए आये हैं?"

"सुना है कि आप पवनार को जा रहे हैं!"

"हाँ!"

"निर्वासितों को सान्त्वना देने के लिए जवाहरलाल नेहरूजी ने यहाँ बुलाया था। देश का विभाजन हो गया है। अब निर्वासितों की स्थायी समस्या देश को आँख दिखाती रहेगी। निर्वासित अपने ही हैं तथा जहाँ वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी रहे हैं उस देश के भी हैं। धरती नहीं बढ़ेगी। जनसंख्या द्रुतगति से बढ़ती जाएगी तथा दोनों ओर से निर्वासित

भारत में आते ही रहेंगे, यह बात यहाँ रहकर मैं अच्छी तरह जान गया हूँ। इसलिए ज्यादा समय न गँवाकर मैंने पवनार जाने का निश्चय किया है।''

''बाबा! आप पवनार जाएँ...परन्तु उत्तर प्रदेश से होकर पैदल जाएँ। भूदान की जो गंगा शिवरामपल्ली से पवनार को और पवनार से दिल्ली को आयी है वह यदि अखण्ड प्रवाहित होती रही तो सैकड़ों भूमिहीन आज भूमिधारी हो जाएँगे। देश में सभी श्रम करके अपना पेट भर सकेंगे।''

''परन्तु मनुष्य की वृत्ति नहीं बदली जा सकती!''

''सो कैसे?''

''भूमिहीनों को भूमि मिल गयी परन्तु परिश्रम की वृत्ति न हो तो!''

''ऐसा नहीं होता है बाबा! बैठे-बैठे किसी को खाने को नहीं मिलता है। हाथ-पैर हिलाने पड़ते हैं।''

''तुम्हारा कहना ठीक है। परन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति का एक लक्ष्य पूर्ण होने पर उस आनन्द के मद में लोग अपने कर्तव्य भूल जाएँगे और विकास को स्वयं ही रोक देंगे। क्योंकि सोचेंगे कि स्वतन्त्रता मिल गयी है अब मौजमस्ती करेंगे...''

''बाबा! यह भविष्यवाणी क्यों कर रहे हैं?''

''भविष्यवाणी नहीं कर रहा हूँ और न शाप ही दे रहा हूँ, क्योंकि इतनी सिद्धि मेरे पास नहीं है। परन्तु 15 अगस्त 1947 से आज 23 नवम्बर 1951 तक—इस कालावधि में प्रत्येक मनुष्य ने अपना तथा देश का क्या विचार किया है—यह बताइए? ध्येय प्राप्त हो जाने पर सब सुस्त हो गये हैं। कुछ भी करने की तड़प उनमें नहीं रही है।''

''आमके कथनानुसार यंह दृश्य भी कहीं-कहीं होगा परन्तु राष्ट्र का विकास पंचवर्षीय योजनाओं से हो रहा है।''

''राष्ट्रीय विकास का एक आधार कुटुम्ब-विकास भी है। राष्ट्रीय उत्पादन कारखानों के अतिरिक्त व्यक्तिगत कष्टों पर अवलम्बित है।''

''यह सब हम स्वीकार करते हैं बाबा! परन्तु आप उत्तर प्रदेश को एक बार न्याय दें। जमींदारों के पास पहले से चली आती हुई सैकड़ों एकड़ जमीन है। हजारों मजदूर उन जमींदारों के अत्याचारों के शिकार हुए हैं। यह दृश्य सुखद नहीं है। कृपा करके आप चलें। बाबा राघवदास और करणभाई इस उत्तर प्रदेश यात्रा का सम्पूर्ण दायित्व स्वीकार करने को तैयार हैं।''

''ठीक है। मैं चलने को तैयार हूँ।''

कार्यकर्तामण्डली उठकर चली गयी। परन्तु मण्डली की एक महिला अब भी बैठी थी। विनोबा ने उससे पूछा, ''कोई काम है क्या?''

वह बोली, ''बाबा! मन में एक विचार है, आपने सब पुरुषों को अपनी यात्रा

में स्थान दिया है। यदि कोई स्त्री आना चाहे तो!''

विनोबा ने कहा, ''वह भी आ सकती है। बाबा के आश्रम में भी स्त्रियाँ हैं। यात्रा में सम्मिलित होने में भी कोई बात नहीं है। यदि स्त्री स्वयं को अबला समझकर दुर्बल घटक समझती रहेगी अथवा वह स्त्री-सुलभ भावनाओं का प्रदर्शन प्रारम्भ कर देगी तो हम एक ध्येय से विचलित हो जाएँगे और तब नयी समस्याएँ उत्पन्न हो जाएँगी। कई गाँवों में स्त्रियाँ गाँव की सीमा तक हमारे साथ थीं।''

वह बोली, ''बाबा! जिस समय मेरे कारण किसी को कोई कष्ट होगा, उसी समय मैं रुक जाऊँगी।''

विनोबा ने कहा, ''तुम स्त्री के रूप में मत आओ। निरपेक्ष-निष्काम-प्रतिमा के रूप में आओ। माता के रूप में आओ। यहाँ कामिनी के लिए कोई स्थान नहीं है। जगन्माता की तरह तुम वन्दनीय रहो। समान नागरिक के रूप में तुम आओ। परन्तु तुम क्यों आना चाहती हो?''

''बाबा! आपकी यात्रा का वृत्तान्त मैंने सुना और मन में इच्छा हुई।''

''तुम्हारे पति-बच्चे?''

''नहीं हैं।''

''सच कहती हो?''

''जी! वे होकर भी न होने जैसे हैं। उनका मोह समाप्त हो गया है।''

''ऐसा करो, मैं कारण नहीं पूछ रहा हूँ, परन्तु शक्कर की मिठास पता चलने पर कभी न कभी खाने की इच्छा होगी ही। तुमको मैं रोकता नहीं हूँ। परन्तु शर्त यही है कि जिस समय मन में मोह जगे उसी समय समाप्त कर देना!''

''स्वीकार है बाबा!''

दूसरे दिन प्रात: पाँच बजे उत्तर प्रदेश की ओर यात्रा प्रारम्भ हो गयी। मेरठ से विनोबा ने भू-दान माँगना प्रारम्भ किया।

सन्ध्याकालीन सभा में विनोबा ने भाषण दिया। भूदान की भूमिका पहले ही तैयार हो गयी थी। यही कारण था कि दिल्ली से थोड़ी दूर स्थित मेरठ में कोई समस्या नहीं आयी। परन्तु सभा से लौटते समय सामने से आते हुए साइकिल सवार ने गलती से उनको टक्कर मार दी और फिर साइकिल सवार उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। विनोबा गिरते-गिरते बच गये परन्तु घुटने में साइकिल का पैडल जोर से लग गया।

विनोबा उससे बोले, ''तुम जाओ! तुम्हारी गलती नहीं है।''

साइकिल-सवार रोने लगा। विनोबा ने उससे कहा, ''मैं भी तो तुम्हारे सामने आ गया था।''

सवार कुछ नहीं कह पा रहा था। विनोबा के घुटने से ख़ून बह रहा था। विनोबा

ने गौतम के कन्धे का सहारा लिया और हँसकर कहा, "तुम क्यों चिन्ता करते हो? बाबा के पास अनेक लाठियाँ हैं।"

रात में वह घुटना अत्यधिक सूज गया। पैर पर भी सूजन आ गयी थी। साइकिल का हैण्डिल घुटने के नीचे हड्डी में लग गया था। उसका उस समय पता नहीं चल पाया था। रात में उसमें वेदना होने लगी। वहाँ भी सूजन थी। विनोबा सदैव की भाँति हँसते हुए ही प्रार्थना में आये। प्रार्थना के समय वे अच्छी तरह बैठ नहीं पा रहे थे। उनके पेट पर भी सूजन आ गयी थी।

"बाबा! आप आराम करें। बाल-बाल बच गये, नहीं तो हैण्डिल सीधा पेट में ही घुस जाता। थोड़ी ही देर में मैं डॉक्टर को बुलाता हूँ। दो-चार दिन के लिए यात्रा स्थगित कर देंगे।"

"नहीं! हम लोग चलते हैं।"

प्रार्थना के बाद गौतम ने उनको उठने में सहायता की। तब उसने कहा, "बाबा! साइकिल तो कारण है ही, परन्तु आपको ज्वर भी है। आज का जाना रोक दीजिए!"

"नहीं गौतम! देह का कष्ट अलग है। उसका मन से कुछ सम्बन्ध नहीं है।"

"परन्तु चलना तो देह से ही पड़ेगा न! बाबा! आपको कष्ट हो रहा है। घुटना बहुत सूज गया है। देह में ज्वर भी बहुत है!"

"चलो गौतम! साथियों से कह दो!"

"आप सुनते नहीं हैं बाबा! आपकी यह हठ अच्छी नहीं है!"

"गौतम! देह का भोग देह को भोगने दो!"

विनोबा डगमगाते हुए चलने लगे। गौतम बोला, "मेरी समझ में नहीं आ रहा है बाबा! आप सदैव कहते हैं कि देहासक्ति नहीं रखनी चाहिए, परन्तु देह से मन तथा मन से देह कभी अलग की जा सकती है क्या?"

विनोबा प्रसन्नता से हँसे, "माया जाल में मत फँसाओ...चलो!"

विनोबा पहले कुछ देर तक लड़खड़ाते हुए धीरे-धीरे चलते रहे। परन्तु फिर सदैव की भाँति चलने लगे। आज यात्रा में चलते हुए प्रत्येक का लक्ष्य विनोबा के पैरों की ओर था।

छोटे गाँव में यात्रा रुकी। विनोबा दोनों पैर अत्यधिक सूजे हुए थे और घुटना तो देखा भी नहीं जाता था—ऐसा टेढ़ा-मेढ़ा सूजा हुआ था!

गौतम बोला, "बाबा! डॉक्टर को बुलाता हूँ।"

यात्रा में सम्मिलित हुई शान्ति बोली, "बाबा! देह और मन अलग हैं न! तो देह का उपचार करने दें! मन की शान्ति के लिए आप ईश्वर का नाम लेते हैं, अर्थात् मन का उपचार ही करते हैं। तो फिर देह का उपचार नहीं होना चाहिए क्या?"

बाबा हँस पड़े। उनकी हँसी का कारण कोई नहीं जान सका। परन्तु गौतम सब

समझ गया। उसने शान्तिपूर्वक कहा, "शान्ति देवी! बाबा के मन की होने दें! उपचार प्रकृति करेगी!"

बाबा पुनः हँस पड़े। गौतम मन ही मन प्रसन्न हुआ।

सन्ध्या समय बाबा खड़े रहकर बोले सभा में! जब सभा से लौटे तब शान्ति देवी से नहीं रहा गया। उसने फिटकरी, आँबा हल्दी और चोटसज्जी का लेप तैयार किया। वह लेप उसने विश्राम करते हुए विनोबा के घुटने पर लगाया। तब चौंककर विनोबा ने आँखें खोलीं।

उसने कहा, "अपनी लड़की की बात मानिए बाबा! मुझको क्षमा कीजिए!"

विनोबा ने कुछ भी न कहा। फिर शान्ति चुपचाप लेप लगाती रही। उसकी व्याकुलता को विनोबा समझ गये। गौतम के साथ सभी ने सन्तोष की साँस ली।

उसी समय संसद के प्रथम चुनाव आ गये थे। लोगों में कल्पनातीत उत्साह था। अनेक मान्यवरों ने विनोबा को सन्देश भेजा कि लोग आजकल चुनावों में व्यस्त हैं इसलिए यात्रा को कुछ समय के लिए स्थगित कर दीजिए।

विनोबा ने पत्र पढ़कर कहा, "सूर्य नियम से आकाश में आता है। गंगा अविरत बहती है। इसी प्रकार मुझको अपना यह भूदान-आन्दोलन अविरत चालू रखना है। चुनाव हो रहे हैं इसलिए किसी चालू कार्य को स्थगित करना उचित नहीं है।"

जब प्रार्थना के लिए गाँवों से लोग आते तब विनोबा उनसे कहते, "चुनाव लड़ने नहीं चाहिए। युद्ध में विनाश होता है तब किसी को यश मिलता है। चुनाव युद्ध स्तर पर न होकर खिलाड़ी-वृत्ति से होने चाहिए!"

विनोबा चुनावों के दौरान देश में लोगों का उत्साह देखते हुए चले जा रहे थे। उत्तर प्रदेश में उनके पैर पड़ते ही लोगों में एक उत्साह का संचार हो गया था। 'बाबा आया है...अपना बाबा आया है...' यह कहते हुए लोगों के जत्थे उनसे मिलने आते थे। तेलंगाना प्रदेश में भूदान-यात्रा में प्रतिदिन लगभग दो सौ चालीस एकड़ जमीन मिली थी। जब वे दिल्ली में आये तब प्रतिदिन लगभग तीन सौ एकड़ भूमि मिली और अब उत्तर प्रदेश के कुछ गाँवों में ही वे घूमे थे कि औसत तीन सौ ग्यारह एकड़ भूमि प्रतिदिन मिलने लगी थी।

एक दिन महादेवी दीदी ने कहा, "बाबा! आपके शब्दों में कितनी असीम शक्ति है! लोग आपके शब्द से भूमि देते हैं। लोग आपको देव मानते हैं बाबा!"

विनोबा ने सदैव की भाँति कहा, "प्रभु की इच्छा!"

महादेवी दीदी तेलंगाना यात्रा में साथ थीं। दिल्ली आते समय वे साथ नहीं थीं परन्तु सेवाकार्य के लिए वे और मदालसा देवी दोनों आयी थीं। वहाँ से वे साथ चल रही थीं।

महादेवी दीदी ने कहा, "बाबा! जो भूमि मिलती है उसको आप बाँट देते हैं।

क्या यह अच्छा नहीं होगा कि भूमि को अपने पास रखकर एक ट्रस्ट बना दिया जाय?"

विनोबा ने कहा, "और यदि बाड़ ही खेत को खा गयी तब?"

महादेवी दीदी बोलीं, "आपका यह कहना भी सही है। प्रत्येक स्थान का ध्यान कौन रखेगा? फिर भी मन में आया कि इतनी भूमि रोज-रोज मिलती है—एक चमत्कार की तरह—उसको आप इस प्रकार पुनः दान कर देते हैं, यह आपके मन का बड़प्पन है बाबा! आप निर्मोही हैं बाबा!"

विनोबा ने कुछ न कहा। दिनभर चलने के बाद भाषण के बाद जब विनोबा ने लेटकर तकिया पर सिर रखा तब सदैव की भाँति लेटते ही उनको नींद आ गयी।

घुटने में बहुत दर्द हो रहा था। घुटने में चोट लगी थी, फिर भी वे प्रतिदिन की भाँति चौदह-पन्द्रह मील चलकर आये थे। इससे गर्दन तक उनका सारा शरीर दर्द कर रहा था। पसली में चोट लगने से वहाँ ठनक हो रही थी। शान्ति लेप लगा देती थी तब थोड़े समय के लिए चैन पड़ जाता था।

उन्होंने उठकर ज्ञानेश्वरी पढ़ी। फिर भी नींद नहीं आयी।

'देह को कुछ भी होता रहे, मन तो प्रसन्न है न!' आठ दिन पहले कहे गये अपने इस वाक्य का स्मरण कर विनोबा को हँसी आ गयी। 'शरीर में तिनका चुभ जाय तब भी वेदना होती है और उसको निकाले बिना चैन नहीं मिलता है। यहाँ तो बढ़ते हुए दर्द की प्रतिदिन अनुभूति हो रही है। देह के प्रति मोह तो है ही नहीं! केवल देह के दु:ख को पचाकर आनन्द वृत्ति मुझको स्थिर रखनी है। जिस प्रकार मैं मन में अनेक निश्चय करता हूँ, उसी प्रकार दु:ख को पचाने का एक कठोर निश्चय करके उसकी ओर देखना चाहिए।' इस विचार से उनको शान्ति मिली। निश्चय अथवा संकल्प ही आत्मबल है!

आज मुझको निर्मोही कहा गया। कुछ लोगों को ऐसा लगता होगा। स्थावर सम्पत्ति का, देह का तथा देह से सम्बन्धित विषयों का मुझको मोह नहीं है, यह सत्य है। सद् विचारों का, सद् आचारों का, सत् साहित्य का, आदर्श जीवन का, कठोर व्रताचरण का तथा लोकहित का मुझको मोह है। जो-जो मुझको अच्छा लगता है वह औरों को भी अच्छा लगेगा—यह तो हो नहीं सकता है।

तेलंगाना से भूदान-यात्रा प्रारम्भ हो गयी। शब्द-सामर्थ्य की पहली बार अनुभूति हुई। फिर मैं लोगों पर एक प्रकार का दबाव बनाता गया! भले ही यह दबाव नैतिक और सामाजिक हो, परन्तु दबाव तो पड़ता ही होगा न! जब तेलंगाना में था तब एक दिन एक जमींदार क्रोध में भरा हुआ आया था। उसने कहा, "हमारे पिता ने दिन-रात कष्ट करके भूमि मोल ली है। उनकी इच्छा थी कि वह भूमि हमारे बच्चों को मिले। ऐसे समय में आप कहते हैं कि जमीन दो! छठा हिस्सा दो! हमने किसी की जमीन हड़पी नहीं है! हम जमींदार नहीं हैं। सैकड़ों एकड़ जमीन हमारे पास नहीं है।

ऐसी हालत में छठा हिस्सा देने की जबर्दस्ती क्यों ?''

''भूमिहीनों को भूमि मिल सके इसलिए!''

''जिनके पास है उनसे लो!''

''छठा हिस्सा कहने पर किसी का छठा हिस्सा बड़ा होगा तो किसी का छोटा होगा!''

''परन्तु हम क्यों दें ? अपने पिता के कष्ट हमने देखे हैं। जब हम छोटे थे तब दूसरों के खेत में काम करते थे। ऐसी हालत में केवल चालीस एकड़ जमीन में से छठा हिस्सा देना तो मेरे परिवार पर अन्याय करना है।''

''परन्तु जो दुःख आपने बचपन में सहन किये हैं वे औरों को सहन न करने पड़ें इसलिए!''

''मैं स्वेच्छा से आधी एकड़ दूँगा। कारण यह है कि आज मेरे भी छह बेटे हैं। खेती ही हमारी जीविका है। निदान हम जैसों की स्थिति का विचार करना चाहिए!''

विनोबा चुप रहे। उनके पास उसके कथन का उत्तर नहीं था। यदि एक को छूट दी जाती तो फिर अन्य अनेक भी यह माँग करते। आखिर चिढ़कर वह मनुष्य चला गया।

उसका कहना अधिकांश में सही था। परन्तु उसी समय तीन एकड़ भूमि रखनेवाला एक मनुष्य एक एकड़ दान कर गया था।

विनोबा की योजना सफल हो रही थी। उस सफलता का उनको मोह नहीं था, यह नहीं कहा जा सकता था! भूमिहीनों के चेहरों का आनन्द हर बार मन को प्रसन्न करता रहता था। उत्साह बढ़ाता रहता था। जीवन का ध्येय निश्चित करता रहता था।

कुछ लोगों ने यह भी कहा कि कम्युनिस्टों के बढ़ते हुए आन्दोलन का जमींदार विरोध कर रहे थे। उन जमींदारों का उच्चाटन करने के लिए यह भूदान-गंगा निर्मित हुई है! विनोबा ने अधिक विचार नहीं किया। वे शान्त मन से सो गये। दूसरे दिन प्रार्थना के बाद उन्होंने कहा, ''हम प्रत्येक कर्म ईश्वर को अर्पण करें तथा कर्म का भार उस पर सौंप दें। जीवन अनेक गुणावगुणों से भरा हुआ क्यों न रहे, अन्त में ईश्वर ही सर्वश्रेष्ठ है।''

प्रार्थना के बाद राघवदास ने कहा, ''बाबा! कल रात आपके तम्बू के पास किसी की आहट सुनाई दी, इसलिए मैं तीन-चार जनों के साथ बाहर आया....'' विनोबा हँस दिये।

''नहीं बाबा! भय नहीं लगा, परन्तु यह भाग थोड़ा-सा डाकुओं के प्रदेश से लगा हुआ है इसलिए जरा...''

''तो फिर आगे ?''

''तम्बू के बाहर एक अन्धा मनुष्य खड़ा था। उसने कहा, 'यहाँ कोई बाबा आया

है न? वह गरीबों को जमीन देता है।' मैंने कहा, 'हाँ देता है। परन्तु इस समय वे सोये हुए हैं। उनको बुखार भी है। उनके घुटने में दर्द हो रहा है।' इतना सुनकर वह नीचे बैठ गया और बोला, 'मुझ अन्धे की आयु उनको मिल जाए। उनका कुछ न बिगड़े।' मैंने पूछा, 'नाम क्या है तुम्हारा?'

वह बोला, 'रामचरन!'

मैंने पूछा, 'कहाँ से आ रहे हो भाई?'

उसने कहा, 'मुरादाबाद से दस कोस दूर पूर्व में एक गाँव है, वहाँ से आया हूँ।'

मैंने कहा, 'तो फिर इतनी रात को अँधेरे में क्यों आये हो?' वह ठठाकर हँसा।

मैंने घबड़ाकर पूछा, 'हँस क्यों रहे हो भाई?'

वह बोला, 'मेरे लिए रात में अँधेरा है और दिन में भी अँधेरा है। जब भी बाहर निकलूँ एक ही बात है।'

'तुम्हारे साथ कोई नहीं है?'

'जीवन संगिनी चली गयी। परन्तु बहू-बेटे हैं। एक लड़का साथ आया है। हम लोग धर्मशाला में ठहरे हैं। मैं बाबा को अपनी बारह बीघा जमीन दान करना चाहता हूँ, इसलिए उनको रात में ढूँढ़ता आया हूँ।'

'बारह बीघा! इतनी जमीन दे देने पर तुम क्या खाओगे भाई? उससे तो तुम्हारे घरवालों का भी पेट नहीं भरता होगा।'

'उससे पेट कैसे भर जाएगा? हम दूसरों के खेत में काम करने जाते हैं।'

'तो फिर तुम लौट जाओ!'

'नहीं! बाबा की कसम है आपको, मेरी जमीन लिख लो!' वह हठ करने लगा। आपकी शपथ देता रहा। हारकर जमीन लिख ली। उसको कागज दे दिया। तब तक उसका लड़का आ गया था। वह बोला, 'जमीन के अलावा देने के लिए हमारे पास कुछ नहीं है। बाबा से कहना, इतना ही था वह दे दिया।' ''

इतना कहकर राघवदास चुप हो गये।

तब विनोबा बोले, ''लोग कहते हैं कि रामचरन अन्धा था। सच तो यह है कि हम लोग अन्धे हैं। हमको यह बात समझनी चाहिए कि साक्षात् भगवान श्रीराम अपनी इस भूदान यात्रा को आशीर्वाद देने आये थे।''

विनोबा की आँखें सजल हो गयीं। उनसे आगे न बोला गया। चलते-चलते विनोबा का पैर अच्छा हो गया। उनका नित्यक्रम निश्चित था। किसी भी कारण से उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता था, यह बात यात्रा में सम्मिलित लोग अच्छी तरह जान गये थे। प्रत्येक गाँव की सीमा पर सैकड़ों लोग प्रात:काल के अँधेरे में, हवा में, बरसात में और कँपकँपाने वाली ठण्ड में खड़े रहते थे। विनोबा को देखते ही उनके चेहरे पर

चाँदनी खिल जाती थी। वे विनोबा के पीछे चलने लगते। विनोबा कभी गाने लगते कभी चर्चा करने लगते। आज ऐसे ही चर्चा चल पड़ी।

"बाबा! दिल्ली आते समय आपको पैंतीस हजार एकड़ जमीन मिली। उत्तर प्रदेश में अधिक मिलेगी। यह यात्रा कहाँ तक चलेगी?"

"भारत में कुल तीस करोड़ एकड़ जमीन है। उसका केवल छठा हिस्सा मैं माँगता हूँ। भारतीय परिवार में साधारणतः पाँच मनुष्य होते हैं। इसलिए उनका छठा हिस्सा जनता होती है। मैं यह यात्रा भूमिहीनों के लिए उद्देश्य सफल होने तक चलाऊँगा।"

"बाबा! आपको यह प्रेरणा किसने दी?"

"ईश्वर ने दी।"

"इसमें आपका उद्देश्य क्या है?"

"मैं केवल समाज में परिवर्तन लाना चाहता हूँ। पहले हृदय-परिवर्तन, फिर जीवन-परिवर्तन। त्रिविध परिवर्तन अर्थात् तिहरी क्रान्ति मेरी अपेक्षा है।"

"परन्तु लोगों में सचमुच कुछ देने की इच्छा है क्या?"

"पचास प्रतिशत लोगों में है। किसको देना चाहिए, इसके लिए कानून नहीं है, परन्तु जिस समाज में हम रहते हैं उस समाज का ऋण तो हमको देना चाहिए। इस ऋण को ईश्वर का न्याय समझकर चुकाना चाहिए।"

"प्रत्येक स्थान पर आप ईश्वर का उल्लेख क्यों करते हैं?"

"मैं आकाश में स्थित ईश्वर का उल्लेख नहीं करता हूँ, जो ईश्वर प्रत्येक मनुष्य के मन में स्थित है मैं उसका उल्लेख करता हूँ। कानून किसी-किसी काम को हिंसा का सहारा लेकर करता है। यह अहिंसा का कार्य है जो मन की सहायता से होता है।"

"यह एक प्रकार से भीख माँगना है!"

"बाबा भूमि की समस्या का समाधान शान्ति से करना चाहता है। मैं लोगों से दान माँगता हूँ, भीख नहीं। वैसे देखा जाय तो एक ब्राह्मण होने से मैं दान लेने का अधिकारी हूँ ही। परन्तु यह दान बाबा को अपने लिए नहीं चाहिए।"

"आप स्वयं को 'मैं' न कहकर 'बाबा' क्यों कहते हैं?"

"इस देह का नाम बाबा है।"

"और मन का नाम?"

"ईश्वर है। चैतन्य है।"

सुनने वाले कभी-कभी सन्तप्त हो उठते थे, ऐसे प्रश्न कभी-कभी पूछे जाते थे परन्तु विनोबा शान्तिपूर्वक उत्तर देते थे और चलते-चलते कोई अभंग कहने लगते थे। सारा वातावरण प्रसन्न और पवित्र हो जाता था। दिन का प्रथम चरण आनन्द दे जाता। कितने दिन-कितने महीने वे चलते रहे थे! न थकते हुए और न अलसाते हुए!

लोगों को आश्चर्य होता...चमत्कार लगता....विनोबा देवदूत प्रतीत होते! सारे प्रदेश नये, रास्ते नये और लोग नये होते! आज तो वे वाराणसी में जाने वाले थे। काशी विद्यापीठ ने उनको आमंत्रित किया था।

पुण्यपावन वाराणसी नगरी दूर से दिखाई देने लगी थी। और उनको स्मरण हुआ कि सन् 1916 में यहीं दुर्गाघाट पर खुर्देकर के घर में तीसरी मंजिल पर वे रहते थे। वे रात-विरात गंगा के घाट पर बैठकर चिन्तन करते थे। कभी क्रान्तिकारी विचारों की ओर मन झुक जाता था तो कभी आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त लगता था। किस ओर जाया जाय, यह प्रश्न था। उसी समय एक मित्र की मृत्यु हो गयी और तब जीवन और मृत्यु का चिन्तन प्रारम्भ हो गया। लक्ष-लक्ष तारिकाओं से प्रफुल्लित आकाश तथा उससे मन में उमड़ती हुई असंख्य कविताएँ! कभी जीवन की तो कभी मृत्यु की! आज उनको ऐसी ही एक कविता याद आ गयी और वे गुनगुनाने लगे :

वह आनन्दनिधि—आनन्द समुद्र
आज परिपूर्ण रूप से
मेरे वश में हो गया है।
इसलिए बजाय इसके कि
मैं उसकी ओर जाऊँ—
वह मेरी ओर आकर
मुझको बुला रहा है।
मेरे लिए आज वास्तव में दीपावलि है।
प्रेम की कैसी नवीनता है
कि प्रपंच का रंग ही
जिसको कभी लगा नहीं
और प्रपंच के बाहर जिसका
संचार रहा वह
आज मेरे घर आया है।
घर आकर—सारा घर
उसने व्याप लिया है
और फिर भी
क्योंकि जगह पूरी नहीं पड़ी,
मेरे हृदय को
अन्तर्बाह्य उसने भर दिया है।

किसी ने पूछा, ''बाबा! इतनी प्रसन्नता आपको कैसे प्राप्त हुई?''
विनोबा बोले, ''ईश्वर की कृपा से!''

जिस समय विनोबा ने वाराणसी में प्रवेश किया उस समय बड़ी भारी संख्या में विद्यार्थी और अध्यापक उनका स्वागत करने के लिए वहाँ उपस्थित थे। काशी विद्यापीठ तक मार्ग के दोनों ओर का परिसर लोगों से परिपूर्ण था।

घुटने तक धोती, बढ़ी हुई शुभ्र दाढ़ी, आँखों पर चश्मा, देह पर अँगोछा, सिरपर कनटोपी और साधारण शरीरयष्टि परन्तु चलने की गति अद्‌भुत! मुख पर विकसित होते पुष्प की प्रसन्नता! होठों पर निरागस् हास्य! देखनेवाले को जीत लें, ऐसी आँखें! विनोबा चलते जा रहे थे। लोग जय-जयकार कर रहे थे। विनोबा वहाँ से आगे सेवापुरी को जाने वाले थे। उससे पूर्व सेवाश्रम आश्रम में वे रुकें—यह प्रार्थना उनसे की गयी। विनोबा ने वह स्वीकार कर ली। दूसरे दिन प्रात:काल वे सेवापुरी को गये। वहाँ चौथा सर्वोदय सम्मेलन था। श्री कृष्णदास जाजू उस सम्मेलन के अध्यक्ष थे। पुरुषोत्तम दास टण्डन, आचार्य कृपलानी आदि वहाँ उपस्थित थे। साथ थे श्रीमन्नारायण और मदालसा देवी। यहाँ आने तक विनोबा को कुल पाँच हजार भूमि धारकों से एक लाख एकड़ भूमि भूदान में मिली थी। सर्वोदय सम्मेलन में शंकरराव देव ने कहा, "भूमिहीनों को भूदान—यह सर्वोदय की महत्त्वपूर्ण योजना है। प्रत्येक के पास भूमि होगी तो स्वावलम्बन आएगा। उससे अनेक ग्रामोद्योग प्रारम्भ होंगे तथा ग्राम विकास भी होगा। वर्गविहीन-शोषणविहीन समाज का निर्माण ही सर्वोदय की मूल कल्पना है।"

विनोबा ने अपने भाषण में कहा, "समाज ने महाभारत के राजसूय यज्ञ की बात सुनी थी। रामायण के अश्वमेध का घोड़ा भी सुना था। आज वैसा ही प्रजासूय यज्ञ प्रारम्भ हो गया है और जैसे अश्वमेध का घोड़ा चलता है वैसे ही यह भूदान-यात्रा चल पड़ी है। आप सबसे प्रार्थना है कि इस प्रजासूय यज्ञ में अपना हविर्भाग अर्पण करें। इससे समाज अहिंसा के महत्त्व को तो स्वीकार करेगा ही परन्तु इससे समाज में आर्थिक क्रान्ति भी घटित होगी। भूदान के लिए भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है—कौर से कौर देने की प्रवृत्ति है। दूसरी बात यह है कि भूदान में आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में क्रान्ति होने के बीज हैं! और तीसरी बात यह है कि अहिंसात्मक क्रान्ति से विश्व-शान्ति प्रस्थापित हो सकती है। सत्य तो यह है कि जब तक महात्मा गाँधी थे तब तक इन सब बातों का विचार करने की आवश्यकता ही मुझको नहीं पड़ी थी—क्योंकि मेरा स्वप्न था ग्राम विकास! ग्राम का सौन्दर्य!! परन्तु आज मैं इस क्षेत्र में उतर पड़ा हूँ तथा लोगों के भले बुरे वचनों की परवाह न करते हुए कार्यरत रहा हूँ। यह दुष्टता है या सज्जनता है, यह मैं नहीं जानता परन्तु यह ईश्वर का कार्य है, यह मैं प्रामाणिकता से अनुभव करता रहा हूँ।"

विनोबा सर्वोदय के व्याज से भूदान का महत्त्व बताते रहे।

आचार्य कृपलानी बोले, "हमारे पास भूमि होती तो हम दे देते!"

16

विनोबा विचार करने लगे। उन्होंने चरखा लिया और सूत कातना प्रारम्भ कर दिया। जीवन के अनेक अध्याय उन्होंने पढ़े थे। परन्तु अब एक नया ही अध्याय उनके मन में घूमने लगा था। अगली सभा में वे उसका उल्लेख भी करने वाले थे।

जून महीना आधा समाप्त हो गया था। उत्तर प्रदेश खूब सन्तप्त हो रहा था। पूर्व दिशा में उदित होते सूर्य के कुछ क्षणों तक ही सौम्य दर्शन होते, तदनन्तर तत्काल ही तेज धूप काटने लगती! धरती में दरारें पड़ गयी थीं। कुओं में जल का स्तर नीचा और नीचा हो गया था। तालाब सूख गये थे। वृक्ष भी छाया को निगल गये थे। पर्णहीन वृक्षों के ठूँठ से आकार अच्छे नहीं लगते थे। गाँव के वृद्धों का कहना था कि अब की-सी गर्मियाँ पिछले कई वर्षों में नहीं आयी थीं।

किसान बाबा से कहते, "बाबा! हमारे गाँव में आओ। अपने पैर हमारे गाँव में पड़ने दो, पानी बरसने दो!"

जब विनोबा गाँव में प्रवेश करते तब वृद्धों के मुख पर मुस्कराहट छा जाती। युवकों के मुख प्रसन्नता से खिल उठते। विनोबा गाँव में प्रवेश करते उससे पहले ही गाँव जाग जाता था। सारा गाँव झाड़कर स्वच्छ कर दिया जाता था। आँगन में रंगोली सजायी जातीं और दरवाजे को रंग-बिरंगे कलाबत्तुओं से सजाया जाता। क्षण भर को ऐसा लगता जैसे सारी समस्याएँ और सारे दु:ख दूर हो गये हों! स्त्रियाँ हाथों में जलपात्र लेकर आतीं। विनोबा कहते, "बाबा के पैर मत धोओ माता-बहिनो! बाबा कोई देव नहीं है और देवदूत भी नहीं है—साधू-संन्यासी नहीं है। वह तुम्हीं में से एक है।"

"बाबा! तुम देवता हो!"

"नहीं माता! बाबा को देवता मत बनाओ। किसी भी मनुष्य को देवत्व मत दो। बाबा पर केवल विश्वास रखो। तुम जो कुछ दोगे उसको वह लेगा और फिर तुम सबको वह दे देगा। बाबा चमत्कार नहीं करेगा। उसको ऐसा कुछ नहीं आता है।"

सारा गाँव प्रात:काल से ही विनोबा के लिए प्रतीक्षा-रत रहता। सच तो यह था कि यह दृश्य बाबा का चिर परिचित हो गया था। बाबा भाव अभिभूत हो जाते। रोकने पर भी विनोबा की आँखों से जलधाराएँ बहने लगतीं। माता का कथन उनको प्रतिदिन स्मरण होता। माता पूजा करती हुई कहती, 'अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक!' कितनी सच थी उसकी बात! प्रत्येक मनुष्य के मन में ईश्वरत्व वास करता है। ये अनन्त के अनन्त रूप हैं। स्त्रियाँ अपने छोटे बच्चों को विनोबा के चरणों में डालतीं और कहतीं, "बाबा! इस लड़के को आशीर्वाद दो! यह तुम जैसा ही बने!"

विनोबा उस छोटे लड़के को उठा लेते और कहते, "ईश्वर तुम्हारे लड़के को सुखी रखे!"

अनेक प्रसंग घटित हो रहे थे। विनोबा को जीवन के इतने विविध रूप देखने को मिल रहे थे कि जीवन कितना विस्तृत और व्यापक है, इसकी कल्पना वे कर सके थे! अनेक रंगों के फूल हों तथा अनेक रंगों के पत्ते हों और उनका गुण-धर्म एक हो, ऐसा दिखाई दे रहा था। ईश्वर के अनन्त रूपों की, अनन्त गुणों की तथा अनुपम कौशल्य की प्रतीति बारम्बार हो रही थी। विनोबा मन में कहते, हे प्रभो! आपको अनन्त रूपों में देखकर मन बारम्बार गद्गद हो जाता है!

विनोबा चलते जा रहे थे। दूर मेघाच्छादित आकाश उनको दिखाई दे रहा था। उनकी दृष्टि क्षितिज तक पहुँच गयी थी। यदि ये ही बादल वर्षा लेकर आ गये तब...विनोबा के मन में कविता साकार हो उठी...

बरसो रे! सघन घन बरसो रे!
तेरे बच्चे तुझको पुकारते
तृषार्त धरती अकुलायी है
तरु भी लज्जावनत खड़े हैं
ले रही है वेदना अँगड़ाई
कृष्ण सखा घन साँवलिया रे
बरसो रे! सघन घन बरसो रे!
समय कितना...कितना बीत गया
जल की बूँद भी न शेष रही।
नीला आकाश हो गया धूसर
विहग व्याकुल उड़ें गगन में।
न रहा वन वैभव—न रही माया
खेत-खेत में निरत है काया
रवि गाता है अग्नि के गाने
बरसो रे! सघन घन बरसो रे!
अम्बर दिखता है सघन श्यामल
उमड़-घुमड़ रहे हैं बादल
दिखते हैं हरे-हरे फूलों के गुच्छे
वन में मन में फूल रहा आनन्द
कण्ठ में हौले से आता है गाना
शिव-मंगल ईश्वर के
भेजे हुए आप आएँ...बरसें!

विनोबा मन ही मन गा रहे थे। चलते-चलते उन्होंने ऊपर की ओर देखा। पश्चिम दिशा में नीले बादल अब श्यामल हो गये थे। थोड़ी-थोड़ी हवा चलने लगी थी। वे चलते जा रहे थे। गुनगुनाते जा रहे थे। सामने के गाँव की मण्डली उनके पिछले मुकाम से ही उनके साथ थी। और अब तो एक-डेढ़ मील लम्बी लोगों की पंक्ति आ रही थी। रास्ता ऊबड़-खाबड़ था। पर्णहीन वृक्षों के नीचे इतनी भी छाया नहीं थी कि जिसमें क्षण-दो क्षण रुक सकें। परन्तु कुछ ही देर में धूप-छाया का खेल प्रारम्भ हो गया। पश्चिम की ओर के बादल अब आकाश में दौड़ रहे थे। पसीने से तर शरीर को शीतल पवन के झोंके सुखद लग रहे थे। विनोबा का ध्यान अब बार-बार आकाश की ओर जा रहा था।

उसी समय शीतल आर्द्र पवन शरीर को स्पर्श कर गया। कहीं पास ही वर्षा हो गयी थी। लोग चलते-चलते क्षण भर ठहर गये। किसी ने आनन्द से कहा, "वर्षा आ गयी... हमारे गाँव में वर्षा आ गयी।"

अन्य लोग भी कहने लगे, "सचमुच वर्षा आ गयी। गाँव में ही नहीं...यहाँ भी वर्षा आ गयी। बादल अभी पर्याप्त नहीं हैं फिर भी बरसात हो रही है।"

सर्वत्र एक ही बात बार-बार सुनाई दे रही थी—

वर्षा आ गयी...वर्षा आ गयी....वर्षा आ गयी...

रिमझिम रिमझिम बरसात हो रही थी। सबके शरीर भीग रहे थे। मन भी आनन्द से भीगे हुए थे। एक लय में बरसात होने लगी थी।

विनोबा चलते जा रहे थे। हमीरपुर से दो मील दूर मंगरोठ था। हमीरपुर से बहुत पहले विनोबा रुके थे, प्रातःकाल का अल्पाहार करने के लिए। विनोबा केवल दही का सेवन करते थे, वह भी नपा-तुला!

ऐसे ही आज भी अल्पाहार के लिए विनोबा एक बहुत छोटे गाँव में जब ठहरे थे तब एक गृहस्थ पत्नी के साथ विनोबा से मिलने आये और बोले, "मैं दीवान शत्रुघ्न सिंह हूँ और यह मेरी पत्नी मायादेवी। सामाजिक कार्यों में मेरी रुचि है। गाँव में जरूरतमन्द की मैं सहायता करता हूँ। मेरी पत्नी इस कार्य में मेरी सहायता करती हैं। मंगरोठ में आप जाएँगे, भाषण देंगे। सारा गाँव जाग्रत हो गया है। आपका वहाँ स्वागत करने में हमको आनन्द मिलेगा।"

विनोबा ने कहा, "कल ही वहाँ के लोगों ने स्वयं ही एक सौ एक एकड़ भूमि दी थी और आज पुनः..."

"आपने कल कहा था न कि सब भूमि गोपाल की है। गोपाल की इस भूमि को देखने को तो आइए..."

"ठीक है।"

विनोबा ने मंगरोठ गाँव में प्रवेश किया। सन्ध्याकाल की सभा में उन्होंने कहा,

"आपने मुझको पहले ही भूमि दे दी है, भूमिहीनों के नाम दे दिये हैं। फिर भी मैं अब आया हूँ आपसे मिलने के लिए। दीवान शत्रुघ्न सिंह की बातों में गाँव के प्रति आत्मीयता तथा महात्मा गाँधी की सर्वोदय विचारधारा का प्रभाव दिखाई पड़ा। भारत का प्रत्येक गाँव साक्षर होगा। तभी देश साक्षर और स्वतन्त्र होगा और..."

दीवान शत्रुघ्न सिंह अधीर होकर उठे और कहने लगे, "बाबा! आपके चरण हमारे गाँव में पड़े और हमारा गाँव धन्य हो गया। शायद दुबारा आपका इस गाँव में आना नहीं हो सकेगा बाबा! आगत अतिथि को देव समझकर भक्तिभाव से उसकी पूजा करना—यह हमारा तथा सभी का सांस्कृतिक कर्तव्य है। गाँव की ओर से मैं यह भेंट आपको अर्पण करता हूँ।"

उन्होंने अनेक नामों का सूचीपत्र विनोबा को दिया और कहा, "बाबा! पूरा मंगरोठ गाँव हम भूदान में आपको अर्पण करते हैं। हम मंगरोठवासियों की यह भेंट स्वीकार कीजिए बाबा!"

विनोबा ने अपना भाषण अधूरा छोड़ दिया था। वे खड़े ही थे। अब वे बैठ गये। उनकी आँखों से अश्रुधाराएँ बहने लगीं। वे भाषण देने के लिए पुनः खड़े हुए। गद्‌गद स्वर में कहने लगे, "मंगरोठ के सभी भाई-बहिनों को मैं सादर नमस्कार करता हूँ और भेंट में मिली हुई भूमि सहकारी आधार पर कृषि करने के लिए पुनः आपको अर्पण करता हूँ—मंगरोठ गाँव के प्रत्येक व्यक्ति के लिए!"

रात में विनोबा आनन्द से पुलकित हो रहे थे। अधिक तर्क न करनेवाली, अज्ञानी, असंस्कृत यह जनता भक्तिभाव से किसी के चरणों पर अपना सर्वस्व निछावर कर सकती है, इस बात पर उनको असीम आश्चर्य हो रहा था। वे अभिभूत थे। गाँवों में उनको भारतीय संस्कृति का जो दर्शन हो रहा था वह विलोभनीय तथा हृदय में दुगुना आनन्द उत्पन्न करने वाला था। उन्होंने मन में विचार किया—'मेरी माता घर के द्वार के सामने आये प्रत्येक को दान दिया करती थी। तब मुझको क्रोध आता था। उससे कुछ कहता तो वह कहती—विन्या! हम कोई बहुत बड़ा त्याग नहीं करते हैं। एक-दो फुलकी और साग दे देते हैं। यह देना कोई बहुत बड़ा त्याग नहीं है। जब तुमको त्याग करनेवाले लोग दिखाई देंगे तब तुमको अनुभव होगा कि हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं। त्याग का अर्थ बहुत विशाल है विन्या!'

अपढ़ माता के ये विचार ज्ञानी मनुष्य को भी विचारशील कर देते थे। आज की पीढ़ी थोड़ा-सा कुछ करने को ही त्याग समझती है। और उस त्याग का ढिंढोरा भी पीटा जाता है। विनोबा को स्मरण हो आया कि माता चातुर्मास में अथवा अधिक मास में ब्राह्मण को लड्डुओं में रुपये डालकर देती थी। बहुत से रुपये हाथ में लेकर आँखें बन्द कर वह सामने खड़े भिखारी को देती थी। गुप्त दान की यह परम्परा आज तो लुप्त ही हो गयी है। देश के लिए लड़ने वाले तथा जीवन को दाँव पर लगाने वाले

लोग आज रहे ही नहीं हैं। जीवन का उद्देश्य आज उपभोग रह गया है। ऐसे समय में भारतीय संस्कृति की पहचान गाँवों के द्वारा होती है। जब तक गाँव हैं जब तक भारतीय संस्कृति के संस्कार हैं—यह सत्य है।

'ग्रामदान'—यह एक नयी कल्पना विनोबा को अकस्मात् ही प्राप्त हो गयी थी। 'ग्रामदान' कहने पर स्वेच्छा से तो ऐसा ग्रामदान हो नहीं सकता था। उसके लिए आवश्यक था कि कहीं का कोई एक मुख्य मनुष्य गाँव को समझाए, नहीं तो फिर जबर्दस्ती करनी पड़ेगी। अभी-अभी कुछ लोग इसको अत्याचार समझते हैं। ग्राम दान को वे बड़ा अत्याचार समझेंगे।

और ऐसा ही हुआ!

चार-पाँच दिन स्वेच्छा से ग्रामदान कार्यक्रम चलता रहा। विनोबा आनन्दित हुए, साथ ही भयभीत भी हुए। वे अनुभव करने लगे कि आपस में संघर्ष नहीं होना चाहिए। परन्तु अब उनको कुछ माँगने की आवश्यकता ही नहीं रही थी। मार्ग स्वत: ही बनते चले जा रहे थे। एक से दूसरा तथा दूसरे से तीसरा भी!

एक दिन रात के समय विनोबा की कोठरी के पास पाँच-छह मनुष्य आये। गहरी नींद में भी विनोबा ने उनकी आहट सुन ली। वे उठकर बैठ गये और हाथ जोड़कर उनसे बोले, "क्या चाहिए? जो मेरे पास है वह तुम ले लो!"

"हम तुझको ही खतम करनेवाले हैं।"

"करो। मुझको अवश्य मारो। लेकिन कारण तो बता दो!"

"कारण जानकर क्या करेगा?"

तीन ने विनोबा को पकड़ लिया। एक ने हाथ में हँसिया ले लिया।

"बाबा की बात सुन लो फिर मार देना। कारण बता दो फिर मार दो!"

"तू गाँव में जाता है और सारी जमीन अपने अधिकार में कर लेता है, सारा गाँव ले लेता है और कुछ भी नहीं छोड़ता है।"

"तुम जमींदार के वफादार नौकर हो न?"

"उससे क्या मतलब?"

"भाई, तुम्हारे मालिक के पास खूब जमीन है। तुम्हारे पास कोई कमी नहीं है। तुम्हारे बीवी-बच्चों के पास कोई कमी नहीं है। परन्तु जो दूसरों के खेतों में खून-पसीना एक करते हैं और फिर भी जिनको पेट भरने तक को नहीं मिलता है। मालिक के अत्याचार उनको सहन करने पड़ते हैं, ऐसे लोगों को अपने स्वामित्व की भूमि मिल जाए तो कौन इनकार करेगा?"

"परन्तु यह जमीन जमींदार के पास पहले से चली आ रही है!"

"आ रही होगी! परन्तु सारी भूमि ईश्वर की है। उसने तो आकाश से बँटवारा नहीं कर दिया है और फिर अपने ही भाइयों को यह देनी है। मेरे पास तो एक टुकड़ा भी उसका नहीं है!"

मारनेवाले थोड़ी देर स्तब्ध रहे।

विनोबा बोले, "बाबा भी एक डाकू है। परन्तु वह ऐसा डाकू है जो लेता है, लूटता है और बाँट देता है। और मान लो अगर बाबा जमीन को ले ही लेता तो वह फिर कहाँ-कहाँ घूम सकता था? भारत देश कितना बड़ा है, यह तुम्हें कैसे मालूम होगा?"

वे पाँच-छह मनुष्य अपनी भाषा में बातें करने लगे। उनमें से एक बोला, "हम गलती से यहाँ आ गये। हमको किसी और को मारना था!"

विनोबा ने कहा, "तो फिर बैठो थोड़ी देर! देखो मित्रो! बाबा यह नहीं कहेगा कि तुम किसी को मत मारो परन्तु बाबा को किसी का जीव लेना अच्छा नहीं लगता है। मान लो तुम पाँच में से किसी का जीव ले लिया जाय तो क्या होगा? उसके बीवी-बच्चे अनाथ हो जाएँगे। अपना मन जीवन भर पश्चात्ताप करता रहेगा, क्योंकि उस मनुष्य को जीवित करने की शक्ति अपने पास नहीं है। यह सच है न?"

उन लोगों की आँखें भर आईं। इस तरह समझदारी की बात उन्होंने कभी नहीं सुनी थीं। कभी इस प्रकार विचार भी नहीं किया था। बहुत देर तक वे लोग बैठे रहे। फिर जब वे लौटे तब आधी रात बीत चुकी थी। विनोबा बाहर आये।

आकाश में बादल घिरे हुए थे। जब कभी बादल का टुकड़ा सरक जाता तभी तारों का समूह चमकने लगता। विनोबा ने आकाश की ओर देखकर हाथ जोड़े और कहा, "हे ईश्वर! तू अनन्त है, अरूप है, अनुपम हैं, सुन्दर है—इसकी प्रतीति होने दे! स्नेहार्द्र! बरस। धरती को सुफला होने दे! जलौघ अविरत बहने दे! कण-कण में हरा वैभव प्रकट होने दे!"

विनोबा पुन: कोठरी में आये। मन्द-मन्द जलती हुई लालटेन बुझायी और कन्धे पर अँगोछा डालकर वे बाहर निकले। शीतल पवन चलने लगा था। आसपास कहीं वर्षा हो गयी थी। पवन के साथ मिट्टी की सुगन्ध भी आ रही थी। उनका मन प्रसन्न हो गया। उनके मन में विचार आया—'मुझको राजनीति नहीं चाहिए, समाजनीति नहीं चाहिए, अर्थनीति नहीं चाहिए, मुझको मन से चाहिए था निसर्ग! मुझको चाहिए था ईश्वर! मुझको चाहिए था निराकार का रहस्य—उसका साक्षात्कार! परन्तु मैंने वह मार्ग छोड़ दिया और यहाँ तक आ गया। कारण यह था कि बापू में कर्मयोग मैंने देखा—अध्यात्म मैंने देखा तथा ईश्वर का निरामय-अनुपम हास्य और प्रसन्नता अनुभव की। आज बापू नहीं हैं, परन्तु उनके मार्ग से अलग हटकर चलने का विचार कभी मन में आया ही नहीं! परन्तु जो काम कभी मन में नहीं था, वह अनजाने हो गया और मैं उसमें ही अधिकाधिक उलझता चला गया। एक दृष्टि से यह अच्छा ही हुआ। मनुष्य की विविध भावनाओं की तथा देवस्वरूप स्वभावों की जानकारी मुझको हुई और उस अनन्त के अनन्त रूप मनुष्य में देखकर मैं अभिभूत हो गया। पहले भूदान मिला फिर

ग्रामदान मिला। अब कौन-सा दान माँगा जाय?

आयुष्य का दान माँगा जाय?

जीवन के ध्येय का दान माँगा जाय?

या फिर मैं जो मन में आए वह माँगता फिरूँ?

यह माँगना मेरा धर्म है क्या?' विनोबा विचार करते-करते आये। नियमित प्रार्थना आज कोठरी के बाहर आँगन में हुई। प्रार्थना के बाद एकत्र लोगों के सम्मुख विनोबा कहने लगे—

"सर्वोदय का अर्थ मैंने अनेक बार बताया है। 'साम्यवाद' इस शब्द में 'वाद' की भी अपेक्षा है। सबको समान देने में, कुछ से ले लेने में वाद तो होगा ही। साम्य रखना, समता रखना, वर्चस्व को समाप्त कर देना इसमें वाद हो सकता है परन्तु 'सबका विकास' इस शब्द के अनुसार जिसके पास अधिक हो और जिसके पास बिल्कुल ही न हो उसको देते समय 'वाद' के बजाय प्रेम से दिया जाय। स्वयं ही देना चाहिए। बाबा तो केवल विचार प्रस्तुत कर सुप्त प्रेम भावना को जाग्रत कर सकता है और कह सकता है अरे भाई! उसके पास कमी है या उसके पास बिल्कुल नहीं है। तेलंगाना में एक मनुष्य ने सौ एकड़ भूमि दी और जब वह भूमि हरिजनों को बाँटी तब उनके मुख पर आयी भावना तथा आँखों से बहनेवाले आनन्दाश्रु देखकर मन गद्‌गद हो गया। उसके बाद, भूदान माँगना तथा जिनके पास नहीं है उनको भूमि देना, यह नया मार्ग शुरू हो गया और परसों मंगरोठ में सम्पूर्ण गाँव का दान मिला तथा सामूहिक कृषि का नया सूत्रपात हुआ। 'सबै भूमि गोपाल की'—यह भावना उत्पन्न हुई। दीवान शत्रुघ्न सिंह और उनकी पत्नी ने मंगरोठ के लोगों को समझाया कि 'अपने गाँव की जनसंख्या है 585 तथा यहाँ 107 परिवार रहते हैं। इनमें 65 परिवारों के पास भूमि है। उसको हम समान बाँट देते हैं तथा इससे गाँव को स्वयं पूर्ण करते हैं। यहीं सागभाजी पैदा होगी, खेती से अन्न पैदा होगा, कपड़ों के लिए कपास पैदा होगी, चरखा चलेगा और गाँव स्वयंपूर्ण होगा।' और यह विचार सबको अच्छा लगा।

इस प्रकार सभी गाँव सामूहिक पद्धति से कार्य करने लगें, तो यही सर्वोदय है। परन्तु आज बाबा सर्वोदय की एक और कल्पना प्रस्तुत करने वाला है। आप मन में सोचेंगे कि यह बाबा बावरा है। लगातार माँगता रहता है। तीन हजार सात सौ पचास मील की बिहार प्रदेश की इस यात्रा में असंख्य अनुभव प्राप्त हुए। दो सौ सत्तावन गाँवों में बाबा ने विश्राम किया। और बारह हजार भूदान करने वाले लोगों से बाबा को लगभग तीन लाख एकड़ भूमि मिली। वह भूमि भूमिहीनों को बाँट दी गयी। सत्य यह है कि जब कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इकट्ठे आकर मुझसे कहा, 'बिहार राज्य में आगे भूमि की समस्या रहे ही नहीं, यदि आप यह चाहते हैं तो बाबा यहीं कुछ समय तक रहें।' तदनुसार मैं एक वर्ष से यहाँ हूँ। अभी कुछ समय और रहूँगा।

परन्तु बाबा चिर अतृप्त है। उसको बहुत कुछ चाहिए। बाबा को चाहिए— सम्पत्तिदान! जैसे-जैसे भूदान का कार्य बढ़ा है, चित्र अधिकाधिक स्पष्ट हो गया है। सम्पत्तिदान से वह चित्र स्पष्ट हो जाएगा। इससे सर्वोदय अधिक स्वच्छ होगा। बाबा स्वयं सम्पत्ति का छठा हिस्सा माँगेगा। परन्तु सम्पत्ति कितनी है—यह बाबा नहीं पूछेगा। उसने कितनी दी, यह भी बाबा नहीं पूछेगा। परन्तु समाज से हमने जो सम्पत्ति प्राप्त की है वह सम्पत्ति पुन: समाज तक पहुँचाना—यह प्रत्येक का नैतिक कार्य है। यदि यह कार्य नहीं हुआ तो समाज में विषम खाई तो उत्पन्न हो ही जाएगी परन्तु जिनके पास सम्पत्ति है उनके सामने यह प्रश्न खड़ा होगा कि सम्पत्ति का विनियोग कैसे करें? मनुष्य को जीने के लिए चार रोटियाँ—एक कटोरी दाल-साग और थोड़ा-सा भात चाहिए। यही आहार वह दिन में दस बार नहीं खा सकता है। सोने के लिए साढ़े छह फुट लम्बी और तीन फुट चौड़ी जगह चाहिए। इन आवश्यकताओं को छोड़कर शेष जो बढ़ जाता है वह ऐश्वर्य है।

इस ऐश्वर्य का छठा हिस्सा प्रत्येक धनी मनुष्य को समाज को देना चाहिए। पहले इसको पुण्यकर्म कहते थे। सम्पत्तिदान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण दान माना जाता था। लोग सम्पत्ति का दान कर विद्यालय खोलेंगे, कारखाने खोलेंगे, धर्मशाला तथा प्याऊ बनवाएँगे तथा कुएँ खुदवाएँगे तो भावी पीढ़ी के कितने ही लोगों को उनसे सहारा मिलेगा। धनी मनुष्य वटवृक्ष-जैसा होना चाहिए। अनेक पथिक उसके नीचे विश्राम करेंगे, अनेक पक्षी उस पर अपने घोंसले बनाएँगे! एक धनी अनेक संसारों को सहारा देकर खड़ा करता है। धनी में धन से प्राप्त होने वाली सामर्थ्य होती है। यह सामर्थ्य हिंसक शक्ति को तथा राजसत्ता को आह्वान देकर लोकशक्ति जाग्रत कर सकती है। इसलिए आज से अर्थात् 24 अक्टूबर सन् 1952 से तथा इस नगरी से ही मैं 'सम्पत्ति-दान दो' यह कहते हुए घूमूँगा। आगे क्या होगा, यह शीघ्र ही मालूम हो जाएगा। बाबा ब्राह्मण है। दान लेना उसका धर्म है तथा दान को लौटाना उसका स्वभाव है। मेरी अपेक्षा है कि बिहार में पच्चीस लाख एकड़ भूमि मिले।"

विनोबा ने अपना भाषण समाप्त किया। परन्तु किसी ने सहर्ष ताली नहीं बजायी! मण्डली उठकर चली गयी। उसमें अनेक धनी थे और अनेक आवश्यकता-पीड़ित भी थे। प्रार्थना के बाद विनोबा चलने लगे। तब दो सज्जन शीघ्रता से आये और बोले, "बाबा! भूदान-ग्रामदान ठीक तो था लेकिन पीढ़ियों से चली आती हुई जमीन में से जमीन देने में मन कैसा टूटता है, इसकी कल्पना आप कभी कर ही नहीं पाएँगे!"

बाबा ने कहा, "उसकी कल्पना मैं कर सकता हूँ।"

उनमें से एक बोला, "आप कैसे कर सकते हैं? आप अपने पास से देते ही क्या हैं? मनुष्य अपने बच्चों के लिए, पत्नी के लिए तथा उस पर आश्रित वृद्धों के लिए जीता है। मान लीजिए कि मेरी आय तीन सौ रुपये वार्षिक है। घर मैं अकेला ही

कमानेवाला हूँ। इस दशा में अगर छठा हिस्सा मैं देता हूँ तो फिर मेरे पास जो खेती रह जाएगी उससे घर की गाड़ी जैसे-तैसे चल पाएगी। मेरी नौकरी के पैसों से ऊपर का खर्च भी नहीं चल सकेगा क्योंकि मेरे तीन लड़के हैं, दो पढ़ने वाले नाती हैं तथा वृद्ध माता-पिता हैं और दो हम हैं। एक विधवा बुआ और एक विधवा बहिन है। बताइए क्या खाएँ और क्या दें? इसीलिए मैं कहता हूँ बाबा! कि आप ब्रह्मचारी हैं, घुमक्कड़ हैं, आपके लिए तो यह सम्भव है। खेती का और सम्पत्ति का छठा हिस्सा देकर आप इतने बड़े कुटुम्ब को चला सकेंगे?"

दूसरा बोला, "बाबा! आपको गृहस्थाश्रम की वास्तव में जानकारी नहीं है। घर की समस्याओं का ज्ञान नहीं है। कभी बच्चे विकलांग होते हैं, अन्धे होते हैं। परित्यक्ता स्त्रियाँ होती हैं। ऐसे समय में यह दान देना मूर्खतापूर्ण लगता है। आपकी संस्कृति त्याग पर स्थित होती। परन्तु ऐसी संस्कृति का पालन क्या वे लोग करें जो अनेक समस्याओं से जूझ रहे हैं? ऐसी संस्कारशील संस्कृति की जड़ ही काट देनी चाहिए। दान दें कहाँ से? अगर देते हैं तो इसका अर्थ होगा बच्चों के मुख का कौर देना और नहीं देते हैं तो मूर्ख-कंजूस और समाजविरोधी कहलाते हैं! बाबा को देंगे तो बाबा खुश होंगे? नहीं तो उनके लोग जबर्दस्ती करेंगे! यह जुल्म-जबर्दस्ती नहीं है क्या? ऐसे बहुत से लोगों से आप कितना शाप लेंगे?"

पहले ने कहा, "और कितने लोगों से उनका अधिकार छीनेंगे?"

दूसरा बोला, "बाबा! कृपा करके अपना भूदान-ग्रामदान-सम्पत्तिदान रोकिए और लौट जाइए। जब तक आप अपने पास से कुछ भी नहीं देते हैं तब तक आपको लोगों से कहने का कोई अधिकार नहीं है। मैं आपसे स्पष्ट कहता हूँ कि आप यहाँ के लोगों को धोखा दे रहे हैं।"

विनोबा ने पूछा, "सो कैसे?"

अब तक वे दोनों ही बोल रहे थे। अब विनोबा ने पूछा तो उनमें से एक बोला, "स्वयं को बड़प्पन देकर स्वयं को धोखा देते हैं और जो गाँव के सीधे-सादे जमींदार हैं, उनको धोखा देते हैं। ये जो जमींदार हैं वे सबके सब अत्याचारी नहीं हैं। वर्षों से छोटे लोगों ने इन जमींदारों को देवता मान रखा है। आप यहाँ से लौट जाइए बाबा!"

विनोबा को आज पहली बार स्पष्टीकरण देना कठिन लगा। आज तक अनेक आरोप उन पर लगे थे। अनेक स्थानों पर उनको मारने की धमकियाँ भी दी गयी थीं। जमींदारों के पास पहले से चली आयी हुई जमीन माँगते समय विनोबा ने केवल यह विचार किया था कि वह समाज में सबको मिलेगी और सब सुखी रहेंगे। और जब जमीन माँगने लगे तब जमींदारों ने स्वयं ही जमीन दी! किसी पर जबर्दस्ती नहीं की थी। परन्तु फिर आगे चलकर लोग स्पर्धात्मक ढंग से जमीन देने लगे थे—'तुमने इतनी दी है क्या? तो फिर मैं इतनी देता हूँ।' यह प्रतिष्ठा का विषय बन गया था। अनेक

बार कार्यकर्ता भी 'सर्वोदय' को जमींदारों के गले में उतरवाकर उनको जमीन देने को मजबूर कर देते थे।

विनोबा यह सब कुछ जानते थे। समाज में जब कुछ परिवर्तन लाना होता है तब कहीं समझौता, कहीं बल प्रयोग और कहीं त्रास होता ही है परन्तु इन दो मनुष्यों के आरोप अब तक लगाये गये आरोपों से भिन्न थे। इनका विचार विनोबा के मन में आया ही नहीं था। इसलिए उन्होंने विचलित होकर कहा, "भाइयो! आपकी सब बातें मैंने सुनी हैं। बाबा ने आप सब लोगों को बहुत कष्ट दिया है, यह बात बाबा स्वीकार करता है। उसको क्षमा कर दीजिए! आपने कहा था, 'तुमने क्या दिया है? देते समय कैसा लगता है, यह बात तुम क्या जानो? गृहस्थाश्रम के सुख-दुःख तुम क्या समझोगे?' आपका कहना बिल्कुल ठीक है। यह भी सच है कि पराये दुःख को समझना अति कठिन है। परन्तु यह सब करने में, सबका क्रोध अपने ऊपर लेने में बाबा का स्वार्थ आखिर क्या है? सबसे भूमि माँगना और फिर उसको बाँटते फिरना, यह बाबा का सनकीपन है क्या? आपके जैसे अनेक घटक समाज में हैं। अपनी दृष्टि में केवल अपना परिवार ही रहता है। इसीलिए हम औरों की ओर नहीं देखते हैं। बाबा उनकी ओर भी देखने को प्रेरित करता है। बाबा यही काम करता है बस! तो फिर मैं लौट जाऊँ? बाबा कोंकण का है। महात्माजी के कारण बाबा सेवाग्राम में आया और फिर पैरों में मानो चक्कर लग गया और वह घूमता रहा। आप लोग चाहें तो अब लौट जाऊँगा। भूमि-गाँव और आपकी सम्पत्ति का उसको क्या करना है!"

विनोबा सच्चे मन से बोल रहे थे। उनके पास देने के लिए कुछ नहीं था, यह बड़ी दुःखद अनुभूति थी। उनकी तीव्र इच्छा हुई कि यदि उनके पास निसर्ग होता तो वे उसको धरती को प्रदान कर देते! मेरे पास तपस्या से प्राप्त की हुई सिद्धि होनी चाहिए थी। मैं उससे प्रति सृष्टि का निर्माण कर वह इस समाज को दान कर सकता था। 'जिसके पास देने के लिए कुछ नहीं है उसको माँगने का क्या अधिकार है?' इस प्रश्न का उत्तर स्वयं को देते हुए वे विचारमग्न हो गये और विचार करते-करते थक गये!

दिन के बाद दिन बीत रहे थे। दिन भर का कार्यक्रम लगभग निश्चित होता था। दिनभर चलना। गाँव में विश्राम-सभा-भूदान की माँग। भूदान के साथ ही ग्रामदान और सम्पत्तिदान की माँग। और फिर उनका व्यवस्थित बँटवारा! इसी में दिन बीत जाता और रात आ जाती! फिर असंख्य लोग आकर मिलते थे। सोने में देर होती।

मदालसा देवी कहतीं, "बाबा! स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ेगा। दिनभर परिश्रम करने के बाद विश्राम नहीं करना चाहिए क्या? लोग तो आते ही रहेंगे। उनको मना कर दीजिए!"

विनोबा कहते, "यह कैसे सम्भव है ? इस गाँव में या अन्य किसी गाँव में दुबारा आना कभी होगा ही नहीं। उनकी दो बातें तो सुननी चाहिए न!"

मदालसा देवी ने कहा, "परन्तु बाबा..."

बीच में ही टोककर विनोबा बोले, "स्वास्थ्य की चिन्ता मत करो। यमदूत के पाश इतनी जल्दी गले में नहीं पड़ेंगे!"

इधर विनोबा यह कह रहे थे और उधर उनको तीव्र ठण्ड से कँपकँपी आने लगी। यह चाण्डील गाँव छोटा-सा ही था। चारों ओर तालाब और झाड़ियाँ थीं। मच्छर भी बहुत थे। इस पर वर्षा भी प्रारम्भ हो चुकी थी। विनोबा जब ठण्ड से काँप रहे थे तब उनके साथ रहनेवाले डॉक्टर नगर में अपनी बेटी के पास चले गये थे। कुछ स्थानों पर ठहरने के बाद वे आकर मिलने वाले थे।

रात का समय था। बरसात हो चुकी थी। सर्वत्र उमस भरा वातावरण, उसमें रात का अन्धकार और फिर मेढकों का साथ! विनोबा की देह पर चार कम्बल डाल दिये थे फिर भी उनकी ठण्ड कम नहीं हो रही थी। गाँव से किसी डॉक्टर को बुलाया जाए तो इतना बड़ा गाँव नहीं था। छोटे-बड़े लगभग चार सौ घर थे! सभी रात भर जागते रहे। प्रात:काल हो गया। विनोबा का कृश शरीर अब भी काँप रहा था। सत्य यह था कि वे थक गये थे। सैकड़ों मील चलने से उनको थकान व्याप गयी थी। प्रात:काल के बाद उनकी ठण्ड कम हुई और उनका शरीर गर्म होने लगा। फिर उनको तीव्र ज्वर चढ़ा फिर भी विनोबा उठकर बैठने का प्रयास करते हुए बोले, "आज की प्रार्थना शायद देर से प्रारम्भ होगी!"

किसी ने कहा, "बाबा! प्रार्थना तो समय पर ही हुई है। आपको ठण्ड लगना अभी-अभी कम हुआ था और फ़िर आपका शरीर गरम होने लगा था, इसीलिए किसी ने कुछ नहीं कहा था!"

विनोबा उठकर बैठ गये थे। उन्होंने कहा, "प्रार्थना हो गयी और बाबा प्रार्थना में नहीं पहुँचे, यह उचित नहीं हुआ। चलो, अगले मुकाम के लिए चलते हैं!"

कोई बोला, "बाबा! आपको तेज बुखार है। डॉक्टर कहेंगे तभी चलेंगे हम लोग!"

विनोबा उठकर कोठरी के दरवाजे के पास गये और तभी उनका सन्तुलन बिगड़ गया। वे दरवाजे के पास गिर पड़े। उनको उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया गया। तभी उनको तीव्र ज्वर ने अचेत-सा कर दिया। कोई पानी की पट्टियाँ माथे पर रख रहा है, इतना ही वे जान सके।

गाँव में एक वैद्य था। एक मान्त्रिक भी था। समाचार मिलने पर दोनों ही दौड़ते आये। परन्तु विनोबा का तीव्र ज्वर—कृश शरीर तथा उनको घेरकर बैठे अनेक लोगों को देखकर वैद्य घबड़ा गया। यदि मेरे हाथ से कोई गलती हो गयी तो ? इससे तो अच्छा यह है कि शहर का वैद्य बुला लिया जाय! उसने यह स्पष्ट कह दिया।

मान्त्रिक बोला, "इन बाबा के सिर में एक भूत है। उसको निकालना चाहिए।"

विनोबा ने अर्धचेतनावस्था में उसका कथन सुना। वे बोले, "तुम ठीक कहते हो भाई! बाबा के सिर में एक भूत है। उस भूत को कोई भी नहीं निकाल सकता है। यदि तुम उसको निकालोगे तो तुमको देने के लिए बाबा के पास स्वयं का एक धेला भी नहीं है। जब कोई स्वयं का कुछ दे नहीं सकता है तो फिर उसको किसी से लेने का ही क्या अधिकार है? जा भाई, तू जा!"

मान्त्रिक लौट गया। गाँव के लोग चार-पाँच गाँवों में घूमकर ढूँढ़कर एक कुशल वैद्य ले आये। सन्ध्या समय बड़ी जोर की ठण्ड लगी थी। पुनः तीव्र ज्वर आ गया था। विनोबा अर्धचेतनावस्था में थे। किसी ने उनके कान के पास कहा, "अरे यही हैं वे बाबा!"

"कौन से?" किसी ने पूछा।

"एक गाँव में प्रार्थना के बाद हम दोनों बाबा से मिले थे।"

विनोबा ने आँखें खोलीं, सामने जाना-पहचाना चेहरा आ गया। उन्होंने हँसकर कहा, "बुखार मच्छरों से नहीं आया है। वह तो उस दिन आपकी बातों से आया है। कृपा करके मुझको औषध मत दें, आप लोग यहाँ से चले जाएँ!"

"बाबा! मेरी बात का बुरा मान गये और स्वयं को इतना कष्ट दे दिया?"

"यह बात नहीं है। मैंने तो यों ही कह दिया था। सच तो यह है कि मैं आपके कथन को भूल ही नहीं सका। जिसके पास देने के लिए कुछ नहीं हो वह दूसरों से माँगे ही क्यों? इस कथन ने हृदय को घायल कर दिया। परन्तु मुझको उससे ज्वर आ गया है, ऐसी बात नहीं है। वैद्यराज! बाबा को औषध नहीं चाहिए!"

"क्यों? मुझ पर क्रोध के कारण?"

"बाबा का किसी पर क्रोध नहीं है।"

"तो फिर औषध ले लीजिए!"

"नहीं! औषध नहीं चाहिए।"

"मैं अपने श़ब्द वापस लेता हूँ!"

परन्तु विनोबा का आग्रह अटल था। तीन दिनों तक यही चलता रहा। वैद्य रामनाथ निरन्तर उनके पास था। देह में तीव्र ज्वर होने पर भी वे शीतल जल से स्नान करते, प्रार्थना गाते, चरखे पर सूत कातते और लोगों से सहज वार्तालाप करते। हाँ, भोजन नाममात्र को ही करते। यह सब देखकर रामनाथ चकित हो गये थे। जब ठण्ड से कँपकँपी आने लगती—दाँत किटकिटाने लगते और दुर्बल शरीर जोर से हिलने लगता तब विनोबा कम्बलों का बोझ सहन करते हुए चुपचाप पड़े रहते। रामनाथ जब व्याकुल होकर अनेक प्रकार से समझाते तब विनोबा हँसकर कहते, "वैद्यराज! जो हो रहा है वह बाबा को होने दीजिए! बाबा की देह में जो आत्मा है वह सदा प्रसन्न और मुक्त है।"

रामनाथ उलझन में पड़कर पूछते, "सो कैसे?"

तब वे कहते, "बाबा के मन में एक सुन्दर-पवित्र-निरागस् आत्मा है। वह आनन्द से परिपूर्ण है। यह आत्मा चिरन्तन प्रफुल्ल कमल-जैसा है। निश्चय ही यह प्रफुल्ल कमल लक्ष्मी के चरण-तल का है—क्योंकि वह दैवी सुगन्ध से परिपूर्ण है। इस आत्मा में मैं रहता हूँ। देह के दरवाजे बन्द कर लेने पर आत्मा का अनुपम लावण्य दिखाई देने लगता है, झिलमिलाने लगता है। और फिर उस आत्मा को मैं मुक्त रूप से सहज ही ईश्वर के समीप पहुँचा देता हूँ। देह के कष्ट देह को भोगने दीजिए। आत्मा देह को भी संजीवनी देता रहेगा।"

विनोबा की ऐसी बातें सुनकर रामनाथ उनके मुख की ओर देखते रहते और विचार करते कि इस दुबले-पतले बाबा के पास न जाने ऐसी कौन-सी शक्ति है कि मैं उनकी बातें सुनता रहता हूँ और औषध हाथ में ज्यों की त्यों पड़ी रहती है!

दिन बीतते जा रहे थे। प्रतिदिन आनेवाले शीत ज्वर के कारण विनोबा चलने में असमर्थ थे। वे औषध नहीं लेते थे और न भोजन ही ठीक से करते थे। ठण्ड लगना समाप्त होने पर उनकी दिनचर्या प्रारम्भ हो जाती। रात में वे लिखते। पीठ में दर्द होता, गर्दन सीधी रखना कठिन हो जाता, ज्वर के कारण आँखों से पानी बहता, फिर भी वे लिखते!

राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद का पत्र आया। पत्र में उन्होंने लिखा था, 'देह में आसक्ति न हो फिर भी देह को नीरोग रखने के लिए औषध सेवन करना चाहिए। प्रकृति में परिवर्तन होने पर औषध सेवन अनिवार्य हो जाता है।'

प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू का पत्र आया :

> 'विनोबा जी! आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, यह पता चला और मैं चिन्तित हो उठा। बापू के स्वर्गवास के बाद जो एक खालीपन निर्मित हो गया था वह आपके स्मरण मात्र से ही भर उठा और तब मानो बापू ही मिल गये!
>
> आपका भूदान-कार्य, ग्रामदान, सम्पत्तिदान, सामूहिक कृषि तथा ग्रामविकास इनके विषय में जब कोई गम्भीरता से बोलता है तब मुझको बापू की प्रतिमा का स्मरण होता है। उस प्रतिमा के पास ही आपकी प्रतिमा होती है। बापू के जीवन के आदर्श-सिद्धान्तों के आप उत्तराधिकारी हैं। देखने में और व्यवहार में बापू और आप सदैव एक-से ही लगे हैं।
>
> विनोबा जी! मेरा आधार आप हैं। निर्वासितों का कार्य करने के लिए आप जब दिल्ली में आये थे तब इन्दिरा मेरे पीछे पड़ी थी, 'मैं विनोबाजी से मिलना चाहती हूँ।' मैंने भी जरा चकित होकर उससे पूछा, 'मिलने की इतनी उत्सुकता क्यों है?' उसने श्रद्धापूर्वक कहा, 'वे अत्यन्त महान हैं!' मैंने पूछा, 'सो कैसे?' वह बोली, 'कैसे का क्या मतलब? स्वयं बापूजी ने उन पर लेख लिखा है।

सारा संसार विनोबा को जान गया है। मुझको उनसे मिलना है। और हम दोनों राजघाट के पास झोंपड़ी में आपसे मिलने गये थे।

इन्दिरा आपको देखकर प्रसन्न हो गयी थी।

शायद आपकी प्रतिमा उसकी अपेक्षा के अनुरूप ही थी। आपका मधुर भाषण, फिर भजन गाना, एकाग्रता, शालीनता और अत्यन्त सीधापन देखकर वह लौटते समय मुझसे बोली, 'विनोबाजी बिल्कुल बापू जैसे हैं परन्तु वे देश के प्रधानमन्त्री या राष्ट्रपति कभी नहीं हो सकते हैं।' मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ और मैंने पूछा, 'सो क्यों?' वह बोली, 'कारण यह है कि देव पुरुषों का स्थान किसी भी कुर्सी पर नहीं होता है। उनका स्थान होता है समाज के मन के आदर्श देव-आसन पर! उनका यह स्थान अटल होता है। राजनीति की कुर्सी की तरह इस स्थान को टिकाऊ बनाने को हाथ-पैर नहीं मारने पड़ते हैं।'

उस दिन इन्दिरा बहुत-बहुत बोली थी। अगर किसी और की इतनी अधिक स्तुति उसने मेरे सामने की होती तो शायद मुझको अच्छी न लगी होती परन्तु आप तो मेरे कभी प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहे हैं, इसलिए मैंने इन्दिरा का कथन मुक्त मन से स्वीकार कर लिया।

अब आपके स्वास्थ्य के विषय में जब मैंने इन्दिरा से कहा तब वह बोली, 'विनोबाजी को शीघ्र स्वस्थ होने के लिए औषध लेनी ही चाहिए।' मैं तो कहता ही हूँ विनोबाजी! परन्तु जिसकी आप पर अत्यन्त श्रद्धा है, उसके लिए औषध लेकर आप शीघ्र स्वस्थ होइए! मैं आपको क्या कहूँ? कहेंगे तो आप ही मुझसे! अधिक क्या लिखूँ? इन्दिरा भी आपको पत्र लिखना चाहती थी। शायद वह आपसे मिलने भी जाएगी।'

पंडित जवाहरलाल का पत्र पढ़कर विनोबा के मुख पर प्रसन्नता छा गयी। उन्होंने शीघ्रता से कहा, ''वैद्यराज रामनाथ को बुलवाइए!''

यह सुनते ही वैद्यराज दौड़ते आये। विनोबा ने हँसते हुए औषध के लिए हाथ आगे कर दिया। वैद्यराज ने तत्काल उनके हाथ पर कुनैन की गोलियाँ रख दीं।

विनोबा ने पूछा, ''जड़ी-बूटी कहाँ हैं वैद्यराज?''

वैद्यराज बोले, ''कल डॉक्टर आये थे। उन्होंने ही ये गोलियाँ दी हैं।''

उस गोली से विनोबा को एकदम अच्छा लगा। तब उन्होंने विचार किया, 'यह सच है कि मैंने कोई औषध नहीं ली है, परन्तु अन्त में औषध लेनी ही पड़ी। मनुष्य कितना ही गर्व कर ले परन्तु कभी न कभी इस प्रकार झुकना ही पड़ता है। अखण्ड ईश्वर चिन्तन, अखण्ड परिश्रम, अखण्ड चलना, फिर भी शरीर मन से अलग होकर थक जाता है तथा अस्वस्थ भी हो जाता है, यही सत्य है!'

विनोबा के शरीर की शक्ति एक महीने के उस मलेरिया से इतनी नष्ट हो गयी कि उनसे चार पग चलना कठिन हो गया। तब उनको स्वयं पर ही आश्चर्य हुआ, 'मैं

मीलों तक चलता रहा। गर्मी-बरसात और शीतकाल में लोग जो दे देते थे, वही खाता रहता था। मैं यही समझता था कि मेरी दुबली-पतली शरीरयष्टि साधारण मनुष्य से अधिक अच्छी है। मेरा वह समझना समाप्त हो गया और अन्त में यह हलचल करनी पड़ी।' फिर विनोबा ने 'दासबोध' हाथ में ले लिया। 'मन के श्लोकों' का अच्छी तरह वर्गीकरण किया। 'दासबोध' के अनेक प्रसंगों से वे प्रभावित हुए और उन्होंने रामदासस्वामी का स्मरण किया। बारह वर्ष की अवस्था में रामदास स्वामी विवाह के अवसर पर घर से भाग गये थे और फिर निरन्तर बारह वर्षों तक चलते रहे थे। उस समय उन्होंने समाज का जो अध्ययन और सूक्ष्म निरीक्षण किया उससे निर्मित हुआ 'दासबोध'। समाज की घटनाओं का विवेचक अध्ययन उन्होंने भावी पीढ़ी के लिए ऐसे रख दिया जैसे कूड़ा-करकट निकालकर धुनकर कपास को रख दिया हो! विनोबा को अनुभव होता कि वे रामदास स्वामी से जुड़े हुए हैं। वे भी तो भाग गये थे! वे भी तो फिर रहे थे! परन्तु ऐसा 'दासबोध' लिखना सरल नहीं था। वास्तव में यदि प्रतिदिन एक-एक अनुभव वे लिखते तो सामाजिक मन के स्पन्दन को वे सरलता से लिख सकते थे। ऐसा प्रयत्न उन्होंने अनेक बार किया भी था परन्तु किसी-किसी घटना के बाद उनको तत्काल गीता या दासबोध का स्मरण हो आता। उनको लगता कि यह सब पहले ही लिखा जा चुका है।

दासबोध की प्रत्येक पंक्ति में विनोबा को अनुभूति का सुवर्ण स्पर्श प्रतीत होता और उनका मन आनन्द से परिपूर्ण हो उठता। सम्पूर्ण समाज को ही प्रबोधित करने के लिए रामदास स्वामी का प्रयुक्त 'दासबोध' अमोघ शास्त्र था। 'दासबोध' के मन के श्लोक मन को व्यवस्थित कर रहे थे, भटकते हुए तथा स्वच्छन्द दौड़ते हुए मन को रोकते थे, मन को शिक्षित कर रहे थे।

धुलिया के कारागार में मन की एक अलग ही अवस्था थी। उस समय मन में एक हलचल थी। गीता के सन्दर्भ में प्रवचन देते समय उनके मन में श्रीकृष्ण थे, उनका तत्त्वज्ञान था, पिताजी का कर्मयोग था तथा माता की सीधी-सादी विचारधारा थी!

17

कारागार में उस समय विनोबा के साथ साने गुरुजी थे। धुलिया के उस कारागार का जीवन ऐसा था जैसे अत्यन्त सुख से रह रहे हों! सत्य तो यह था कि सुख-दुःख का

विचार कभी मन को स्पर्श ही नहीं करता था। परन्तु गीता-प्रवचन का आग्रह हुआ और उस समय ऐसा लगा जैसे जीवन सुखी-सम्पूर्ण हो गया हो! ऐसा लगता है कि ज्ञानेश्वर जी ने 'ज्ञानेश्वरी' लिखी और 'मेरा कार्य समाप्त हो गया'—यह विचारकर समाधिस्थ हो गये! ऐसी ही अनुभूति 'गीतामाता' लिखकर पूर्ण होने पर तथा गीता-प्रवचन देने पर विनोबा को हुई थी। उस समय वे जीवन के चालीस वसन्त देख चुके थे। बीस वर्ष माता-पिता, घर, शिक्षा, मित्र-परिवार—इनमें व्यतीत हो गये थे। तदनन्तर के बीस वर्ष स्वयं का निर्माण करने में बीत गये थे। आगामी अनेक वर्ष अन्धकार में थे। उस समय चालीस वर्षों का हिसाब लगाते समय जीवन समाप्त हुआ-सा लगता था।

एक बार कभी माता ने कहा था, 'विन्या! गीता संस्कृत में है। मैं उसका अर्थ नहीं समझ पाती। उसका मराठी में भाषान्तर तू ही क्यों नहीं करता है?' और विनोबा ने वह अनुवाद किया था 'गीताई' (गीतामाता) के रूप में। उस समय माता की स्मृतियों से मन व्याकुल था। माता सदैव यही समझतीं—'विन्या बहुत होशियार है, बुद्धिमान है। कठिन से कठिन कार्य को वह सरलता से कर लेगा।' यह विश्वास उनको था। वह विश्वास जब पूर्ण हुआ तब माता इस संसार में नहीं थी। परन्तु बाद में धुलिया की जेल में आने पर उनके मन में आया, 'चालीस वर्षों के तो दो भाग हो गये हैं। अब अन्तिम भाग, जो शायद खूब बड़ा भाग भी हो सकता है, देशसेवा में व्यतीत करना है।' परन्तु उस समय उनकी मनोदशा ही भिन्न हो गयी थी। एक अति विलक्षण आकांक्षा मन को त्रस्त कर रही थी। साधारण रूप से देखा जाय तो यह आकांक्षा अत्यन्त सरल थी। अवस्था के चालीस वर्षों के हुए दो भाग—एक भाग में घर और नातेदार तथा दूसरे बीस वर्षों के भाग में स्व-संशोधन हो गया था। परन्तु स्वयंपूर्ण होने की कल्पना अभी तक स्पष्ट नहीं हुई थी। और स्वयंपूर्ण होने की आकांक्षा प्रबल थी! उसके लिए निरन्तर बीस वर्षों के प्रयत्न थे, परन्तु किसी का और कैसा भी आधार न लेकर जीवित रहना कठिन लग रहा था। वैसे उनके शब्दों में मधुरता थी परन्तु जब कोई उनकी एकाग्रता को भंग कर देता था तब उनको क्रोध आ जाता था और जब क्रोध आ गया तब फिर अहिंसा कहाँ रही?

इसके अतिरिक्त 'मैं पराधीन हूँ', यह भावना मन को कष्ट दे रही थी। एक बार उन्होंने जमनालालजी से पूछा था, "आपके यहाँ इतने लोग काम करते हैं, कोई नौकरी मुझको भी दे दीजिए!"

उन्होंने हँसकर कहा था, "नौकरी माँगने के लिए मैं ही मिला हूँ क्या? और नौकरी की आवश्यकता क्या है?"

विनोबा ने कहा था, "पूरा आश्रम अकेले आपकी सहायता से चल सकता है, परन्तु मैं स्वयंपूर्ण होना चाहता हूँ। अपने परिश्रम से मैं अपना पेट भरना चाहता हूँ।"

जमनालालजी ने कहा था, "आप स्वयंपूर्ण हैं विनोबाजी! पैसा कमाना तो

साधारण लोगों का ऐश-आराम और पेट भरने का कर्म है। आप जो सत्कर्म कर रहे हैं उसको लाखों-करोड़ों में कोई एक ही कर सकता है। आप निरन्तर साक्षात् दान दे रहे हैं—अपने कार्य का, अपने विचार का और अपने आचरण का! आप आचार्य हैं विनोबाजी! आप हैं आचार्य विनोबा भावे!"

विनोबा विचारमग्न थे, मुझको बार-बार ऐसा लगता था कि मेरे बीस वर्ष व्यर्थ चले गये हैं। मैं आचार्य नहीं हूँ। मैं क्षुद्र व्यक्ति हूँ। मैं धरती की धूल हूँ। मैं केवल कहता हूँ, 'अहं ब्रह्मास्मि।' मुझको कैसी भी सिद्धि प्राप्त नहीं है फिर भी मैं अपने को आचार्य कहता हूँ और कैसा भी अगाध ज्ञान न होते हुए 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर ईश्वर से निकटता रखता हूँ। अभी तक न तो किसी विचार पर ही सुदृढ़ रहा और न ऐसा कोई आचरण ही किया है। वास्तव में आश्रम चल रहा था। आश्रम का कार्य प्रशंसनीय था, परन्तु मन में शान्ति नहीं थी। स्वयंपूर्णता के लिए व्याकुलता थी। स्वावलम्बन से समाधान नहीं हो रहा था। कभी-कभी देश का स्वतन्त्रता-आन्दोलन क्षणभर को मन में झाँक जाता था। सत्य तो यह है कि उस समय इतने विषय बुद्धि में थे कि कुछ सूझ नहीं रहा था। रामदास थे—अभी-अभी 'गीताई' पूर्ण होने से माता और गीता मन में थी—सन्त परम्परा—आदर्श चरित्र और सबसे अन्त में बापू! रात भर विचारों का वात्याचक्र चलता रहता। उस समय कृष्ण जन्माष्टमी आ गयी थी। स्थान-स्थान पर कृष्ण-कथा कही जा रही थी। 'गीताई' लिखते समय योगिराज कृष्ण का अनुभव किया था। परन्तु इस समय मन में था श्रीकृष्ण का कालिया-मर्दन! कालिया के मस्तक पर श्रीकृष्ण खड़े हुए! एक सामर्थ्यशाली का गर्वहरण हुआ। श्रीकृष्ण को इसी प्रकार मेरे मस्तक पर नाचना चाहिए। मुझमें जो गर्व, अहंकार और देहासक्ति है वह नष्ट होनी चाहिए। देह से मन को अलग करना चाहिए। मेरा ईश्वर पर प्रगाढ़ विश्वास था।

पहले बीस वर्षों में ज्ञान प्राप्त किया। दूसरे बीस वर्षों में व्रतपालन करता रहा। जीवन का निर्माण करता रहा। और आगे यदि निष्काम प्रेम और निष्काम सेवा कर सका तो...वह घटना शायद सन् 1932 की है। और अब चल रहा है सन् 1952। बिहार में चाण्डील गाँव में मलेरिया ज्वर आने के बाद फिर बीस वर्षों का लेखा-जोखा करते समय ध्यान में आया कि एक शून्य खो गया है! उस शून्य को किसी भी अंक के आगे रख देने पर पूर्णता प्राप्त हो जाती थी। वह शून्य पूर्णत्व से पूर्ण हो गया था। मन में एक प्रचण्ड खाई का निर्माण हो गया था। इस समय बीस वर्षों से अधिक समय से बापू की आज्ञा का पालन करने का ऐसा अभ्यास हो गया था कि उसके बाद के अनेक वर्ष उनके व्यक्तित्व के किनारे और कंगूरे खोजने में उन्हीं के मार्ग पर चलने में व्यतीत हो गये!

भूदान को नयी दिशा मिली। अनेक बार धमकियाँ मिलीं। अनेक आरोप लगे। मारने के प्रयत्न किये गये। दूसरी ओर ग्रामदान मिले। सामूहिक खेती का, ग्राम विकास

का तथा ग्रामसफाई का प्रयत्न किया गया और चलने का तो मानो व्रत ही धारण कर लिया! वह व्रत अब जीवन का ध्येय बनता जा रहा है!

पुनः श्रीकृष्ण का स्मरण हो रहा है। मेरे कारण भूदान हो रहा है, मुझको ग्रामदान मिल रहे हैं, यदि मैं सम्पत्तिदान माँगूँ तो लोग देंगे—यह शब्द-सामर्थ्य अब पुनः अहंकार बनना चाहता है। ईश्वर समय-समय पर कारावास देकर आत्म-संशोधन का अवसर देता रहा है—स्वतन्त्रता-आन्दोलन में बापू के सहयोग के कारण! परन्तु इसके बाद ईश्वर के सामने प्रश्न उपस्थित हुआ होगा, 'अरे इस विन्या के आगे के तीस वर्ष पूर्ण होने जा रहे हैं। देश को स्वतन्त्रता तो प्राप्त हो गयी, अब आत्मसंशोधन के लिए इसको कहाँ भेजूँ?' तो उसने चाण्डील में मलेरिया ज्वरग्रस्त कर दिया और स्थानबद्ध कर आदेश दिया, 'विन्या! पहले बीस वर्ष, दूसरे बीस वर्ष और बाद के बीस वर्ष बीत गये। अब यहाँ से आगे के अन्धकारमय वर्ष प्रकाशमय कैसे होंगे, इसका विचार होना चाहिए।' शायद इसीलिए उनसे मुझको रोगग्रस्त कर दिया है, विनोबा के मन में विचार आया।

शीतज्वर से शरीर दुर्बल होने पर उनको ऐसा लगा जैसे मृत्यु समीप आ गयी हो। फिर कुनैन की गोलियाँ लेने पर ज्वर उतरने पर उनको लगा कि ईश्वर अभी उनको मृत्यु नहीं देना चाहता है। वह कितना जीवित रखना चाहता है, यह तो वही जाने। परन्तु अब जीवन का नया अर्थ खोजना पुनः आवश्यक हो गया है। ज्वर उतरने के पश्चात् अनेक रात्रियों में वे व्याकुल होकर कह उठते, 'हे ईश्वर! मुझको मार्ग दिखा! श्रीकृष्ण! मैं तो सदैव अर्जुन रहा हूँ। मुझको क्या कर्तव्य-कर्म करना है, इसका मुझको भान नहीं है। अब तुम्हीं मुझको वह बताओ!'

उनको स्मरण हो रहा था धुलिया-कारागार के दिनों का, रातों का, धुलिया-कारागार में आने पर कुछ दिन बाद ही एक कैदी छूटनेवाला था। वह बहुत आनन्दित था। क्षण में उसके प्राण अपने परिवार में जाकर रमण करने लगते और दूसरे ही क्षण वह भयभीत हो उठता। आनन्द और भय—दोनों भाव उसके मुख पर होते। जाने से एक दिन पहले वह विनोबा के पास आकर बोला, "बाबा! मुझको उपदेश दो। यहाँ से मुक्त होने का आनन्द है और समाज का भय भी है। मैं व्याकुल हो गया हूँ।"

विनोबा ने कहा, "तुम्हारी दशा की मैं कल्पना कर सकता हूँ। तुम इतना ही करो, बच्चों पर और परिवार पर प्रेम करो और समाज पर भी प्रेम करो। तुमने अपराध किया, इसलिए तुमको दण्ड मिला। समाज के लिए प्रायश्चित्त तुमको करना ही पड़ेगा, इसलिए मन को तैयार रखो और अपमान सहने के लिए भी तैयार रहो। जिसने अच्छा किया, अत्यन्त उत्तम किया, फिर भी समाज उसको अच्छा नहीं कहता है। परन्तु बुरा करने पर तत्काल उसकी कठोर आलोचना कर जीवन दूभर कर देता है। इसलिए तुम मन को तैयार करके जाओ। एक बात का ध्यान रखना कि स्वतन्त्र जीवन का अर्थ

स्वैराचार नहीं है।"

वह कैदी गम्भीर होकर उठ खड़ा हुआ और बोला, "बाबा! जिस जीवन में क्षण-क्षण भय समाया है उस जीवन की आवश्यकता ही क्या है?"

"अच्छी बात के लिए समाज का दबाव आवश्यक होता है।"

"परन्तु बाबा! एक बार गलती कर बैठा तो क्या मैं जीवन भर गलती ही करता रहूँगा?"

"यही तो तुमको सिद्ध करना है। इसीलिए मन को शिक्षित करना है।"

दूसरे दिन छूट जाने पर वह कैदी विनोबाजी को नमस्कार करने आया, तब विनोबा ने उसके हाथ में कुछ कागज दे दिये। उसी समय कारागार का सिपाही दौड़ा आया। उसने कैदी के हाथ से कागज छीन लिये और उनको लेकर जेलर के पास आया। जेलर ने स्वयं उन कागजों को पढ़ा और कैदी से कहा, "ये निरे कागज नहीं हैं, यह जीवन का मन्त्र है। ये 'मन के श्लोक' हैं। अच्छा हुआ जो मैं मराठी-भाषी मनुष्य यहाँ हूँ। विनोबा ने रातभर जागकर रामदास स्वामी के 'मन के श्लोक', जो उनको कण्ठस्थ हैं, तुमको लिखकर दिये हैं। यदि यहाँ कोई हिन्दी-अँग्रेजी भाषी जेलर होता तो वह इनको समझ ही नहीं पाता। जा, इन श्लोकों का पाठ करके इन पर आचरण कर।"

इस सारे घटनाक्रम को सिपाही देख रहा था। उसने झिझकते हुए जेलर से कहा, "साहब! ऐसा ही कुछ अच्छा हमको सुनने को मिल जाए तो कितना अच्छा हो!"

जेलर ने कहा, "तुम बाबा से कहो न!"

वह सिपाही अत्यन्त आनन्दित होकर विनोबा के पास आकर बोला, "बाबा! आप रोज चार बातें हमको बताइए न!"

विनोबा ने कहा, "ठीक है, बताया करूँगा!"

कुछ दिन पहले ही बाबा को एकान्त कोठरी में (सॉलिटरी सेल में) रखा था। तब आठ बाई आठ की कोठरी में दो ही बातें थीं। एक थी चक्की और दूसरा था मटका मूत्रविसर्जन के लिए। किसी से सम्पर्क नहीं था। पढ़ना नहीं, लिखना नहीं। दो दिन उनको सचमुच ऐसा लगा जैसे समय का पहाड़ ही टूट पड़ा हो! और तीसरे दिन से उन्होंने अपनी दिनचर्या ही व्यवस्थित कर ली थी। आठ घण्टे सोना। तीन घण्टे उसी कोठरी में सतत भ्रमण करना। दो घण्टे ध्यान करना। एकाध घण्टे कण्ठस्थ श्लोकों को गाना। कुछ देर चक्की चलाना। समय धीरे-धीरे सरकता रहता। दिन भी सरकते जाते। एक दिन वे इसी प्रकार ध्यान-धारणा में निमग्न थे कि पहरेदार सिपाही आकर घबड़ाकर उनको हिलाकर पूछने लगा, "बाबा! आप ठीक तो हैं न?"

"हाँ! मैं एकदम ठीक हूँ।"

"तो फिर मुरदे-जैसे क्यों बैठे हुए थे?"

"इस स्थिति को ध्यान कहते हैं। जगत् को भूलकर ईश्वर का अखण्ड नाम स्मरण करना। और अन्त में उसको भी भूल जाना। इसको समाधि कहते हैं।"

"मैं आपकी बात बिल्कुल नहीं समझ सकता बाबा! मैं इस प्रकार जगत् को भूल नहीं सकता। परन्तु बाबा! जानबूझकर जगत् को हम क्यों भूलें?"

"जगत् को भूलना नहीं है। परन्तु इस जगत् से दूसरे जगत् में जाना है।"

"यह कैसे सम्भव है? जब तक हम मर नहीं जाते तब तक दूसरे जगत् में कैसे जाएँगे?"

"मन से!"

"बाबा! क्यों गरीब की हँसी कर रहे हैं! भला ऐसे मन शरीर से निकलकर कहीं जाता है क्या?"

क्षणभर को विनोबा भी असमंजस में पड़ गये। इस सीधे-सादे मराठी-भाषी मनुष्य को क्या कहें और कैसे कहें, यह प्रश्न उनके सामने था। परन्तु दूसरे ही क्षण वे बोले, "हम जब सोते हैं तब क्या करते हैं? इस दिखाई देनेवाले जगत् से दूसरे जगत् में जाते हैं। सो जाने पर हमको इस जगत् का भान रहता है क्या?"

"नहीं...बिल्कुल नहीं!"

"बस ऐसा ही निश्चय करके इस जगत् से जाना और दूसरे जगत् में प्रवेश करना!"

"तो फिर वहाँ क्या नींद आ जाती है?"

"नींद नहीं आती है... परन्तु सोने पर जैसी शान्ति मिलती है न...वैसी ही शान्ति मन को मिलती है। ऐसी इस क्रिया को ध्यान कहते हैं।"

वह बोला, "बाबा! मेरी समझ में कुछ नहीं आया। परन्तु आपका कहना अच्छा लगता है। बाबा! हम लोग ड्यूटी देते रहें और आप लोग अच्छा-अच्छा बोलते रहें, यही अच्छा है। मेरी समझ में तो कुछ नहीं आया है परन्तु इतना जान गया हूँ कि आप जो कुछ करते हैं उसको हम कभी नहीं कर सकेंगे।"

उस कालकोठरी में एकान्त ही एकान्त था। प्रकाश की एक किरण भी वहाँ नहीं थी। इसका उद्देश्य शायद यह था कि कालकोठरी के अँधेरे में मन के ही द्वार खोले जाएँ, जो किया है उस पर पश्चात्ताप हो, वर्तमान तथा भूतकाल में किये हुए पापों का परिमार्जन किया जा सके तथा आगे की यात्रा ईश्वर की दिशा में हो!

उस कालकोठरी में कहीं से भी प्रकाश का कण नहीं आता था। उसमें इतना अँधेरा था कि मनुष्य मुक्त हवा तथा सूर्य प्रकाश के लिए तड़प उठे! ऐसी कोठरी में यदि मृत्युदण्ड के कैदी रख दिये जाएँ तो उनमें मृत्यु के प्रति घृणा तथा जीवन के प्रति आसक्ति बढ़ेगी। जिस-जिसकी इच्छा नहीं होती है उसी की यहाँ इच्छा होने लगेगी। कैदी ने जो अमानवीय कृत्य किये हैं उनका दण्ड इस कालकोठरी में सहज ही मिल

जाता है। आजीवन कारावास का दण्ड भोगने वाले कैदी यहाँ या तो खूब चतुर हो जाएँगे या फिर मृत्यु के अधीन हो जाएँगे। चतुर मनुष्य पागल हो जाए ऐसा अन्धकारमय जीवन, नीरव शान्ति और सघन अँधेरा—परन्तु विनोबा के मन्त्रोच्चारण से उस कोठरी को आवाज का स्पर्श होता, उनकी मधुर स्वर-लहरी गूँजती। सूर्य-स्तोत्र गाते समय विनोबा को प्रकाश-लहरों का अभास होता!

एक दिन जेलर ने आश्चर्य से पूछा, "बाबा! आपको कालकोठरी में रखने का दण्ड दिया गया है इसलिए आपको यहाँ रखा गया है। परन्तु आपकी आवाज इस कारागार में ऐसे गूँजती है जैसे दसों दिशाओं से आ रही हो! सबको प्रसन्नता होती है। कैदियों की इच्छा है कि आप उनको कुछ बताएँ!"

"मैं तो स्वयं ही अपराधी हूँ। मैं क्या बताऊँगा?"

"राष्ट्र के सम्बन्ध में नहीं। उसके कारण तो मुझको दण्डित कर दिया जाएगा!"

"मैं राष्ट्र-द्रोही के रूप में यहाँ आया हूँ। वस्तुतः यह राष्ट्र हमारा है। हमारा राष्ट्र के विरुद्ध द्रोह है ही नहीं! हमको तो राष्ट्र चाहिए! हमारा राष्ट्र चाहिए..."

जेलर ने तत्काल हाथ जोड़कर कहा, "बाबा! प्लीज...कुछ धार्मिक कहिए!"

"भगवद्गीता कहूँ?"

"कहिए...अवश्य कहिए! आज से ही आपको कालकोठरी से मुक्त किया जाता है। आप अन्य कैदियों की तरह रहेंगे।"

"धन्यवाद!"

"मुझको धन्यवाद मत दीजिए बाबा! मैं जानता हूँ कि आपको कालकोठरी और मृत्युदण्ड का कोई भय नहीं है। आपके पास है स्वयं-अर्जित प्रसन्नता! वह आपको बाहर से उधार नहीं लेनी पड़ती है। यहाँ मनुष्य दो दिनों में ही पागल हो जाता है या बिस्तर पकड़ लेता है। परन्तु आप दो महीनों से यहाँ आनन्द से रह रहे हैं। कल से यहाँ के लोगों को गीतामृत पिलाइए!"

विनोबा ने कहा, "मैं आपसे इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि मुझको अभी कुछ दिन और इस कालकोठरी में रहने दीजिए!"

"सो क्यों?"

"चिन्तन के लिए कालकोठरी उत्तम है।"

"जैसी आपकी इच्छा!"

जेलर चले गये। विनोबा अन्दर आये। सन्ध्या-समय हो गया था। आते समय रसोई के चौक में सन्ध्याकाल के केसरिया प्रकाश को विनोबा ने देखा। उसको मन में संचित करते हुए वे अपनी कोठरी में आये।

रात की लालटेन उनके सामने लाकर रख दी गयी। उसकी ओर देखते-देखते विनोबा को वेद-उपनिषद् की सारभूत गायत्री का स्मरण पहले हुआ। केवल चौबीस

अक्षरों से चौबीस ग्रन्थियों को उत्तेजित करनेवाली, रक्त प्रवाहित करनेवाली और चौबीस अक्षरों का मेल करनेवाली अज्ञात ऋषि-शक्ति की उनको अनुभूति हुई। आज के विज्ञान-युग की अपेक्षा कई गुना अधिक स्वास्थ्य का विचार करने वाले ऋषि उनको बहुमूल्य लगे!

विनोबा विचार करने लगे, भगवद्गीता कही जाएगी तो एक बार सत्य-असत्य तथा न्याय-अन्याय का उल्लेख करना पड़ेगा और यही सच्ची लोक जागृति होगी! रात भर वे भगवद्गीता से सम्बन्धित विचार करते रहे। दो-तीन बार सिपाही आकर देख गया। विनोबा दीवार के सहारे पीठ टेककर बैठे थे। प्रात:काल होनेवाला था। विनोबा उठे और कोठरी में चक्कर लगाने लगे। सिपाही चकित हो गया और उनके पास आकर बोला, ''रातभर आप जागते ही रहे बाबा!''

''नहीं! मैं जागता नहीं रहा।''

''दीवार के सहारे तो बैठे थे!''

विनोबा ने हँसकर कहा, ''शायद तुम्हें ऐसा आभास हो गया होगा। मेरी ओर देखो! नींद से उठा हुआ-सा दिखाई दे रहा हूँ न मैं?''

वह कुछ नहीं बोला। विनोबा का अत्यन्त प्रसन्न और आनन्दित मुख देखकर यह कोई भी नहीं सोच सकता था कि यह मनुष्य रातभर का जगा होगा!

सन्ध्या-समय बीच के आँगन में कैदी इकट्ठे हुए। विनोबा ऊँचे पत्थर पर बैठ गये और कहने लगे, ''मित्रो! कारागार में प्रवेश करते समय भव्य द्वार के छोटे दरवाजे से झुककर आना पड़ता है। उसी प्रकार ईश्वर की शक्ति के आगे नत होना पड़ता है। आज से मैं भगवद्गीता के सम्बन्ध में प्रवचन करूँगा। गीता से मेरा सम्बन्ध तर्क से परे का है। मेरा शरीर माता के दूध पर पोषित हुआ है परन्तु मेरे हृदय और बुद्धि का उससे भी अधिक पोषण गीता के दूध पर हुआ है। जहाँ आत्मीयता का सम्बन्ध होता है वहाँ तर्क के लिए स्थान नहीं होता है। तर्क का त्याग करके ही मैं श्रद्धा और प्रयोग इन दो पंखों से गीता-गगन में भ्रमण करता रहता हूँ। मैं सदैव गीता के वातावरण में रहता हूँ। गीता में मेरे प्राण रहते हैं। मैं जब गीता के सम्बन्ध में अन्य लोगों से बातें करता हूँ तब मैं गीता के समुद्र में तैरता होता हूँ तथा अकेला होता हूँ। उस अमृत समुद्र के तल तक जाता हूँ। ऐसी इस गीता माता के चरित्र का मैं वर्णन करूँ, यह सबकी इच्छा है। मैं यथाशक्ति इसका वर्णन करने का प्रयत्न करूँगा।''

विनोबा रुके। यह सन्ध्याकाल था। कारागार के प्रांगण में वृक्षों पर पक्षियों का कलरव हो रहा था। इस प्रांगण में हवा भी खूब लग रही थी। सन्ध्या-समय रमणीय था। सबके मन भी प्रसन्न थे। कारागार में अपूर्व दृश्य दिखाई दे रहा था।

बन्दियों की आँखों के सम्मुख महाभारत का युद्ध-प्रसंग साकार हो उठा था! विनोबा कह रहे थे—

"एक ओर कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी तथा दूसरी ओर पाण्डवों की सात अक्षौहिणी सेना खड़ी थी। और अर्जुन दुःखी होकर कह रहा था :

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥

अर्जुन श्रीकृष्ण से बार-बार कह रहा था, 'हे श्रीकृष्ण! आपने मेरा रथ दोनों सेनाओं के मध्य में खड़ा कर दिया है। युद्ध के लिए तैयार सामने खड़े स्वजन-वर्ग को देखकर मेरे अंग निष्क्रिय हो रहे हैं तथा मेरे शरीर में कँपकँपी हो रही है और मेरे रोंगटे खड़े हो रहे हैं।'

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।।

'मैं राज्य नहीं चाहता, विजय नहीं चाहता, राज्य का उपभोग भी नहीं चाहता। हे श्रीकृष्ण! आप ही बताइए—स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव—अपने स्वजनों को मारकर हम कैसे सुखी हो सकते हैं?' और फिर हताश अर्जुन श्रीकृष्ण से बोला, 'इस युद्ध से कुलनाश होगा और वर्णसंकट उत्पन्न होगा ही, परन्तु मैं पापी कहा जाऊँगा।' और अर्जुन शस्त्रों का त्याग कर रथ में बैठ गया।"

विनोबा कह रहे थे, "गीता की योजना महाभारत में की गयी है। गीता महाभारत के मध्यभाग में सम्पूर्ण महाभारत पर प्रकाश डालती हुई दीप-स्तम्भ की भाँति खड़ी है। एक ओर छह पर्व तथा दूसरी ओर बारह पर्व ऐसे मध्यभाग में और एक ओर सात अक्षौहिणी और दूसरी ओर ग्यारह अक्षौहिणी, ऐसे मध्यभाग में गीता है—यह उसका स्वरूप है।

महाभारत और रामायण हमारे राष्ट्रीय ग्रन्थ हैं। इनके पात्र हमारे जीवन से एकरूप हो गये हैं। राम-सीता, द्रौपदी, भीष्म, हनुमान आदि रामायण-महाभारत के चरित्रों से सम्पूर्ण भारतीय जीवन हजारों वर्षों से आज तक व्याप्त चला आ रहा है। संसार में अन्य महाकाव्यों के पात्र इस प्रकार लोक-जीवन में मिले हुए कहीं दिखाई नहीं देते हैं। रामायण मधुर नीतिकाव्य है। महाभारत व्यापक समाजशास्त्र है। महर्षि व्यास ने एक लाख श्लोक लिखकर असंख्य पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त कुशलता से किया है। एक परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई निर्दोष नहीं है परन्तु संसार में सब कुछ दोषयुक्त है, ऐसी बात भी नहीं है। सम्पूर्ण महाभारत का नवनीत व्यासजी ने भगवद्गीता में दिया है। जीवन की उन्नति के लिए आवश्यक प्रत्येक विचार गीता में आ गया है। इसीलिए गीता धर्मज्ञान का कोष है। गीता आकार में छोटी है, फिर भी हिन्दू धर्म की संस्कृति उसमें है।

अर्जुन का विषाद दूर कर उसको युद्ध प्रवृत्त करने के लिए गीता कही गयी—यह कहा जाता है। परन्तु जिसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की हो, उस अर्जुन को विषादयुक्त होने का कोई कारण ही नहीं था। परन्तु वह था स्वजनों का मोह! इसके कारण वह अनेक युक्तियाँ देकर युद्ध से दूर हो रहा था। स्व-कर्तव्य में स्वयं ही बाधक बन रहा था। सैकड़ों अपराधियों को मृत्युदण्ड देनेवाला न्यायाधीश अपने बेटे के समय मृत्युदण्ड की निन्दा करने लगता है, ऐसा ही यह हो रहा था। इसलिए श्रीकृष्ण ने उसको उपदेश दिया, वही गीता है।

अर्जुन अहिंसा की ही नहीं अपितु संन्यास की भाषा बोलने लगा था। वह अर्जुन की वृत्ति नहीं थी। वह उसका स्वभाव नहीं था तथा वह उसका स्वधर्म भी नहीं था। स्वधर्म का अर्थ है—स्वयं का मूल स्व-भाव। मूल प्रवृत्ति। अर्जुन का स्वभाव था क्षात्रतेज का! क्षत्रिय-वृत्ति से जीने का! यह स्वधर्म त्याग कर अर्जुन संन्यास लेना चाहता था, यह कदापि उचित नहीं था। अर्जुन का स्वधर्म था क्षात्रधर्म! परन्तु वह उसको ही टालना चाहता था। तब श्रीकृष्ण ने उसको स्वधर्म का स्मरण कराया और स्वधर्म में बाधक मोह को त्यागने का स्पष्ट आदेश दिया। अर्जुन ने तो श्रीकृष्ण को एक प्रकार से निरुत्तर ही कर दिया था—'मैं युद्ध नहीं करूँगा। मैं पाप नहीं करूँगा और पाप का कारण भी नहीं बनूँगा।' यह कहकर विषाद युक्त अन्तःकरण से अर्जुन शस्त्र त्यागकर बैठ गया। यहीं पहला विषादयोग का अध्याय समाप्त होता है।"

विनोबा ने दोनों हाथ जोड़े और पत्थर पर बैठने से जकड़े हुए पैर सीधे किये। कुछ देर तक कोई हिला ही नहीं। हम जो कुछ सुन रहे थे वह सब स्वर्गिक था—कैदियों को यह भान हुआ, फिर भी उनकी उठने की इच्छा नहीं हो रही थी।

"आज का प्रवचन समाप्त हुआ।" विनोबा के यह कहते ही सब उठ खड़े हुए।

जेलर ने आगे आकर कहा, "बाबा! मैंने पूरा सुना है। आप प्रत्येक रविवार को भाषण देते रहिए। जब तक आपकी सजा समाप्त नहीं होती तब तक आप यह कहते रहें, यह इच्छा है।"

दूसरा श्रोता बोला, "बाबा! आप रातभर बोलते तब भी हम बैठे रहते। आठ दिन बहुत होते हैं साहब! हम तो थोड़ा-थोड़ा रोज सुनना चाहते हैं।"

जेलर ने कहा, "सच पूछिए तो मेरी भी यही इच्छा है!"

और विनोबा प्रतिदिन गीता पर प्रवचन देने लगे। तन्मय होकर। कभी वे मधुर स्वर में केवल गीता का पाठ करते तो कभी 'गीताई (गीतामाता)' बोलते, तो कभी वेदों का गायन करते, परन्तु उसके बाद वे गीता पर अवश्य बोलते। उस दिन विनोबा बोल रहे थे—

"दूसरे अध्याय में जीवन के तीन सिद्धान्त निरूपित किये हैं—आत्मा की अमरता, देह की क्षुद्रता तथा स्वधर्म की अबाध्यता। इनमें स्वधर्म का विचार कर्तव्य बुद्धि का

है। जिस समाज में जन्म लिया है उस समाज की सेवा करने का धर्म मुझको परम्परा से प्राप्त हुआ है। हमारे जन्म के साथ ही स्वधर्म भी जन्म लेता है या यों कहें कि हमारे जन्म से पहले ही वह हमारे लिए तैयार रहता है, क्योंकि वही जन्म का कारण होता है। स्वधर्म को माता की उपमा दे सकते हैं। माता को चुनना हमारे हाथ में नहीं होता है। वह पहले से है ही। वह टल नहीं सकती है। यही स्थिति स्वधर्म की है। स्वधर्म के आश्रय से ही हम आगे जा सकते हैं। आश्रय का त्याग न करना, यह जीवन का मूलभूत सिद्धान्त है। स्वधर्म का आचरण सहज ही कर सकते हैं। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं :

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥

हे अर्जुन! तुम्हारा स्वधर्म है युद्ध करना! और यह है धर्म युद्ध! यदि तुम इस धर्मयुद्ध को नहीं करोगे तो फिर अपने धर्म को और यश को छोड़कर पाप को पाओगे।

केवल स्वधर्म निष्ठा से ही काम नहीं चलेगा। उसके साथ ही देह का ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि उस देह में एक अत्यन्त सुन्दर अविनाशी आत्मा का निवास है। देह तो वस्त्र के समान है। वस्त्र पुराना होने पर नया ले सकते हैं। यदि देह आत्मा से सदैव के लिए सम्बद्ध होता तो फिर आत्मा का कल्याण नहीं था! उसका सारा विकास रुक जाता, आनन्द लुप्त हो जाता, ज्ञानप्रभा मन्द हो जाती! हम मरण शब्द को भी सहन नहीं कर पाते हैं, परन्तु मरण जीवन के समान ही सुन्दर है। जीवन सुन्दर है तो मृत्यु सुन्दरतम है!''

बोलते-बोलते विनोबा ने दूर दृष्टि डाली। कैदियों की अन्तिम पंक्ति के बाद एक युवक पालथी लगाकर बैठा हुआ घुटने पर कागज रखकर उस पर लिखने में तन्मय था। तदनन्तर विनोबा का ध्यान बार-बार उसकी ओर जाता रहा। प्रवचन समाप्त हुआ। विनोबा के सामने बैठे हुए कैदी उठने लगे तो वह युवक भी उठ खड़ा हुआ। जेलर सामने बैठे थे। विनोबा ने पूछा, ''यह युवक कौन है?''

''यह आपके गुरु का निष्ठावान् भक्त है।''

''मैं पहचानता नहीं हूँ।''

''यह अमलनेर का निष्ठावान् अध्यापक है। राष्ट्रवादी है। स्वतन्त्रता के लिए लड़नेवाला, आपके समान ही देशद्रोही और राजद्रोही है।''

बाद में दो-तीन बार वह युवक दिखाई दिया। दूर से वह जितना तरुण लगा था उतना पास से देखने पर नहीं लगा। अत्यन्त स्नेहार्द्र आँखें! अत्यन्त विनयशील तथा शालीन। विनोबा ने हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए पूछा, ''आप प्रतिदिन क्या लिखते हैं?''

"आप जो करते हैं वह गीता-प्रवचन। उस समय रफ लिखता हूँ, फिर स्वच्छ लिखता हूँ।"

"आपका नाम मैं बताऊँ?" विनोबा ने हँसते हुए कहा।

"बताइए न!"

"सौजन्यमूर्ति।"

"नहीं! मेरा नाम है—पाण्डुरंग सदाशिव साने[1]।"

"महात्माजी के शिष्य!"

"महात्माजी के हिन्दुस्तान में असंख्य शिष्य हैं। मैं उनमें एक हूँ। उनके सिद्धान्त मुझको अच्छे लगे हैं। अहिंसक क्रान्ति पर मेरा विश्वास है। उनके ग्रामोद्योग पर एवं स्वराज्य के रामराज्य पर मेरा विश्वास है। महात्माजी का कहना है कि मनुष्य के मन में बैठा राक्षस भी बदल सकता है। उनके इस कथन पर मेरा अटूट विश्वास है। विनोबाजी! जीवन पर मेरा विश्वास है। और मृत्यु का काव्य मुझको अच्छा लगता है।"

वे बड़े उत्साह से बोल रहे थे। मृदुभाषी साने गुरुजी के मुख से झरते हुए शब्द सुनकर विनोबा हँसकर बोले, "मैं समझ गया कि आप शिक्षक हैं तथा उत्तम लेखक हैं। आप बच्चों के और पुष्पों के कवि हैं। सरलता पर आपकी श्रद्धा है। आपकी 'क्रान्ति' पुस्तक मैंने पढ़ी है—पाण्डुलिपि ही। संयोग से धुलिया आया था। उस समय 'क्रान्ति' की पाण्डुलिपि मैंने अपने पिताजी के मित्र के घर पर पढ़ी। विश्वास नहीं हो रहा है? उसके पहले अध्याय का नाम था—'कहाँ गये वे बाबा?' ठीक है न?"

"जी बिल्कुल ठीक!"

"आपके छोटे-छोटे वाक्य, रोता-बिलखता स्वर तथा उससे प्रकट होते संस्कार अच्छे लगे।"

जो कैदी खड़े-खड़े उनकी बातें सुन रहे थे वे बोले, "गुरुजी! आप भी अपने कुछ विचार हमको बताइए न?"

साने गुरुजी ने कहा, "जेलर साहब कहते हैं कि कैदी सदैव खदोड़े और भूखे होते हैं, यह सत्य है; परन्तु इन कैदियों को ज्ञान की भूख है। मित्रो! गीता प्रवचन के पश्चात् मैं आपको 'श्याम ची आई' की कहानी सुनाऊँगा।"

कैदी आनन्दित हुए। साने गुरुजी कहने लगे, "विनोबाजी! आपके यहाँ आने से यह कारागार ऋषि-आश्रम बन गया। दिन भर काम उत्साह और स्फूर्ति से होता है, क्योंकि आपके शब्दों से संजीवनी मिलती है।"

विनोबा बोले, "गुरुजी..."

साने गुरुजी ने टोका, "मैं पाण्डुरंग हूँ।"

---

1. साने गुरुजी के नाम से प्रसिद्ध मराठी लेखक—'श्याम ची आई' उपन्यास के लेखक।

विनोबा ने कहा, "परन्तु मुझको गुरुजी कहना अच्छा लगता है। आज तक मैं कालकोठरी में था परन्तु अब मुझको बाहर आना अच्छा लगेगा। सूत कातने की अनुमति तो यहाँ मिल ही नहीं सकती। वैसे चिन्तन तो बन्द ही हो गया है। अब विचारों का आदान-प्रदान किया जा सकेगा।"

विनोबा को साने गुरुजी की कोठरी के सामनेवाली कोठरी में स्थान दिया गया। जब विनोबा घण्टों चिन्तन में मग्न रहते तब साने गुरुजी ऋषितुल्य विमोबा को देखते रहते और प्रवचन के बाद रात में लालटेन के पीले प्रकाश में जब साने गुरुजी लिखने में तल्लीन होते तब विनोबा उनको देखते रहते।

दिन उदित होते गीता-पठन से, दिन व्यतीत होते गीता के कर्मयोग में और जब दिन अस्त होता तब गीता का प्रवचन प्रारम्भ हो जाता था। एक दिन में एक अध्याय भी पूरा नहीं होता था।

तृतीय अध्याय के 'कर्मयोग और फलासक्ति' पर प्रवचन करते हुए विनोबा ने कहा :

"श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा :

लोकेऽस्मिन् द्विविधानिष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

निष्ठा दो प्रकार की होती है। एक होती है ज्ञाननिष्ठा और योगी जनों की निष्काम कर्मनिष्ठा। यह कर्मनिष्ठा ज्ञान से ही प्राप्त होती है—यह भी अटल सत्य है। जो माँगता नहीं है, रमा उसकी दासी होती है—ऐसी कर्मनिष्ठा ही योग कहलाती है। यदि यह कर्मनिष्ठा निष्काम—फलासक्तिरहित—हो तो लोग ईश्वर जैसे महान हो जाएँ। कर्म पर श्रद्धा भक्ति हो तो :

रुक्मिणी ने एक तुलसी-दल से
गिरिधर प्रभु को तौल लिया!

कार्य इतना सरल हो जाता है! परमार्थी मनुष्य का कर्म आत्मविकासात्मक होता है। संसारी मनुष्य का कर्म आत्मबन्धन तथा फलासक्त होता है।"

और फिर विनोबा ने सीधे-सरल रोज के व्यवहार में आनेवाले उदाहरण देना प्रारम्भ किया। तदनन्तर अनेक सन्ध्याएँ कर्मयोगी, केवल कर्तव्य कर्म करनेवाला, व्यावहारिक और पारमार्थिक, सांसारिक और पारमार्थिक, कर्मयोग विविध प्रयोजन—'कर्मणा शुद्धिः' के उदाहरण, कर्मयोग और समाज इनके भी अनेक उदाहरण देकर व्याख्याएँ करने में रँग गयीं। अन्त में विनोबा ने कहा—

"तुकाराम महाराज के कथनानुसार :

पहले था सप्तरंग। तुका हो गया पाण्डुरंग।
उसका भजन जाए ना। मूल स्वभाव जाए ना।

कर्म की अन्तिम अवस्था यह है कि मूल स्वभाव पर विजय प्राप्त होनी चाहिए और तब नर ही नारायण हो जाता है।''

वह दिन समाप्त हो गया था।

18

विनोबा विचारमग्न थे। विचार करते-करते प्रात:काल हो गया था। मदालसा देवी बाहर आयीं और उन्होंने पूछा, ''आज भी सोये नहीं बाबा?''

''यह कैसे कह रही हो?''

''दो-तीन बार उठकर देखा था।''

''यों तो मुझको खूब नींद आती है। उसकी चिन्ता मैं नहीं करता। कभी-कभी विचारों को एक मार्ग मिल जाता है और फिर मन स्वच्छन्द दौड़ने लगता है।''

''आज कौन-सा विचार आया?''

विनोबा हँसकर बोले, ''विचार और कृति होती तो...परन्तु ऐसा होता नहीं है। सदैव एक अपूर्णता की प्रतीति होती रहती है। अस्तु। इस बार बोध गया में होनेवाले इस सर्वोदय सम्मेलन में पण्डित जवाहरलाल आ सकेंगे क्या, यह एक विचार भी मन में था।''

''लगता तो नहीं है क्योंकि उनके कार्यक्रम निश्चित हैं।''

''आएँगे। बहुत दिनों से जवाहरलाल जी से मिलने की इच्छा हो रही है, विशेष रूप से मन में इन्दिरा का विचार आता रहता है।''

मदालसा देवी कुछ कहना चाहती थीं कि विनोबा स्नान के लिए बाहर निकल गये।

जवाहरलाल जी के आने का तार आ गया।

विनोबा ने प्रार्थना के बाद तार देखा तो उनके मुख पर प्रसन्नता छा गयी। सायंकाल छह बजे सम्मेलन प्रारम्भ होनेवाला था। तेज धूप में लोग दिन भर काम कर रहे थे। सन्ध्या-समय होने पर भी सूर्य की प्रखरता कम नहीं हो रही थी। जवाहरलाल जी विमान से आये। जब वे सम्मेलन-स्थल पर आये तब उनका गोरा रंग धूप से लाल

हो गया था।

विनोबा का हाथ अपने हाथ में लेकर उन्होंने पूछा, "कैसे हैं?"

"शरीर पर धूप का प्रभाव न पड़े इतना सुदृढ़ और कड़क।" विनोबा ने मुस्कराकर कहा।

जवाहरलाल बोले, "अपने प्रो. राधाकृष्णनजी को भी देखो न..."

विनोबा ने कहा, "वातावरण का ऐसा प्रभाव पड़ेगा तो अन्य प्रभाव कम हो जाएँगे।"

जवाहरलाल ने कहा, "नहीं विनोबाजी! योजना यह है कि सभी प्रभावों का अनुभव बार-बार हो!"

सम्मेलन में सर्वोदय के सम्बन्ध में जवाहरलाल और राधाकृष्णन दोनों ने भाषण दिये। जयप्रकाश नारायण ने लिखित प्रतिज्ञा विनोबा को दी थी कि वे अपना भावी जीवन भूदान-कार्य में लगाएँगे।

विनोबा ने भी भरी सभा में कहा, "मैं अपने नम्र जीवन को अहिंसा एवं भूदान के लिए अर्पण करता हूँ।"

लगभग साठ वर्ष के विनोबा का कथन सुनकर सभा में अनेक उठकर खड़े हो गये और एक-एक मनुष्य अपना जीवन भूदान और सर्वोदय के लिए अर्पण करने की घोषणा करने लगा। तब विनोबा की आँखें सजल हो उठीं। उपस्थित लोगों के नयन भी आर्द्र थे। देखते ही देखते लगभग पाँच सौ स्त्री-पुरुष कार्यकर्ता के रूप में तैयार हो गये थे।

रात में भोजन के समय जवाहरलाल ने कहा, "आपने कमाल कर दिया विनोबा जी! एक अद्‌भुत कार्य आपने किया है। सैकड़ों एकड़ भूमि आपने प्राप्त की और भूमि-हीनों को बाँट दी! मोह से योजनों दूर रहकर आपकी यह निःस्वार्थ सेवा ईश्वर की सेवा है!"

राधाकृष्णन बोले, "मैं भी बहुत प्रभावित हुआ हूँ। जीवन में इतना भव्य कुछ देखने को मिलेगा, यह नहीं सोचा था।"

विनोबा ने विषय बदलते हुए पृछा, "इन्दिरा कैसी है?"

जवाहरलाल ने कहा, "वह आजकल यहाँ नहीं है। शिक्षा पूरी होते ही वह यहाँ लौटेगी। वह विदेश में है। कुछ दिन पहले उसका पत्र आया था। उसमें आपका उल्लेख था। उसने पूछा था, 'भारतीय संस्कृति के आधुनिक ऋषि कहाँ हैं?' "

विनोबा ने हँसते हुए कहा, "पिता की अपेक्षा पुत्री चतुर है!"

जवाहरलाल ने भी हँसकर कहा, "आप भविष्यवेत्ता हैं, यह सत्य है।"

रात्रि-भोजन के पश्चात् जवाहरलाल और राधाकृष्णन लौट गये। विनोबा के नयनों के सामने दिल्ली में देखी हुई इन्दिरा खड़ी हो गयी और उसी समय विनोबा को

महात्माजी के सेवाग्राम आश्रम की कस्तूरी का स्मरण हो आया। बिल्ली के बच्चों की चिन्ता करनेवाली, ईंट-पत्थर की गोटियों से खेलने वाली, घाघरे में अमरूद भर लेनेवाली कस्तूरी अब बड़ी हो गयी होगी—विनोबा ने विचार किया। यदि वह कभी सामने आकर खड़ी होकर बोले, "बाबा! मैं तुम्हारी कस्तूरी हूँ। पहचाना मुझको?" तो मैं उसको पहचान नहीं पाऊँगा।

दरभंगा जनपद में प्रवेश करते ही वर्षा प्रारम्भ हो गयी थी। प्रत्येक गाँव में बरसात का साक्षात्कार होने लगा। कभी-कभी मूसलाधार वर्षा होती। कार्यकर्ता कहने लगे, "बाबा! बरसात ऐसी हो रही है मानो आकाश फट पड़ा हो! गाँव में तो कच्चे रास्ते हैं, उनमें गड्ढे हैं। दिन में भी अँधेरा-सा छाया है। इस पर आप अभी-अभी रोगमुक्त हुए हैं। जब तक बरसात का जोर कम नहीं होता और सूर्यदर्शन नहीं होते तब तक तो यह भूदान-यात्रा रोक दीजिए!"

कार्यकर्ता शायद यह भी कहना चाहते थे कि "बाबा! आपकी अवस्था और कृश शरीर इस बरसात में टिक नहीं सकेगा।" विनोबा शायद उनका मनोभाव समझकर बोले, "परमेश्वर की ओर जानेवाला रास्ता सीधा-सरल नहीं होता है। परन्तु मनुष्य के हृदय में जो परमेश्वर है वह सीधा-सरल है। मेरा जो कुछ होना है वह तो होगा ही। और फिर अवस्था अधिक हो गयी है, यह विचार कर घर बैठ जाऊँ तो क्या मृत्यु देर में आएगी? वह तो नियत समय पर आएगी ही। फिर क्यों डरते हो? परन्तु मैं आपसे कहता हूँ कि अभी मेरा मरण नहीं है।"

ऐसे ही कुछ संवाद जब-तब होते रहते थे। परन्तु भले ही दसों दिशाओं में सघन अन्धकार छाया हो और बादलों की गड़गड़ाहट शुरू हो गयी हो—प्रार्थना के पश्चात् विनोबा नित्य नियमानुसार बाहर चल पड़ते थे। कोई उनके सिर पर छाता पकड़ता था, परन्तु कृश विनोबा इतनी जल्दी-जल्दी चलते थे कि छाता पकड़ने वाले को अक्षरशः दौड़ना पड़ता था। वे पूरे भीगे हुए होते थे। वे गड्ढों में होकर घुटने तक पानी में चलते थे।

एक दिन मदालसा देवी बोलीं, "कीचड़ में साँप होते हैं। मेढक भी होते हैं और कभी-कभी केंकड़े भी निकल आते हैं।"

विनोबा ने कहा, "किसी को कुछ नहीं होगा। जिसको भय लगता हो वह पीछे रुक जाए!"

फिर कोई कुछ भी नहीं बोला! उसी समय दरभंगा के एक जमींदार आये और बोले, "बाबा! बरसात का जोर थम जाने दो। गाँवों में पानी भर जाएगा। आप बाद में आएँगे तो अच्छा रहेगा।"

विनोबा ने हँसकर कहा, "यदि मार्ग बदल दूँगा तो फिर आपके गाँव में नहीं आ सकूँगा। योजना के अनुसार बिहार के पाँच हजार गाँवों में मैं घूम चुका हूँ। और

योजना के अनुसार पच्चीस लाख एकड़ भूमि भी मिल चुकी है। अब यदि आप कहते हों तो बिहार राज्य को छोड़कर अगले राज्य में चला जाऊँ क्या? वर्षा के कारण मैं रुकूँगा नहीं। अब मेरा लक्ष्य बत्तीस लाख एकड़ भूमि प्राप्त करना है।''

जमींदार कुछ नहीं बोला। अपने साथ चलनेवाले सैकड़ों लोगों को घोर बरसात में कीचड़ में—एकत्र देखकर विनोबा गद्गद हो उठे।

उन्होंने कहा, ''मेरे प्रिय बहिन-भाइयो! मैं बहुत दुष्ट मनुष्य हूँ। मैं बहुत खदोड़ा मनुष्य हूँ। और मैं सदैव माँगता ही रहता हूँ। कल सुबह एक मुस्लिम सरदार आये और बोले, 'मैं पहले ही साढ़े पाँच हजार एकड़ भूमि दे चुका हूँ परन्तु अब मैं अपनी पन्द्रह सौ एकड़ जमीन नहीं दे सकता।' मैंने कहा, 'आप अपनी भूमि का छठा हिस्सा मुझको दे दीजिए।' उन्होंने कहा, 'हम पाँच भाई और दो बहिनें हैं।' मैंने कहा, 'तो फिर आप मुझको अपना आठवाँ भाई समझकर आठवाँ भाग दे दीजिए!' उन्होंने मेरी बात मान ली और आठवाँ हिस्सा मेरी झोली में डाल दिया। तो मैं सदा माँगता ही रहता हूँ। आप खूब-खूब देते हैं, फिर भी मैं माँगता हूँ। अगर मैं न आऊँ तो शायद आप को अच्छा भी लगे। परन्तु मैं करूँ भी तो क्या? आदत से मजबूर हूँ भाई!''

विनोबा सभा से वर्षा में भीगते हुए ही घर पर आये। रात बहुत बीत चुकी थी। दिन भर की बरसात से पूरा शरीर ठिठुर गया था। विनोबा ने इसका अनुभव किया और शरीर की ओर ध्यान न देकर गीता के पन्द्रहवें अध्याय को जोर-जोर से बोलना प्रारम्भ कर दिया।

बाहर धुआँधार वर्षा हो रही थी और विनोबा एक के बाद एक श्लोक जोर से बोल रहे थे :

> शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
> गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात॥

यह श्लोक बोलते-बोलते वे रुक गये। जैसे वायु गन्ध को ग्रहण कर दूर तक ले जाता है वैसे ही जीवात्मा शरीर को ग्रहण कर दूर जाता है और किसी शरीर में यह आत्मा पुनः समाविष्ट होता है।

'मेरा यह थका हुआ शरीर इतनी सरलता से टूटनेवाला नहीं है। मेरा जीवात्मा उसको सतत प्रोत्साहित करता रहेगा। यह शरीर इतनी जल्दी वासांसि जीर्णानि नहीं होगा। जब तक मेरा कार्य पूर्ण नहीं होता तब मृत्यु आएगी ही नहीं।'—इस विचार से ठण्ड से ठिठुरने पर भी उनके मन में नव चेतना के अंकुर फूट पड़े। वे प्रसन्न मन से फिर बोलने लगे :

> श्रोतं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च....

और वर्षा की धाराओं ने और अधिक जोर पकड़ लिया।

19

विगत अनेक दिनों से विनोबा अत्यन्त प्रसन्न थे। उनको विष्णुपुर में आने का निमन्त्रण मिला था। विष्णुपुर से कामारपुकुर कितनी दूर है—यह जानकारी उन्होंने कर ली थी। हिन्दू-धर्म-ध्वजा को विदेश में फहरानेवाले स्वामी विवेकानन्द के गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस का समाधि-स्थान था विष्णुपुर। उसके समीप स्थित कामारपुकुर उनका जन्मस्थान था। विष्णु के अवतार के रूप में जन्म लेनेवाले श्री रामकृष्ण जब परमहंस-पद पर पहुँचे, तब उनका आध्यात्मिक प्रवास दक्षिणेश्वर में था। उस ज्ञानयोगी की समाधि का दर्शन करने का अवसर मिलने से विनोबा प्रसन्न थे।

उड़ीसा राज्य तो है ही प्रकृति की गोद में! छोटे-छोटे तालाब, केलों के बाग-बगीचे, नारियल के वृक्ष, स्थान-स्थान पर हरी वनराजि से किनारे तक भरे हुए जलाशय! उनको पुष्कर (पुकुर) कहते हैं। इन्हीं पुष्करों को लड़की के विवाह में दहेज के रूप में देने की प्रथा थी। बिहार में बत्तीस लाख एकड़ भूमि भूदान में मिली थी। विनोबाजी द्वारा नियुक्त समिति ने वह दान भूमिहीनों को दे दी थी। उसके बाद विनोबा ने उड़ीसा राज्य में प्रवेश किया था। और इस राज्य में प्रवेश करते ही उनको स्मरण हुआ था जगन्नाथपुरी का, भुवनेश्वर का, कोणार्क का और कामारपुकुर का!

बोध गया में समन्वय आश्रम की स्थापना होने से विनोबा प्रसन्न हुए थे। और भरी सभा में जयप्रकाश नारायण का प्रतिज्ञा-पत्र पढ़कर सुनाने के बाद सैकड़ों कार्यकर्ता भूदान-मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति के लिए तैयार हो गये थे! तदनन्तर उड़ीसा राज्य में प्रवेश करते ही विनोबा ने अपनी यात्रा का नाम 'प्रेमयात्रा' घोषित कर दिया। विनोबा की इस पदयात्रा का वृत्तान्त देश-विदेश के समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो रहा था। और 'भूमि बाँटनेवाला देव'—इस रूप में वे प्रसिद्ध हो रहे थे। सारे संसार का ध्यान उनके दुर्बल शरीर की ओर, कीचड़-जंगल-ऊँचे-नीचे रास्तों से तथा पहाड़ पर दनादन चलने वाले पैरों की ओर तथा उनकी असीम मानसिक शक्ति की ओर था!

विनोबा के साथ सैकड़ों कार्यकर्ता चल रहे थे। प्रात:स्मरणीय समय में प्रार्थना के बाद विनोबा उच्च स्वर में वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए निकलते। कभी तुकाराम-नामदेव और जनाबाई के अभंग कहते। उड़ीसा और बंगाल में प्रवेश करते ही उनको श्रीकृष्ण की भक्ति में स्वयं को भूल जानेवाले चैतन्य महाप्रभु का स्मरण हो आया। बंगाल वीरों की भूमि है—सन्तों की भूमि है। कुछ गाँवों की ऐसी विशेषता होती है कि उस भूमि में प्रवेश करते ही वह भूमि बात करने लगती है और इतिहास के सुवर्णमय पत्र खोलकर दिखा देती है।

इस बार ऐसा ही हुआ था। श्री रामकृष्ण की समाधि के स्थान तक जा सकेंगे—

इस विचार से विनोबा आनन्दित थे। विनोबा विचार कर रहे थे, 'मनुष्य के मन में क्या होता है और क्या हो जाता है? किसी समय काशी जाने पर मुझको यही भूमि आमन्त्रित कर रही थी। उस समय भी शरीर इतना सुदृढ़ नहीं था कि कन्धे पर बन्दूक का बोझ उठा सके, परन्तु मन देश को स्वतन्त्र करने के विचार से इतना आक्रान्त था कि आमूलाग्र क्रान्ति के लिए अँग्रेजों से युद्ध करने को मैं प्रवृत्त होनेवाला था। मैं सुभाषचन्द्र बोस के क्रान्तिदल में ही सम्मिलित होनेवाला था। परन्तु वह बात शरीर ने और मन ने स्वीकार नहीं की। हिंसा से क्रान्ति करने के अपने विचार को मैंने ही नकार दिया था।

उतना ही शक्तिशाली दूसरा एक विचार भी मैंने नकार दिया था। मैं साधु-सन्तयोगी बनना चाहता था। हिमालय पर जानेवाला था। ईश्वर-दर्शन की लालसा मन में थी। परन्तु महात्माजी के एक भाषण से प्रभावित होकर मैं उनके पास अहमदाबाद गया। और एक नये जीवन पर्व का प्रारम्भ हो गया! जो भूमि मुझको पहले से ही पुकार रही थी उस भूमि में मैं आज एक भूदान-यात्रा के यात्री के रूप में प्रवेश कर रहा हूँ। यह कितना विचित्र संयोग है!'

पहले न देखी हुई उस भूमि के प्रति विनोबा को अत्यन्त आदर और प्रेम लगने लगा था। आनन्द से शरीर रोमांचित हो उठा था। श्री रामकृष्ण परमहंस के प्रति आदरभाव दुगुना हो गया था। दक्षिणेश्वर में काली माता के मन्दिर में जाने से पहले कामारपुकुर में तथा विष्णुपुर में बिताया हुआ उनका जीवन, तदनन्तर सख्य भक्ति, मधुरा भक्ति और उससे प्राप्त की हुई वह सिद्धि जिससे वे दूसरों के दु:खों को अपने ऊपर ले लेते थे, ये सब बातें विनोबा को आकर्षित कर रही थीं।

उस सिद्धि का विचार आते ही विनोबा के मन में प्रश्न उठा, ऐसी अपरम्पार सिद्धि किसी साधना से प्राप्त हो सकती है? जब महात्माजी प्रसन्न मन से हँसते थे तब सामने बैठे हुए व्यक्ति का दु:ख कुछ समय के लिए दूर हो जाता था, इस अनुभव का वर्णन सभी करते थे परन्तु व्याधियों से मुक्ति दिलाने की शक्ति और सिद्धि श्री रामकृष्ण को प्राप्त थी। दूसरे का ताप-कष्ट वे हस्तस्पर्श से अपने अन्दर खींच लेते थे। यह कैसे सम्भव होता था? अपरम्पार करुणा और अतिशय प्रेम, समाज के लिए समर्पित तन और मन—इनके बिना यह सम्भव नहीं है। मैं ऐसा प्रेम नहीं कर सकता। अहंकार का त्याग करने पर भी दूसरों पर ऐसा असीम प्रेम मैं नहीं कर सकता। नहीं तो मैं भी सहज ही रामकृष्ण बन जाता।

विष्णुपुर में आयोजित सभा में विनोबा ने कहा, "जिस पुरुष के साथ चमत्कार जोड़ दिये जाते हैं वह पुरुष महापुरुष नहीं होता है, बल्कि वह दैवी पुरुष होता है। परन्तु श्री रामकृष्ण स्वयंभू पुरुष थे। उन्होंने अंगभूत गुणों का विकास किया, साधना की, अनुभूतियाँ प्राप्त कीं, सामाजिक जीवन का आत्मीयता से अभ्यास किया—इस

कारण ही यह सिद्धि उनको प्राप्त हुई। आज हम लोग इस पद तक नहीं पहुँच सकते हैं क्योंकि वैसी आत्मीयता हममें नहीं है। आत्मीयता और आत्मशक्ति का हमारे पास अभाव है। ऐसे महापुरुष समाज का पितृत्व और मातृत्व स्वीकार किया करते हैं। आप एक ही काम कीजिए कि आपके गाँव के जिस भाई के पास जमीन नहीं है उसको जमीन दीजिए। वह भी आपकी भाँति सुख से जी सके। आइए, अब हम लोग कुछ समय मन में ईश्वर का ध्यान करें। बाह्य रूप का ईश्वर हमको अपने मन में दिखाई देगा।''

विनोबा पालथी मारकर बैठ गये, उन्होंने हाथ जोड़कर आँखें बन्द कर लीं। कितना समय बीता, पता नहीं चला। परन्तु सारी सभा शान्त और निश्चल थी। यह अनुभव नया और उत्कट था। विनोबा ने सबको जगाया।

पच्चीस दिन की बंगाल-उड़ीसा की यात्रा में विनोबा ने भक्ति और कर्मयोग पर जोर दिया। उन्होंने कहा, ''कर्मरहित भक्ति—कृति के बिना भक्ति का अर्थ आलस और हिंसाचार को निमन्त्रण देना है।'' गीता के कर्मयोग अध्याय के अनेक उदाहरण उन्होंने दिये।

बंगाल में विनोबा ने कहा, ''भारत में सर्वप्रथम अधिकार अँग्रेजों ने बंगाल में स्थापित किया। दूसरे स्थानों पर अँग्रेजों के आक्रमण को मान्यता दी या उसका विरोध किया, परन्तु यहाँ लोगों में धर्मतत्त्व के प्रसार का कार्य हुआ। चैतन्य महाप्रभु ने अपनी भक्तिरस की गंगा में सबको पवित्र किया, शुद्ध किया। राजा राममोहन राय जैसे आधुनिक सन्त ने जन-कल्याणार्थ समाज में सुधार किये। मैं दोनों को शतबार वन्दन करता हूँ।''

बंगाल में अनेक साहित्यिक, शिक्षक, भक्त और सार्वजनिक कार्यकर्ता विनोबा से मिले। उसी समय काँग्रेस का अधिवेशन सम्पन्न हुआ। उसमें विनोबा के कार्यों की प्रशंसा तो हुई ही परन्तु एक प्रस्ताव भी पारित किया गया कि 'भूदान और सम्पत्तिदान—ये दो उपाय भारत की प्रगति के लिए हैं।' इस सम्बन्ध में जागृति उत्पन्न करने का भी निश्चय किया गया। सर्वसम्मति से विनोबा की सहायता करने का आह्वान किया गया। यह भी निश्चय किया गया कि प्रत्येक राज्य की काँग्रेस कमेटी एक भूदान-विभाग प्रारम्भ करे। उसमें प्रदेश काँग्रेस के तथा सर्वोदय के कार्यकर्ता रहें। स्वयं काँग्रेस अपना भी एक आदर्श तैयार करे।

विनोबा को अब बार-बार अपनी अस्वस्थता की प्रतीति होने लगी थी। फिर भी वे अनवरत परिश्रम करते हुए जगन्नाथपुरी पहुँचे। उनका पड़ाव समुद्रतट पर बनी मन्दिर की धर्मशाला में था। बाहर छोटे खेमे थे।

सामने अथाह सागर और ऊपर अनन्त आकाश—इनका मनोहारी दर्शन करते हुए विनोबा बड़ी देर तक स्तब्ध खड़े रहे। इस यात्रा में अनेक महिलाएँ सम्मिलित हो

गयी थीं। उनमें एक फ्रेंच महिला थी। विनोबा को तन्मय होकर देखते देखकर उसने पूछा, "बाबा! इस प्रकार क्या देख रहे हैं?"

"ईश्वर का अनन्त रूप!"

"सो कैसे?"

"जिसके तल का पता नहीं, ऐसा महासागर और दृष्टि से परे जिसकी लम्बाई-चौड़ाई नहीं नापी जा सकती, ऐसा आकाश, यह निस्तब्धता, सागर में दिखाई देनेवाले सूर्य-चन्द्र के असंख्य प्रतिबिम्ब—ये सब उस अज्ञात ईश्वर के ही रूप हैं। इसीलिए मेरी इच्छा होती है कि यह सब देखता ही रहूँ!"

"इस सबके पीछे विज्ञान है, आपको ऐसा नहीं लगता बाबा?"

विनोबा बोले, "लगता है न! ईश्वर ज्ञानमय, विज्ञानमय और सहजगम्य है परन्तु विचारों से अगम्य भी है। विज्ञान से हृदय के स्पन्दनों की गणना की जा सकती है। परन्तु मन दिखाई नहीं देता है—मन के सूत्र नहीं मिलते हैं। एक समय में निमेष मात्र में लाखों मील दौड़नेवाला मन ईश्वर-जैसा ही अगम्य है। श्री रामकृष्ण की मृत्यु के चालीस वर्ष बाद तुम्हारा ही फ्रान्सीसी लेखक रोम्याँ रोलाँ यहाँ आकर परमहंस की समाधि-स्थली पर गया। उसने जानकारी एकत्र की और भारतीय संस्कृति के मूलाधार जीवन-मृत्यु तथा ईश्वरत्व—इनका शोध करने के लिए संस्कृति का गम्भीर अध्ययन किया। उसने कहा था, 'मैं संस्कृति में और ईश्वर में इतना तल्लीन हो गया हूँ कि इनके अतिरिक्त मुझको कुछ नहीं चाहिए।' "

उस महिला ने कहा, "ग्रेट, सिम्पली ग्रेट बाबा! इसीलिए तो आपकी अद्भुत भूदान-यात्रा में सम्मिलित होने के लिए मैं दिल्ली से आयी हूँ।"

वह युवती विनोबा के कृश शरीर के असीम सामर्थ्य से बड़ी प्रभावित हुई। देह और मन अलग हैं, इस विचार से वह इतनी प्रभावित हुई कि उसने विनोबा से कहा, "आप ईश्वरपुत्र हैं, उसके भेजे हुए देवदूत हैं।"

विनोबा ने मुस्कराकर कहा, "मैं सीधा-सादा मनुष्य हूँ।"

उस युवती ने भावाभिभूत होकर कहा, "सीधा-सादा मनुष्य यदि इतना महान है तो आपका ईश्वर कितना महान होगा!"

कोणार्क का सूर्यमन्दिर। संसार में शिल्पकला की अनुपम कृति को देखकर विनोबा अभिभूत हो गये। समुद्र के तट पर सूर्यमन्दिर। उसके पत्थर के पहियों ने मन्दिर का भार उठा रखा था। सूर्यदेव की प्रतिमा—वह पाषाण की थी परन्तु लगती थी जैसे लोहे की हो! उस पर तीन भाव थे—प्रातःकाल का, दोपहर का तथा सायंकाल का। मानो ये जीवन की तीन अवस्थाएँ ही थीं! नृत्यागार से सूर्य की प्रथम किरणें गर्भगृह में सूर्य-प्रतिमा पर पड़ती थीं। वह सम्पूर्ण रामायण-महाभारत की शिल्पकृतियों से सजा हुआ था। यह सूर्य-मन्दिर देखते हुए विनोबा अत्यन्त प्रभावित हुए।

भुवनेश्वर में ऐसे ही सुन्दर मन्दिर थे। मानो वह जगन्नाथपुरी का लघु संस्करण

हो। भगवान् जगन्नाथ से मिलने को वे उत्सुक थे।

प्रात:काल प्रार्थना के पश्चात् विनोबा चल दिये। उनके साथ अनेक महिलाओं में फ्रेंच महिला भी थी। मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर ही उस फ्रेंच महिला को अन्दर जाने से रोक दिया। 'हिन्दुओं को ही प्रवेश'—यह सूचना-पट वहाँ लगा हुआ था। चार सौ वर्ष पहले गुरु नानक देव को भी यहाँ प्रवेश नहीं करने दिया गया था। यह बात जब विनोबा को पता चली तब वे बोले, "मूर्तिरूप जगन्नाथ के दर्शन मैं कर सकता हूँ, परन्तु मेरे साथ अनेक धर्मों के लोग हैं। चूँकि वे दर्शन नहीं कर सकते, इसलिए मैं भी नहीं करूँगा। वास्तव में देव मन्दिर में नहीं है। वह है हमारे-तुम्हारे मन में। देव सीमित नहीं है। वह असीम लोगों की भावनाओं में है। एक साकार मूर्ति को देखने का सौभाग्य मुझको मिल सकता था। परन्तु वह न मिलने के कारण मुझको आप लोगों में उसका अनन्त रूप दिखाई दिया।"

सन्ध्या-समय उस फ्रेंच महिला ने कहा, "बाबा! मेरे कारण यह अनहोनी घटना हो गयी!"

विनोबा बोले, "नहीं! ईश्वर स्पर्श से दूषित होनेवाला नहीं है। जो दीन-दलितों का उद्धारक है वह अमंगल कैसे होगा? वह विषय समाप्त हो गया।"

वह महिला विनोबा के शान्त-प्रसन्न मुख की ओर देखती रही।

जब विनोबा कोरापुट जिले में पहुँचे तब वर्षा का ताण्डव नृत्य तो हो ही रहा था, बड़े-बड़े मच्छर भी आक्रमण-रत थे। लोग मलेरिया से त्रस्त थे और वर्षा से भी उकता चुके थे। भूदान-यात्रा के लोगों में थकावट का नाम नहीं था। वे कहीं रुके नहीं थे। विनोबा वर्षा में खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर कर आकाश की ओर देखते हुए उच्च स्वर में गाने लगते। लोग भी गाने लगते :

> "स नो वृष्टिं दिवसस्परि
> स नो वाजमनर्वाणम्
> स नः सहस्रिणीरिषः ॥

ऋषि सदैव ईश्वर से प्रार्थना करता है कि हमारे स्वर्ग से खूब वर्षा होने दो। वह वर्षा करे और हम उसका स्वागत करें, यह उचित ही है।

ऋषि एक और प्रार्थना किया करता है कि हमारी गति में कभी बाधा मत आने देना। और ऐसा ही हुआ। इतनी वर्षा और रोगों का ताण्डव फिर भी कोरापुट में छह सौ गाँव भूदान में मिल गये। उत्तर प्रदेश के मंगरोठ गाँव में जो घटना हुई थी उसका इतना विकसित रूप यहाँ घटित हुआ कि वाणी मौन हो गयी थी! दान ने अभिभूत कर दिया था!

ऋषि एक प्रार्थना और करता है। वह कहता है, सहस्र प्रकार की वर्षा की बूँदें मानो सहस्र करों से ईश्वर ही हमको स्पर्श कर रहा है! और ठीक ऐसा ही हो गया!

सैकड़ों लोगों की सहस्त्रों सुन्दर भावनाएँ हम तक पहुँच रही हैं! बिहार में यह दिखाई दिया कि एक प्रान्त के लाखों लोग लाखों एकड़ भूमि का दान कर सकते हैं और उड़ीसा में यह दिखाई दिया कि यहाँ हजारों ग्राम-दान हो सकते हैं। एक प्रकार से मेरा काम हो गया है। लोग जाग्रत हो गये हैं। भूदान सहज हो गया। इससे अधिक क्या हो सकता था? इसीलिए भूदान के साथ कुछ अन्य विचार भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न मैं कर रहा हूँ।"

विनोबा प्रत्येक सभा में अपने विचार रखते थे।

एक दिन एक स्त्री अपने नवजात शिशु को लेकर आयी और उनसे बोली, "बाबा! लोग गाँव के गाँव आपको देते हैं। माँगना बुरा है, देना अच्छा है। मेरे पास चार बीघा जमीन है। एक चार वर्ष का लड़का है मेरा और यह दो महीनों का है। इसका बाप साँप के काटने से मर गया था। मेरी स्थिति देखकर कोई मेरे द्वार पर माँगने नहीं आया। मुझको अच्छा नहीं लगा। बाबा! मेरी दो बीघा जमीन आप लिख लीजिए!"

विनोबा की आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने जमीन लेने से इनकार कर दिया। तब वह बोली, "बाबा! तुम याचक हो। झोली में जो कुछ पड़े उसको स्वीकार करना तुम्हारा काम है।"

वह उठी और अँगूठा लगाकर दो बीघा जमीन के दान का कागज उसने विनोबा के हाथ में दे दिया।

अभी वह स्त्री गयी नहीं थी कि एक वृद्धा स्त्री आ गयी। वह आयी काली माता के आवेश में! वह बोली, "ईश्वर तेरा सत्यानाश करे! मेरे नातियों के मुँह से कौर छीननेवाला तू राक्षस है—राक्षस! तेरा कभी भला नहीं होगा।"

वह वृद्धा स्त्री जैसे आयी थी वैसे ही चली गयी। विनोबा शान्तिपूर्वक बैठे हुए स्त्री के दोनों रूपों को देख रहे थे। वे विचार कर रहे थे—'आज इस वृद्धा के मुख से निकली यह शापवाणी मेरे कर्म का आलेख भविष्य की पाटी पर लिख तो नहीं गयी है! वह वृद्धा मेरे ललाट पर नियति की रेखा तो अंकित नहीं कर गयी है?'

20

पन्द्रह अप्रैल को विनोबा कन्याकुमारी पहुँच गये थे। भारत भूमि के अन्तिम छोर की कल्पना करते ही वे गद्‌गद हो उठे। पहले के लोग गंगा का पानी साथ लेकर निकलते

और रामेश्वरम् में गंगाजल से अभिषेक करते। वही पुण्य प्राप्त होगा। आज भी विनोबा उत्तर की ओर से दक्षिण की ओर बिल्कुल छोर तक पहुँच गये थे। अनेक गाँवों में वे पहुँचे। अनेक गाँवों में वे ठहरे। गंगा-जैसा पवित्र मन लेकर वे समाज के मन को स्वच्छ करते हुए यहाँ तक आये थे। वर्षा-जल-धूप-वायु आदि किसी का भी परिणाम अपने ऊपर अधिक नहीं होने दिया और वे सतत चलते रहे थे। समय मिलता तो वे वेद-उपनिषदों का अर्थ मराठी में लिख रहे थे। इस प्रकार अनेक नदियों का भाव-जल लेकर वे कन्याकुमारी में पहुँचे थे।

रामेश्वरम् से बीस मील दूर रावण की लंका थी। श्री राम ने रत्नाकर के सहयोग से और वानरसेना की सहायता से सेतु का निर्माण किया। सामंजस्य और सहयोग के सेतु को नकारकर रावण ने विनाश को आमन्त्रित कर लिया। कन्याकुमारी में विनोबा को श्रीराम-कथा का स्मरण हुआ। और उनके मन में आया, 'मुझमें अभी अहं है। अयोध्या का राजकुमार राम अपनी वचनपूर्ति के लिए घने अरण्य में मार्ग ढूँढ़ता हुआ दण्डकारण्य तक आया और फिर सीता का अपहरण होते ही वह पुन: घने जंगल पार करता हुआ लक्ष्मण सहित रामेश्वरम् तक आया। वानरसेना की सहायता से उसने कुबेर के भाई रावण का वध किया। और अभी कुछ ही समय बीता है जब श्री रामकृष्ण परमहंस के परम शिष्य स्वामी विवेकानन्द दक्षिणेश्वर-कोलकाता से जनता-जनार्दन का दर्शन करते हुए तथा हिन्दू-धर्म संस्कृति के चरणचिह्नों का अध्ययन करता हुए कन्याकुमारी तक आये थे और सामने ही समुद्र में स्थित भव्य शिलाखण्ड पर दो दिन तक विचार करते बैठे रहे थे—'देश को धर्म से जोड़ा जाए या सत्ता से जोड़ा जाए? धर्म में राजनीति नहीं होनी चाहिए परन्तु राजनीति में धर्म होना चाहिए, शिवमंगलत्व की गन्ध होनी चाहिए। धर्म से भारतीयों को अलग नहीं किया जा सकता। भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म सर्वसमावेशक हैं। उदात्त हैं। हमारे पास जो सुवर्ण है उसको लोगों तक पहुँचाना चाहिए। अज्ञान और दरिद्रता देश के अन्तरंग प्रश्न हैं। इन प्रश्नों का समाधान किया जा सकता है परन्तु खण्ड-खण्ड में अखण्डत्व की रक्षा करनेवाला धर्म का परिचय लोगों तक पहुँचाने के लिए विश्व धर्म परिषद् में शिकागो में पहुँचना चाहिए।' यह निश्चय कर विवेकानन्द उठे थे। स्वामी विवेकानन्द के जीवन को दीप्तिमान करनेवाले प्रसंगों को विनोबा ने निकट से अनुभव किया। कन्याकुमारी में तीन महासागरों का दर्शन होता है और सूर्य समुद्र में डूबकर पुन: उदित होता हुआ दिखाई देता है। कभी-कभी अस्तंगत होता हुआ चन्द्रमा पश्चिम की ओर तथा उदित होता हुआ सूर्य पूर्व की ओर—इस प्रकार मनोहारी दो सम्राटों का रूप विनोबा को दिखाई देता था। वे गद्‌गद हो उठे थे—'हे कुमारी कन्यके! तुम भारत का सौन्दर्य और प्रतिष्ठा हो! तुम भारतीयों की रक्षणकर्मी हो! तुम्हारी भूमि में प्रवेश करते समय भारत की स्वतन्त्रता की कल्पना साकार होती है और यहीं यह प्रतीति बलवत्तर होती है कि

हम औरों से भिन्न हैं! तुम देख रही हो कि अँग्रेज चले गये फिर भी मिशनरी रिलीजन का प्रचार करने में लगे हुए हैं। हे कुमारी कन्यके! हम तुम्हारे विश्वास पर निश्चिन्त-निर्भर हैं! तुम हमारी रक्षणकर्त्री हो। महासागर किनारे को निगल न ले, इसलिए तुम सावधान हो।'

विनोबा बहुत देर तक एकाग्र मन से सागर में स्थित शिलाखण्ड को देखते रहे। वे विचार कर रहे थे, 'स्वामी! आपने धर्म की प्रतिष्ठा की। राष्ट्र को अखण्डित रखने के लिए धर्म-जैसा शक्तिशाली साधन दूसरा नहीं है। मैं अपने ढंग से लोगों को जाग्रत कर परस्पर प्रेम-भावना जगा रहा हूँ। मैं बता रहा हूँ कि प्रेम ही धर्म है। मेरे जीवन का अर्थ ही प्रेम है। ज्ञान-विज्ञानमय और प्रेममय ईश्वर के रूप ही मैं सर्वत्र खोज रहा हूँ। स्वामी! मेरे कार्य के लिए अपनी शुभकामनाएँ मेरे साथ रहने दें!'

सागर के तट पर स्थित तम्बू में विनोबा तीन दिन रहे थे।

उड़ीसा से लौटकर विनोबा आन्ध्रप्रदेश और तेलंगाना में आये। पाँच वर्ष पहले यहीं से भूदान-यज्ञ प्रारम्भ हुआ था। और ऐसा लग रहा था कि अब कभी यहाँ आना नहीं होगा, फिर भी संयोगवश वे वहाँ आ गये थे। लोगों में उत्साह था। भूदान में मिली हुई भूमि पर अब हरी फसल लहलहा रही थी। सब लोग प्रसन्नता से विनोबा का स्वागत करने आये। विनोबा ने हाथ जोड़कर उनको नमस्कार किया और पूछा, "खुश हैं न?"

इस प्रश्न का उत्तर लोगों की आँखों से आनन्दाश्रु के रूप में मिला।

विनोबा बोले, "अभी कुछ दिन पहले गुणपुर में मेरा साठवाँ जन्मदिन मनाया गया था। तब मैंने सात बातें महत्त्वपूर्ण कही थीं। यदि वे बातें हो गयीं तो आप सभी सदैव हँसते रहेंगे।"

किसी ने पूछा, "वे बातें कौन-सी हैं?"

विनोबा कहने लगे :

"दरिद्रता का उन्मूलन होना चाहिए। यह पहली बात। दूसरी बात यह है कि जमींदार जमीन देते समय मन पर नैतिक दबाव न बनाएँ—विचारपूर्वक और प्रेम से जमीन दें। कई बार दबाववश प्रतिष्ठा के चक्कर में पड़कर जमींदार जमीन दे देते हैं, परन्तु फिर पश्चात्ताप करते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। तीसरी बात यह कि एक ओर जमींदार हैं, जिनके पास सैकड़ों एकड़ जमीन है और दूसरी ओर भूमिहीन मजदूर हैं। इनमें घोर विषमता है तथा वर्ण विद्वेष भी चरम पर है। ऐसी दशा में आपस में प्रेमभाव कैसे उत्पन्न हो सकेगा, इस ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

चौथी बात यह है कि धर्मभावना जाग्रत होनी चाहिए। यज्ञ-दान-तप पर हमारी संस्कृति आधारित है। समाज को धर्म का ज्ञान कराना आज अत्यन्त आवश्यक हो गया है। धर्म पर श्रद्धा और जन्मभूमि पर निष्ठा, ये दो बातें इसमें अभिप्रेत हैं।

पाँचवीं बात है श्रमनिष्ठा। धर्म, मन की आवश्यकता है। श्रम, शरीर की आवश्यकता है। श्रम से व्यक्ति का और समाज का विकास होता है। अपरिग्रह, सहयोग, स्वावलम्बन और स्वयंपूर्णता, इन पर आधारित सुदृढ़ समाज अपेक्षित है।

छठी बात यह है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् आज राजनीतिक दलों में राजनीति की खिचड़ी पकने लगी है। स्वतन्त्रता के लिए अपने सुख की होली करके लड़नेवाले वीरों को भुला दिया गया है तथा राजनीति में केवल एक-दूसरे पर कीचड़ फेंकना रह गया है। वास्तव में राजनीति में लिप्त सभी लोगों को परस्पर सहयोग से देश का विकास करना चाहिए। और सातवीं बात यह है कि विश्व-शान्ति के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए।

सम्पूर्ण विश्व में शान्ति स्थापित हो, यह उद्देश्य होना चाहिए।"

एक ने पूछा, "परन्तु यह सब एकदम कैसे हो जाएगा?"

दूसरे ने पूछा, "इस कार्य में कितने वर्ष लगेंगे?"

विनोबा ने कहा, "जो समय लगेगा वह लोगों के मन में बात बैठने में लगेगा! फिर आमूलाग्र क्रान्ति होने में समय नहीं लगेगा।"

लोग विचार-मग्न हो गये। विनोबा मुस्कराते रहे।

विनोबा जहाँ-जहाँ जाते थे वहाँ-वहाँ वे एक भी अवसर व्यर्थ नहीं जाने देते थे। वे एक चलता-फिरता विश्वविद्यालय ही थे। विनोबा के इस विश्वविद्यालय में उपदेशों की बौछार होती, परन्तु हास्य-विनोद में, कभी समझाने के ढंग में। कभी विनोबा का स्वागत गाँव की सीमा पर वाद्यवृन्द से किया जाता और पुष्पमालाएँ उनके कण्ठ में पड़तीं, कभी उनके आगमन के मार्ग पर तोरणद्वार बनाये जाते, तो कभी मार्ग में फूलों के पाँवड़े बिछाकर उस पर होकर उनको ले जाया जाता।

एक बार एक गाँव में वे रात में ठहरे हुए थे। एक युवक परम्परागत दीवट ले आया। विनोबा ने उससे पूछा, "क्यों भई, इस दीवट में चार-चार पाँच-पाँच बाती क्यों रखते हो?"

वह युवक असमंजस में पड़ गया। विनोबा हँसकर बोले, "भारत में गाँवों में पंचायत-राज है। पाँचमुखी परमेश्वर पंचों के मुख से बोलता है। एक की अपेक्षा पाँच जनों की बुद्धि देश का एक ही समय विकास कर सकती है, परन्तु हम लोग उस ओर ध्यान नहीं देते हैं, यह सच है न?"

वह युवक समझ गया।

एक बार श्रीमन्नारायण विनोबा के साथ चल रहे थे। चलते-चलते अनेक विषयों पर चर्चा कर रहे-थे।

विनोबा ने अत्यन्त दु:ख से कहा, "देश परन्तत्र था। उसके दु:ख और कष्ट स्वन्त्रता के बाद कितनी जल्दी भुला दिये गये? तब एक ही ध्येय था। एक ही चिन्ता

थी—देश की! एकमेव मरणमार्ग था—देश के लिए! परन्तु आज भाषा के आधार पर प्रदेश रचना के समय बीस-पच्चीस लोग यों ही मरते हैं! सीमावाद-भाषावाद-जलविवाद-राजनीति आदि कारणों से मृत्यु देखकर दु:ख होता है। सबको मिलकर देश का विकास करना है—इसी एक बात को भूल जाते हैं। प्रदेश ही नहीं सारा भारत हमारा है। भाषाएँ हमारी हैं। नदियाँ-पर्वत हमारे हैं। उनका बँटवारा होते समय दु:ख और झगड़े किसलिए? भाषा के आधार पर प्रदेश-निर्माण से प्रदेशों का और देश का विकास होगा। विद्यालयों में मातृभाषा में ही शिक्षा दी जानी चाहिए तथा एक प्रदेश की भाषा दूसरे प्रदेश की भाषा की सौत न होकर बहिन है, यह विचार होना चाहिए। भाषा तोड़नेवाली न होकर जोड़नेवाली होनी चाहिए।''

श्रीमन्नारायण ने पूछा, ''और प्रदेश में शिक्षा अलग-अलग होनी चाहिए या सम्पूर्ण भारत में एक शिक्षाप्रणाली होनी चाहिए?''

विनोबा बोले, ''मूलभूत प्रश्न, भौगोलिक वातावरण, भौतिक आवश्यकताएँ तथा सामाजिक स्थिति पर शिक्षा-प्रणाली आधारित होनी चाहिए। सभी भाषाओं का ज्ञान होना कठिन बात है, इसलिए एक राष्ट्रभाषा और एक मातृभाषा प्रत्येक छात्र को आनी ही चाहिए। आज अँग्रेजी में ढेर सारी पुस्तकें उपलब्ध हैं। इसी प्रकार प्रत्येक भाषा में पुस्तकें उपलब्ध हों तो शैक्षणिक और व्यावसायिक लाभ हर प्रदेश को मिल सकेगा।''

श्रीमन्नारायण ने कहा, ''आज पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा शिक्षा का विचार अधिक किया जा रहा है।''

विनोबा बोले, ''यह होना चाहिए। व्यावसायिक शिक्षा तथा अन्य शिक्षण का लाभ यदि विद्यार्थी-दशा से ही लिया जाए तो आगे चलकर औद्योगीकरण के लिए शहर में भीड़ नहीं होगी। ग्रामोद्योग के कारण गाँव स्वयंपूर्ण होंगे। लोग मुझको ऋषि कहते हैं, धर्मरक्षक कहते हैं, पुराणों का कीड़ा कहते हैं। परन्तु मैं विज्ञानवादी हूँ। ग्रामोद्योग में भी नवीन उपकरणों का प्रयोग होना चाहिए। लोग कहते है, आप स्वयं को विज्ञानवादी कहते हैं तो फिर यन्त्र का उपयोग न करके पैदल क्यों चलते हैं? इसका उत्तर यह है कि मैं प्रत्यक्ष जनसम्पर्क करना चाहता हूँ। यदि मुझको लन्दन और अमेरिका जाना होगा तो उस साधन का ही प्रयोग करूँगा जो कुछ घण्टों में ही मुझको वहाँ पहुँचा देगा।''

श्रीमन्नारायण ने कहा, ''देश में सबको काम तो कभी नहीं मिलेगा!''

विनोबा ने कहा, ''क्यों नहीं मिलेगा?''

श्रीमन्नारायण कहने लगे, ''जनसंख्या पर नियन्त्रण होना चाहिए। जब तक सन्तति-नियमन नहीं होगा तब तक राष्ट्र का विकास नहीं होगा। हाँ, ग्रामोद्योग विकसित हो जाएँ तो असम्भव कुछ नहीं है। हाथ पर हाथ रखकर बैठने से कुछ नहीं मिलेगा।

प्रत्येक को श्रम करना चाहिए। नामशेष दशा को प्राप्त जापान राख से निकलकर आकाश में छलाँग लगा सकता है तो अपना वैदिक राष्ट्र विश्व में सम्पन्न राष्ट्र क्यों नहीं हो सकता? भूदान से ग्रामविकास और आर्थिक समस्याओं का निदान सरलता से हो सकेगा।''

श्रीमन्नारायण और विनोबा जब बोलने लगते तब घण्टों बातें करते रहते। कभी-कभी अत्यन्त व्याकुल होकर विनोबा कहते, ''ईश्वर कितनी पीढ़ियाँ और कितना परिवर्तन मुझको दिखाएगा, यह विचार कर मैं व्याकुल हो जाता हूँ। देश की राजनीति, देश का वातावरण मुझको अस्वस्थ करता है। अपने जीवन में मैंने माता की भक्ति देखी है, पिता की तत्त्वनिष्ठा देखी है, महात्माजी का कर्मयोग देखा है और बदलते जीवन के रंग देखे हैं।''

एक बार विनोबा ने श्रीमन्नारायण से कहा, ''मैं विवेकी और वैज्ञानिक विचार करनेवाला हूँ। मैं देश के लिए आज कोई भी त्याग करने को तैयार हूँ। परन्तु आज के वैज्ञानिक भौतिक सुख के लिए देश के विकास के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलने को तैयार नहीं हैं।''

मदालसा देवी बोलीं, ''लोग जैसा जीवन आजकल व्यतीत कर रहे हैं, उस सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?''

विनोबा ने कहा, ''मुझसे पूछा है तो मैं कहता हूँ, यह बाबा पुराने विचारों का है। अट्ठाईस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन, फिर आगे अड़तालीस वर्षों तक गृहस्थ-जीवन और फिर वानप्रस्थ-आश्रम की विधिवत् दीक्षा व्यक्ति को लेनी चाहिए। आजकल अठारह वर्ष से अट्ठावन वर्ष तक जीवन का उपभोग किया जाता है। जैसा मैंने कहा है, वह करने से समाज की अनेक समस्याएँ कम हो सकेंगी।''

विनोबा पोचमपल्ली से तमिलनाडु, कांचीपुरम और कन्याकुमारी तक पहुँचे थे। अभी कहाँ और कितना जाना था, इसका उनको पता नहीं था। असीम उत्साह के साथ उनकी यह आनन्द-यात्रा इन तीन महासागरों के पास आ गयी थी।

विनोबा के आस-पास जन-सागर लहरा रहा था। महासागर में लहरों का नर्तन होता है और जनसागर में भावनाओं का स्पन्दन होता है। विनोबा भी अभिभूत थे। गम्भीर स्वर में विनोबा ने लोगों से कहा, ''जब तक ग्रामदान का लक्ष्य पूर्ण नहीं होता है तब तक यह पदयात्रा चलती ही रहेगी। भगवान सूर्य नारायण को साक्षी बनाकर हिन्द महासागर के तट पर देवी कन्याकुमारी के चरणों पर सिर रखकर हम प्रार्थना करते हैं कि जब तक भारत में ग्राम-स्वराज की स्थापना नहीं होती है तब तक यात्रा निरन्तर चलती रहेगी। ईश्वर हमारी इस योजना को सफल बनाकर हमको यश प्रदान करे। ग्रामदान मिलना चाहिए। गाँव स्वयंपूर्ण होने चाहिए। गाँव में सुख-शान्ति क्रीड़ा करे—इसके लिए ग्रामोद्योग होने चाहिए। गाँव-गाँव में परस्पर स्नेहभाव होना चाहिए। महात्माजी

के रामराज्य की कल्पना इस जीवन में साकार हो सकेगी या नहीं, यह तो ईश्वर ही जाने!''

नारियल और सुपारी के बागों में छायी हरियाली केरल के लावण्य का वर्णन करती हुई सामने आयी। उड़ीसा-असम और केरल लगभग समान ही प्रतीत हुए। परन्तु वहाँ बांग्ला भाषा थी तो यहाँ तेलुगु-तमिल-मलयालम भाषाएँ हैं। सभा में विनोबा ने कहा, ''केरल का सौन्दर्य अनुपम है। इसकी एक और विशेषता है। यहाँ की भूमि पर यहाँ के लोगों में भी एक विशेषता है। इस प्रदेश में अनेक राजनीतिक दल हैं। यद्यपि अनेक राजनीतिक दल लोकतन्त्र के पूरक होते हैं तथापि उनके कारण परस्पर स्नेहभाव नष्ट होने की सम्भावना रहती है। इस भूदान से जब सब समान हो जाएँगे तब अनेक प्रश्न हल हो जाएँगे। उसी प्रकार यहाँ 'शान्ति सेना' की आवश्यकता है। यह सेना केवल शान्ति के लिए प्रयत्न करेगी—अहिंसात्मक मार्ग से। लोगों को प्रेमभावना से समझाया करेगी। हृदय-परिवर्तन के लिए शान्ति सेना की आवश्यकता है। हिंसाचार न होने देना, समाज-सेवा करना, ग्रामदान और भूदान से साम्ययोग के लिए शान्तिसेना कार्य करेगी।''

और उस सभा में अनेक लोगों ने विनोबा के भाषण का स्वागत किया। अगला मुकाम मंजेश्वरम् में था और वहीं पर शान्तिसेना-समिति गठिन हो गयी। विनोबा रात में सोते समय चिन्तन करते और दूसरे दिन उन विचारों को प्रस्तुत करते। श्रीकाकुलम, विशाखापट्टम, पूर्व गोदावरी, पश्चिम गोदावरी, कृष्णा, गुण्टूर, नलगोण्डा, वारंगल आदि अनेक प्रदेशों से वे चलकर आये थे। कुर्नूल में विधानसभा में सदस्यों के सामने उन्होंने अपने विचार रखे।

महात्माजी की आठवीं पुण्यतिथि को विनोबा पोचमपल्ली में थे। उस दिन विनोबा ने गद्गद होकर कहा, ''मैं स्वीकार करता हूँ कि अपने कार्यों में उतना सफल नहीं हुआ हूँ। यह सच है कि मुझको लाखों एकड़ भूमि मिली और सैकड़ों गाँवों ने ग्रामदान दिया। लोग मुझको देवपुरुष के रूप में देखने लगे। परन्तु अन्तर्यामी मैं दु:खी हूँ। मैंने विचार किया था कि भूदान से प्रत्येक गाँव में शान्ति होगी और सुख छाएगा। दो वर्ष पहले मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि भूदान से देश में इतना तीव्र असन्तोष उत्पन्न होगा। जमींदारों से जमीन लेकर वह मैंने भूमिहीनों को दे दी। मैं नहीं समझता कि यह मैंने बुरा किया। गरीबों के लिए मैं देवता बना, परन्तु उससे अधिक मैं जमींदारों के लिए राक्षस बना! जमींदारों ने, विरोधी राजनीतिक दलों ने तथा संघटनों ने मुझको बदनाम किया। वास्तव में तो लेना और देना—इतना ही मेरा काम है। उड़ीसा में तो दो-तीन बार सभाओं को भंग करने के लिए गोलियाँ चलीं! वहाँ सैकड़ों की संख्या में गाँव के गाँव मुझको दान में मिले थे। अन्य अनेक गाँवों में भी ऐसी ही हिंसक घटनाएँ हुईं। मैं जमीन न माँगूँ—इसके लिए बार-बार प्रयत्न किये गये। इस बाबा को

जान से मारने की भी अनेक धमकियाँ मिलीं। अनेक बार बाबा को मारने के लिए मारनेवाले आये भी। किया क्या है बाबा ने? उसने धन-सम्पत्ति का मोह त्यागने को कहा है। कुछ स्थानों पर बलपूर्वक दान कराया है। दबाव डाला है। धन-सम्पत्ति का मोह सबको होता है और यह स्वाभाविक है। इसमें अनुचित कुछ नहीं है। परन्तु इसके लिए हिंसक घटनाएँ हों, यह कल्पना मैंने कभी नहीं की थी। दु:ख यही था।''

उस रात विनोबा को नींद नहीं आयी। वे रातभर अवस्थ रहे और एक के बाद एक 'मन के श्लोक' बोलते रहे :

रे मन मेरे! भक्तिपथ पर ही चलना।
अहर्निश श्री हरि को ही भजना।
लोकनिन्दित जो-वो सब तजना।
लोकवन्दित जो-वो सब करना।
प्रात: मन में राम का ध्यान करना।
मुख से प्रथम 'राम' उच्चार करना।
मन कभी सदाचार को न त्यजना॥

फिर भी उनको नींद नहीं आयी। सहसा उनको स्मरण हुआ कि हर बार समाज ने उनका विरोध किया था। उनकी हर बात समाज को बुरी दिखाई दी। फिर वे विचार करते, 'लेकिन मैं यह क्यों सोचता हूँ? जब मैं परम्परा और प्रथा को तोड़ने का प्रयत्न करूँगा तो कुछ समय तो विरोध होगा ही!'

जब सन् 1932 में नालवाडी की हरिजन बस्ती में वे रहने लगे थे तब भी लोग चिढ़ गये थे। ''महात्माजी जो कुछ करते थे उसको समाज मान लेता था, भले ही चिढ़कर मानता! परन्तु मेरी आलोचना होती थी। परन्तु फिर भी मैंने व्रत नहीं छोड़ा। सन् 1934 में महात्माजी ने कहा था—'अखिल भारतीय हरिजन-यात्रा निकालनी है और भगवद्गीता का पाठ करना है।' मैंने तत्काल स्वीकृति दे दी थी।'' विनोबा विचार कर रहे थे, 'बापू पर मेरी अत्यन्त श्रद्धा थी। जो वो कहें वही करना है, उससे परे कुछ विचार नहीं करना है। वो कहें और मैं करूँ। पहले सोचता था कि देश की स्वतन्त्रता के लिए बलिदान करना चाहिए। परन्तु बापू ने यह बलिदान का पागलपन अपने दिमाग से निकाल दिया और फिर मैं जितना-जितना विचार करने लगा उतना ही बापू के ध्येय-तत्त्व में विलीन होता गया। मैंने प्रत्येक व्रत का आचरण किया और अन्त में मैं जीवनव्रती हो गया। परन्तु समाज को ये व्रत अप्रिय लगने लगे। परन्तु यह मेरे सम्बन्ध में ही नहीं हो रहा है। यह तो सभी के साथ हुआ है। सभी महापुरुषों की जीवन-सन्ध्या निराशा की छाया लेकर आती है।'

उनको स्मरण हुआ, एक दिन नालवाडी के रास्ते पर एक महारोगी पड़ा हुआ

था। उसको वहाँ तीन दिन हो गये थे। अन्त में जंगली कुत्ते उसको नोच-तोड़कर खाने लगे। इस घटना का पता महात्माजी को और विनोबा को चला। दोनों ही उस समय सेवाग्राम में थे। महात्माजी ने कहा, "इसी जीवन में नरक-यातना भोगनेवाला वह मनुष्य मुक्त तो हो गया परन्तु मरने के बाद भी उसकी आत्मा को शान्ति नहीं मिली। उसके शरीर की इस प्रकार चीरफाड़ होते देखकर लोगों को स्वयं अपने ऊपर चिढ़ क्यों नहीं हुई? यह कैसे देख सके वे?"

किसी ने कहा, "उसको कुष्ठ रोग हो गया था। वह मनुष्य रोग से सड़ गया था।"

बड़ी देर तक महात्माजी कुछ नहीं बोले। उनकी आँखें सजल हो गयी थीं। उन्होंने कहा, "जिसको वाणी मिली है, जिसको ज्ञान मिला है, ऐसा एक ही प्राणी इस धरती पर है और वह है मनुष्य! परन्तु उस मरे हुए मनुष्य से किसी ने बातें नहीं कीं, मरते समय उससे पानी की भी नहीं पूछी, उसकी दुर्दशा हुई! कुष्ठरोठ-निवारण का मेरा कार्य अधूरा रह गया है। मैंने उसकी दुर्दशा देखी है।"

विनोबा ने कहा, "बापू! आप सिर्फ आदेश दीजिए...मैं कुष्ठरोगियों की सेवा करने को तैयार हूँ।"

गाँधीजी ने आश्चर्य से कहा, "सच विनोबा?"

विनोबा बोले, "हाँ! आपकी बात सुनकर ही आपके मन की व्यथा का तथा मृत मनुष्य की मन:स्थिति का अनुमान मैंने कर लिया है।"

सन् 1936 में 'महारोगीं-सेवामण्डल' की स्थापना हुई—दत्तपुर में। और आश्रमवासी विनोबा के पास आने में डरने लगे। समाज से बहिष्कृत उन लोगों को ऐसा आनन्द मिला मानो उनको देवता ही मिल गया हो! फिर भी समाज ने विनोबा के विरुद्ध खूब कोलाहल किया। परन्तु अन्त में समाज स्वीकार करता गया। विनोबा भी बदलते गये। मन को सदैव समझाते रहे।

विचार करते-करते विनोबा को नींद आ गयी।

28 मई 1958 को विनोबा पण्ढरपुर पहुँचे। आयु के तिरसठवें वर्ष विनोबा महाराष्ट्र के विठोबा[1] के दर्शन करनेवाले थे। चन्द्रभागा के तीर पर ढोल मृदंग के कोलाहल में लाखों बारकरी[2] भक्तिभाव से प्रतिवर्ष आते हैं। परन्तु परिस्थितिवश विनोबा नहीं आ सके थे। अब वहाँ सर्वोदय-सम्मेलन हो रहा था, इसलिए उनको आने का अवसर मिल गया था। विनोबा प्रात: उठे और पण्ढरपुर के मार्ग पर चलने लगे। चलते-चलते वे गाने लगे :

---

1. विठोबा : पण्ढरपुर के देवता।

2. बारकरी : पण्ढरपुर की यात्रा नियमित रूप से करनेवाला भक्त।

पाण्डुरंग की कान्ति—दिव्य तेज झलकता है।
तेज की सीमा नहीं—शोभा अवर्णनीय है।
दुर्बोध है विट्ठल—परन्तु वह मेरा लक्ष्य है।
शब्द विना संवाद यह कैसे हुआ सम्भव!
जब पड़ा पैरों पर—तब पैर दिखे ही नहीं
वह स्वयंभू खड़ा था—
सम्मुख या पृष्ठभाग—पता ही नहीं चलता था।
क्षेम के लिए उत्सुक है जीव मेरा
फड़क रही हैं भुजाएँ, आपने दिया क्षेम,
मैंने यह सुना और उत्सुक प्राण हुए शान्त!

विनोबा गाते-गाते रुक गये। साकार और निराकार—दोनों का विचार मन में आया। उन्होंने विचार किया—भक्तों के मन में साँवला-सलोना रूप एक बार समा गया तो फिर भक्तों को अन्य किसी का भान नहीं रहता है। तेजस्वी रूप में विट्ठल को साक्षात् देखते ही भक्तों के शब्द मौन हो जाते थे। कर्नाटक में लायी गयी विट्ठल की मूर्ति को भानुदास महाराज पण्ढरपुर में ले आये इसलिए वह कर्नाटकी है। विनोबा के मुख से निकला—'पण्ढरी के मार्ग पर चलते हैं पैदल' और वे एकदम रुक गये। उनके रुकते ही सब रुक गये।

किसी ने पूछा, "क्या हुआ बाबा?"

विनोबा ने कहा, "जगन्नाथपुरी के मन्दिर में सबका प्रवेश वर्जित था। यहाँ पुजारियों ने अनुमति तो दे दी है परन्तु वहाँ जाने पर यदि वे अनुमति नहीं देते हैं तो चन्द्रभागा के तट पर हम सब ईश्वर का नामस्मरण करेंगे।"

विनोबा नहीं चाहते थे कि किसी का अपमान हो! उनके साथ चलनेवाले लोगों में दो जर्मन महिलाएँ—कुछ मुसलमान तथा कुछ हरिजन भी थे। कुछ पारसी युवक भी साथ थे।

पण्ढरपुर के विट्ठल को देखने को वे लोग भी उत्सुक थे। वे सब जब मन्दिर के पास पहुँचे तब मन्दिर के पुजारी ने उनका स्वागत करते हुए कहा, "बाबा! इस देवता के द्वार पर सबका स्वागत है। निश्शंक मन से आप सब अन्दर आ जाएँ।"

विनोबा ने दर्शन किये और वे गद्गद हो उठे। स्नेहमयी विठू माता को देखकर उनको कर्नाटक से गागोदे में आयी हुई अपनी माता का स्मरण हो गया।

सन्ध्याकाल में सभा हुई। उसमें विनोबा ने कहा, "विट्ठल के रूप में आज मुझको मेरी माता दिखाई दी। आज मेरा सौभाग्य का दिन है। पुजारी ने जो स्वागत किया है उससे यह बाबा अभिभूत हो गया है। जब मैंने विट्ठल के चरणों में सिर झुकाया तब मेरे मन पर अद्भुत प्रभाव पड़ा। मैं गद्गद हो गया। आज महाराष्ट्र ने

चमत्कार कर दिया। एक हिन्दू मन्दिर सभी सम्प्रदाय के लोगों के लिए खोल दिया। ऐसा यह पहला ही अवसर है और सर्वोदय के लिए यह शुभ संकेत है।''

दो दिनों तक वहाँ सर्वोदय सम्मेलन चला। देश से हजारों प्रतिनिधि आये थे। इस समय भी विनोबा ने आत्म-संरक्षण के लिए शान्तिसेना के महत्त्व का उल्लेख किया। आदि शंकराचार्य के जन्मगाँव कालडी में भी सर्वोदय सम्मेलन में बाबा ने यही कहा था। भूदान की आड़ में हिंसक आचरण वे नहीं चाहते थे। साम्ययोग—समविभाग उनको अपेक्षित था। इस समता को बलपूर्वक दबाव से लाने को वे इच्छुक नहीं थे। ग्रामदान का अर्थ था—व्यक्ति और समाज का तादात्म्य। कोई बुद्धि का दान देता है, कोई श्रम का दान देता है, वैसा ही है यह भूदान। जमीन मिलती है, और मिलेगी, परन्तु सच्चरित्र कार्यकर्ता मिलने चाहिए—यह उनकी इच्छा थी।

जब विनोबा कर्नाटक में आये तब पदयात्रा को छह वर्ष पूर्ण हो गये थे। पण्ढरपुर में सातवाँ वर्ष चल रहा था। एक वर्ष में अनेक गाँवों में वे पहुँच जाते थे। इन सब मुकामों में सर्वाधिक चर्चित येलवाल की ग्राम परिषद् रही। उसका कारण यह था कि एक ही सभामंच पर डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त, मोरारजी भाई देसाई, गुलजारीलाल नन्दा, जयप्रकाश नारायण, ढेबर भाई, एस. के. दे, नम्बुदिरीपाद, सुचेता कृपलानी, गंगाशरण सिंह जैसे सम्मानित व्यक्ति उपस्थित थे। उनको देखने के लिए अच्छी भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। उस सभा में ग्रामदान तथा राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर चर्चा हुई थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् पण्ढरपुर की यह घटना अविस्मरणीय बन गयी थी।

विनोबा भाव विभोर हो गये थे। उन्होंने कहा, ''अमेरिका में हमारे यहाँ से बारह गुना अधिक जमीन है। यदि उतनी जमीन हमारे पास आ जाए तो भौतिक दृष्टि से हम उसके बराबर हो सकते हैं। परन्तु इस प्रकार बराबरी करने से काम नहीं चलता है। हमको जापान जैसे छोटे प्रगतिशील राष्ट्र का उदाहरण सामने रखना चाहिए। वहाँ जमीन कम है, परन्तु राष्ट्रभावना अधिक है। इन विट्ठल के दर्शनों के लिए लाखों भक्त घर की सब चिन्ताएँ भूलकर आते हैं। भक्ति से मन का विकास होता है। श्रम से राष्ट्र का विकास होता है। ग्रामविकास से लेकर राष्ट्रविकास तक की एक लम्बी श्रृंखला है। इस श्रृंखला को सुदृढ़ करने के लिए परस्पर स्नेह भाव होना चाहिए। यह स्नेह भाव तब तक नहीं हो सकता जब तक मन में अहिंसा और करुणा उत्पन्न नहीं होती हैं।''

विनोबा सभामंच से जब उतरे थे तब सन्ध्या-समय हो चुका था। वे अकेले ही चन्द्रभागा के किनारे गये। विस्तीर्ण चन्द्रभागा शान्त थी। आयुष्य के ढलान पर जैसे व्यक्ति शान्त और निवृत्त हो जाता है वैसी ही वह दिखाई दे रही थी।

विनोबा के मन में विचार आया—अपना जीवन नदी की भाँति होना चाहिए।

इसके जल से देह पवित्र मंगलमय होते ही हैं! धनी-निर्धन सबको यह अपने निकट करती है। आसपास के समस्त प्रदेश को यह सुजल-सुफल करती है। उसका कार्य कभी रुकता नहीं है। उसका मार्ग समाप्त नहीं होता है। रुकावटों पर विजय प्राप्त कर पर्वतों की परिक्रमा करती हुई वह सतत बहती रहती है। जो भी आता है उस पर वह स्नेह वर्षा करती है। मुझको भी ऐसा ही करना चाहिए। घूम-घूमकर भी मन और शरीर दुःखी नहीं हुआ। कार्य को अधूरा न छोड़कर मुझको भारत-भ्रमण करना ही चाहिए। मुझको सहयोग करने वाले लोग हैं तथा आशीर्वाद देनेवाले सूर्य-चन्द्र हैं। जब तक ईश्वर रुकने का आदेश नहीं देता है तब तक अविरत चलना ही चाहिए...चलना ही चाहिए! उन्होंने मन में दृढ़ निश्चय किया और लौटकर चलने लगे।

21

रात हो गयी थी। विनोबा सोने की तैयारी कर रहे थे। दिन में वे दस-बारह मील चलते थे। यात्रा में नवीन सम्मिलित होने वाले लोगों को उनके प्रश्नों के उत्तर देते, पत्रकारों के प्रश्नों के उत्तर देते और एक दिन में दो सभाओं में भाषण देते। भाषण के पश्चात् पुनः प्रश्नोत्तर होते। इसके कारण मन में सतत उत्साह बना रहता था परन्तु कभी-कभी थकावट होने लगती थी। विनोबा मन में हँसते, 'अरे! देह और मन अलग हैं न तेरे? शरीर थक गया तो थक गया!' वे स्वयं को समझाते परन्तु मन कहता, 'अरे अपने इन कृश पैरों पर थोड़ी-सी तो दया कर! पैर अपना काम अच्छी तरह कर रहे हैं न?'

विनोबा कहते, 'यह ईश्वर की कृपा है।'

मन कहता, 'परन्तु देह और मन को अलग करने की हठ तुम क्यों करते हो?'

विनोबा कहते, 'देहासक्ति न रहे इसलिए!'

मन कहता, 'देह-धारण करने पर ही मन उसमें रहता है।'

फिर विनोबा इस संवाद को छोड़कर कोई श्लोक बोलने लगते। श्लोक बोलते-बोलते उनको पिण्डलियों में हड़कल होने की अनुभूति हुई। इन पैरों से कितना चला जाय? तेलंगाना में शिवरामपल्ली से प्रारम्भ हुआ भूदान-आन्दोलन बढ़ता ही गया था। महात्माजी की हत्या के बाद निर्वासितों के लिए शान्तियात्रा आयोजित की और उसके बाद पुनः भूदान-यात्रा जो प्रारम्भ हुई तो वह उत्तर प्रदेश से कन्याकुमारी तक गयी। उसके बाद वह यात्रा कन्याकुमारी से कर्नाटक-महाराष्ट्र-गुजरात पार करके कश्मीर

तक पहुँची थी। चरण निरन्तर चल रहे थे। फिर भी पैरोंवाली देह तथा अविरत माँगनेवाले मन को वे अलग मानते थे।

मन को देह की आसक्ति नहीं थी।

परन्तु मन सर्वत्र सुख-शान्ति-समता का साम्राज्य चाहता था।

जो बात असम्भव थी—वही मन चाहता था।

मन कभी शान्त रहा ही नहीं था।

कई बार उनके मन में आया कि 'जैसे कांची पीठाधीश्वर शंकराचार्य ने मठ की गादी पर एक युवक को बैठाकर स्वयं झोंपड़ी में एकान्तवास स्वीकार कर लिया था वैसे ही वे भी एकान्तवासी बन जाएँ! पीठाधीश्वर शंकराचार्य की उस झोंपड़ी में क्या था? पानी के दो मटके—दो-तीन पुस्तकें और दो-तीन चटाइयाँ! बस। ऐसा अलिप्त जीवन चाहिए! यह संन्यास मुझको भी लेना चाहिए! परन्तु मैं माँगता हूँ सत्तर हजार शान्ति सैनिक, जो स्वयं समर्पित भावना से कार्य करनेवाले हों! इस विचार से लोग हँसते हैं। अपने आपको 'हास्यास्पद' कहलवाने में भी मुझको आनन्द मिलता है! परन्तु मेरे तत्त्व, सिद्धान्त और विधान मेरे अन्तर्तम से आते हैं। मैं यों ही नहीं बोलता हूँ।'

कश्मीर के रास्ते पर चलते समय मन में भावनाओं की लहरें उठ रही थीं। 'जय जगत्' का उद्‌घोष करने से पहले उनके मन में 'जयहिन्द' था। 'जयहिन्द' में हिन्दुस्तान का गौरव था। उसका जयजयकार करते हुए यह अर्थ ध्वनित हो रहा था कि दूसरों को भी जयजयकार होना चाहिए। इसलिए विचार कर के अन्त में सभी को सुख-शान्ति-समाधान मिले तथा सबका ही जयजयकार हो—यह विचार कर उन्होंने 'जय जगत्' का नारा लगाया था।

एक सभा में कुछ लोग उठकर खड़े हो गये।

उनमें एक ने पूछा, "बाबा! आप तो सारे जगत् का जयजयकार करते हैं, उसमें हिन्दुस्तान कहाँ आया? अपना देश छोड़कर जगत् का विचार क्यों करें?"

दूसरे ने पूछा, "बाबा! आपको देशद्रोही कहें तो?"

विनोबा ने शान्तिपूर्वक कहा, "अँग्रेजों के शासनकाल में मैं देशद्रोही के रूप में अनेक बार कारागार में गया था..."

उनका वाक्य पूर्ण होने से पहले ही एक बोला, "वह हम जानते हैं। परन्तु इसका अर्थ देश का जयजयकार छोड़कर सारे जगत् का करें?"

और फिर प्रश्नों की बौछार होने लगी। दो मनुष्य सभामंच की सीढ़ियों पर चढ़ आये। विनोबा के आसपास संरक्षक-घेरा बना दिया गया। सभा में कोलाहल मचने लगा, "बाबा! तुम लौट जाओ।"

"तुम लुटेरे हो!"

"देश की हजारों एकड़ जमीन तुमने हड़प ली है!"

"साम्यवाद लाना हो तो रशिया में जाओ!"

ऐसे कितने ही वाक्-बाण विनोबा पर फेंके गये। लोग विनोबा से सभामंच से नीचे उतरने को कह रहे थे। परन्तु विनोबा वहीं खड़े रहे। कुछ ने हाथ में लगे कंकड़ उन पर फेंके। परन्तु विनोबा वहीं खड़े रहे। आधा घण्टा तक विनोबा सभामंच पर खड़े रहे। अन्त में लोग शान्त हो गये। और तब विनोबा कहने लगे, "मेरे प्रिय भाई-बहिनो! आपको मुझपर जो क्रोध था वह आपने प्रकट कर दिया। इससे यह प्रकट होता है कि आप अपने देश के प्रति जाग्रत हैं। देश को क्या चाहिए, क्या अच्छा लगता है और क्या हानिकारक है, इसका आपको ज्ञान है। इससे मुझको आनन्द हो रहा है। यह सभा आनन्दसभा है।

वास्तव में, जय जगत् का अर्थ विशाल है। अपनी माता सभी को प्रिय होती है। वह प्रेमवश न जाने क्या-क्या करती है! वह सब हमको अच्छा लगता है। तो क्या दूसरे की माता जो कुछ करती है वह बुरा होता है? अपनी माता अपनी ही होती है, इसलिए उसका गौरव तो होना ही चाहिए परन्तु सब माताओं का सम्मान क्यों न हो? वे भी तो किसी न किसी बच्चे की प्रिय माता होंगी!

ज्ञानदेव महाराज ने भी अपने ही देव का उल्लेख नहीं किया है बल्कि कहा है—'अब विश्वात्मक देव! वाक्-यज्ञ से प्रसन्न हो और यह प्रसाद पात्र मुझको दो!' इसका अर्थ है—'हे सम्पूर्ण विश्व में वास करनेवाले देव! तू हम पर प्रसन्न हो।' हम लोग देवता के अनेक रूप मानते हैं। सभी प्राणियों में एक आत्मा मानते हैं, सभी धर्मों में वास करनेवाला ईश्वर मानते हैं और 'जय जगत्' का तिरस्कार करते हैं, सो क्यों? हमारे शत्रु राष्ट्र भी सुख से रहें, यह कल्पना अनुचित है क्या?"

सभा शान्त थी।

विनोबा भाषण समाप्त कर बैठनेवाले ही थे कि सभा से सैकड़ों आवाजें आयीं—"जय जगत्, जय बाबा!"

विनोबा की आँखें सजल हो उठीं। वे पुनः कहने लगे, "मुझको लुटेरा कहा है। मैं प्रेम लेकर प्रेम देने आया हूँ। काशी की गंगा रामेश्वरम् को लायी जाए इसी प्रकार मैं तीन महासागरों का खारा पानी कश्मीर तक लाया हूँ। यह पानी कदाचित् दिखाई नहीं देगा। सागर जैसी विशाल भारतभूमि में लाखों-करोड़ों एकड़ जमीन है। परन्तु वह मुट्ठीभर लोगों के अधिकार में थी। मैंने उनसे हाथ जोड़कर कहा, बाबा लुटेरा नहीं है। उसको केवल एक खादी की धोती, अँगोछा और कनटोपी चाहिए। केवल इतने के लिए वह पूरे भारत में नहीं घूमेगा। इतना तो कोई भी धनवान व्यक्ति उसको सहज दे देगा। परन्तु मैंने बरसात में अन्न के बिना रहनेवाले हजारों मनुष्य देखे और देखा उनकी आँखों का खारा समुद्र! उसी खारे समुद्र का मन में ध्यान करता हुआ मैं घूमता रहा और माँगता रहा।

कश्मीर में मुझको कुछ भी नहीं माँगना है। मैं जब पठानकोट पहुँचा था तब एक मुस्लिम युवक ने मुझको कुरान की एक प्रति भेंट की थी। मैं बड़ा आनन्दित हुआ। सभी धर्म आपस में प्रेमभाव रखना सिखाते हैं। इस कारण कश्मीर में मैं तीन बातें कहूँगा—'मैं देखना चाहता हूँ, मैं सुनना चाहता हूँ और मैं प्यार करना चाहता हूँ।' जितनी प्यार करने की ताकत मुझको भगवान ने दी है, उस पूरी ताकत का इस्तेमाल मैं यहाँ करना चाहता हूँ।"

इतना कहकर विनोबा बैठ गये। तभी उनको यह अनुभूति हुई कि थोड़ी देर पहले घुटने में जो पत्थर का टुकड़ा लगा था उससे घुटना काला-नीला पड़ गया था। खून भी आसपास जम गया था। बैठते समय दर्द हुआ। मंच से नीचे उतरने में उनको कठिनाई लगने लगी। सबका ध्यान इस ओर गया।

किसी ने कहा, "बाबा! अपनी यात्रा को कुछ समय के लिए टाल दें!"

विनोबा ने हँसकर आकाश की ओर तर्जनी उठा दी।

वे कहना चाहते थे, हम करनेवाले कौन होते हैं?

दूसरे ने कहा, "बाबा! घुटने के नीचे चोट लगी है, वहाँ खून जम गया है!"

विनोबा ने कहा, "आगे चलो। जो रुक गया वह खतम हो गया। चलता गया तो कारवाँ भी बन जाता है और दु:ख भी बिसराया जाता है।"

बाबा का स्वभाव परिचित होने के कारण किसी ने कुछ भी नहीं कहा। परन्तु बाबा के कष्ट को लोग देख नहीं पा रहे थे! यहाँ से आगे सारा प्रदेश पर्वतीय था। उस पर चलना कठिन था। पर्वत भी सादा नहीं था। उसपर चढ़ने के लिए एक पगडण्डी ही थी। अब तक विनोबा अनेक पर्वतों पर भी चढ़े थे, परन्तु अब तिरेसठ वर्ष बीत गये थे। और फिर इस वर्ष दो बार वे जबर्दस्त मलेरिया-ज्वर से पीड़ित हो चुके थे। वे पहले से ही कृश प्रकृति के थे। केवल मनोबल के आधार पर वे निरन्तर चल रहे थे।

दोपहर के समय वे उत्साह से पथरीले रास्ते पर चढ़कर उतार पर स्थित गाँव में पहुँचे तब सन्ध्या समय हो गया था। यद्यपि विनोबा के कार्यों में उत्साह दिखाई पड़ रहा था परन्तु उनके मुख पर भारी थकावट दिखाई दे रही थी। उनके साथ हर बार नये लोग आते थे और वे सतत प्रश्न पूछते रहते थे। उनके प्रश्नों के सटीक लघु उत्तर विनोबा देते थे। परन्तु उससे वे सन्तुष्ट नहीं होते थे। वे चाहते थे कि बाबा विस्तार से बताएँ।

आज भी चलते-चलते एक ने पूछा, "बाबा! चलते-चलते ऊबते नहीं हैं?"

विनोबा ने कहा, "नहीं! यह जीवनव्रत लिया है।"

दूसरे ने प्रश्न किया, "बाबा! चलने में कष्ट नहीं होता है?"

प्रश्न निरर्थक था, फिर भी विनोबा ने कहा, "हम रोज भोजन करते हैं न?"

वह बोला, "भोजन करना अलग बात है, घूमना अलग बात है।"

विनोबा बोले, "एक शरीर के लिए करते हैं, दूसरा मन के अनुसार करते हैं।"

उसने पुनः कहा, "परन्तु आप भूदान माँगते हैं। दान को आपने धर्म का रूप क्यों दे दिया है? प्रत्येक कार्य धर्म के नाम से क्यों किया जाए? सचमुच धर्म इतना सस्ता हो गया है?"

विनोबा कहने लगे, "दान को धर्म कहा है, यह उचित ही है। देना मनुष्य का स्वभाव है। मूल प्रवृत्ति ही धर्म है। धर्म सस्ता नहीं है। वह सहजगम्य और साँस की भाँति सहज है। धर्म मनुष्य की मानवता है। धर्म का अर्थ है—परस्पर स्नेहभाव! प्रेम, करुणा, दया, दान आदि गुणों पर मानवता आधारित है। जब रावण जैसे महापण्डित राक्षस की लोभी वृत्ति दिखाते हैं तब करुणा-सागर श्रीराम का रूप हमको अच्छा लगता है। यही है धर्म का स्वरूप। धर्म जड़ नहीं है, धर्म स्तम्भ नहीं है, धर्म कोष नहीं है। धर्म वृत्ति है—मनुष्य बनने की।"

सटीक उत्तर देते-देते विनोबा के मुख से वैखरी वाणी निःसृत होने लगी। उनका मधुर कथन सब सुनते और फिर वे सब मधुर वाणी और उदात्त कृतिवाले विनोबा का भक्तिभाव से वन्दन करते।

प्रातःकाल था।

कुछ युवक विनोबा से मिलने आये।

एक ने पूछा, "आप इतना क्यों घूमते हैं?"

क्षणभर विनोबा के मन में आया कि कोई उत्तर न दें।

दूसरे ने कहा, "आप घूमते समय रामायण-महाभारत की कहानियाँ क्यों नहीं कहते?"

एक बोला, "जब देश में महाभारत होता है तभी श्रीकृष्ण गीता क्यों कहते हैं?"

विनोबा ने शान्तिपूर्वक कहा, "मैं तुम्हारे पहले प्रश्न का उत्तर देता हूँ। जब महात्माजी अफ्रीका से भारत में आये थे तब उन्होंने कहा था, 'मैं भारत से परिचित नहीं हूँ।' यह बात महात्माजी ने भारत के सामाजिक-आर्थिक-भौगोलिक-ऐतिहासिक जीवन के सम्बन्ध में नहीं कही थी। यह जानकर ही उस समय माननीय गोखले ने उनसे कहा था, 'यदि आप भारत से परिचित नहीं हैं तो परिचय प्राप्त क्यों नहीं कर लेते?' महात्माजी समझ गये। उन्होंने एक वर्ष तक भारत में पैदल भ्रमण किया। इस महान-प्राचीन-सम्मिश्र और रोचक देश के रंग-रूप-गन्ध-ध्वनि और स्पर्श का उन्होंने अनुभव लिया। महात्माजी भारतमय हो गये और गाँधीजी से महात्माजी बन गये।"

विनोबा अधिकतर प्रश्नों के उत्तर दे देते थे।

रात में चोट लगे पैर से पहाड़ पर चढ़ने-उतरने से विनोबा का घुटना सूज गया था और उसका रंग भी नीला-काला हो गया था। झुकना कठिन हो गया था। घुटने से दर्द की तीव्र लहर मस्तक तक पहुँच जाती थी। मन में वे भगवद्गीता का पाठ करते।

फिर उन्होंने घुटने पर अँगोछा लपेट दिया और कोठरी में इधर-उधर घूमने लगे।

रात समाप्त हो रही थी। प्रात:काल हो रहा था। विनोबा दरवाजा खोलकर बाहर आये। कोठरी में गरमाई थी। बाहर कड़ाके की ठण्ड थी। अँधेरा अभी था। परन्तु कार्यकर्ता उठकर काम करने लगे थे। इतने में ही एक स्त्री विनोबा की ओर आने लगी। कार्यकर्ताओं ने उसको रोककर कहा, "बाबा प्रार्थना के बाद मिलेंगे!"

उस स्त्री ने कहा, "देवता से मिलने का भी समय होता है क्या? जिस क्षण उसका स्मरण हो जाए उसी क्षण वह अपने मुख में होता है।"

विनोबा यह संवाद सुन रहे थे। बातों से वह स्त्री सुशिक्षित लग रही थी।

विनोबा तैयार होकर आये और प्रार्थना प्रारम्भ हो गयी।

आज विनोबा ने पंजाबी-कश्मीरी और उर्दू भाषा के भी कुछ दोहे सुनाये। प्रार्थना के बाद उन्होंने कहा, "आज समाज में धर्म के नाम पर जो दान दिया जाता है उससे कुछ लोग कुछ समय के लिए लाभान्वित होते हैं। परन्तु यह निर्धनता दूर करने का ठोस उपाय नहीं हो सकता। इससे समाज-रचना नहीं बदल सकती। कुछ स्थानों पर मैंने एक डिब्बा घर में रखने को कहा। उसमें रोज दो मुट्ठी अनाज डालने को कहा। उससे एक मनुष्य एक समय की रोटी खा सकेगा। इससे समस्या का कुछ समाधान हो सकेगा। यदि यह सर्वोदय-पात्र प्रत्येक घर में हो तो समाज में एक क्रान्तिकारी कदम माना जाएगा। एक मुट्ठी अनाज में जो बीज शक्ति है उससे जनशक्ति उत्पन्न होगी—यह विश्वास मुझको हो गया। आज मैं कुछ माँगूँ, इसकी आवश्यकता ही नहीं है। बिना माँगे मिल रहा है। कारण यह है कि माँगनेवाला आ गया, यह सोचकर लोग पहले से ही मेरी व्यवस्था कर रखते हैं।"

प्रार्थना के पश्चात् विनोबा आँखें बन्द कर बैठ गये।

अब सूर्योदय हो गया था। केसरिया रंग की किरणें विनोबा के पैरों पर पड़ रही थीं। वह स्त्री उनके सामने आकर बैठ गयी।

उसने धीरे से पुकारा, "बाबा!"

विनोबा ने आँखें खोलीं। क्षणभर वे उस स्त्री को देखते रहे। उदित होते सूर्य की स्वर्णिम किरणें उसके गौरवर्ण पर चमक रही थीं। उसने आँखें बन्द कर ली थीं। विनोबा को ऐसा लगा जैसे साक्षात् उषा सुन्दरी उनके आगे बैठी हो! विनोबा उसकी आँखें खुलने की प्रतीक्षा करने लगे। उसने आँखें खोलीं और विनोबा को देखकर प्रसन्नता से हँसकर बोली, "बाबा! मैं ललिता हूँ... पुणे विश्वविद्यालय की स्नातिका! यहाँ पठानकोट में रहती हूँ। आपके दर्शन करने आयी हूँ। मैं प्रतिदिन आपकी भूदान-भ्रमण-यात्रा के बारे में पढ़ती हूँ और गद्गद हो उठती हूँ। कितने वर्षों से अबाध साधना कर रहे हैं आप! शारीरिक कष्ट सहते हुए आप मन से जप करते फिरते रहते हैं। बाबा! एक वर्ष अपनी कन्या के रूप में मुझको अपने साथ रहने दें!"

विनोबा ने कहा, "तुम कन्या के रूप में आयी हो इसलिए पूछ रहा हूँ, ससुराल में तुम सानन्द रहती हो न? तुम पर-प्रान्त में हो, इसलिए तुमको एकाकीपन तो नहीं सताता है?"

ललिता बोली, "आपके पहले प्रश्न का उत्तर है—नहीं! और दूसरे का उत्तर है—हाँ!"

विनोबा ने पूछा, "सो क्यों?"

ललिता कहने लगी, "पति मिलिटरी में हैं। सास-ससुर यहाँ सदा नहीं रहते हैं। परन्तु कुशल-क्षेम मात्र नहीं है। आपके 'क्यों' का उत्तर सरल है। सितार के दो तार एकत्र जोड़ दिये जाएँ, ऐसी स्थिति नहीं है।"

विनोबा ने पूछा, "कोई तो कारण होगा?"

ललिता बोली, "कारण बताये बिना कन्या पिता के घर नहीं रह सकती क्या?"

विनोबा ने कहा, "हाँ, नहीं रह सकती। कारण यह है कि विवाहिता कन्या पति के घर में रहे, यही विधान है।"

ललिता सिर झुकाकर बोली, "बाबा! मैं अकेली हूँ। पति बलात्कार करता है। घर में मिलिटरी शासन लागू है। मैं उससे उकता गयी हूँ।"

विनोबा बोले, "कन्ये! तुम सुन्दरतम हो। तुम्हारी इच्छा न होते हुए भी प्रतिदिन तुम्हारे पति का कृत्य बलात्कार हो सकता है। परन्तु स्त्रीधर्म समर्पित होने में है। और अनुशासन तो घर से लेकर देश तक—सब के लिए आवश्यक है। तुम तरुणी हो, बुद्धिमती हो और सुन्दर हो। ऐसी स्त्री को घर की समस्याओं से घबड़ाना नहीं चाहिए। स्वयं ही उनका समाधान कर घर की देखभाल करनी चाहिए। घर स्त्री के लिए परम मंगलकारी स्थान है। स्त्री संसार को अनुशासन में रखने में समर्थ है। 'चैरिटी बिगिन्स ऐट होम'—यह सिद्धान्त ध्यान में रखना चाहिए।"

ललिता ने पूछा, "बाबा! स्त्री मुक्ति का प्रयत्न न करे क्या?"

विनोबा बोले, "स्त्री आत्म-परीक्षण करे। वह अपने कर्तव्यों का पालन करे। स्त्री असीम प्रेम करे। त्याग प्रेम में ही होता है। और यदि वह इससे भी परे जा सके तो फिर वह स्वयं की खोज करे कि अब कभी विवाह-बन्धन में नहीं पड़ना है, अब मुझको मुक्त रहना है। और जब यह लगे कि स्त्रीधर्म का पालन वह कर ही नहीं सकती तब फिर वह घर छोड़ दे।"

ललिता ने कहा, "इसका अर्थ यह है कि स्त्री सहन करती ही रहे!"

विनोबा कहने लगे, "मानो तो सभी बन्धन ही हैं! और यदि सब कुछ बन्धन ही लगता हो तब फिर कोई प्रश्न ही शेष नहीं रहता। स्त्री धरती की भाँति नव-नव उन्मेषशालिनी और सागर की अथाह गहराई जैसी है। असह्य होने पर नदी को किनारा छोड़ ही देना चाहिए, परन्तु तब तक उसका विचारशील मन जैसा कहे, वैसा करे!"

लिता बोली, "अर्थात् स्त्री को सहनशीलता की मर्यादा का पालन करना ही इए?"

विनोबा बोले, "स्त्री सुशिक्षित-सुसंस्कृत-विचारशीला तथा भूत और भविष्य का विचार करनेवाली होनी चाहिए। सहन करना तो मनुष्य का धर्म ही है। स्त्री स्वयं को जाने, अपने आनन्द के विषयों की खोज करे। घर में सौन्दर्य और कला का विचार करे। अविचार को विचार से पराजित करे। जाओ सुकन्ये ललिते! अब भी विचार कर लो!"

ललिता उठी और उसने विनोबा के चरणों पर सिर टेककर कहा, "बाबा! यदि कभी मेरी वैसी अनिवार्य इच्छा हो तो मैं आ सकती हूँ न?"

विनोबा बोले, "चाहे जब आ सकती हो! देह में मन पवित्र होना चाहिए और पवित्र मन से देह को भी पवित्र करना चाहिए, यह अपेक्षा मैं स्त्री से करता हूँ।"

विनोबा ने हाथ उठाकर उसको आशीर्वाद दिया। वह उठकर चली गयी।

इतने में ही एक सज्जन विनत भाव से कोठरी में आये।

उन्होंने कहा, "बाबा! मैं अपनी स्त्री के कहने से आपके पास आया हूँ।"

"आपकी पत्नी नहीं आयी?"

"नहीं! हमारे यहाँ पत्नियाँ आदमी के साथ नहीं जाती हैं।"

"क्यों?"

"ऐसा ही रिवाज है।"

विनोबा ने पूछा, "क्या यह रिवाज तुम्हें अच्छा लगता है?"

वह गृहस्थ असमंजस में पड़ गया।

विनोबा बोले, "अरे भाई! तुम्हारी बहिन-पत्नी-चाची-मामी इन सभी स्त्रियों को खुली हवा में आने का अधिकार क्यों नहीं है? हम क्यों उनको घर की चारदीवारी में रखते हैं? हम क्यों नहीं उनको सिखाते—उनको नया प्रकाश दिखाते?"

उस व्यक्ति ने कहा, "बाबा जी! आप जैसा कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा। आप कहते जाइए, मैं नोट करूँगा। मुझको अच्छा लग रहा है। ये बातें हमको आज तक किसी ने नहीं बतायी हैं।"

विनोबा ने उससे कहा, "अच्छा अब बताओ कि काम क्या है?"

वह बोला, "काम तो कुछ नहीं है बाबा जी! मैं पत्नी के कहने पर आपसे मिलने आया हूँ।"

विनोबा ने पूछा, "वह कभी मुझसे मिली है क्या?"

उसने कहा, "नहीं बाबा जी! हमारे घर अखबार आता है। सभी उसको पढ़ते हैं। मेरी पत्नी पढ़ी-लिखी नहीं है। वह रोज अखबार हाथ में लेकर घण्टों उसको देखती रहती है। उसने कल के अखबार में आपकी तस्वीर देखी और मुझसे आपके

बारे में पूछा। मैंने सब कुछ बता दिया। तब वह बोली, 'ये बूढ़े बाबा अपने लिए कितना कुछ कर रहे हैं। पर्वत की चोटी पर चढ़ते-उतरते हैं, हमारे लिए तकलीफ उठाते हैं तो हमको भी अपनी थोड़ी जमीन या थोड़ी सम्पत्ति उनको जरूर देनी चाहिए। एक इनसान के काम इनसान ही आएगा।' इसलिए मैं उसके जमा किये हुए कुछ रुपये लेकर आपके पास आया हूँ।''

विनोबा गद्‌गद हो गये। न देखी हुई उस स्त्री को नमस्कार करते हुए उन्होंने कहा, ''मेरी सिर्फ तस्वीर देखकर जिस स्त्री के मन में यह विचार आया कि गरीबों के लिए कुछ करना चाहिए, उस स्त्री का मैं सम्मान करता हूँ। मैं तो यह कहूँगा कि जिस पीरपंजाल की साढ़े तेरह हजार फुट की ऊँचाई पर मैं चढ़ा हूँ उस ऊँचाई से भी अधिक ऊँचा इस स्त्री का मन है।''

उस गृहस्थ ने अँगोछे में बाँधकर लाये हुए कुछ सोने-चाँदी के सिक्के विनोबा के पैरों के पास रख दिये। विनोबा चकित रह गये।

उन्होंने आशीर्वाद दिया, ''सुखी रहो!''

कश्मीर के लोग अत्यन्त मुक्त मन से बातें करते थे, व्यवहार करते थे। मानो उनका ही कोई व्यक्ति उनसे मिलने आया था। विनोबा ने अपने मन की शुद्धि के लिए एक समय का भोजन छोड़ दिया था। इससे जयदेव अत्यन्त चिन्तित थे। परन्तु विनोबा ने उनसे कहा, ''पवित्र मन्दिर में रंगोली काढ़ने के बाद थूकने की इच्छा नहीं होती है। उसी प्रकार अन्तःकरण को अत्यन्त शुद्ध करने के लिए मैं उपवास कर रहा हूँ। मेरी देह चलती रहेगी। मन की शक्ति देह के काम आएगी।''

जयदेव हँस पड़े और बोले, ''आपकी सब बातें अद्‌भुत हैं बाबा!''

जो सभा सन्ध्या-समय होनी थी वह तीन बजे ही आयोजित कर ली गयी। कश्मीर में अकस्मात् वातावरण में परिवर्तन हो गया। सूर्य बादलों के पीछे छिप गया और देखते ही देखते आकाश मेघाच्छादित हो गया। कुछ देर पहले ही अच्छी धूप निकल रही थी। कुछ समय में ही वातावरण बदल गया।

विनोबा बोले, ''यहाँ वातावरण देखते ही देखते बदल जाता है?''

यह सुनकर श्रीनगर का एक कार्यकर्ता बोला, ''बाबा! यहाँ का वातावरण भले ही देखते ही देखते बदल जाता हो परन्तु यहाँ के लोगों के मन और भावनाएँ पक्की हैं। आप निश्चिन्त रहें। कश्मीर भारत का है। आप पचास वर्ष बाद आएँगे तब भी यही बात मिलेगी। विभाजन के समय से ही कश्मीर विवाद में है—यह व्यर्थ की बात है। राजनीतिक लोग उससे स्वार्थ सिद्ध करते हैं परन्तु कश्मीर भारत का है।''

जनप्रतिनिधि से विनोबा को लोगों की भूमिका का पता चल गया। वे मन में आनन्दित हुए। वास्तविकता यह थी कि बैरिस्टर जिन्ना के आग्रह के कारण तथा अँग्रेजों के दाँव-पेंचों के कारण महात्माजी ने विभाजन के मसौदे पर हस्ताक्षर कर देश

के दो स्वतन्त्र टुकड़े कर दिये थे। विनोबा को महात्माजी को यह नीति स्वीकार नहीं थी। उन्होंने उसका विरोध भी किया था। पाकिस्तान ने उस समय कश्मीर के जिस भूभाग पर अधिकार कर लिया था, वह विवादग्रस्त था ही। उस जनप्रतिनिधि के कथन से विनोबा को अपने एक प्रश्न का उत्तर मिल गया।

रोज बोलना और रोज सुनना—यह जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गया था। विनोबा कदाचित् ही विगत का विचार करते। वर्तमान में ही लोग प्रतिदिन इतनी समस्याएँ लेकर आते कि उनका समाधान करना ही कठिन हो जाता था।

पीरपंजाल का पर्वत पार कर विनोबा जब मण्डी लारेन में पहुँचे तब कश्मीर घाटी में अचानक वर्षा होने लगी। छह दिन विनोबा मण्डी लारेन में रुके। वर्षा में क्वचित् ही कोई उनसे मिलने आता था।

कार्यकर्ताओं ने पूछा, "अब कैसे करें?"

विनोबा ने कहा, "अब अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी है। पर्वत का रास्ता छोड़कर दूसरा मार्ग ढूँढ़ने की अपेक्षा—ईश्वर को यह मार्ग स्वीकार नहीं है—यह विचार कर लौटना अच्छा है।"

दूर-दूर तक वर्षा हो रही थी। प्रात:काल दस बजे तक कोहरा छाया था। उस कोहरे में कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था।

कभी-कभी विनोबा अत्यन्त उदास हो जाते। उदासी का कारण वे नहीं समझ पाते। एक घटना का स्मरण विनोबा को हुआ :

अजमेर-जयपुर मार्ग पर स्थित गगवाना गाँव में उस समय विशाल शान्ति-यात्रा निकल रही थी। अलख सवेरे! विनोबा ने केरल के कोलिक्वोड गाँव में शान्तिसेना के निर्माण की घोषणा की थी। उस सेना का निर्माण हो गया था तथा उसी की यह यात्रा निकल रही थी। उस यात्रा में विनोबा के साथ जयप्रकाश नारायण, केलप्पन, जगन्नाथन, रविशंकर महाराज तथा अप्पा पटवर्धन चल रहे थे। इनके अतिरिक्त अमेरिका के प्रसिद्ध नीग्रो नेता मार्टिन लूथर किंग तथा उनकी पत्नी ये दोनों भी थे।

सन्ध्या-समय मार्टिन किंग पत्नी के साथ विनोबा से मिलने आये। उनकी पत्नी ने कहा, "विनोबाजी! इतने वर्षों से आप चल रहे हैं, इतना विशाल अनुभव आपने प्राप्त किया है। फिर आप अपनी आत्मकथा क्यों नहीं लिखते हैं?"

विनोबा ने कहा, "मैं सीधा-सादा मनुष्य हूँ। चल रहा हूँ। उसमें आत्मकथा के रूप में लिखने योग्य कुछ नहीं है। यदि कभी कुछ ऐसा घटित हुआ तो अवश्य लिखूँगा। परन्तु मैं लोगों के चरित्र प्रतिदिन स्पष्ट पढ़ता हूँ। अनेक स्वभावों के रंग मैं देखता हूँ। कभी चिढ़ता हूँ...कभी रोता हूँ...कभी उकता जाता हूँ तो कभी गद्गद हो जाता हूँ।"

मार्टिन लूथर किंग ने पूछा, "विदेश के लोग आपको कैसे लगते हैं?"

विनोबा ने कहा, "विदेशी लोग उत्सुकतावश मेरे पास आते हैं। भारत में विश्व के सभी प्रकार के लोगों के दर्शन मुझको होते हैं। अन्त में सब एक ही ईश्वर की सन्तानें हैं।"

उन्होंने पुन: प्रश्न किया, "आज के भोगवादी संसार में अपने ही लिए जीने की प्रवृति बन गयी है। ऐसे समय में आपको इतनी जमीन भूदान में कैसे मिल जाती है?"

विनोबा ने उत्तर दिया, "यह भोगवादी संस्कृति भारत में जल्दी ही आएगी—ऐसे लक्षण दिखाई देनें लगे हैं। परन्तु अधिकांश भारत गाँवों में रहता है। इसलिए महानगरों में कोई भी संस्कृति क्यों न हो, परन्तु ग्रामीण भारत आज भी त्याग और प्रेम पर आधारित संस्कृति की रक्षा कर रहा है। उनसे थोड़ा-सा कहा जाय तब भी वे हृदय की भाषा को तत्काल समझ लेते हैं—दूसरे के दु:ख को जान लेते हैं। ये गुण सारे संसार में होंगे, परन्तु इनकी खोज कोई महात्मा ही करता है। मैं तो केवल अनुयायी हूँ।"

उन्होंने पूछा, "विनोबाजी! आप इतने कम कपड़ों में कैसे रहते हैं?"

विनोबा बोले, "महात्मा गाँधी ने तो ठण्ड में भी एक धोती और एक अँगोछा से ही काम चलाया था! सच तो यह है कि इच्छा हो तो भूख लगती है। सहनशक्ति को बढ़ाते जाओ तो बहुत से प्रश्न हल हो जाते हैं। कड़ाके की ठण्ड में और बरसात में लोग रात में भी नहीं सो पाते हैं, यह देख लेने पर अपनी ठण्ड कम हो जाती है।"

मार्टिन लूथर किंग ने प्रश्न किया, "आपके देश में ईश्वर को बहुत मानते हैं?"

विनोबा बोले, "संसार में प्रत्येक स्थान पर एक श्रद्धा-स्थान होता है, जिसको हम ईश्वर कहते हैं, उसको आप कुछ और कहते होंगे!"

मार्टिन किंग ने कहा, "आज संसार में सर्वत्र अशान्ति, भ्रष्टाचार और अव्यवस्था फैली है। प्रत्येक व्यक्ति सुख के पीछे दौड़ रहा है। ऐसे समय में आप संसार को क्या सन्देश देना चाहेंगे?"

विनोबा बोले, "परस्पर जीवन पर श्रद्धा रखिए। जय जगत्!"

मार्टिन लूथर किंग ने दोनों हाथ जोड़कर भारतीय पद्धति से नमस्कार किया। उन्होंने संसार के अनेक प्रश्नों पर विनोबा से विचार-विमर्श किया था। विनोबा के उत्तर मार्टिन लूथर किंग को विचारणीय लगे थे। उससे अधिक विनोबा को यह अच्छा लगा कि आज अशान्त जगत् का एक प्रतिनिधि शान्ति की खोज में कुछ कदम इस यात्रा में साथ चला।

सात दिन बाद बरसात थम गयी। कोहरा सघन हो गया। भारतीय सेना के अधिकारी विनोबा से मिलने आये।

विनोबा ने उनसे कहा, "इतनी ठण्ड में भी आप देश की रक्षा के लिए चौकस रहते हैं, यह देखकर मैं गद्गद हो उठता हूँ।"

सेनाधिकारी बोले, "विनोबाजी! आप पीरपंजाल के पर्वत पर चढ़कर आये।

मूसलाधार वर्षा में सभी रास्ते बन्द थे फिर भी आप कमर तक पानी में चलकर आये। आपके साथ के लोग रुक गये, जीपगाड़ियाँ पानी में अटक गयीं परन्तु आप चलते ही रहे—एक सैनिक की तरह! आप परमवीर हैं। विनोबाजी! आप ज्ञानवादी हैं—विज्ञानवादी हैं! मैंने परसों आपका भाषण पढ़ा और बेहद प्रभावित हुआ!''

विनोबा बोले, ''भाषण देना मेरा स्वभाव बन गया है।''

सेनाधिकारी ने कहा, ''उसी उत्तम स्वभाव का एक अंश मैंने पढ़ा था। वैसे तो विगत कई वर्षों से समाचार-पत्रों के कुछ कॉलम केवल आपके ही लिए रहते हैं विनोबाजी! परन्तु उस दिन 'इलेक्ट्रिक' पर बोलते हुए आपने कहा था कि इलेक्ट्रिक-विद्युत् अर्थात् स्नेह और प्रेम। प्रेम ही है इलेक्ट्रिक। और विश्वास तथा श्रद्धा है इसका बटन। बटन दबाते ही इलेक्ट्रिक जल उठती है। इसके लिए परस्पर स्नेह होना चाहिए। यह स्नेह ही आगे चलकर शक्ति बन जाती है।''

विनोबा ने पूछा, ''आप किस काम से आये हैं?''

अधिकारी ने कहा, ''आपकी स्तुति करने नहीं आया हूँ। हम एक वीर सैनिक का सम्मान करना चाहते हैं, इसलिए आपको आमन्त्रित करने आया हूँ। उस दिन भारी बरसात में सामान का ट्रक फँस गया और एक गाँव में बड़ी मुश्किल से एक कप दूध मिला, इसलिए आपको व्रत रखना पड़ा। ऐसे व्रती संघर्षशील व्यक्ति को हम आमन्त्रित कर रहे हैं।''

विनोबा जनरल यदुनाथ सिंह का आग्रह अस्वीकार न कर सके। दूसरे दिन विनोबा अक्षरशः दौड़ते हुए चल पड़े। यदुनाथ सिंह और भरत उनको रोकना चाहते थे। आगे नदी में भयंकर बाढ़ आयी हुई थी। प्रति क्षण बाढ़ धरती को निगल रही थी। विनोबा को पुनः गाँव में लाने का प्रयत्न विफल हो गया। वहीं एक घर में वे ठहरे। चार-पाँच लोगों को छोड़कर शेष सभी गाँव को लौट गये। भयानक बाढ़ के कारण गाँव रातभर जागता रहा था। किनारे के पास ही एक घर में विनोबा सोये थे। प्रातःकाल होने पर देखा कि नदी ने मार्ग बदलकर आधा गाँव उजाड़ दिया है। अनेक लोग बाढ़ में बह गये थे। प्रातः होते ही सहायता-कार्य प्रारम्भ हो गया था। विनोबा भी अपनी अवस्था की चिन्ता न करके बाढ़ में उतर गये थे। बाढ़ का पानी अब घटने लगा था। भरत, जनरल युदनाथ सिंह तथा सेना के अन्य कुछ जवान विनोबा को घेरकर खड़े थे।

विनोबा चिढ़कर बोले, ''जो लोग बाढ़ में बह गये हैं और जो निराधार हो गये हैं, उनको सँभालिए। मेरी ओर मत देखिए। जाइए!''

यदुनाथ सिंह ने कहा, ''विनोबाजी! सहायता-कार्य सबके लिए है।''

विनोबा ने कहा, ''मुझको आवश्यकता नहीं है। आप जाइए।''

यदुनाथ सिंह बोले, ''विनोबाजी! सेना अपने आदेशों का पालन करती है, दूसरों

के आदेशों का नहीं! आप भगाएँगे फिर भी हम नहीं जाएँगे। हाँ, हम अधिक से अधिक इतना कर सकते हैं कि आपको सुरक्षित स्थान पर पहुँचाकर फिर हम दूसरे काम में लग सकते हैं। बोलिए, तैयार हैं आप?''

विनोबा चुप रहे। परन्तु जनरल यदुनाथ सिंह का अधिकार-युक्त कठोर कथन उनको अच्छा नहीं लगा। परन्तु विनोबा कमर से ऊपर पानी में खड़े रहकर लोगों की सहायता कर रहे थे। बाढ़ का पानी घटने लगा था परन्तु आकाश से वर्षा होने लगी थी।

तब यदुनाथ सिंह ने भरत से कहा, ''एक बार इनको यहाँ से लौटने को कह दो!''

परन्तु विनोबा कुछ सुनने की मन:स्थिति में नहीं थे। प्राण हथेली पर रखकर लड़नेवाले निर्भय सैनिक-जैसे वे दिखाई पड़ रहे थे। अन्त में जनरल यदुनाथ सिंह ने सैनिकों को आदेश दिया कि विनोबाजी को उठाकर सुरक्षित स्थान पर ले जाओ!

और ऐसा ही किया गया!

इस घटना के विरोधस्वरूप विनोबा ने दो दिन भोजन ही नहीं किया। और वे सदैव की भाँति ऊँचे-नीचे प्रदेश में चलते रहे। वह पर्वतमालाओं का प्रदेश था। पचास फुट चढ़ने पर वे दस मिनट रुक जाते। एक बार ऐसे ही रुकने पर जनरल यदुनाथ सिंह ने उनसे कहा, ''विनोबाजी! आइ ऐम एक्स्ट्रीमली सॉरी!''

विनोबा ने हँसकर पूछा, ''सॉरी किसलिए?''

''आपको मैंने...''

''नो सॉरी जनरल! टेक इट इजी!''

जनरल यदुनाथ सिंह उनके चेहरे की ओर देखते रहे। कुछ देर पहले आये क्रोधावेग का कोई चिह्न उनके मुख पर या मन में नहीं था। पीरपंजाल की पर्वतमालाएँ लाँघते समय हिमालय के सौन्दर्य का बारम्बार वर्णन करते समय वे जितने प्रसन्न थे उतने ही प्रसन्न इस समय थे।

पट्ठन-बारामूला-हिन्दवारा तथा सोपुर होते हुए विनोबा श्रीनगर और फिर पहलगाँव पहुँचे। अमरनाथ केवल छब्बीस किलोमीटर दूर था। वहाँ एक सभा में विनोबा ने कहा, ''मैं रोज दीन-दु:खी लोगों को देखता हूँ और मुझको दीनानाथ का स्वरूप याद आ जाता है। मैं साक्षात् अमरनाथ से पूछता हूँ कि यहाँ भूख से, कुपोषण से तथा भूकम्प आदि से सैकड़ों लोग मरते हैं फिर भी तुम पर्वत की गुफा में रमणीय पर्वत-मालाओं से घिरे हुए क्यों बैठे हो? क्या तुम भी दीन-दु:खी हो? रोज मुझको जो लोग मिलते हैं उनमें मुझको तुम दिखाई देते हो। तुम दाता भी होते हो और याचक भी। तुमने सौन्दर्य की और गुणों की सीमाएँ प्राप्त कर ली हैं परन्तु हममें इतने अवगुण आकण्ठ भरे हुए हैं कि आश्चर्य होता है! तुमने लोगों को राजनीति क्यों सिखा दी है?

राजनीति लोगों को जोड़ती नहीं है, बल्कि तोड़ने का काम करती है। इससे आपस में कटुता उत्पन्न होती है। विज्ञान के युग में आपस में ऐसी कटुता उचित नहीं है। विज्ञान और अध्यात्म यदि साथ-साथ चलें तो सभी लोग एकत्र हो सकेंगे। राजनीति धन विज्ञान का अर्थ है सर्वनाश और आध्यात्मिकता धन विज्ञान का अर्थ है सर्वोदय। पूजा-साधनों में विभिन्नता हो सकती है परन्तु दीन दुर्बलों की सेवा और परमेश्वर का भय—यह आध्यात्मिकता का रूप देशकाल की सीमाएँ लाँघकर सर्वत्र एक-सा है।''

सभा में भाषण देकर विनोबा घर आये।

आज कठुआ में विनोबा लगभग डेढ़ घण्टे अविरत बोले थे। यह कठुआ कश्मीर की सीमा पर था। अब पुनः विनोबा को पीरपंजाल के पर्वत को पारकर जम्मू जाना था। ऊधमपुर-गढ़ी और कटरा के मार्ग से उनको जाना था।

22

विगत कई दिनों से आकाश में सूर्य के नाम मात्र को दर्शन हो रहे थे। विनोबा लौटकर जम्मू आ गये और पुंछ-बारडोंला तथा कथान में जबर्दस्त हिमपात प्रारम्भ हो गया। जम्मू में भी वातावरण बेहद ठण्डा हो गया था।

विनोबा की देह पर एकमात्र कम्बल देखकर जनरल यदुनाथ सिंह ने कहा, ''विनोबाजी! शरीर को जमा देनेवाली ठण्ड है। केवल कम्बल से काम नहीं चलेगा। घुटने से नीचे आपके पैर अकड़ जाएँगे। यहाँ के लोग कितने कपड़े लादकर चलते हैं! देखिए, आपके पैरों की उँगलियाँ ठण्ड से काली-नीली हो गयी हैं।''

विनोबा ने हँसकर कहा, ''जनरल, जिस दिन सारा शरीर अकड़ जाएगा उस दिन 'राम नाम सत्य है' कहते हुए चार लोगों से मुझको उठवाकर लकड़ियों पर रखवा दीजिएगा। मरने के बाद आग और ठण्ड का अन्तर भी पता नहीं चलेगा।''

यदुनाथ सिंह ने कहा, ''ऐसी बात क्यों करते हैं विनोबाजी?''

विनोबा बोले, ''मरण एक काव्य है जनरल! मरण जैसा नितान्त सुन्दर कुछ भी नहीं है। जीवन गति है तो मरण मुक्ति है। जीव और शिव के शुभ मिलन-समारोह का नाम है मृत्यु! जीवन निश्चित होने पर मृत्यु भी निश्चित है ही। उसमें अमंगलकारी कुछ भी नहीं है।''

यदुनाथ सिंह बोले, ''फिर भी जब तक मृत्यु नहीं आती है तब तक ऐसा नहीं

बोलना चाहिए।''

विनोबा आये हुए पत्रों को देख रहे थे। उनमें एक पत्र तहसीलदार सिंह का था। उसने लिखा था, 'बाबा! मैं आपका नाम सुनता रहता हूँ। मैं जेल में हूँ। मुझको फाँसी की सजा मिली है। मेरी अन्तिम इच्छा यह है कि आपके दर्शन हो जाएँ। यह इच्छा पूरी करना आपके हाथ है।'

विनोबा ने वह पत्र जनरल यदुनाथ सिंह के हाथ में देकर कहा, ''हम लोग जीवन-मरण की बातें कर रहे थे और यह पत्र आ गया। इस कैदी को मृत्युदण्ड मिला है। यह है कौन? इसका पता लगाना चाहिए!''

यदुनाथ सिंह बोले, ''यह तहसीलदार सिंह कुख्यात डाकू मानसिंह का लड़का है। इसने दस-बारह खून किये हैं। बहुत दिनों तक पुलिस को चकमा देता रहा था। विनोबाजी! तहसीलदार सिंह के प्रसंग में मेरे मन में एक विचार आया है कि अहिंसा की सच्ची कसौटी वहाँ है जहाँ खुल्लमखुल्ला हिंसा की जाती है। विनोबाजी! चम्बल घाटी में अनेक डाकू हैं। उनको अहिंसा की शिक्षा वास्तव में बहुत जरूरी है।''

विनोबा ने कहा, ''आप मुझको चैलेंज कर रहे हैं क्या जनरल?''

यदुनाथ सिंह बोले, ''नहीं विनोबाजी! यह बात मेरे मन में भी नहीं है। परन्तु वास्तव में जो मेरे मन में आया, वह मैंने आपको कहा है।''

विनोबा कहने लगे, ''आपका कहना उचित है जनरल! सोने को भी कसौटी की आवश्यकता होती है। चम्बल की घाटियों में डाकुओं के बारे में मैंने भी सुना है। प्रश्न यह है कि इतने डाकू वहीं कैसे आ गये।''

यदुनाथ सिंह बोले, ''इसका भौगोलिक कारण हो सकता है। वहाँ चम्बल नदी के जंगल में अपने आप ही ऊँचे-नीचे प्रदेश बन गये हैं। घने जंगल हैं। इन डाकुओं के रहने के स्थान का पता भी न चले, ऐसी पर्वत-कन्दराएँ हैं। इन सब कारणों से वहाँ डाकू पुलिस से सुरक्षित रहते हैं।''

विनोबा ने सहज कहा, ''डाकुओं के भी ऐसे सुरक्षित निवास स्थान हैं, यह सचमुच आश्चर्यजनक है।''

यह सुनकर यदुनाथ सिंह सहसा गम्भीर होकर बोले, ''विनोबाजी! कोई स्वयं ही डाकू नहीं बनता है। मेरे दूर के सम्बन्धी का एक लड़का मेरे ही आँगन में खेला करता था। सीधा-सादा लड़का था। सब उसको प्यार करते थे। सब उसको कन्हैया कहते थे। मेरी माता तो उसके खाने के लिए कुछ-न-कुछ रखती थी। उसकी एक विवाहित बहिन थी। वह एक बार यों ही हमारे पड़ोसी के घर—जो उसके सम्बन्धी थे—आयी। यह पता चलते ही भरी दोपहरी में आठ-दस लोग घोड़ों पर बैठकर वहाँ आये और उस बहिन को खींचकर बाहर ले आये। जो उनके रास्ते में आया, उसको उन डाकुओं ने तलवार से सपासप काट डाला। उस बहिन को उठाकर ले गये तथा

मेरे साथ खेलते हुए उस लड़के को भी ले गये। बड़ा होने पर मुझको पता चला कि वही लड़का लहनासिंह डाकू बन गया था। उस लड़की का क्या हुआ—भगवान जाने! जमींदारों में आपस में झगड़े बढ़ जाते थे तब वे अपनी सहायता के लिए किसी डाकू को आमन्त्रित करते थे। आपस में लड़ाई और घोर मनमुटाव के कारण इस राक्षसी प्रवृत्ति का प्रसार हुआ। डाकू तैयार हुए। सैकड़ों एकड़ भूमि के स्वामी जमींदार दूसरे का नाश करने के लिए डाकू बन गये। और फिर उस समय कोई विशेष कानून भी नहीं था। अँग्रेज पुलिस सिपाहियों को और अधिकारियों को भी उनकी भाषा नहीं आती थी। उन्होंने जेल में जाने की अपेक्षा मुक्त जीवन जीने के लिए और पुलिस की आफत टालने के लिए डाकुओं का आश्रय लिया। परिणामस्वरूप डाकुओं की संख्या बढ़ती गयी। राक्षसी प्रवृत्ति को खाद-पानी मिलता गया। फिर वहाँ भी टोलियाँ तैयार हो गयीं। टोलियों में लड़ाई शुरू हो गयी। एक टोली किसी गाँव में डाका डालती, तो दूसरी टोलीवाले गाँववालों से जवाब माँगते और डाँट-डपट करते। गाँव के लोग दोनों टोलियों के डाकुओं के सामने हतबल हो जाते! विनोबाजी! इस प्रकार क्या तहसीलदार सिंह और क्या लहनासिंह—ऐसे अनेक डाकू तैयार होते थे! मुझ जैसे कुछ युवक मिलिटरी में और पुलिस में भरती हो जाते थे। विनोबाजी! तहसीलदार सिंह की अन्तिम इच्छा है तो आप वहाँ चलिए। गाँववालों को शान्ति मिलेगी और अच्छा लगेगा। विनोबाजी! आपको अपना यात्रा-मार्ग बदलना पड़ेगा, परन्तु अहिंसा की कसौटी देने के लिए आप वहाँ अवश्य चलें।''

विनोबा विचारमग्न हो गये। मनुष्य इतना हिंसक कैसे हो जाता है—इस प्रश्न ने उनको विचार में डाल दिया। डाकू और लुटेरों के लिए हिंसा शब्द का प्रयोग ठीक है परन्तु शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए युद्ध में सैकड़ों मनुष्यों का मारना भी तो हिंसा ही है। एक सत्यधर्म की संस्थापना के लिए अठारह अक्षौहिणी सेना का युद्ध में मारा जाना भी हिंसा है। मनुष्य मनुष्य को शान्ति से, सुख से, सामंजस्य से जीना सिखाए और उसके लिए शस्त्र का प्रयोग न करे—यह अहिंसा है। परन्तु ऐसा होता नहीं है। यों देखें तो इतिहास के सुवर्ण पृष्ठ भी रक्तरंजित ही होते हैं। स्वदेश के लिए, स्वरक्षण के लिए की गयी हिंसा शौर्यगाथा कहलाती है। परन्तु उसमें अनेक मनुष्यों की मृत्यु होती है। देश के लिए आत्म-बलिदान करनेवाले वीरपुरुष कहे जाते हैं। आत्महत्या करने वाले पलायनवादी और डरपोक समझे जाते हैं तथा दूसरों को लूटकर स्वयं मौजमस्ती करनेवाले डाकू समझे जाते हैं। ये डाकू भी कभी अच्छे मनवाले रहे होंगे! एक बार अपराध करने पर उन्होंने कितना ही पश्चात्ताप क्यों न किया हो परन्तु उनको डाकू के रूप में ही घूमना पड़ता है।

एक बार क्रोधावेग में किया गया हिंसक आचरण आगे पश्चात्ताप करने पर अनेक लोगों को अहिंसा का मार्ग दिखा सकता है। जीवनभर डाकू के रूप में लुक-

छिपकर स्त्री-बच्चों से मिलना इनको भी कठिन लगता होगा। ऐसे लोग सम्मानपूर्वक आत्मसमर्पण करें और शस्त्र त्यागकर पुलिस के अधीन हो जाएँ तो कुछ समय कारागार में रहकर फिर वृद्धावस्था में सम्मान-सहित अपने कुटुम्ब में जा सकते हैं।

और विनोबा ने उनकी मुक्ति के लिए प्रयोग करने का निश्चय किया।

प्रात:काल प्रार्थना के बाद विनोबा ने यदुनाथ सिंह से कहा, "जनरल! एक विचार मेरे मन में आया है। आप भिण्ड-मुरैना प्रदेश के ही हैं। आप यदि पुलिस की सहायता लेकर एक सन्देश चम्बल नदी की घाटियों में छिपे हुए डकैतों को भेज दें तो शायद वे डाकू प्रेममार्ग पर चलते हुए आप तक आ जाएँ!"

यदुनाथ सिंह ने कहा, "यह सम्भव नहीं लगता विनोबाजी!"

विनोबा बोले, "मेरा मन कह रहा है कि लुकते-छिपते जीवन बिताना किसी को भी अच्छा नहीं लगता होगा! किसी को भी लूटमार को ही जीवन कर्म और स्वधर्म बनाना अच्छा नहीं लगेगा! कुछ ऐसे भी डाकू होंगे जो एकाध गलती का जीवन भर प्रायश्चित्त करना पसन्द नहीं करेंगे। वे शरण में आएँगे। फिर एक बार प्रयोग करके देखने में क्या हानि है?"

यदुनाथ सिंह ने कहा, "इससे तो मुझको भी प्रसन्नता होगी, परन्तु क्या समाज उनको पुन: स्वीकार कर लेगा?"

विनोबा बोले, "क्यों नहीं स्वीकार करेगा? धीरे-धीरे इनके कारावास का दण्ड जब समाप्त होने को होगा तब तक घरवालों की मानसिक स्थिति तैयार हो जाएगी। पत्नी को अपना पति, बहिन को भाई तथा माता को पुत्र चाहिए ही! इसलिए यही विचार आप उनसे कहें। प्रयत्न करके देखिए। आप आगे जाइए। हमको सूचना देते रहिए, और फिर हमको बुला लीजिएगा!"

जनरल यदुनाथ सिंह का ऐसी आत्म-शुद्धि पर और शस्त्र-समर्पण पर अधिक विश्वास नहीं था। जयदेव, भरतकुमार, मदालसा देवी, जयप्रकाश नारायण, श्रीमन्नारायण आदि अनेक लोग तदनन्तर प्रतिदिन डाकुओं के हृदय-परिवर्तन पर चर्चा करते थे। परन्तु विनोबा चुप रहते थे।

विनोबा प्रतिदिन मन में प्रार्थना करते थे, 'हे ईश्वर! हिंसा से जीवन व्यतीत करनेवाले तथा विकृतियों से परिपूर्ण जीवन बितानेवाले इन डाकुओं के मन में परिवर्तन होने दो!' वे मन में प्रतिदिन सहस्रनाम का जप करने लगे। अनेक बार विनोबा को मौन देखकर एक बार जयप्रकाश नारायण ने पूछा, "बाबा! मौन रहने की अवधि अब अधिक बढ़ गयी है।"

विनोबा ने हँसकर कहा, "आत्मशुद्धि के लिए तथा आत्मबल के लिए!"

जयप्रकाश नारायण ने पुन: पूछा, "क्या डाकू शरण में आएँगे? कानून उनको छूट देगा?"

विनोबा बोले, "कुछ ही दिन पहले जम्मू में मैंने कश्मीर-समस्या के सम्बन्ध में कहा था, 'मसले हमने बनाये हैं। वे परमेश्वर के बनाये नहीं हैं। अगर हम ठीक ढंग से पेश आएँ तो मसले काफूर हो जाएँगे। सियासी ढंग कश्मीर तोड़ेगा। यहाँ काम करने का तरीका रूहानी हो सकता है।' वही बात यहाँ है।"

भरतकुमार को स्मरण हुआ कि पीरपंजाल पर्वतमाला से लौटते समय विनोबा कठुआ में रुके थे। तब चीन-भारत सीमा पर विनोबा ने चीनी सैनिकों से कहा था, "हमारे देश का दस हजार वर्ष पुराना इतिहास है। अनेक वंश, धर्म और जातियाँ यहाँ आयीं और बस गयीं। आज भी अनेक देशों के लोग भारत में रहते हैं। कुछ वर्ष पहले तिब्बत के लोग भारत में आये थे। उनके देश की राजनीति से हमको कुछ नहीं करना है। शरणागत को शरण देना और उसकी रक्षा करना—यह इस देश की शान है। उस समय चीनी लोगों को यह अच्छा नहीं लगा था। परन्तु यह भारत के आत्म-सम्मान का प्रश्न है। मेरे भारत देश में गौतम बुद्ध का वास है। यह देश किसी को भी कभी शत्रु नहीं मानता है। चीनी लोग हमारे बन्धु हैं, हम यही समझते हैं और आज भी यह मानते हैं।"

शत्रु राष्ट्र के लिए अपनी प्रेमभावना व्यक्त करनेवाले विनोबा भरतकुमार को तथा अन्य उपस्थित लोगों को अनुपम लगे। चीनी सैनिकों की आँखों से जलधाराएँ बहने लगी थीं। अब विनोबा डाकुओं को हृदय से लगा लेंगे—इसमें भरतकुमार को सन्देह नहीं रहा था।

सब लोग विनोबा के साथ यमुना नदी को पार कर उत्तर-प्रदेश में आये। डाकुओं की समस्या केवल उत्तर प्रदेश में ही नहीं थी बल्कि मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में भी उनका आतंक फैला हुआ था। विनोबा उत्तर प्रदेश में चम्बल घाटी में डाकुओं से मिलने जाएँगे—इस समाचार से समाचारपत्रों के कॉलम भर उठे। फोटोग्राफर आगे बढ़े तथा जनता अत्यन्त उत्सुकता से विनोबा के अगले कदम की प्रतीक्षा करने लगी।

वास्तव में यह केन्द्र सरकार के सामने बहुत बड़ी समस्या थी। आतंकवादी, अतिवादी तथा डाकू दिन छिप जाने पर गाँव लूट लेते, स्त्रियों को भगा ले जाते और लड़कों को त्रस्त करते। जैसे पहले राक्षस होते थे वैसे ही ये डाकू थे। सर्वत्र आतंक का वातावरण बन जाता। पुलिस होने पर भी कोई लाभ नहीं होता था—दोनों ओर की गोलीबारी में व्यर्थ लोग मारे जाते, पुलिसवाले मारे जाते। केन्द्रीय गृहमन्त्री गोविन्द वल्लभ पन्त आगरे में विनोबा से मिलने आये। उनका मन आशंकित था। उन्होंने कहा, "विनोबाजी! आपके कार्य को मैं अपनी शुभकामनाएँ देता हूँ परन्तु..."

विनोबा बोले, "महात्माजी हृदय-परिवर्तन पर जोर देते थे। मैं उसका प्रयोग करनेवाला हूँ।"

पन्तजी बोले, "आप उनके पास पहुँचकर यह कार्य करने का प्रयत्न करेंगे।

आपको पूर्ण सुरक्षा मिलेगी। आप निश्चिन्त रहें। यदि यह कार्य हो गया तो यह संसार में एक आश्चर्य होगा!''

विनोबा ने कहा, ''गोविन्दजी! आप केवल इतना कीजिए कि सेना भेजकर मेरी सुरक्षा मत कीजिए। मेजर जनरल यदुनाथ सिंह मेरे साथ हैं। उनके नाम में जनरल और सिंह ये दो शक्ति-केन्द्र हैं।''

पन्तजी बोले, ''विनोबाजी! इस घटना की ओर सारे भारत का ही नहीं बल्कि संसार का ध्यान है। आपको मृत्यु का भय नहीं है। परन्तु डाकुओं को यदि आपका आना अच्छा नहीं लगा तो क्रोध के आवेश में वहाँ मौत का ताण्डव होगा और लोग कहेंगे कि मैंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया। आप अकेले जाना चाहते हैं तो जाएँ। परन्तु तीन राज्यों का पुलिस-तन्त्र आपके लिए तैयार रहेगा। इससे इनकार मत कीजिए। मुझको मेरे कर्तव्य का पालन करने दीजिए। आपके आदेश के बिना पुलिस गोली नहीं चलाएगी। हिंसा नहीं होगी, इसकी साक्षी मैं दे रहा हूँ।''

विनोबा ने धीरे से कहा, ''इसका अर्थ यह है कि मेरी अहिंसा यदि सफल नहीं होती है तो हिंसा की शुरुआत हो जाएगी!''

यदुनाथ सिंह बोले, ''इसका यह अर्थ नहीं है विनोबाजी! सीमा रेखा पर दोनों देशों की सेनाएँ होती हैं। वे लड़ाई के लिए नहीं, बल्कि एक-दूसरे को अपने अस्तित्व की जानकारी कराने के लिए होती हैं।''

विनोबा बोले, ''मुझ जैसे वृद्ध को यदि काट भी देंगे तो उससे क्या हासिल हो जाएगा?''

यदुनाथसिंह ने कहा, ''परन्तु सारा संसार मुझको दोष देगा कि विनोबा जैसा वृद्ध मनुष्य जब डाकुओं की माँद में जा रहा था तब आप हाथ पर हाथ धरे क्यों बैठे रहे? इसका उत्तर उस समय मेरे पास नहीं होगा। इसीलिए प्लीज, आप इनकार मत कीजिए!''

विनोबा की इच्छा थी कि उनका मुकाम भिण्ड-मुरैना में हो! ऐसा ही हुआ। केवल विनोबा की सुरक्षा का प्रबन्ध किया गया। विनोबा को अपने आसपास एक भी सैनिक नहीं चाहिए था, इसलिए सैनिक दूर खड़े थे।

विनोबा नित्यनियमानुसार उठे। अथर्वशीर्ष पढ़ा। ऋग्वेद के कुछ अंश पढ़े और वे प्रार्थना-स्थल पर आये।

विनोबा अपने आसन पर बैठने ही वाले थे कि एक वृद्ध स्त्री दौड़ती हुई आयी। विनोबा के पैर पकड़ती हुई वह धरती पर गिर पड़ी। घटना इतनी तेजी से घटी थी कि सैनिक उसके पीछे दौड़ते हुए तम्बू तक आ गये थे।

विनोबा ने सैनिकों को जाने का संकेत किया। उस स्त्री के मुख पर पानी छिड़का। वह सचेत हुई। विनोबा ने पूछा, ''माताजी! ठीक हो न?''

क्षणभर वह कुछ न बोली। वह केवल सिसकती रही। कुछ देर बाद वह स्वयं को सँभालती हुई बोली, "बाबा! आप यहाँ आये हैं। हम लोगों का बहुत भला होगा, लेकिन यहाँ से आपका जिन्दा लौटना मुश्किल है। इसलिए मैं सब गाँव वालों की ओर से कहने आयी हूँ कि आप यहाँ से चले जाइए और हमको हमारे हाल पर छोड़ दीजिए...आप लौट जाइए!"

विनोबा ने कहा, "माताजी! इन सैनिकों को देख रही हो...मुझको कोई खतरा नहीं है!"

वह बोली, "आप उन डाकुओं को नहीं मार सकते!"

विनोबा ने कहा, "मैं अकेला नहीं हूँ माताजी!"

वह स्त्री कहने लगी, "मेरे गाँव के आदमी मरेंगे तो थोड़ा दुःख तो गाँववालों को जरूर होगा लेकिन आपको कुछ हो गया तो देश के लोगों का बड़ा नुकसान होगा। बाबा! आप लौट जाइए!"

विनोबा ने कहा, "माताजी! क्या आप नहीं चाहतीं कि यह गाँव निर्भय रहे, यहाँ सर्वोदय हो, यहाँ की माता-भगिनी निडर हो जाएँ और किसी को उसका बेटा-भाई-पति मिल जाए जो संयोगवश डाकू हो गया है! माताजी! आप बेफिक्र होकर जाइए? मुझको कुछ भी नहीं होगा।"

उस वृद्ध स्त्री ने कहा, "आप मेरी बात नहीं मानना चाहते हैं न?"

विनोबा बोले, "मैं इसीलिए तो यहाँ आया हूँ। क्या आप यह चाहती हैं कि मैं यहाँ से भागकर चला जाऊँ? मैं सच कहता हूँ...मुझको कुछ नहीं होगा!"

विनोबा उसको समझा रहे थे परन्तु वह कदापि मानने को तैयार नहीं थी। पिछली साल ही लग्नमण्डप में आकर डाकू उसकी लड़की को उठा ले गये थे। बाद में उस लड़की का पता लगाने के लिए और उसको छुड़ाने के लिए इसका लड़का गया था। तब एक दिन शाम को उस लड़के का शव लेकर डाकू गाँव में घुसे थे। गाँव वालों ने झटपट अपने घरों के दरवाजे बन्द कर लिये थे। फिर भी चार-पाँच घरों के लोगों को उन डाकुओं ने मार दिया ही! क्योंकि वे उनसे उस बुढ़िया का पता जानना चाहते थे! आखिर वह भाग गयी। जब वह गाँव में नहीं मिली तब डाकू चले गये। परन्तु डेढ़-दो महीनों के बाद वे आते रहे थे। वृद्धा के साथ ही सबको सन्त्रस्त करते रहे। वह स्त्री थक गयी थी। गाँव के जमींदार ने उसको आश्रय दिया था, इसलिए गतवर्ष इन डाकुओं ने उसकी खड़ी फसल में आग लगा दी थी। उस वृद्धा स्त्री ने रो-रोकर यह सारी घटना विनोबा को बतायी।

विनोबा ने उससे कहा, "ऐसी अनेक घटनाएँ मैंने सुनी हैं। यह भी मेरे ध्यान में आ गया है कि अगर मैं विफल हो गया तो मेरे यहाँ से जाने पर गाँव वालों के संकट और बढ़ जाएँगे। मैं दुहरी आपत्तियों में फँस गया हूँ। तुम जाओ! मैं अपना प्रयत्न करता हूँ।"

फिर वह स्त्री चली गयी।

रात में देर रात तक विनोबा विचार करते रहे। एक विचार उनके मन में आया और अपने उस विचार पर उनको हँसी आ गयी :

धर्मक्षेत्रे भिण्डक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
पोलीसाः डाकवश्चैव किमकुर्वत संजय।

और विनोबा ने दरी पर पीठ टेक दी।

प्रातःकाल जब मोघे और यदुनाथ सिंह विनोबा से मिलने आये तब अनेक कार्यकर्ता वहाँ बैठे हुए थे।

मेजर यदुनाथ सिंह ने कहा, "विनोबाजी! डाकू मानसिंह, सुमेर सिंह, कर्तारसिंह आदि अनेक डाकू सचमुच ही आत्मसमर्पण करने को तैयार हैं।"

मोघे बोले, "आज हम पुनः एक बार निश्चित परिस्थिति का विचार कर लेंगे फिर भी मेरा कहना है कि बाबा आगे न जाएँ!"

प्रार्थना के समय लगभग तीन सौ लोग सहमे-सहमे-से आये थे। परन्तु सूर्योदय के बाद यह संख्या और अधिक हो गयी थी। गाँव में विनोबा का आना मानो ईश्वर का अवतार था, यह मानकर अनेक स्त्रियाँ घर बनायी हुई मिठाई और पूजा का सामान लेकर आयी थीं। यह सब देखकर विनोबा भावाभिभूत हो गये।

उन्होंने सबको लक्ष्य कर कहा, "अनेक बार अनेक गाँवों में लोगों ने जो स्वागत किया उससे मैं भावाभिभूत हुआ हूँ। परन्तु आज की परिस्थिति भिन्न है। आज मेरी परीक्षा है। ईश्वर निश्चय ही मेरी सहायता करेगा क्योंकि आप सबकी शुभकामनाएँ मेरे साथ हैं। मैं देवदूत नहीं हूँ। मैं एक सादा साधारण मनुष्य हूँ। इस मनुष्य के पास केवल आपके प्रेम की शक्ति है। मेरे हाथ क्या कर सकेंगे, यह मैं आज नहीं बता सकता। मेरी माता-बहिनो! पूजा मेरी मत करो, पूजा सत्कर्म की करो, ईश्वर की करो।"

विनोबा ने मन में ईश्वर का स्मरण किया, 'आज तक जो परीक्षाएँ दीं वे अलग थीं। आज सारे संसार का ध्यान इस घटना की ओर है। परन्तु केवल इसीलिए नहीं बल्कि अन्तरिक्ष के वायुमण्डल में स्थित बापू की आत्मा के लिए तो मुझको यश प्राप्त होने दो!'

विनोबा ने खड़े होकर हाथ में लठिया पकड़ ली।

जयदेव ने व्याकुल होकर कहा, "बाबा! केवल एक बार मुझको स्वयं जाकर देख लेने दीजिए।"

जयदेव बचपन से ही पवनार आश्रम में रहा था। वहीं वह बड़ा हुआ था और शिक्षित हुआ था। उसके माता-पिता वहीं के थे। विनोबा के प्रति उसका असीम पुत्रवत् प्रेम था। विनोबा विचार करने लगे। आज तक घोर वर्षा में तथा धूप-शीत में किसी

की न सुनते हुए वे चलते रहे थे। परन्तु जयदेव का कथन सुनकर आज उन्होंने आगे बढ़ा हुआ पैर पीछे कर लिया।

पाँच-छह लोगों के साथ जयदेव चम्बल घाटी के जंगल की ओर चल दिया। मेजर यदुनाथ सिंह ने सन्देश भेजा। जयदेव आदि जब गुफा के पास पहुँचे तब चार-पाँच लम्बे-तगड़े डाकू सामने आये। एक पेड़ के नीचे उन्होंने खाट डाल दी और बोले, "बैठ जाओ! हमारे सरदार आपसे कल मिलेंगे।"

जयदेव का मुँह सूख गया और भय से हाथ-पैर काँपने लगे। मेजर यदुनाथ सिंह यहाँ आ चुके थे। परन्तु ऐसी कोई बात उन्होंने नहीं बतायी थी। सामने दूर मिट्टी के टीले—उनमें होकर दौड़ता 'साँय-साँय' करता पवन—परली ओर चम्बल नदी की आवाज—शेष निस्तब्धता! अब वे डाकू आएँगे—मानसिंह, लच्छा और लक्का। और कुछ सवाल पूछेंगे। प्रतीक्षा करते-करते प्रात:काल से सन्ध्या हो गयी! खाट पर चार लोग बैठे हुए थे और चार पहरेदार थे! भय से मुँह सूख रहा था फिर भी जयदेव में पानी माँगने का साहस नहीं था।

अन्धकार सघन होने लगा। वे मिट्टी के टीले अँधेरे में राक्षसों जैसे प्रतीत होने लगे। जयदेव को काँपता देखकर एक डाकू बोला, "डरना मत! हमारे सरदार जब तक नहीं आते तब तक हम तुमको छोड़ नहीं सकते।"

जयदेव ने कहा, "हमको सिर्फ सन्देशा देना है।"

वह बोला, "सन्देशा-वन्देशा, जो कुछ देना हो उनको दे देना।"

इतने में ही एक पहरेदार लालटेन लेकर आया। लालटेन नीचे रखकर वह धरती पर बैठ गया और उसने जयदेव से पूछा, "यह बाबा कैसा दिखता है रे?"

जयदेव ने घबड़ाकर कहा, "अच्छा!"

"खूब ताकतवर होगा?"

"नहीं तो। हमसे आधा है उसका शरीर और बूढ़ा भी है।"

"फिर इतनी खलबली उसने कैसे मचायी है? हमारे सब सरदार सुबह से विचार-विमर्श कर रहे हैं। क्या बाबा स्वयं भगवान हैं?"

"मैं नहीं जानता।"

"वो कहता है तो हम भी हाथ से हथियार डाल देंगे।"

"लेकिन हमको क्यों बैठा रखा है?"

"सरदार की आज्ञा के बिना हम कुछ नहीं कर सकते। और जब तक सन्देशा नहीं मिलता तुम बाबा से जाकर कहोगे भी क्या?"

उसने अनेक प्रश्न किये। फिर वह चला गया।

भय थोड़ा कम हो गया था। परन्तु वातावरण में तो भयंकर शान्ति थी ही। खाट पर चारों बैठे थे। चार पहरेदार थे। सामने लालटेन जल रही थी।

जो लालटेन रख गया था वह फिर आया। उसके साथ तीन-चार आदमी आये। उनके हाथ में भोजन की थालियाँ और चार दरियाँ थीं। कुछ खाटें भी लायी गयीं। पहरेदार बदल गये। परन्तु निःशब्द-भयावह वातावरण वही रहा। अपने साथियों सहित जयदेव बैठा था कि उनमें से एक ने पूछा, ''बाबा आदमी है न?''

जयदेव ने कहा, ''क्या मतलब?''

वह बोला, ''कोई कहता है कि बाबा ने लोगों की जमीन हड़प ली है। वो बड़ा डाकू है!''

जयदेव ने कहा, ''नहीं, ऐसा नहीं है। जिनके पास ज्यादा जमीन थी उनसे माँगकर बाबा ने उनको दी है जिनके पास बिल्कुल नहीं थी।''

वह बोला, ''यह झूठ है। लोग बोलते हैं, बाबा जमीन हथियाने आया है। उसके पास हमारे सरदार से ज्यादा फौज है। वह सबको डाँटता है, लोगों को कटवाता भी है। वह बहुत तगड़ा राक्षस होगा।''

जयदेव ने कहा, ''आपको कुछ गलतफहमी हुई है। बाबा क्या हैं—यह आप स्वयं आकर उनको क्यों नहीं देखते? वो तो इधर आने को तैयार हैं, लेकिन आप बुलाते ही नहीं।''

रात में देर तक वे लोग जागते रहे थे। चार पहरेदारों में दो सो गये थे। दो बातें कर रहे थे। रात बहुत लम्बी लग रही थी। जयदेव बेहद थकान अनुभव कर रहा था।

प्रातःकाल होते ही कुछ सरदार घोड़ों पर आये। उन्होंने पूछा, ''बाबा यहाँ आया है क्या?''

जयदेव ने उत्तर दिया, ''नहीं।''

वह बोला, ''ठीक है। हमारे बड़े सरदार की कुछ शर्तें हैं। उनको यदि बाबा पूरी करेंगे तो हम हथियार डालकर माफी माँग सकते हैं।''

जयदेव ने कहा, ''आप कहिए। मैं उनको बता दूँगा।''

वह कहने लगा, ''हम बाबा के सामने हथियार डालेंगे और अपने घरवालों से मिलेंगे। उस समय पुलिस हमको गिरफ्तार न करे। दूसरी बात, हम जेल जाएँगे लेकिन हमारी सजा कम होनी चाहिए। सजा पूरी होने के बाद हमको सम्मान के साथ जीना है, इसलिए गाँववालों को हमको माफ कर देना चाहिए। हमारी शर्तें छोटी दिखती हैं परन्तु इनको पूरी करना कठिन है। और हाँ, जब हम सब आएँ तब पुलिसवाले वहाँ मौजूद न हों और बन्दूकें न चलें। लक्का सरदार पर सरकार ने जो दस हजार का इनाम रखा है वह उसके घरवालों को मिले। पुलिस तो उनको पकड़ने में नाकामयाब रही है। समझ में आ गया न? देखो, अगर कुछ उलटा-सीधा हो गया तो सबको मौत के घाट उतारकर हम भाग जाएँगे। अब जाओ!''

जयदेव और उनके साथी जब वहाँ से चले तब ऐसा लग रहा था मानो पैरों में

शक्ति ही न रही हो! जैसे-तैसे वे लोग विनोबा के तम्बू के पास पहुँचे और उन्होंने सारी घटना बतायी।

विनोबा ने सबसे विचार-विमर्श कर अपनी स्वीकृति दे दी। परन्तु पुलिस इन्स्पेक्टर और मेजर जनरल यदुनाथ सिंह आशंकित थे—विनोबाजी संसार को जितना सीधा समझते हैं उतना वह अब रहा नहीं है! इसको उन्होंने डाकुओं की एक चाल भी समझा। अपने मन की बात उन्होंने विनोबा से कही।

तब विनोबा बोले, "चार कदम वे लोग चलकर आएँगे तो दस कदम हमको भी चलकर जाना पड़ेगा। मेरे साथ केवल चार-पाँच लोग रहें।"

जयदेव ने कहा, "आपका कहना तो ठीक है परन्तु अफजल खान-शिवाजी की भेंट याद है न? अफजल खान ने छल से निःशस्त्र शिवाजी महाराज को मारने का प्रयत्न किया ही था न? शिवाजी महाराज दिखाने के लिए तो एक भी शस्त्र नहीं ले गये थे परन्तु शत्रु के घात को जाननेवाले महाराज बाघनख अपने साथ ले गये थे न? यह आपने ही कहा था न? तो फिर आपके पास कौन-सा शस्त्र है?"

विनोबा खिलखिलाकर हँसकर बोले, "इस फटेहाल बाबा के पास एक जादू है।"

जयदेव झुँझला उठे। किसी भी परिस्थिति में विनोबा परिहास करें, यह उनको स्वीकार नहीं था। उन्होंने झुँझलाकर कहा, "तो अपना जादू दिखाइए न!"

विनोबा ने कहा, "हृदय की जिस भाषा को हृदय जानता है, जो आँखें एक-दूसरे का भाव समझती हैं, जहाँ मनुष्य मनुष्य होता है वहाँ प्रेम की भाषा चलती है, शस्त्र के बिना क्रान्ति होती है और अहिंसा से नया अध्याय प्रारम्भ होता है।"

लोग विनोबा की सभी बातें मानते थे। परन्तु यहाँ सामना मानवता के कलंक-भूत डाकुओं से था! गाँव के गाँव बेचिराग कर देनेवाले नराधमों से था!! प्रेम-भावना-संवेदना आदि शब्दों का जहाँ कोई अर्थ ही नहीं था। ऐसे लोगों से सुसंवाद स्थापित करने का अर्थ था साक्षात् मृत्यु को निमन्त्रण देना! विनोबा क्या कर रहे हैं, यह किसी की समझ में नहीं आ रहा था।

अँग्रेजों ने अनेक बार इन डाकुओं को नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया था। परन्तु उनको भी सफलता नहीं मिली थी। सन् 1856 के युद्ध में तात्या टोपे पलायन कर यहीं जंगल-घाटियों में डकैतों के आश्रय में आया था। और यहीं से स्वतन्त्रता के युद्ध की हलचलों को गति मिलती थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् भी अनेक बार फौज भेजने पर भी डकैत झुके नहीं थे।

ऐसी स्थिति में विनोबा प्रयत्न करने चले थे! समाचारपत्रों के रिपोर्टर कैमरे लेकर तैयार थे। छोटी-छोटी बातें भी महत्त्वपूर्ण बन गयी थीं। गाँव के लोग खाना-पीना छोड़कर विनोबा के पीछे लगे थे। प्रतिक्षण उत्सुकता बढ़ रही थी। अन्त में

विनोबा ने हाथ जोड़कर पुलिस के लोगों से कहा, "कृपा करके आप सामने न आएँ! मेरे साथ पचास लोग हैं।"

एक सिपाही ने कहा, "परन्तु आप सब निःशस्त्र हैं!"

विनोबा बोले, "उसकी चिन्ता मत कीजिए परन्तु आप मेरी बात मानिए। और जयदेव! तुम साथियों को लेकर जाओ और सरदार मानसिंह से कहो कि तुम्हारी सभी शर्तें हमको स्वीकार हैं। उनको यह भी समझा दो कि पुलिस उनको कष्ट नहीं देगी।"

जयदेव साथियों के साथ चले गये।

विनोबा विचारमग्न हो गये। आज प्रातःकाल प्रार्थना-सभा के पश्चात् भाषण में उन्होंने कहा था, 'भगवान ही जानता है कि असली डाकू कौन है! कुछ लोग डाकू के रूप में बदनाम हैं, परन्तु वे ही डाकू नहीं हैं। भगवान की नजर में कुछ लोग डाकुओं के भी बाप हैं अर्थात् डाकुओं से भी अधिक खतरनाक जुर्म करते हैं। कुछ लोग आशा कर रहे हैं कि मैं डाकुओं की समस्या हल करने जा रहा हूँ। परन्तु बात बिल्कुल दूसरी है। इन समस्याओं को हल करनेवाला मैं कौन होता हूँ? मैं तो भगवान का तुच्छ सेवक हूँ जो भले लोगों की सेवा के लिए गाँव-गाँव घूम रहा है। मैं तो बुद्ध और ईसा के चरणचिह्नों पर चलने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मेरी तो केवल एक ही इच्छा है कि आज करुणा की जो नदी सूखी पड़ी है वह फिर से बहने लग जाए!'

दो दिन बीत गये।

डाकुओं की शर्तें, फिर विचार-विमर्श और फिर उनको उत्तर देना, यह क्रम चल रहा था। विनोबा को पुलिस के, पत्रकारों के, लोगों के और डाकुओं के प्रश्नों के उत्तर सतत देने पड़ रहे थे।

रात का समय था। जब से विनोबा यहाँ आये थे तब से उनको रात में नींद भी अच्छी तरह नहीं आती थी। विनोबा तम्बू के बाहर एक विशाल पाषाण खण्ड पर अकेले बैठे थे। वातावरण बहुत ठण्डा था इसलिए उन्होंने देह पर कम्बल लपेट लिया था। यहाँ आने के बाद वे अहर्निश प्रार्थना करते रहते थे। गाँवों के स्त्री-पुरुष उनके पास आकर रोते और डाकुओं के अत्याचारों का वर्णन करते। क्या किया जाए, यह समझ में नहीं आ रहा था। आज तक विनोबा की बात सब मानते आये थे। मध्य प्रदेश के राज्यपाल एच. टी. पाटसकर और मुख्यमन्त्री काटजू विनोबा को सतत सहयोग देते रहते थे।

फिर भी विनोबा मन में अस्वस्थ हो उठे थे। इस अस्वस्थता को मध्य प्रदेश के इन्स्पेक्टर जनरल के. एफ. रुस्तमजी ने गम्भीर मोड़ दे दिया था।

रुस्तमजी ने कहा था, "बाबा! आप पुलिस से कहते हैं कि वे हस्तक्षेप न करें। आप कायदा भी हाथ में ले रहे हैं और अधिकार भी हाथ में ले रहे हैं, यह उचित नहीं है। मैं इस बात का सख्त विरोध करता हूँ। मैं आपके विरुद्ध ऐक्शन भी ले सकता हूँ।"

विनोबा ने कहा था, "कायदा हाथ में लेकर मुझको कुछ भी नहीं करना है। बरसों से पुलिस जो नहीं कर सकी, उसको मैं करके दिखाना चाहता हूँ, यह भावना भी मुझमें नहीं है। मैं एक साधारण मनुष्य हूँ। कानून को मैं कभी अपने हाथ में नहीं लूँगा। मैं विनम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि मुझको बापू की शान्ति और अहिंसा का प्रयोग करने का अवसर दिया जाए। यदि परिस्थिति जरा-सी भी बिगड़ती दिखाई दे तो तत्काल आप अपने ढंग से कार्रवाई करें। मैं हाथ जोड़ता हूँ कि मुझको एक बार अवसर दें!"

विनोबा का नम्र और मधुर कथन सुनकर अन्त में रुस्तमजी ने उनकी बात मान ली थी। फिर भी विनोबा के मन में विचारों की आँधी थमी नहीं थी। उनको रात में नींद ढंग से आती ही नहीं थी।

विनोबा उठकर तम्बू की ओर चलने लगे। तभी उन्होंने देखा कि सामने से एक रायफलधारी मनुष्य कम्बल ओढ़े तथा सिर पर अँगोछा लपेटे हुए उनकी ओर जल्दी-जल्दी चलता हुआ आ रहा है। सहसा अनाम भय से विनोबा सिहर उठे और जहाँ के तहाँ खड़े हो गये। वह मनुष्य आगे आया तो विनोबा ने पूछा "कौन है?"

वह बोला, "मैं हूँ!"

विनोबा ने कहा, "मैं अर्थात् कौन?"

वह कुछ न कहकर पास आया। चन्द्रमा के प्रकाश में विनोबा ने देखा कि छोटी-छोटी मूँछें रखे हृष्ट-पुष्ट युवक उनके सामने खड़ा था।

विनोबा ने पूछा, "कौन हो तुम?"

उसने तत्काल रायफल और गले में पड़ी कारतूसों की माला विनोबा के चरणों में रख दी और विनोबा के पैर पकड़ लिये। वह बोला, "बाबा! आज तक मैं गलत रास्ते पर था। अब आगे मैं कोई जुर्म नहीं करूँगा। आप चाहें मुझे बचाएँ, चाहें शेर के सामने डालें! मैं आपकी शरण में आया हूँ।"

एक क्षण विनोबा को कुछ नहीं सूझा। दूसरे ही क्षण उसको उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

उसने कहा, "राम अवतार सिंह।"

विनोबा बोले, "आज मुझको मेरा राम मिल गया। बहुत खुशी हुई।"

वह रात में विनोबा के तम्बू में रहा।

विनोबा का जीवन निकट से देखकर राम अवतार सिंह ने उनसे कहा "आप तो देवलोक से आयी हुई कोई आत्मा हैं शायद!"

विनोबा मुस्कराये तो उसने कहा, "मुझको अब अपने चरणों में ही रहने दीजिए!"

फिर वह प्रात:कालीन प्रार्थना में सम्मिलित हुआ। अपने भाषण में विनोबा ने

कहा, "आज यहाँ लगभग पच्चीस हजार पुलिस के सिपाही तैनात हैं। वे मुझसे नाराज हैं। परन्तु मैं उनसे यही कहना चाहता हूँ कि डाकू जन्म से नहीं होता है बल्कि शोषण, क्रूरता, क्रोध आदि के कारण मनुष्य डाकू बनता है। इन डाकुओं पर यदि हम प्रेम करें इनको विश्वास का आधार दें तथा गाँव एक बड़ा कुटुम्ब है—यह समझाकर इनको अपने बीच स्थान दें तो अनेक प्रश्न सहज हल हो जाएँगे। ऐसे भावमय विचार पुलिस की विचार-सीमा में नहीं आ सकते। कानून से यह समस्या अधिकाधिक जटिल ही होगी। मैंने यह पढ़ा है कि आज से ढाई हजार वर्ष पहले डाकू अंगुलिमाल ने गौतम बुद्ध के सामने शरणागति स्वीकार की थी। इसलिए उसी प्रेममार्ग पर चलकर परमेश्वर की कृपा से शायद मैं भी कुछ कर सकूँ।"

विनोबा गाँव-गाँव में भाषण दे रहे थे। जनमत तैयार कर रहे थे। पुलिस तथा अधिकारियों को विश्वास दिला रहे थे कि "अकेला राम अवतार सिंह हमारे पास आने से काम नहीं बनेगा। डाकुओं की सभी टोलियाँ यहाँ आनी चाहिए। हम उनको क्षमा करके उनको अपने साथ ले लेंगे..."

बोलते-बोलते विनोबा रुक गये। अस्तंगत सूर्य का केसरिया बिम्ब क्षितिज पर था। उस क्षितिज से एक घुड़सवार आता हुआ उनको दिखाई दिया। वायुवेग से वह सवार विनोबा की ओर आ रहा था।

वह सवार निकट आया। मुखमण्डल पर उसने अँगोछा लपेट रखा था। वह कीमती सफेद कपड़े पहने था। उसकी कमर में चमड़े की पट्टी थी और गले में कारतूसों की माला थी। आँखों पर काला चश्मा था, बायें कन्धे पर रायफल थी और दायें हाथ में घोड़े की लगाम थी।

विनोबा चकित थे। सारी सभा शान्त थी। किसी को भी संशय नहीं हुआ था। वह सवार विनोबा के पास आकर और जोर से बोला, "मैं लच्छी सिंह हूँ। सरकार ने जिस पर पाँच हजार का इनाम रखा है, वह मैं ही हूँ।"

लोग एकदम घबड़ा गये और उठकर खड़े हो गये।

लच्छी सिंह बोला, "डरो मत! मैं अब डाकू नहीं हूँ। मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। गाँववालो! मैं तुम्हारा हूँ। तुम लोग मुझको स्वीकार करो। वैसे मैं बम्बई में था। वहाँ मैंने अखबार में पढ़ा कि बाबा चम्बलघाटी में घूम रहे हैं और डाकुओं को समझा रहे हैं कि वे आत्मसमर्पण कर दें और अपने किये हुए पर पश्चात्ताप करें। तब मेरे मन में एक नया भाव उत्पन्न हुआ और मैं बाबा की जानकारी लेता रहा। आखिर मुझको लगा कि मैंने बहुत बड़ी गलती की है। मैंने अपना जीवन यहीं छिपकर बिताया है। अब विचार आता है कि मैंने ऐसा जीवन क्यों पसन्द किया? क्या मुझको अपने लोग अच्छे नहीं लगते थे? क्या मुझको गुण्डागर्दी और डकैती अच्छी लगती थी? इसका जवाब मन के अन्दर से आया—नहीं...मैं यह नहीं चाहता था। अब गलत और

बुरा रास्ता मैं छोड़ना चाहता हूँ। इसलिए मैं यहाँ दौड़ा-दौड़ा आया हूँ और मैं अपने को गाँववालों के और बाबा के हाथों में सौंप रहा हूँ।"

उसने रायफल गाँववालों के सामने पटक दी। घोड़े की लगाम भी नीचे डाल दी। कारतूसों की माला और चमड़े की पेटी भी नीचे डाल दी। सभा के दो-ढाई सौ लोग क्षणभर को मन्त्रमुग्ध हो गये! लच्छी सिंह ने विनोबा के पैर पकड़ लिये। उसकी आँखों में आँसू थे। विनोबा ने उसको उठाया और उसके आँसू पोंछे।

विनोबा कहने लगे, "आज मुझको परमेश्वर के साक्षात् दर्शन हो गये। यह सब उसी की माया है। यह लच्छीसिंह बम्बई से यहाँ आत्मसमर्पण करने आया है, इसको परमात्मा ने ही यहाँ भेजा है क्योंकि हमारा कोई भी कार्यकर्ता इसके पास नहीं पहुँचा है। परमेश्वर ने इसको प्रेरणा दी और यह आ गया। ढाई हजार वर्ष पहले अंगुलिमाल ने सिद्धार्थ गौतम के पास ऐसे ही आत्मसमर्पण किया था। लोग कहते हैं कि कलियुग में ऐसा कुछ नहीं होगा। परन्तु इस घटना को ईश्वरीय साक्षात्कार के अतिरिक्त और कुछ कह ही नहीं सकते।"

कुछ देर बाद जब लच्छीसिंह की टोली ने भी अपनी दूरबीन और कैमरा लगी हुई कीमती बन्दूकें तथा स्वयं को भी समर्पित कर दिया तब विनोबा का हृदय भर आया और आँखों से अश्रुधाराएँ बहने लगीं। जीवन का वह एक अद्भुत अवसर था।

विनोबा जब रात में तम्बू में लौटे तब मन आनन्द से परिपूर्ण था। ईश्वर के अस्तित्व के विषय में उनके मन में कभी सन्देह था ही नहीं। अनुपम-अद्वितीय निराकार आज उनके सम्मुख उत्कट रूप में साकार हो गया था।

'अवतार सिंह शरण में आ गया। अपनी टोली के साथ लच्छीसिंह शरण में आ गया। मानसिंह के लड़के तहसीलदार सिंह का पत्र आ गया अर्थात् आज या कल वह भी आ जाएगा। और भी बहुत से डाकू आत्मसमर्पण करेंगे। उनको पुलिस के अधिकार में जाना पड़ेगा, यह जानकर भी वे तैयार हो रहे हैं। ये सब घटनाएँ अद्भुत हैं। मुझको तीन बार सामूहिक जीवन में ईश्वर का इस प्रकार साक्षात्कार हुआ है और उस समय भावनाओं को वश में रखना मेरे लिए कठिन हो गया था। अहिंसा की प्रचण्ड शक्ति मैं जान गया था। एक बार तब जब पोचमपल्ली की सभा में खड़े होकर एक जमींदार ने सौ एकड़ जमीन का दान किया था, दूसरी बार बिहार में लाखों एकड़ जमीन का दान तथा ग्रामदान होने पर तथा तीसरी बार आज भिण्ड में! इससे अधिक मेरे जीवन की सफलता और क्या होगी?

हे परमेश्वर! अब मेरी कोई इच्छा शेष नहीं है। अब मेरा कुछ भी माँगना नहीं है। अब बस एक काम कर दो! जो कभी नहीं माँगा वह आज माँग रहा हूँ। इस यशस्वी समय में मृत्यु दे दो!'

23

इस समय विनोबा इन्दौर में थे। आषाढ़ का महीना था।

प्रात:काल था। विनोबा ने स्नान कर लिया था और वे इन्दौर की निद्राधीन बस्ती में घूमने जाने को तैयार थे। उनका एक नियम था। जिस गाँव में जाना होता था उस गाँव की जानकारी वे पहले प्राप्त कर लेते थे और फिर उस गाँव में घूमते थे।

तदनुसार वे प्रात:काल चल दिये। आकाश मेघाच्छादित था। हवा भी स्तब्ध थी। विनोबा अपने एक सहकारी के साथ जा रहे थे। चलते-चलते वे रुक गये और सहकारी से बोले, "देखा?"

क्या देखना है, यह सहकारी को समझ में नहीं आया।

"ये सिनेमा के पोस्टर्स देखे?"

उसने रुककर कुछ क्षणों तक पोस्टरों को देखा और फिर सिर झुका लिया।

विनोबा ने कहा, "आप लोग गृहस्थाश्रमी हैं। इस पोस्टर के विषय में आपका क्या विचार है?"

उस सहकारी ने घबड़ाकर कहा, "अच्छे नहीं हैं!"

विनोबा कहने लगे, "वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' ग्रन्थ लिखकर कामशास्त्र लोगों के सामने रखा। उससे पहले भी अजन्ता और खजुराहो में शिल्प कृतियाँ कामशास्त्र का पाठ दे रही थीं। मन्दिर में ही कामशास्त्र की शिल्पकृतियाँ बनाने का एक कारण था कि प्रत्येक कार्य ईश्वर की साक्षी से धर्म के अनुसार होना चाहिए। परन्तु आज स्थान-स्थान पर अश्लीलता का प्रदर्शन किया जा रहा है।"

सहकारी ने कुछ न कहा, तब विनोबा बोले, "अपने बच्चों के साथ आप अश्लील पुस्तकें नहीं पढ़ सकते हैं, वैसे ही बच्चों के साथ आते-जाते आप इन पोस्टरों को नहीं देख सकते हैं। पास में ही विद्यालय है। ऐसी परिस्थिति में पवित्रता और अश्लीलता साथ-साथ कैसे रहेंगी? कामजीवन नूतन सृष्टि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु उसका प्रदर्शन संस्कृति नहीं है।"

विनोबा मन में सन्तप्त हो उठे थे। साधारणतया वे सहज ही उत्तेजित नहीं होते थे परन्तु आज वे अपने सन्ताप को रोक न सके थे।

प्रार्थना का समय हो गया था। वे जल्दी-जल्दी लौटे।

प्रार्थना के बाद विनोबा ने कहा, "राजस्थान-गुजरात से होकर मैं यहाँ ऐतिहासिक नगर इन्दौर में आया हूँ। अहल्या बाई होलकर की इस पवित्र भूमि में मुझको स्थान-स्थान पर अश्लील पोस्टर्स दिखाई पड़े और उससे यहाँ के लोगों की प्रवृत्ति के दर्शन हुए। इसका सरल अर्थ है कि इन अश्लील पोस्टरों पर इन्दौरवासियों को कोई आपत्ति

नहीं है। मैं स्नान करके इन्दौर देखने गया तो यहाँ-वहाँ अश्लील पोस्टर दिखाई दिये। इन पोस्टरों को जला देना चाहिए। इसके लिए सत्याग्रह करना चाहिए। सिनेमा प्रबोधनकारी संस्था है। वह विशुद्ध आनन्द भी प्रदान करती है परन्तु वास्तविक जीवन दिखाते समय परदे पर क्या दिखाना चाहिए, इसका ज्ञान होना चाहिए तथा ये पोस्टर आज की पीढ़ी पर बुरा प्रभाव नहीं डालेंगे, इसकी सावधानी रखनी चाहिए। इन अश्लील पोस्टरों को देखकर विषय वासना और कामुकता की शिक्षा निःशुल्क मिल जाती है। यह बात मैं सिनेमा-जैसी व्यावसायिक संस्था के बारे में न कहकर मनोरंजन करनेवाले इन पोस्टरों के बारे में कह रहा हूँ।''

प्रार्थना-सभा में तीन-चार सौ लोग थे। वे एकदम उठकर खड़े हो गये और एक स्वर में बोले, ''हम आज ही यह सत्याग्रह प्रारम्भ करते हैं।''

योजना के अनुसार पोस्टर हटाने के लिए सत्याग्रह हुआ। इसकी हवा सारे भारत में फैल गयी। और स्थान-स्थान पर ऐसे सत्याग्रह प्रारम्भ हो गये।

जब विनोबा इन्दौर से चलने लगे तब उन्होंने लोगों से कहा, ''कोई एक आएगा और हमको मार्ग दिखाएगा, तब तक हम कुछ नहीं कर सकते, इस भावना को मन से निकाल दीजिए। स्वयं ढूँढ़िए, मार्ग मिलेगा।''

इन्दौर से जबलपुर-वाराणसी-बिहार और फिर असम में विनोबा पहुँचे। असम पोखरों का रमणीय गाँव-प्रदेश है। वहाँ स्थान-स्थान पर छोटे-बड़े जलाशय हैं, हरी घनी झाड़ियाँ हैं।

विनोबा प्रकृति के इस रमणीय सौन्दर्य-रस का पान आँखों से कर रहे थे।

भिण्ड-मुरैना में जैसी डाकुओं की समस्या थी वैसी समस्या तो यहाँ नहीं थी परन्तु भाषा की समस्या जोर पकड़ रही थी। असम के ग्वालपाड़ा जिले में प्रवेश करते समय ही विनोबा ने कहा, ''यहाँ भाषा के प्रश्न पर ताण्डव मचा हुआ है। यहाँ अनेक-भाषी लोग रहते हैं। असमी और बाँग्ला इस प्रदेश की दो मुख्य भाषाएँ हैं। इनके अतिरिक्त और भी लोकभाषाएँ यहाँ बोली जाती हैं। एक बात और है। भारत के विभिन्न प्रान्तों से यहाँ अनेक मजदूर आये हैं और वे स्थायी भी हो गये हैं। उनकी भी अनेक भाषाएँ हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ ईसाई-मुस्लिम और हिन्दू ये तीनों एकत्र रह रहे हैं। असम प्रदेश अनेक भाषा, अनेक सम्प्रदाय और अनेक लोकभाषाओं का समाज है। साधु-सन्तों का कहना है कि सारा संसार एक है। असम विश्व कुटुम्ब का लघु संस्करण है। परस्पर प्रेम-विश्वास और श्रद्धा के कारण असम की गिनती एक उन्नत प्रदेश के रूप में होने लगेगी।''

विनोबा लोगों में परस्पर सामंजस्य निर्माण करने का प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु वहाँ अनेक दुर्घटनाएँ हो गयी थीं। आगजनी, लूटपाट और हत्या की घटनाएँ हो रही थीं। गाँव के लोग सीधे-सादे थे परन्तु घटनाओं के पीछे राजनीतिक रंग गहरे हो रहे

थे। पुलिस और सेना का उपयोग हो रहा था। लोग उकता गये थे, चिढ़ रहे थे परन्तु मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था।

एक दिन एक महिला दल विनोबा से मिलने आया।

विनोबा ने कहा, "यहाँ की भगिनी जाग्रत दिखाई देती हैं!"

एक युवती बोली, "क्या करें! यहाँ जो कुछ हो रहा है उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। लोग अत्याचार सहन करने के आदी हो गये हैं। आप यहाँ इस उद्देश्य से आये हैं कि राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी के पिचहत्तरवें जन्मदिन तक बत्तीस लाख एकड़ भूमि भूदान में प्राप्त हो जाए। परन्तु यहाँ लोग स्वार्थी हो गये हैं। यहाँ की राजनीति गन्दी हो गयी है।"

विनोबा ने कहा, "सत्य है।"

वह बोली, "सत्य है, कहने से काम नहीं चलेगा बाबा!"

बात करनेवाली युवती बीस-इक्कीस वर्ष की थी। वह पीले रंग की साड़ी पहने थी। कन्धे तक लटकते हुए पीले ही रंग के कुण्डल कानों में थे। कटि से नीचे तक लटकते हुए घने-काले केश खुले ही थे। कन्धे पर एक बड़ा भारी थैला लटक रहा था।

विनोबा ने पूछा, "तुम्हारा क्या विचार है, मुझको क्या करना चाहिए?"

उस युवती ने कहा, "मेरे विचार से क्या होगा? फिर भी मैं कहती हूँ कि आप कुछ नहीं कर सकेंगे। देश को झकझोरने की शक्ति एक ही युगनेता में थी, महात्मा गाँधी में! यह सब आप नहीं कर पाएँगे। वैसे भी भूदान का वेग कम होगा ही जैसे कि महात्माजी का जादू अब समाप्त हो गया है। देश प्रगति की ओर दौड़ रहा है, विज्ञान की ओर दौड़ रहा है और आप अपने ही विचारों में खोये हुए हैं!"

विनोबा ने कल्पना भी नहीं की थी कि सहज वार्तालाप में ऐसा कुछ सुनना पड़ेगा। उस युवती का आवेश और बोलने की धृष्टता देखकर वे बोले, "मात जगदम्बे! इस वृद्धावस्था में तू ही शक्ति देनेवाली है। मुझको शक्ति प्रदान कर!"

उसका आवेश समाप्त हो गया और वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर वह उनके सामने बैठकर बोली, "बाबा! आपका घोर विरोध करनेवालों में मैं भी एक हूँ।"

विनोबा ने कहा, "विरोध तो होगा ही। एक हाथ की उँगलियाँ समान नहीं होती हैं। उसी प्रकार मन भी समान विचारों से परिपूर्ण नहीं होते हैं। मेरे विचार से सभी सहमत कैसे हो सकते हैं?"

वह युवती बोली, "सच है बाबा! जैसे यह भाषा की समस्या है वैसे ही आपकी भी एक समस्या है—बाबा नाम की! लोग घबड़ाते हैं। मैंने देखा है कि जमींदार आपके सामने नहीं आते हैं। यह अत्याचार नहीं है क्या? भूमिहीनों को वे भूदान करें या नहीं, यह प्रश्न आपका न होकर उनका है। किसी को मानसिक दबाव सहन करना पड़ता हो, लोगों को देने में दुःख होता हो तो फायदा क्या है? लोग आपकी तारीफ करते हैं,

परन्तु मुझको वह स्वीकार नहीं है।"

विनोबा ने हँसकर पूछा, "तुम किस भगिनी-मण्डली की हो?"

वह बोली, "मैं किसी की नहीं हूँ।"

फिर वह कुछ नहीं बोली और जैसी आयी थी वैसी ही चली गयी। उसके साथ जो स्त्रियाँ आयी थीं वे भी उसके पीछे-पीछे चली गयीं। विनोबा अशान्त हो गये थे। वे दिनभर लोगों से मिलते रहे, बातें करते रहे; परन्तु उस युवती का एक-एक वाक्य उनको दिनभर याद आता रहा।

दूसरे दिन प्रात:काल विनोबा एक गाँववासी के साथ गाँव देखने के लिए बाहर निकले। शीतल मन्द पवन, दूर क्षितिज तक फैली हरियाली, छोटे-छोटे तालाब, तालाबों में खिले हुए श्वेत-गुलाबी-बैंजनी और हरे रंग के कमल सृष्टि का यह सौन्दर्य देखते हुए विनोबा चले जा रहे थे। सहसा वे रुक गये। एक तालाब के किनारे कलवाली युवती तालाब में जाल डालकर बैठी हुई उनको दिखाई दी।

वे जल्दी-जल्दी उसके पास पहुँचे। वह तन्मय दिखाई दे रही थी।

विनोबा ने उसको पुकारा, "ललिता!"

पुकार सुनते ही वह चौंककर खड़ी हो गयी। वह सद्य:स्नाता थी। उसके बालों से जल की बूँदें टपक रही थीं। सादी चौड़ी लाल किनारीवाली सफेद साड़ी वह बंगाली पद्धति से पहने थी।

वह बोली, "आमार नाम हेमांगिनी। (मेरा नाम हेमांगिनी है)"

विनोबा ने कहा, "भालो लाग लो (अच्छा लगा)!"

वह हँस पड़ी। विनोबा ने भी हँसकर पूछा, "मछली पकड़ रही हो?"

उसने अपना परिचय देते हुए कहा, "हाँ! मैं यही काम करती हूँ। मेरे घर में नौ प्राणी हैं। मैं और मेरी बहिन—हम दोनों घर चलाती हैं। शेष सब छोटे और अति वृद्ध हैं। माता-पिता यात्रा को जाते समय स्वर्गवासी हो गये। दो भाई कलकत्ते में पढ़ रहे हैं।"

"तो फिर तुम्हारे पास जमीन है?"

"नहीं।"

"फिर कल आकर ले जाओ! सब मिलकर खेती करो!"

"नहीं! जमींदारों से बलपूर्वक ली गयी जमीन मुझको नहीं चाहिए। मैं स्वयं पैसा कमाकर खरीदूँगी। मुफ्त का मैं कुछ नहीं लूँगी।"

विनोबा ने पूछा, "तुमको मेरे बारे में किसने बताया था?"

हेमांगिनी कहने लगी, "हमारे गाँव का एक नेता है। मैं उसके यहाँ काम करती हूँ। कक्षा आठ तक पढ़ी हूँ। उनके पास आनेवाले समाचारपत्र पढ़ती हूँ। मैं जानती हूँ कि आप जो काम कर रहे हैं वह अच्छा है। फिर भी आपको यह कहना चाहिए

कि खूब परिश्रम करो, आलसी मत बनो, खूब कमाओ! परन्तु आप हैं कि एक से जमीन लेते हैं और वह दूसरे को दे देते हैं। आपको यश मिलता है। आपके पीछे घरबार की जिम्मेवारी नहीं है इसलिए आप घूमते हैं बाबा! घर के उत्तरदायित्व का पालन करना इतना सरल नहीं है। शायद वह अत्यन्त कठिन है इसीलिए आपने विवाह नहीं किया है।"

विनोबा बोले, "सच कहती हो!"

वह आग्रह करके विनोबा को अपने घर ले गयी। मिट्टी का बना हुआ घर ठीक-ठाक साफ-सुथरा रखा था। द्वार के सामने अल्पना कढ़ी हुई थी। पौरी में गाय-बछड़ा थे। उसकी लगभग तीस वर्षीया बहिन सामने आकर बोली, "बाबा! हमारी हेमांगिनी को अपने साथ ले जाओ और एक अच्छा-सा लड़का देखकर इसका विवाह कर देना।"

हेमांगिनी ने तत्काल कहा, "मीनाक्षी! तुम कुछ मत कहो। तुम यह सारा बोझ अपने सिर पर लोगी और मैं मजा करने जाऊँ? ना बाबा ना!"

घर के नौ लोगों का बोझ दोनों वहन कर रही थीं। दो लोग अन्धे और दो रोगी तथा तीन छोटे भाई! सब प्रसन्न थे। विनोबा चकित थे। उनके सारे शब्द मौन हो गये थे। विनोबा घर से बाहर निकले तो उनके साथ ही हेमांगिनी बाहर आकर बोली, "बाबा! हम सब स्त्रियाँ अमल प्रभादेवी की सब बातें मानती हैं। उन्होंने आपको पत्र लिखा था, मिल गया न?"

विनोबा ने कहा, "हाँ मिल गया। कल वह भी मुझको मिली थी। वह चाहती है कि गुवाहाटी में महिलाओं का संघ स्थापित हो। उसकी बात मैंने मान ली है। अभी इन्दौर में वानप्रस्थाश्रम और विसर्जन आश्रम की स्थापना हुई है! बात कई संस्थाएँ स्थापित करने की नहीं है बल्कि संस्था को आगे चलाने की है।"

हेमांगिनी बोली, "वह संस्था हम जरूर चलाएँगे बाबा!"

विनोबा का मन सशंक था। असम की पौने चार दिशाओं में दूसरे देश थे। केवल एक-चौथाई दिशा भारत से सम्बन्धित थी। ब्रह्मदेश, चीन, तिब्बत तथा पूर्वी पाकिस्तान—इन सबकी सीमारेखाएँ मिलकर दो हजार दो सौ मील हैं और भारत से जुड़े हुए भाग की लम्बाई पचास-साठ मील ही है। असम भारत का संवेदनशील भाग है। यहाँ भारत को अधिकाधिक जाग्रत रहना पड़ेगा। विनोबा का विचार-चक्र चल रहा था। असम में घुसपैठ करनेवाले लोग भी समस्या बने हुए थे।

विनोबा ने जब से असम में प्रवेश किया था तभी से अमलप्रभा और हेमकान्ता नामक दो महिलाएँ उनके साथ थीं। विनोबा 'गीताई' के आधार पर उनको मराठी सिखाने का प्रयत्न कर रहे थे।

असम में धुआँधार वर्षा हो रही थी। नदियों में भयंकर बाढ़ थी। रुकते, डगमगाते कीचड़-भरे रास्ते में विनोबा के साथ कार्यकर्ता भक्तिभाव से चल रहे थे। कई स्थानों

पर दो बार घूमना हो गया था। अब यहाँ से आगे पूर्वी पाकिस्तान था।

विनोबा ने पूर्वी पाकिस्तान में प्रवेश किया। पाकिस्तान में विनोबा का बहुत अच्छा स्वागत किया गया। विनोबा ने वहाँ लोगों से कहा, "आप सब भारत के ही हैं। एक माता के लड़के यदि अलग-अलग चूल्हे कर लें तो उससे माता से सम्बन्ध समाप्त नहीं होता है। सच तो यह है कि जब यहाँ आने से पहले हाई कमिश्नर से अनुमति माँगी गयी तो यही कहा गया कि आप वहाँ मत जाइए! पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भी नागालैण्ड और पाकिस्तान मेरे लिए वर्जित कर दिये थे। परन्तु पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खान ने मुझको निमन्त्रण दिया। यहाँ आने पर देखता हूँ कि मेरा स्वागत किया जा रहा है। इसका यह अर्थ है कि मैं निस्सन्देह आपका ही भाई हूँ।"

विनोबा का कथन समाप्त हुआ ही था कि एक पत्थर विनोबा की ओर आया। वह पत्थर माइक में लगा। माइक में जोर से आवाज आयी।

विनोबा बोले, "मुझ जैसे वृद्ध मनुष्य को मारकर यदि आपको कोई शस्त्र प्राप्ति हो सकती हो, तो मैं दधीचि बनने को तैयार हूँ। देवराज इन्द्र ने दधीचि ऋषि की हड्डियों से शस्त्र बनाकर दैत्यों का दमन किया था। आज सबसे बड़ा शत्रु है—भूख! इस भूख से अनेक प्राणघाती राक्षस उत्पन्न होते हैं। सत्य, संयम और समता से साहित्य का निर्माण होना चाहिए। अहिंसा-व्रत में सबको भाग लेना चाहिए। सबको प्रेम से जीतना चाहिए। इसी काम से मैं असम में डेढ़ वर्ष रहा। वहाँ की स्त्रियाँ अधिक कार्यक्षम थीं। यहाँ की भी होंगी। मेरे हिन्दी भाषण का आशादेवी बांग्ला में अनुवाद कर देती हैं—इसका अर्थ यह है कि स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही कार्य कर रही हैं। स्त्री राष्ट्रशक्ति है। उसको पीछे छोड़ने से काम कैसे चलेगा? असम में रहते समय मैंने 'रूहुल कुर्आन' का अनुवाद किया था। वह मैं आप लोगों के लिए लानेवाला था। क्योंकि आपका धर्मग्रन्थ कुरान प्रत्येक स्त्री को पढ़ना चाहिए।"

सोनारहाट के पहले भाषण में विनोबा ने कहा, "कुछ मिनट पहले ही मैं पाकिस्तान में आया हूँ, यह मुझे बताया गया है। परन्तु पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में मुझको कोई फर्क ही नहीं मालूम पड़ा। वही जमीन, वही हवा। वे सीधे-सादे गाँव के लोग। सारे देश मेरे हैं और मैं सबका हूँ। इसीलिए मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ वहाँ मैं कहता हूँ—'जय जगत्!' "

उसके बाद विनोबा भुरुंगमारी गाँव में पहुँचे।

वहाँ उन्होंने कहा, "पिछले ग्यारह वर्षों से मैं पैदल घूम रहा हूँ। पैदल चलने से असंख्य लोगों के पास मैं पहुँचता हूँ। मैं असम से पश्चिम बंगाल में जानेवाला था परन्तु मैंने विचार किया कि यह देश भी मेरे देश का मित्र है..."

और फिर विनोबा को भाषण स्थगित करना पड़ा!

"भारत हमारा शत्रु है...हमारा भारत से कोई रिश्ता नहीं है। भारत देश हाय-

हाय! पाकिस्तान जिन्दाबाद!" आदि-आदि घोषणाएँ प्रारम्भ हो गयी थीं—"फकीर बनके हमारे देश में मत आओ! हम तुमको जिन्दा जला देंगे! बाबा, वापस जाओ!"

घोषणाएँ बढ़ती जा रही थीं।

सभा में लगभग डेढ़ हजार मनुष्य थे। वे सभी उठकर खड़े हो गये थे। बहुत देर तक विनोबा स्तब्ध खड़े रहे। कुछ लोग उनके ऊपर कंकड़-पत्थर फेंक रहे थे। कार्यकर्ताओं ने बलपूर्वक विनोबा को वहाँ से हटाया। परन्तु विनोबा मंच से हटने को तैयार नहीं थे। इतने में ही हाई कमिश्नर की गाड़ी आ गयी। उसमें से एक व्यक्ति उतरा। घटना का अनुमान लगाकर उसने माइक अपने हाथ में ले लिया। सब शान्त हो गये। वह कहने लगा :

"भाइयो और बहिनो! राष्ट्रपति और कमिश्नर की ओर से मैं हार लेकर आया हूँ। मैं वक्ता, समाजचिन्तक या कोई बड़ा ऑफिसर नहीं हूँ परन्तु कुरान की यह कहानी आपने सुनी होगी कि अगर अपने घर दुश्मन भी आता है तो उसका स्वागत करना चाहिए। एक बार रात में भयंकर तूफान में एक मुसाफिर आता है। वह भूखा है। घर का मालिक अपने प्रिय घोड़े को मारकर उसको खाना खिलाता है और उसको पहचानकर कहता है—'तू मेरा दुश्मन है। सुबह होने से पहले ही यहाँ से चला जाना नहीं तो तुझको मार डालने की मेरी इच्छा होगी।' तो दुश्मन की भी खातिरदारी करने का रिवाज हमारे यहाँ है। विनोबाजी हमारे दुश्मन नहीं हैं। उनका सम्मान कीजिए। मानव के रूप में जीना सीखिए।"

वह व्यक्ति विनोबा को हार पहनाकर मंच से उतर गया। विनोबा भी कट्टर इस्लामी देश में मानवता की भाषा सुनकर चकित हो गये। फिर विनोबा कहने लगे, "मेरे भाइयो और बहिनो! मैं यहाँ यह कहने नहीं आया हूँ कि भूदान दो! यहाँ आने का मेरा कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं है अथवा मेरा कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है। मैं आपसे कुछ भी माँगने नहीं आया हूँ। मैं पहले के अपने ही देश में आया हूँ। यहाँ सब मेरे बन्धु ही हैं, मैं उनसे मिलने आया हूँ। परन्तु अगर आप कहते हैं तो मैं वापस चला जाता हूँ।"

सभा के लोग पुनः खड़े हो गये। 'विनोबा जिन्दाबाद', 'विनोबा हमारे मेहमान हैं', 'विनोबा हमारे दोस्त हैं'—आदि आदि उद्घोष होने लगे।

अब विनोबा को समाधान हो गया था।

सभा से लौटकर विनोबा सायंकालीन प्रार्थना में सम्मिलित हुए। उस समय अनेक मुसलमान प्रार्थना में उपस्थित थे। प्रार्थना के बाद एक मुस्लिम युवक खड़ा होकर बोला, "बाबा! मैं अपने धन्धे के सिलसिले में कलकत्ता जाता-आता रहता हूँ। आपका नाम मैंने सुना है। यहाँ और भी लोग हैं जिन्होंने आपका नाम और काम सुना है। आप हमारे यहाँ मेहमान बनकर आये हैं और फिर आप ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण दान

लेने का अधिकारी होता है तथा दान के बगैर पूजा अधूरी रह जाती है। इसलिए मैं अपनी चार एकड़ जमीन में से एक एकड़ जमीन आपको देता हूँ। मेरा नाम अब्दुल खालिक मुंशी है।''

विनोबा ने उसके कन्धे पर हाथ रखा।

उसकी आँखों से अश्रुधाराएँ बहने लगीं और फिर वह विलाप करता हुआ कहने लगा, ''बाबा! यह कैसा बँटवारा है जो आदमी को अपने आदमियों से अलग करता है? मेरा जन्म यहाँ हुआ था, लेकिन यह था तो हिन्दुस्तान में। मैं हिन्दुस्तानी मुसलमान था, यह बात मैं गर्व के साथ कह सकता हूँ। बाबा! अब यहाँ से अल्पसंख्यक हिन्दू भगाये जा रहे हैं तथा उन पर अत्याचार किये जा रहे हैं। वे अपना घर-बार तथा खेती-बाड़ी छोड़कर कैसे जाएँगे? उनका भी जन्म यहीं हुआ है। यहाँ हिन्दुओं की समस्या बहुत बड़ी है बाबा!''

विनोबा इन बातों को जानते थे। पाकिस्तान बनने के बाद असंख्य हिन्दू वहाँ से भारत में आ रहे थे। अब्दुल खालिक व्याकुल होकर कह रहा था। विनोबा कुछ न कह सके। उसने दानपत्र का कागज विनोबा के हाथ में दिया।

विनोबा ने कहा, ''मैं यहाँ खाली हाथ आया हूँ और खाली हाथ ही जाना भी है। पाकिस्तान में भी अमीर जमींदार और रोटी के लिए मोहताज लोग हैं। सारे मजहब यही कहते हैं कि बाँटकर प्रेम से खाओ। इस्लाम भी यही कहता है। आपने जो जमीन दी है वह उसको दी जाएगी जिसके पास जमीन नहीं है।''

विनोबा की आँखें सजल हो उठी थीं। विनोबा ने आँखों को पोंछा और अब्दुल का हाथ अपने हाथ में लेकर क़सकर दबाया।

अब्दुल बोला, ''आप तो साक्षात् खुदा हैं।''

विनोबा मुस्कराये।

रात में विनोबा को सुखद नींद नहीं आयी। सन् 1951 में पहली बार शिवरामपल्ली में भूदान मिला था। तब से विगत ग्यारह वर्षों तक वे निरन्तर घूम रहे थे। अब उनके मन में वर्धा को लौटने की तीव्र भावना उत्पन्न हो रही थी। इस पर उनको स्वयं ही आश्चर्य हो रहा था। मन के अनेक अदृश्य स्तर होते हैं। एक मन कहता है, पूरा संसार सुखमय करूँगा, आनन्द से तीनों लोक भरूँगा। मैं 'जय जगत्' का नारा देता हूँ, सारी सीमारेखाएँ मिटा देने के लिए, अपना-पराया-भेद मिटाने के लिए। अपना दूसरा मन कहता है, बारह वर्ष का वनवास हो गया। अब वर्धा को चल, परमधाम को चल। भटकना बहुत हो गया!

पूर्वी पाकिस्तान में फिरते समय पश्चिमी पाकिस्तान का निमन्त्रण मिल गया था। परन्तु अब बारह वर्ष हो गये। अब लौटना चाहिए...। रात बहुत बीत गयी थी। दीनारगंज में कल तक मुकाम है। बस समाप्त! सोलह दिनों तक वे पाकिस्तान में घूम लिये थे।

बिना माँगे एक सौ पिचहत्तर एकड़ भूमि मिल गयी थी। विनोबा के मन में आया— शान्तियात्रा का नाम इस प्रदेश में सद्भावना यात्रा रखा जाना चाहिए।

विनोबा बाहर आये। आकाशगंगा की लम्बी पट्टी उनको दिखाई दी। मंगल और ध्रुव दो तेजस्वी तारे दिखाई दिये। और उनको सहसा इन्दिरा का स्मरण हो आया। दो दिन पहले ही उसका पत्र आया था। उसका उत्तर भी विनोबा ने मन में लिख रखा था। अब वे पत्र लिखने के लिए अन्दर गये और लालटेन की बत्ती ऊँची कर पत्र लिखने बैठ गये।

'प्रिय इन्दिरा!

तुम्हारा पत्र मिला। इससे पूर्व तुमको पत्रों में मैं 'आशीर्वाद' लिखता रहा हूँ। उसका कारण है। अपने पत्रों में तुम स्वयं ही अपने सम्बन्ध में लिखती रहती थीं कि 'शिक्षा पूरी हो गयी है, विवाह कर लिया है तथा पिताजी के साथ राजनीति में ध्यान दे रही हूँ।' उस समय मेरे मन में आशीर्वाद के लिए हाथ ऊँचा करने के अतिरिक्त और कोई विचार नहीं आता था। आज के पत्र में तुमने भूदान के सम्बन्ध में, लोगों के दान के सम्बन्ध में, उनके सुख-दुःख के सम्बन्ध में तथा आन्ध्र में तूफान में मरे हुए लोगों के सम्बन्ध में लिखा है। यह पढ़कर ऐसा लगा कि पण्डित जवाहरलालजी की इन्दिरा उनकी उत्तराधिकारिणी है। वे ही विचार और वही तात्पर्य अधिक प्रगल्भता से प्रस्तुत करनेवाली इन्दिरा की अपेक्षा मेरा मन भी कर रहा था। तुमने यह लिखा ही है कि तुमको अपने दोनों लड़कों की तथा श्री फीरोज गाँधी की कोई चिन्ता नहीं है। जिस स्त्री की राजनीति में रुचि होती है उसका परिवार निराधार हो जाता है। वहाँ कौटुम्बिक स्त्री की अपेक्षाएँ पूरी नहीं हो पाती हैं। ऐसी स्त्रियों को वास्तव में एक ही मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए। परन्तु ऐसा होता नहीं है। अस्तु!

राजनीति में चरित्र बहुत बड़ी बात है। स्त्रियाँ छोटी-छोटी बातों पर तो खूब ध्यान देती हैं परन्तु चरित्र की घोर उपेक्षा कर देती हैं। हो सकता है कि लोग मेरी बात से सहमत न हों। परन्तु मेरा यह स्पष्ट मत है। लोग मुझको इस सम्बन्ध में पुराने विचारोंवाला कह सकते हैं। स्त्रियाँ राजनीति में जरूर आएँ, अपनी प्रतिमा भी तैयार करें परन्तु स्त्री-धर्म में जोड़-तोड़ न करें।

हाँ, राजनीति में धर्म की स्थापना स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। कारण यह है कि धर्मपूर्वक आचरण करने की मौन शपथ का पालन वे ही करती हैं। परन्तु किसी को भी धर्म की राजनीति नहीं करनी चाहिए। तुमको तो राजनीति घुट्टी में ही मिली है। तुम्हारा उत्साह, तुम्हारा चलना-फिरना, तुम्हारा व्यवहार—सब कुछ पण्डितजी की शैली का है। तुम स्वयं कर्तृत्व-सम्पन्न हो। ऐसे समय में मैं आशीर्वाद के अतिरिक्त और क्या दूँ?

भूदान मनुष्य की आवश्यकता की अन्तःप्रेरित कहानी है। राजनीति में प्रवेश करने से पहले एक बार इन लोगों की स्थिति देखने को आ जाओ! चमचमाते सिंहासन पर बैठने से पहले जिन लोगों ने इसको धारण कर रखा है उनकी दशा तो देख लो! ऊपर दिखनेवाले हीरे-मोतियों में मत खो जाओ! मेरे मन में तुमसे बहुत सारी अपेक्षाएँ हैं। राजनीति ही तुम्हारे जीवन का रंग है—यह मुझको स्पष्ट दिखाई दे रहा है। स्वार्थी राजनीति को पहचानने के लिए अद्भुत बुद्धि चाहिए। तुम विशुद्ध राजनीति करनेवाली ज्ञान-विज्ञानमयी बनो! प्रजा की माता बनो! विश्वशान्ति के लिए प्रयत्न करनेवाली शान्तिदेवता बनो! और क्या लिखूँ? पण्डितजी मन से थके हैं, शरीर से नहीं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व जीवन में स्वतन्त्रता का एक अर्थ था। तदनन्तर जीवन का अर्थ ही बदल गया। जीवन की व्याख्या केवल स्वार्थ और सुखोपभोग तक ही सीमित रह गयी है। किसी समय जिनके कपड़े पेरिस से सिलकर आते थे वे लक्ष्मीपुत्र पण्डित जवाहरलाल स्वतन्त्रता के लिए सम्पूर्ण सम्पत्ति का त्याग कर स्वतन्त्रता-संग्राम में कूद पड़े और कारागार में कच्चा-पक्का अन्न खाने लगे। शीशम के पलंग पर सोनेवाले पण्डितजी कारागार में टाट पर सोने लगे। उन्हीं पण्डितजी को अब आस-पास स्वार्थ से लिप्त मनुष्य दिखाई देने लगे। राजनीति के रंग स्वार्थी हो गये। जनहित छूट गया और कुर्सी महत्त्वपूर्ण हो गयी। अब देश जय-पराजय की छाया में घूमने लगा है। चीनी आक्रमण को लेकर भी अब लोगों के मन में एक नया विचार आने लगा है। जीवनभर किये गये कार्य का मूल्यमापन अब एक क्षण में एक झटके में होने लगा है। कार्यशील व्यक्तित्व पर आरोप कैसे लगाये जा सकते हैं—लोग अब इसी अवसर को ढूँढ़ते रहते हैं। इसीलिए पण्डितजी मन में व्यथित हैं!

प्रत्येक राजनीतिक भी एक मनुष्य होता है। उसका सहयोग करना, उसको सावधान करना तथा उसको सहारा देकर समझाना भी महत्त्वपूर्ण कार्य है। परन्तु उसको खींचकर बाहर करने का जो प्रयत्न किया जाता है वह नितान्त स्वार्थी प्रवृत्ति का परिचय है। आज देश की राजनीति अत्यन्त दूषित हो गयी है। पण्डितजी चीन से मित्रता करके धोखा खा गये। यह मित्रता नहीं थी, बल्कि पण्डितजी की पीठ में मारा गया खंजर था। चीनी आक्रमण को रोका नहीं जा सका। और उसको रोका जाय, ऐसा जनता को लगा भी नहीं। एक भूभाग देकर पाकिस्तान बना। कश्मीर विवादास्पद प्रदेश कहा गया। और चीन तिब्बत की ओर प्रदेश कब्जे में करने लगा। परन्तु अपनी 'शान्तिदूत' की छवि को दाग न लगे, इसलिए पण्डितजी चीन से सम्बन्ध सुधारने की आशा करते रहे—यहीं गलती हो गयी।

पण्डितजी की अनेक प्रकार से आलोचना की गयी है। परन्तु इन्दिरा! आलोचना से डरकर पलायन करना भी उचित नहीं है। तुम अब अनुभवी हो रही हो। प्रशंसा से मत्त नहीं होना चाहिए और निन्दा से दु:खी नहीं होना चाहिए। जनहितार्थ कार्य करते समय विचार करते रहना चाहिए।

इन्दिरा! जीवन पर श्रद्धा रखना, इसका एक अर्थ लोगों के मन में श्रद्धा को जगाना भी है। तुमने पूछा है, 'आप आध्यात्मिक सन्त हैं तो जीवन-सौन्दर्य पूजक हैं क्या?' इसका उत्तर तो बहुत बड़ा है परन्तु कुछ शब्दों में लिखता हूँ। मैं सन्त नहीं हूँ। मैं दयालु, स्नेहमय तथा सन्तुलित वृत्ति का भी नहीं हूँ। जब मैं अपना निरीक्षण करता हूँ तो लगता है कि मैं स्वार्थी, हठी, मन में सन्तप्त होनेवाला तथा उद्धत हूँ। मैं मधुर स्वर में गाता हूँ परन्तु मधुर बोलता नहीं हूँ। मैं जबर्दस्ती करता हूँ। छोड़ो इन बातों को। अपने दुर्गुण कभी दिखाई नहीं देते हैं।

संजय, राजीव और तुम सब सानन्द हो यह पढ़कर आनन्द हुआ। कल्याणमस्तु।

तुम्हारा
बाबा'

विनोबा ने पेन नीचे रख दिया। बहुत दिनों के बाद आन्तरिक प्रसन्नता से मन लबालब भर गया। दरी पर लेटते ही उनको नींद आ गयी।

दूसरे दिन रंगपुर और दीनाजपुर के मध्य से जाकर विनोबा पूर्वी पाकिस्तान की सीमारेखा पर पहुँचे। उनको विदा करने के लिए डिप्टी कमिश्नर, दीनाजपुर के पुलिस अधीक्षक तथा भारत के हाई कमिश्नर आये थे।

बहुत बड़ी संख्या में वहाँ उपस्थित हिन्दू-मुसलमानों के सामने विनोबा बोले, "सोलह दिन मैं यहाँ रहा हूँ और कल सुबह मैं आपका देश छोड़कर चला जाऊँगा। आपके देश में पैर रखते ही एक ही विचार मन में आया था कि आप मुझको प्रेम दें, मुझको अपना मानें। और ऐसा ही हुआ। परदेस से भाई के आने पर जैसे सब प्रेम से उसका स्वागत करते हैं वैसे ही आपने मेरा स्वागत किया। मैं सचमुच आपका आभारी हूँ। मेरा हृदय गद्गद हो रहा है। संसार में अनेक जातिधर्म हैं। फिर भी प्रत्येक मनुष्य का मन एक है। सभी धर्मों का सार एक है। इसलिए वास्तव में संसार विश्वकुटुम्ब होना चाहिए। आखिर क्षणिक मतभेदों के बाद भाई-बहिन एकत्र रहते ही हैं! यहाँ भगिनी कुछ जाग्रत हो गयी हैं। बुरखा-पद्धति बन्द करके स्त्रियों को निर्भय जीना चाहिए। और यह निर्भयता पुरुषों को देनी चाहिए। आज यहाँ तिरंगा झण्डा और हरा झण्डा दोनों एकत्र लगे हुए हैं। 'जय जगत्' के तथा मेरे स्वागत के पोस्टर्स लगे हुए हैं। यह सब देखकर मन प्रसन्न हो गया।"

विनोबा ने जब कहना बन्द किया तब सूर्यदेव अस्तंगत हो रहे थे। वातावरण

गम्भीर हो गया था। विनोबा मंच से उतर गये फिर भी कोई अपने स्थान से नहीं हिला। जब विनोबा चलने लगे तब लोग उठे एक स्वर में बोले, 'बाबा की जय हो!'

विनोबा के साथ अनेक पत्रकार और फोटोग्राफर थे। अनेक सामाजिक कार्यकर्ता थे। सबके प्रश्नों के उत्तर देकर विनोबा सोने चले गये। कल से प्रसन्न हुआ मन अधिकाधिक प्रसन्न हो गया।

जैसे श्रीकृष्ण ने अपना विश्वरूप दिखाया था वैसे ही असंख्य लोगों के मन से प्रकट हुआ यह अनन्त दर्शन सचमुच चकित करनेवाला था। श्रीकृष्ण! आप सर्वत्र हैं। अव्यक्त रूप में आप अजन्मा हैं परन्तु प्रत्येक जन्म लेनेवाले मनुष्य में आप सत्त्वरूप में हैं! बारह वर्ष की पदयात्रा में मैंने आपके असंख्य रूप देखे हैं। भगवन्! आपके अस्तित्व के पद्चिह्न मुझको स्थान-स्थान पर मिले हैं। मैं जब थककर बैठ जाता था तब आप ही मुझको उठाकर चलाते थे। ईश्वर! मैं भावाभिभूत हूँ...

विनोबा की आँखों के सामने श्रीकृष्ण की प्रतिमा थी और उनकी आँखों से जलधाराएँ बह रही थीं।

24

लगभग तेरह वर्ष पूर्ण हो गये थे।

तेरह वर्ष पूर्व विनोबा जिस मार्ग से गये थे उसी मार्ग से अब वे वर्धा को लौटनेवाले थे। दीनाजपुर से ही पत्रकार सतत उनके साथ थे। प्रत्येक गाँव के लोग विनोबा से पुन: मिल रहे थे और पुन: हृदय से उनका स्वागत कर रहे थे।

असम में प्रवेश करते ही विनोबा ने हाथ जोड़कर पत्रकारों से कहा, "अब आप लोग लौट जाएँ!"

एक पत्रकार ने कहा, "बाबा! कोई सन्देश दीजिए!"

विनोबा बोले, "सन्देश मैं क्या दूँ? मनुष्य में ईश्वर के दर्शन करके मैं गद्गद हो गया हूँ। लोगों की दानवृत्ति देखकर मैं अभिभूत हूँ। मेरा मन और अधिक संवेदनशील हो गया है। मेरे सिर में भूदान के अतिरिक्त दूसरा विचार ही नहीं है।"

दूसरे पत्रकार मे कहा, "स्वतन्त्रता से पहले का समय आपने देखा है और अब स्वतन्त्रता के बाद का समय देख रहे हैं। अब तीसरी पंचवर्षीय योजना चल रही है। इस सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?"

विनोबा बोले, "पहली पंचवर्षीय योजना का मैंने विरोध किया था। फिर मैंने विरोध करना छोड़ दिया। अब मैं आत्मकेन्द्रित हो गया हूँ।"

उसने पुनः पूछा, "परन्तु विरोध का कारण क्या था? पण्डितजी तो आपको बहुत मानते हैं फिर भी..."

विनोबा ने कहा, "विरोध का कारण आर्थिक-शैक्षणिक नीतियाँ थीं। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे जीवन के लिए पर्याप्त अर्थ उपलब्ध हो सके। अनेक उद्योग तथा यन्त्रों की अधिकता से मनुष्य का काम कम होता जा रहा है। दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य निष्क्रिय और आर्थिक संकटों में फँस रहा है।"

उसने पूछा, "तो क्या भूदान से इन प्रश्नों का समाधान हो जाएगा?"

विनोबा बोले, "प्रत्येक का पेट भरना चाहिए। इसके लिए भी यदि प्रत्येक गाँव स्वयंपूर्ण हो जाएगा तो राष्ट्र का विकास होगा।"

एक ने कहा, "आज अन्य देश कितने आगे निकल गये हैं! ऐसे में हम लोग पुराने को ही सोना कहते हुए उसी घेरे में बने रहें?"

विनोबा ने दृढ़ता से कहा, "नहीं! राष्ट्र विकास के लिए उद्योग-धन्धे तो आवश्यक हैं ही परन्तु पहले भूख का प्रश्न, पानी का प्रश्न तथा रहने का प्रश्न हल करना आवश्यक है। लोकशक्ति ही राष्ट्रशक्ति है। इसलिए पहले लोगों में चेतना जाग्रत होनी चाहिए। वह होगी पेट की भूख समाप्त होने पर। लोग घुटन महसूस न करें, इस उद्देश्य से ग्राम विकास पहले अपेक्षित था!"

उसने पुनः कहा, "परन्तु राजनीति में आपकी रुचि नहीं है न?"

विनोबा बोले, "हाँ! जिस राजनीति में शिवाजी का धर्म और त्याग नहीं है उस राजनीति में मेरी कभी रुचि नहीं थी।"

वह बोला, "राजनीति की जानकारी रखते हुए उसका निषेध क्यों करते हैं? जिन लोगों को दो समय का भोजन नहीं मिलता है उनसे आप कहते हैं कि संसार नाशवान् है और उन्हीं लोगों पर दबाव डालते हैं कि वे अपने कौर में से कौर दे दें! यह कहाँ तक उचित है? अब लोग आपको 'भौमर्षि' के नाम से पुकारते हैं। आपने हृदय-संवेदना जाग्रत कर लाखों एकड़ भूमि प्राप्त की, उसका फिर क्या हुआ, इसकी पूछताछ आपने कभी की?"

विनोबा चुप रहे तो वह पत्रकार चिढ़कर बोला, "आप बोलिए, उत्तर दीजिए!"

विनोबा फिर भी चुप रहे तो वह और अधिक चिढ़कर बोला, "बाबा! एक तो आप जब कभी सत्य उत्तर देने का समय आता है तो चुप हो जाते हैं। यह आपकी अत्यन्त स्वार्थपरता है। बार-बार आपकी बातें सब सुनते रहें। वे कुछ पूछें तो आप उद्दण्डता से उनको उत्तर न दें बल्कि मौन धारण कर लें। मुझको इतना सन्ताप हो रहा है कि मैं एक झटके में आपको उठाकर फेंक सकता हूँ। परन्तु आप राष्ट्र की प्रतिष्ठा

हैं। मैं आपको स्पर्श नहीं कर सकता। परन्तु बाबा! याद रखिए कि केवल गुणों से जो जितना पूजा जाता है उससे कई गुना अधिक वह अपने दुर्गुणों से पतित होता है। अब बोलिए न! क्यों नहीं बोलते हैं अब?''

किसी ने उससे पूछा, ''आपकी कोई प्रॉब्लम है क्या?''

वह कहने लगा, ''हाँ है! जिनकी प्रॉब्लम हैं, मैं उनका प्रतिनिधि हूँ। मैं पत्रकार नहीं हूँ। आपने पूछा है इसलिए बता रहा हूँ। सुनिए। असम में चलते समय आप रामपुर में रुके थे। आपने सम्पत्तिदान की प्रार्थना की तथा स्थानीय लोगों ने और आपके कार्यकर्ताओं ने हमको धमकी देकर अपना दो एकड़ खेत आपको देने को मजबूर कर दिया। आपके कार्यकर्ता जबर्दस्ती वसूली करते हैं। मेरी बहिन की ससुराल में जमीन नहीं थी। जमींदार ने जमीन दी—बंजर! वहाँ केवल कंकड़ हैं। जमींदार ऐसी भी जमीन देते हैं जहाँ खून बहाने पर भी फसल नहीं उग सकती। बाबा! जो माल मिलता है उसकी परीक्षा आप नहीं करते हैं। जमींदारों ने आपको बंजर भूमि दी है। आपके जाने के बाद बहुत से लोगों ने आपस में जमीन बाँट ली। अगर कोई कुछ कहने आपके पास आया तो उसकी बात न सुनकर उसको आप डाँटते हैं! इतनी ही अरुचि थी तो पदयात्रा करके आये ही क्यों थे? जमीन को लेना और देना—इस पद्धति से गाँव में शत्रुता उत्पन्न हो गयी है। इससे जो कुछ अच्छा निष्पन्न हुआ है वह बहुत ही थोड़ा है। हाँ एक बात बहुत अच्छी हुई है। आपको भरपूर यश मिल गया है।''

वह धड़ाधड़ बोलता जा रहा था।

अब विनोबा को बोलना ही पड़ा। अपना कैसा भी समर्थन न करते हुए वे बोले, ''युवक मित्र! तुम्हारी सब बातें सत्य हैं। मैं स्वयं पर भी सन्तप्त होता हूँ। वास्तव में जब मैं कहता हूँ कि मेरा कोई भी व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है तब यह अपेक्षा मैं करता ही हूँ कि मेरे नाम पर अच्छा कुछ-न-कुछ लिखा जाय! मैं ऋषि नहीं हूँ। सन्त नहीं हूँ। मनुष्य के रूप में भी अधूरा ही हूँ। राजनीति मैं नहीं समझता। पदयात्रा के बहाने लोगों में घुला-मिला जाय और यथाशक्ति उनके दु:ख दूर करने का प्रयत्न किया जाय, यही एकमेव मेरा उद्देश्य था। गाँधीजी की मृत्यु के बाद उनके विचारों का वाहक बनकर मैंने जीने का प्रयत्न किया। गाँधीजी भी लोगों को कहाँ अच्छे लगे थे। उनकी बात भी पण्डितजी ने कहाँ मानी थी? परिणामस्वरूप देश का विभाजन हुआ और कश्मीर की समस्या उत्पन्न हुई। राष्ट्र के हित में जो कुछ किया जाय वही महत्त्वपूर्ण है। तुम्हारा सम्पूर्ण कथन सत्य है मित्र! मैं उद्धत, हठी और दुराग्रही मनुष्य हूँ। मैं सचमुच मनुष्य के प्रति उदासीन और चिड़चिड़ा व्यक्ति हूँ। मैं प्रकृति के सान्निध्य में रहना चाहता था। परन्तु मैं भी बहता चला गया। एक बात और कहता हूँ, जिस क्षण राष्ट्रभक्ति का लोप होगा, उसी क्षण राष्ट्र का पतन प्रारम्भ हो जाएगा।''

वह युवक तथा अन्य पत्रकार अब शान्त बैठे थे।

विनोबा ने युवक से कहा, "तुमको जमीन चाहिए न?"

वह युवक बोला, "नहीं बाबा! जो दे दिया वह दे दिया!"

विनोबा ने पुनः कहा, "परन्तु तुम्हारे परिवार के लिए कुछ भी नहीं रहा इसलिए..."

युवक ने कहा, "रहने दीजिए। अपना सन्ताप मैंने प्रकट कर दिया है।"

विनोबा ने कुछ न कहा परन्तु जाते-जाते उन्होंने उस युवक के सिर पर हाथ रखकर कहा, "मैं तुच्छ मनुष्य हूँ...परन्तु मेरे मन में क्रोध नहीं है। न तुम्हारे प्रति न किसी और के प्रति। तुमको आशीर्वाद देता हूँ—पुरुषार्थ दिखाओ—परिश्रम करो!"

विनोबा चल दिये परन्तु उनका मन उस युवक के आस-पास ही भटकता रहा। तेरह वर्ष पहले इसी रास्ते से प्रतिदिन पन्द्रह-सोलह मील चल लेते थे परन्तु अब आठ मील भी नहीं चल पाते थे। उस पर मानसिक वेदनाएँ भी कम नहीं थीं।

विनोबा विचार में मग्न चले जा रहे थे। आजकल कुछ ऐसा हो गया था कि विनोबा को अपने सामने मृत्यु का द्वार दिखाई देता था। यद्यपि वह बन्द था, फिर भी वह कब खुल जाएगा यह निश्चित नहीं था। उस द्वार की ओर कोई ध्यान न देकर विनोबा आगे जा रहे थे। उनके साथ चलनेवाले लोग विनोबा के प्रसन्न मुख की ओर तथा उनके चलने के उत्साह को देखकर पूछ रहे थे, "बाबा! आपको घर लौटते हुए आनन्द हो रहा है न? घर लौटते हुए कैसा लग रहा है?"

विनोबा बोले, "सम्पूर्ण विश्व मेरा घर भले ही न हो। परन्तु सारा हिन्दुस्तान मेरा है। मैं यहाँ कहीं भी रुदन करता हूँ, चिढ़ता हूँ, आग्रह करता हूँ। यह सब मैं अपने ही हिन्दुस्तान में करता हूँ। सारे संसार को एक घर मानें तो भारतभूमि हमारा विशेष घर है। विशेष घर अर्थात् संसार का मध्यगृह और महाराष्ट्र अर्थात् मध्यगृह का एक कमरा और वर्धा अर्थात् गर्भगृह...अन्दर का मन्दिर!"

यह कहते हुए विनोबा मन में विचार करते जा रहे थे, मुझको जो वास्तविक प्रसन्नता हो रही है वह है बापू की कुटी के दर्शन कर परमधाम आश्रम में लौटने की। चौदह वर्षों के बाद श्रीराम ऐसे ही उत्साह से लौटे होंगे इसमें सन्देह नहीं।

मुर्शिदाबाद जिले के नवग्राम गाँव में विनोबा ठहरे हुए थे। दिन था पच्चीस दिसम्बर 1962—क्रिसमस डे। पण्डित जवाहरलाल जी का पत्र अभी हाल में ही उनको मिला था। उसमें लिखा था—'शान्तिनिकेतन का उपाधि वितरण समारोह समाप्त कर मैं नवग्राम में आ रहा हूँ।'

विनोबा उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

20 अक्टूबर सन् 1962 के दिन चीन ने भारत पर आक्रमण किया था। वह भारतवासियों को गहरा धक्का था। सम्पूर्ण भारत उससे चिन्तित था। पण्डितजी आने पर उस सम्बन्ध में बातें करेंगे ही, यह विनोबा को विश्वास था। असावधान भारत पर आक्रमण हुआ। इससे पूरा देश काँप उठा। सुरक्षा-व्यवस्था की ओर दुर्लक्ष्य करने के

कारण अपरिमित हानि उठानी पड़ी। पण्डित जवाहरलाल सम्भ्रमित हो गये। विनोबा ने उनके पत्रों के उत्तर दिये। परन्तु फिर भी मिले बिना उनका समाधान नहीं होना था।

विनोबा अतीत-स्मृतियों में खो गये थे—

18 अप्रैल सन् 1954 को बोध गया सम्मेलन में सर्वप्रथम पण्डित जवाहरलाल विनोबा से मिलने आये थे। तब विनोबा ने उनका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा था, "पण्डितजी! आपका गुलाबी रंग प्रधानमन्त्री बनने के बाद और अधिक निखर गया है!"

पण्डितजी ने कहा था, "आपने मुझको क्षमा कर दिया न?"

विनोबा ने पूछा था, "किसलिए?"

पण्डितजी ने कहा, "लोगों ने धारणा बना ली है कि मेरे कारण बापू की हत्या हुई है!"

विनोबा बोले, "पण्डितजी! एक गीत है—'तोरा मन दरपन कहलाए, भले बुरे सारे कर्मों को देखे और दिखाए।' ठीक वही बात है। मेरे क्षमा करने का प्रश्न ही नहीं है। आपका त्याग, आपका परिश्रम लोग देख रहे हैं। आपके प्रति उनके मन में आदर है। अब यदि कोई कहता है कि आप प्रधानमन्त्री बनना चाहते थे, अपनी कल्पना साकार करना चाहते थे तो यही स्थिति बैरिस्टर जिन्ना के सामने भी थी। अन्त में देश का विभाजन हो गया। हो गया न?"

पण्डितजी ने कहा, "बैरिस्टर जिन्ना का तथा ब्रिटिश शासन का यही आग्रह था। नहीं तो देश स्वतन्त्र नहीं होता।"

विनोबा बोले, "अब जो हो गया सो हो गया। परन्तु पण्डितजी! इतना होना चाहिए कि सत्तासीन मनुष्य पूर्ण निःस्वार्थी होना चाहिए। परन्तु ऐसा होता नहीं है।"

पण्डितजी ने उनसे खूब बातें की थीं। देश की विविध समस्याओं पर पण्डितजी बोलते और विनोबा सुनते। कभी-कभी विनोबा सलाह देते।

पण्डितजी से दूसरी भेंट सन् 1955 में बहरमपुर में महासमिति की बैठक में हुई थी। उसमें भूदान के सम्बन्ध में चर्चा हुई थी। वहाँ से चलते समय उन्होंने कहा था, "विनोबाजी, आपकी आवाज सुन्दर है। आप भजन बहुत सुन्दर गाते हैं। एक बार आऊँगा मैं...किसी विषय पर चर्चा करने के लिए नहीं तो केवल आपके साथ रहने के लिए। बड़ी इच्छा होती है परन्तु..."

"समय नहीं मिल पाता, यही न?"

"कई बार मन ही अशान्त होता है!"

विनोबा बोले, "श्रीराम को तथा श्रीकृष्ण को भी लोकापवाद का सामना करना पड़ा था पण्डितजी! जो हो गया, उसकी चिन्ता मत कीजिए!"

"ठीक है। जल्दी ही आपसे मिलूँगा। केवल भजन सुनने आऊँगा।"

उसके बाद सन् 1956 में पण्डितजी माधोरावपल्ली गाँव में विनोबा से मिलने पहुँचे। पण्डितजी भारत सेवक समाज के अधिवेशन में निजामाबाद आये थे। वहाँ रेल तथा फिर मोटर से वे विनोबा के पास पहुँचे थे। विनोबा एक झोंपड़ी के सामने खाट पर बैठे थे। पण्डितजी को अचानक देखकर उन्होंने कहा, ''आइए श्रीकृष्ण महाराज! सुदामा की झोंपड़ी में आइए।''

यात्रा से पण्डितजी का सुन्दर मुखमण्डल लाल हो रहा था। भारत के प्रधानमन्त्री के अचानक आ जाने से उनकी कोई व्यवस्था गाँव में नहीं की जा सकती थी। गाँव छोटा-सा ही था। उनके बैठने के लिए कुर्सी भी नहीं मिली। तब विनोबा ने कहा, ''सचमुच आज आप गरीब के द्वार पर आये हैं। अब दो-चार दिन रहिए।''

पण्डितजी नारियल की रस्सी की बुनी खाट पर बैठे थे। सूर्य अस्तंगत हो रहा था। उसकी केसरिया आभा पण्डितजी के मुख पर पड़ रही थी। सारा गाँव आधी देह पर कपड़े पहने था, बच्चे नंग-धड़ंग उनके सामने घूम रहे थे।

विनोबा ने कहा, ''पण्डितजी! पाश्चात्य देशों में विमान से और रोल्स-राइस कार से घूमते समय भारत का यह सत्य दर्शन कभी आपको स्मरण होता है?''

पण्डितजी बोले, ''विनोबाजी आप भूल रहे हैं! बापू के साथ पदयात्रा में हम लोग घूमे हैं!''

विनोबा बोले, ''तब देश स्वतन्त्र नहीं था। आज भी स्थिति बदली नहीं है। गाँव में पानी नहीं है, बिजली नहीं है, शिक्षा की हवा भी नहीं है। चारों ओर अँधेरा है। मैं जानता हूँ कि इतना बड़ा देश एकदम नहीं सुधारा जा सकता। परन्तु योजना में यदि निर्देश हो तो उस ओर कदम बढ़ सकते हैं।''

पण्डितजी सुन रहे थे।

रात में लौटना सम्भव नहीं था इसलिए उस रात को पण्डितजी ने वहीं बिताने का निश्चय किया। तब विनोबा ने कहा, ''हैदराबाद यहाँ से 100 मील दूर है। आप कार से पहुँच जाएँगे। यहाँ मच्छर बहुत हैं—लाइट भी नहीं है। खाने को भात मिलेगा और न जाने काहे की सब्जी होगी।''

पण्डितजी बोले, ''जेल से तो अच्छा मिलेगा न?''

दोनों हँस पड़े।

विनोबा ने कहा, ''परन्तु उसकी आदत नहीं रही है!''

पण्डितजी बोले, ''मैं आज प्रयत्न करूँगा। आज मैं आपके भजनों का आनन्द लूँगा।''

पण्डितजी आनन्दित थे। परन्तु उनका आनन्द अधिक समय तक न टिक सका। हैदराबाद से कमिश्नर उनको लेने आ गये।

पण्डितजी बोले, ''विनोबाजी! आज मैं सचमुच आपके पास रहना चाहता था!''

विनोबा ने उनकी पीठ पर हाथ रखकर कहा, "फिर कभी देखा जाएगा।"

सन् 1957 में येलवाल परिषद् में भाग लेने पण्डितजी आये थे। सभी राजनीतिक दलों ने भूदान का समर्थन कर ग्रामदान की प्रशंसा की थी। दूसरे आम चुनावों की भी चर्चा हुई थी।

श्रीमन्नारायण ने कहा, "इस बार भी राज्यों में और केन्द्र में काँग्रेस आयी है।"

विनोबा बोले, "काँग्रेस यदि उत्तम और निःस्वार्थ भाव से कार्य करेगी तो आगे भी जीतेगी परन्तु यह चित्र धीरे-धीरे धूसरित हो जाएगा।"

पण्डितजी ने पूछा, "ऐसा क्यों होगा?"

विनोबा कहने लगे, "इसका कारण है। पण्डितजी! जब धनसत्ता और राजसत्ता की लालसा उत्पन्न हो जाती है तब कुछ भी असम्भव नहीं रहता। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रलोभनों में वृद्धि होती जा रही है। इन प्रलोभनों को नहीं छोड़ा तो काँग्रेस समाप्त!"

पण्डितजी बोले, "यह तो सत्य है। मैं अपने ढंग से प्रयत्न करूँगा। इस बात को मैं भी समझ रहा हूँ, परन्तु कुछ कर नहीं पा रहा हूँ। मैं ग्रामदान, ग्राम-सहयोग और सर्वोदय कार्यकर्ता—इस पर भी विचार करूँगा।"

विनोबा के दोनों हाथ पकड़कर पण्डितजी उनपर झुककर बोले, "विनोबाजी! फिर कभी समय निकालकर आऊँगा।"

विनोबा मुस्कराये। परन्तु जाते-जाते उन्होंने भाषा-वार प्रान्त-रचना, सीमावाद, कुटीर उद्योग, कृषि के लिए अधिक विकसित प्रयत्न ग्रामोद्योग, नमक के कारखाने—आदि के सम्बन्ध में उनको स्मरण कराया।

तब पण्डित जी ने कहा, "काम की दस-पन्द्रह फाइलें आपने मुझको दे दी हैं। उनको पूर्ण करने के बाद ही मिलूँगा।"

इसके बाद पण्डितजी दो बार और विनोबा से मिले, परन्तु केवल आधा-पौन घण्टे के लिए ही। इन दोनों भेंटों में पण्डितजी पहले जैसे प्रसन्न दिखाई नहीं दिये थे।

और अब वे नवग्राम में मिलनेवाले थे! यह भेंट चीन के भारत पर आक्रमण के पश्चात् हो रही थी। लोगों का कहना था कि 'तटस्थता मूर्खता है। यहाँ शान्ति-अहिंसा का कोई उपयोग नहीं है।' परन्तु पण्डितजी का दृढ़ निश्चय था कि 'दो महायुद्धों में संसार की बहुत हानि हो चुकी है। अब तीसरा महायुद्ध का स्थान भारत न हो।'

विनोबा यह सब जानते थे। पण्डितजी के विचार से वे असहमत नहीं थे परन्तु भारत-भूमि का भाग चीन के अधिकार में नहीं जाने देना चाहिए, यह वे चाहते थे।

दोपहर होने पर पण्डितजी आये। मानसिक दबाव के कारण वे थके-थके लग रहे थे। आते ही उन्होंने विनोबा के हाथ पकड़कर कसकर दबाये।

पण्डितजी बोले, "विनोबाजी! आज मैं शरण में आया हूँ। मैं सम्भ्रमित हूँ। श्रीकृष्ण ने सम्भ्रमित अर्जुन को स्थिर कर युद्धप्रवृत्त किया था। आप मुझको केवल मार्ग बता दीजिए।"

विनोबा बोले, "पण्डितजी! आप शान्त रहिए। सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

पण्डितजी ने कहा, "देश की स्थिति तो आज या कल सुधर ही जाएगी परन्तु मन:स्थिति फिसलती जा रही है। इसका उपाय नहीं सूझ रहा है।"

विनोबा बोले, "आपका मार्ग योग्य था। पंचशील का सिद्धान्त उपयुक्त था। भारत युद्धभूमि न बने, यह भूमिका योग्य थी। उसी प्रकार तृतीय विश्वयुद्ध से होनेवाले विनाश को देखते हुए चीन के आक्रमण करने पर परकीय मदद लेना योग्य नहीं था— आपकी इस भूमिका से भी मैं पूर्ण सहमत हूँ।"

यह सुनकर पण्डितजी भावाभिभूत हो गये। उनकी आँखों से जलधाराएँ बहने लगीं। उनका प्रचण्ड मानसिक दबाव कुछ कम हुआ। बहुत देर तक वे चुप रहे। सारा भारत देश उनके विरुद्ध हो गया था परन्तु विनोबा उनके साथ थे, यह जानकर पण्डितजी गद्‌गद हो गये थे। उन्होंने कहा, "मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ विनोबाजी!"

विनोबा बोले, "पण्डितजी! फिर भी एक भूल हो गयी है। अब भरपूर कीमत चुकाकर वह ठीक करनी पड़ेगी।"

पण्डितजी ने पूछा, "भूल क्या हो गयी?"

विनोबा कहने लगे, "अहिंसा का अर्थ है कि हम किसी पर आक्रमण न करें। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम अपनी रक्षा न करें! पानी में किसी को धकेलना नहीं है, यह ठीक है परन्तु कोई हमको पानी में डुबोना चाहे तो उसका प्रतिकार करना अहिंसा के विरुद्ध नहीं है। इतने बड़े देश भारत की सुरक्षा महत्त्वपूर्ण है, इस ओर ध्यान ही नहीं दिया गया। घर के कर्ता-धर्ता पुरुष पर घर का उत्तरदायित्व होता है, इसी प्रकार राष्ट्र का उत्तरदायित्व आप पर है। परन्तु अनिष्ट का उत्तरदायित्व हम अपने ऊपर नहीं लेना चाहते हैं। आज भारत का भाग कश्मीर, चीन अधिकृत प्रदेश, पाकिस्तान की ओर गया हुआ भाग देखते हुए सुरक्षा-व्यवस्था और अधिक कड़ी होनी चाहिए अन्यथा देश की समस्या और अधिक विकट हो जाएगी।"

पण्डितजी बोले, "विनोबाजी! यह गलती मेरे ध्यान में आ गयी है। यह सत्य है कि उसका मूल्य तो चुकाना ही पड़ेगा।"

विनोबा ने कहा, "पण्डितजी! एक बात और कहता हूँ। कदाचित् वह आपको अच्छी न लगे परन्तु यदि आप उसको मानेंगे तो आपको मानसिक शान्ति मिलेगी।"

पण्डितजी बोले, "कहिए विनोबाजी! निस्संकोच कहिए। आपको यह सब कहने का अधिकार है। आज मैं आपके सामने मौन खड़ा हूँ।"

विनोबा ने कहा, "एक बार आप जनता के सामने अपनी भूमिका स्पष्ट करके

माफी माँग लें और सुरक्षा-व्यवस्था उत्तम करने का आश्वासन दें।"

पण्डितजी बोले, "मैं करूँगा...सुरक्षा-व्यवस्था उत्तम करने का प्रयत्न करूँगा। और मुझसे माफी तो नहीं माँगी जा सकेगी परन्तु मैं प्रायश्चित्त करूँगा। इस प्रायश्चित्त के बिना मेरे जीवन की इतिश्री नहीं हो सकेगी। मेरे हाथ से दूसरी बार हुई गलती का प्रायश्चित्त मेरी मृत्यु से ही होगा। देखा जाय तो इसमें मेरा कैसा भी स्वार्थ नहीं था।"

विनोबा ने कहा, "पण्डितजी! साधारण घर में भी घर के कर्ता पुरुष को ही दोष दिया जाता है। वह सतत कार्यरत रहता है। उससे समाज को अपेक्षाएँ भी होती हैं और उसी को दोष भी दिये जाते हैं। इसलिए आप मन को सुदृढ़ कीजिए!"

कुछ क्षणों के बाद पण्डितजी बोले, "न जाने क्यों, मेरे मन में निराशा व्याप गयी है। मैं अब थकता जा रहा हूँ। एक ओर मुझको सन्तोष है कि इन्दिरा और उसके दोनों लड़के बहुत अच्छे हैं परन्तु दूसरी ओर लोकापवाद है। फिर भी अब मैं बहुत सावधान हूँ। विनोबाजी! मैं आपसे बार-बार कह चुका हूँ कि आपसे एक भजन सुनना चाहता हूँ। राजनीति के घमासान में मैं बहुत कुछ भूलता जा रहा हूँ।"

दोपहर समाप्त हो गया था। हवा में बड़ी ठण्डक थी। शीतल पवन चल रहा था। पट्टी कल्याणाश्रम के आँगन में श्रीमन्नारायण के साथ पण्डितजी बैठे थे। आज जैसे उदास पण्डितजी कभी नहीं थे। हाँ, यहाँ आने पर वे प्रसन्न हो गये थे।

विनोबा ने कहा, "पण्डितजी! एक बात और भूल गये आप!"

पण्डितजी बोले, "क्या भूल गया विनोबाजी?"

विनोबा ने कहा, "कश्मीर का सुलगता हुआ प्रश्न!"

पण्डितजी बोले, "संयुक्त राष्ट्र संघ ने अभी तक इस पर कोई निर्णय नहीं दिया है।"

विनोबा ने कहा, "पण्डितजी! आपकी माता के विभाजन से और सुख-दुःख से संयुक्त राष्ट्र संघ को क्या लेना-देना है?"

जब पण्डितजी ने कहा, "हमने अनेक प्रयत्न किये समझौता करने के!"

तब विनोबा बोले, "पण्डितजी! यहाँ भी आप गलती कर रहे हैं। हमारी माता की साड़ी का आँचल दूसरे ने पकड़ रखा है तो उसका न्याय किसी अन्य से कराएँगे या स्वयं उसकी रक्षा करेंगे? स्वतन्त्रता प्राप्त हुए भी आज बारह वर्ष हो रहे हैं। अब तक जो सुलग रहा है उसका समाधान इतनी जल्दी नहीं होगा।"

पण्डितजी कहने लगे, "मैं यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हूँ। पाकिस्तान और अधिक माँगता जा रहा है। मैंने कहा, सीज फायर को विभाजन की रेखा निश्चित करके विवाद समाप्त कीजिए। परन्तु पाकिस्तान वार्तालाप करने को किंचित् भी इच्छुक नहीं है। इसलिए युद्ध से इनकार नहीं किया जा सकता। उस दृष्टि से ही अब ठोस कदम उठाने पड़ेंगे। चीन ने मुझको पाठ पढ़ा दिया है।"

पण्डितजी चुप हो गये। अत्यन्त थकावट के कारण उनकी पलकें भारी हो रही थीं। दीवार के सहारे बैठे-बैठे उनकी आँखें बन्द हो गयीं।

विनोबा ने कहा, "पण्डितजी! आप कुछ समय विश्राम कर लें!"

पण्डितजी बोले, "कुछ समय क्यों? मैं चिर विश्रान्ति लेता हूँ!"

विनोबा ने कहा, "मृत्यु तो आएगी ही। आप न बुलाएँ फिर भी!"

पण्डितजी बोले, "परन्तु मैं स्वयं ही उसके पास जाना चाहता हूँ। आप ही तो कहते हैं कि मृत्यु का स्वागत करो!"

विनोबा ने हँसकर कहा, "मैं जब जो कहता हूँ वह सब याद रखते हैं आप!"

पण्डितजी बोले, "रखना ही पड़ता है। सिर में लेख पुस्तिका है ही!"

"आप आराम करें!" यह कहकर विनोबा अकेले बाहर चले गये।

विनोबा ने जो दरी बिछायी थी उस पर पण्डितजी बैठे थे। उनकी इच्छा हो रही थी कि उस पर सो जाएँ! परन्तु विनोबा के बाहर चले जाने पर उनकी भी नींद उड़ गयी। कुछ देर बाद शाल ओढ़कर पण्डितजी बाहर निकले। विनोबा नीम के विशाल वृक्ष के नीचे बैठे थे। उनकी देह पर केवल अँगोछा था। सिर पर कनटोपी थी। घुटने तक की धोती पहने थे। शीतल पवन के वे अभ्यस्त हो चुके थे। सामने बीस-पच्चीस लोग बैठे थे। उनकी भाषा दूसरी थी। पण्डितजी को बेहद आश्चर्य हुआ। यह भौमर्षि-देवर्षि तथा चतुरस्र विद्वान् मनुष्य, जो बाईस भाषाओं का ज्ञाता तथा वीतराग है, इन अज्ञानी लोगों से प्रेम की भाषा में प्रतिदिन क्या बात करता होगा? पैंसठ वर्ष की अवस्था होने पर भी अभी कितना कार्यक्षम है!

पण्डितजी विनोबा के सामने चटाई पर बैठकर बोले, "विनोबाजी, मन विश्राम करने को तैयार नहीं हो रहा है। मेरा मन अब भी पूर्ण स्वस्थ नहीं है। मैं एक प्रार्थना करता हूँ...एक भजन तो गाइए ही!"

विनोबा ने हँसकर कहा, "यह प्रार्थना नहीं...आग्रह और आदेश है। आज मैं आपके आग्रहवश गाऊँगा।"

और विनोबा गाने लगे :

"जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतितपावन जग, केहि अति दीन पियारे॥
कौने देव बराइ बिरदहित, हठि हठि अधम उधारे।
खग, मृग, व्याध, पषान, विटपजड़, जवन-कवन सुर तारे॥
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया बिबस विचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे॥"

विनोबा की मधुर आवाज थम गयी थी। परन्तु पण्डितजी अब भी भावमग्न

अवस्था में थे। प्रभु ने अपने पतितपावन नाम की आन रखने के लिए पशु-पक्षी-देव-दानव और पाषाणों का भी उद्धार कर दिया परन्तु तुलसीदास के सम्बन्ध में इतनी कठोरता धारण कर ली है! इस मोहजाल से उनको बचानेवाला दूसरा है भी कौन?

पण्डितजी को ऐसा लगा जैसे तुलसीदास उनकी ही भूमिका रख रहे हों! बड़ी देर बाद पण्डितजी बोले, "विनोबाजी! लगभग छह घण्टे मैंने आपके साहचर्य में बिताये हैं। सचमुच बड़ी शान्ति मिली। अब न जाने कब मिलेंगे! न जाने क्यों इस बार मन बहुत संवेदनशील हो उठा है!"

पण्डितजी की आँखें सजल हो उठीं। वे तत्काल उठकर खड़े हो गये और बोले, "अच्छा विनोबाजी! चलता हूँ..."

और वे कार की ओर चल दिये।

जल्दी-जल्दी जाते हुए उनके पृष्ठ भाग की ओर विनोबा देख रहे थे। उनके मन में विचार था—राजनीति में लिप्त व्यक्ति को अपनी प्रतिमा को साफ-सुथरी बनाये रखना बड़ा कठिन होता है। संसार में तीन प्रकार के शासनतन्त्र प्रचलित हैं—एकतन्त्र, अनेकतन्त्र और सर्वतन्त्र। एकतन्त्र अर्थात् राजतन्त्र, अनेकतन्त्र अर्थात् अनेक संगठित दलों का तन्त्र तथा सर्वतन्त्र अर्थात् लोगों के द्वारा लोगों के लिए किया गया लोकराज्य। इसमें भी अनेक मत-मतान्तर होते हैं। सत्ता-सम्पत्ति और शस्त्र के बिना राजनीति नहीं चलती है और इनको लेकर चलने पर अहिंसा नहीं रहती है! मतपत्रों से निर्वाचित प्रतिनिधि भी निष्ठावान् नहीं रहते हैं। साठ प्रतिशत अज्ञानी जनता मतदान ही नहीं करती है। चालीस प्रतिशत मतों में जिनको अधिक मिल जाते हैं वे चुन लिये जाते हैं।

और इसीलिए पण्डितजी जैसे मनुष्य को देश के लोगों के सामने उत्तर देने को विवश होना पड़ता है। पण्डितजी को उत्तर देना चाहिए। अब इन्दिरा यह पाठ पढ़ रही होगी तो निश्चय ही वह भी पक्की राजनीतिज्ञ बनेगी।

विनोबा विचारमग्न थे। सन्ध्याकाल की छायाएँ लम्बी होती जा रही थीं। सामने लोग अब भी बैठे हुए थे। विनोबा उठे और निवास की ओर चल दिये।

दूसरे दिन—

विनोबा रायपुर मार्ग पर वर्धा की ओर उत्साहपूर्वक चल दिये।

किसी ने पूछा, "बाबा! अब खूब अच्छा लग रहा है न?"

विनोबा कुछ नहीं बोले परन्तु उनके मुख पर आनन्द छाया था और वे जल्दी-जल्दी चल रहे थे।

7 मार्च सन् 1951 को विनोबा पहली बार सर्वोदय यात्रा के निमित्त से पैदल शिवरामपल्ली को चले थे। कम्युनिस्ट तथा जमींदार—इन दोनों के बढ़ते हुए प्रभाव को कम करने के लिए विनोबा ने जो प्रयत्न किया था उसमें वे अत्यधिक सफल हुए थे और उन्होंने भाषण में अचानक भूदान माँगा तो पहला ही दान सौ एकड़ का मिला।

हिंसक आचरण को अहिंसात्मक प्रेम और शान्ति का साक्षात्कार हुआ। अहिंसा की विजय हुई, परन्तु यह देखने के लिए बापू नहीं थे। यह दु:ख विनोबा को कसक रहा था।

कोई भी मनुष्य चिरकाल तक नहीं रहता है, इस सत्य को जानते हुए भी विनोबा के मन में आया, 'आज बापू होते तो मुस्कराकर उन्होंने मेरी पीठ पर हाथ रखकर कहा होता—विनोबा! तुमने अभूतपूर्व कार्य कर दिखाया है। अरे संसार में ऐसी पदयात्रा किसी ने नहीं की है जैसी तुमने की है। इस प्रकार भूदान भी कभी कोई प्राप्त नहीं कर सकेगा। तुम धन्य हो विनोबा!'

विनोबा मन-ही-मन हँसे।

वर्धा में राममन्दिर को जानेवाले पैदल रास्ते पर विनोबा चलते जा रहे थे। तेरह वर्षों के वनवास की यात्रा समाप्त कर विनोबा आनन्दपूर्वक राममन्दिर की ओर जा रहे थे। चलते-चलते वे आनन्दविभोर होकर गा रहे थे :

सारा संसार सुखमय करूँगा।
आनन्द से तीनों लोक भरूँगा।

उनके पीछे आनेवाले हर्ष से नृत्य कर रहे थे। विनोबा गा रहे थे :

कीर्तन करेंगे नाचेंगे
ज्ञानदीप जलाएँगे ॥

सजल नयनों से विनोबा श्री राममन्दिर की सीढ़ियों पर मौन होकर खड़े हो गये।

25

ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा विनोबा में बचपन से ही थी। जब उनके पितामह पूजा करने बैठते थे तब प्रसाद की आशा में वे भी देर तक बैठे रहते थे। तभी से ईश्वर के सम्बन्ध में विचार उनके मन में आने लगे। और फिर उनके मन में ईश्वर-अन्वेषण की अनिवार्य इच्छा उत्पन्न हो गयी। विनोबा के मन में दृढ़ विश्वास था कि ईश्वर भक्ति से प्राप्त होता है तथा ईश्वर जितना अगम्य है उतना ही साधना से सहज प्राप्त होनेवाला है। उनका यह विश्वास आगे चलकर बढ़ता ही गया। माता के सतत संकीर्तन के कारण

तथा पितामह की पूजा के कारण मन में ईश्वर का अधिष्ठान दृढ़ होता गया। आगे चलकर भगवद्गीता का अर्थ समझ लेने पर श्रीकृष्ण के भव्य दिव्य विश्वरूप-दर्शन से विनोबा अभिभूत हो गये।

और इसीलिए इण्टर की परीक्षा न देकर वे काशी चले गये। काशी में निवास करते समय उनकी इच्छा होती थी कि हिमालय पर जाएँ और तपस्या से ईश्वर को प्राप्त करें परन्तु वैसा हो नहीं सका। ईश्वर का अस्तित्व मनुष्य के मन में है—इसका अद्भुत अनुभव उनको शिवरामपल्ली में हुआ। एक बार माँगने पर सौ एकड़ जमीन का मिलना, डाकुओं का शरण आना तथा ग्रामदान मिलना, इन घटनाओं को विनोबा ने ईश्वरीय घटनाएँ समझा। ईश्वर की सृजित अनुपम सृष्टि में उनको प्रत्येक स्थान पर ईश्वर की प्रतिमा दिखाई देती थी।

विनोबा जानते थे कि ब्रह्म को जान लेना इतना सरल नहीं है। उनका व्यक्तित्व ही असाधारण था। याज्ञवल्क्य-जैसा असीम ज्ञान, विलक्षण स्मरणशक्ति, उत्कट भक्ति तथा भगवद्गीता के कर्मयोग पर सतत आचरण! वेद, उपनिषद्, स्मृतियाँ तथा शास्त्र-पुराणों का गहन अध्ययन, बाईस भाषाओं का ज्ञान तथा जीवनभर सात्त्विकता की उपासना करना सरल कार्य नहीं था। तेरह वर्ष तीन महीने वे पूरे भारत में घूमे थे। उनको इतना घूमते देखकर एक बार जयप्रकाश नारायण ने उनसे कहा था, "बाबा! 36500 मील आप चल चुके हैं। आपको कल्पना भी नहीं होगी परन्तु 44 लाख एकड़ भूमि आपको भूदान में मिल चुकी है। इसके अतिरिक्त भारत के 5,60,000 गाँवों से 1,60,000 गाँवों का ग्रामदान मिल चुका है। बिहार तथा उड़ीसा के गाँवों से अधिक भूदान मिला है। इसमें सरकार की सहायता एक टका भी नहीं है। और इसका कोई विज्ञापन भी नहीं है।"

विनोबा ने कहा, "यह लोगों ने दिया है जयप्रकाश!"

जयप्रकाश नारायण बोले, "आपका कहना सत्य है। परन्तु इस प्रकार भूदान माँगनेवाला और सैकड़ों एकड़ जमीन देनेवाला मनुष्य संसार में दूसरा नहीं है। यह महान कार्य तो आपने किया ही है परन्तु इससे ही दूसरा कार्य निष्पन्न हो गया है और वह यह है कि दस हजार से अधिक एकनिष्ठ सर्वोदय कार्यकर्ता तैयार हो गये हैं।"

विनोबा ने कहा, "शायद नियति ने मेरे भाल पर ही यह लिख रखा था..."

जयप्रकाश ने पूछा, "आप भाग्यवादी हैं?"

विनोबा बोले, "भाग्य और कर्म दोनों को मानता हूँ मैं। और मानना भी क्या है?"

ब्रह्मज्ञान की अदम्य आकांक्षा विनोबा के मन में थी ही। जमनालाल बजाज के जन्म-स्थान गाँव काशी का वास—राजस्थान में ब्रह्मविद्या मन्दिर की स्थापना हो गयी थी। उसके बाद विनोबा वहाँ गये थे। वहाँ की स्त्रियों से उन्होंने कहा था, "स्त्रियाँ

आज तक अपनी सारी भावनाएँ दबाकर जीवन बिताती आयी हैं। परन्तु यहाँ पूर्ण स्वतन्त्रता है। अपना जीवन स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर बनाइए। मुक्त हवा में साँस लीजिए और जीवन स्वावलम्बी बनाइए। चार-पाँच घण्टे शारीरिक श्रम प्रत्येक स्त्री को करना चाहिए। स्वाध्याय तथा आत्मचिन्तन के लिए भी सायं-प्रातः एक-एक घण्टा समय चाहिए। यहाँ ध्यान रखना है कि दिन का प्रत्येक क्षण कार्यमग्न रहना चाहिए। यहाँ आलस का नाम नहीं होना चाहिए। बौद्धिक विकास और शारीरिक श्रम दोनों साथ-साथ होने चाहिए।''

अब तेरह वर्षों की सुदीर्घ पदयात्रा के बाद विनोबा ब्रह्मविद्या मन्दिर, पवनार में आये थे। वे अत्यन्त प्रसन्न थे। उन्होंने अपने जीवन में तीन संस्थाएँ स्थापित की थीं। एक बड़ौदा का विद्यार्थी मण्डल, दूसरा नालवाडी का ग्रामसेवा मण्डल और तीसरा पवनार का ब्रह्मविद्या मन्दिर। तीनों संस्थाओं पर उनका प्रेम था। ब्रह्मविद्या मन्दिर पर अधिक था। आते-ही-आते उन्होंने कहा, ''बचपन से ही ब्रह्मज्ञान के प्रति मेरे मन में आकर्षण था। परब्रह्म का साक्षात्कार करने की इच्छा होती थी। बाद में ध्यान में आया कि परब्रह्म का साक्षात्कार तभी होता है जब मनुष्य व्यावहारिक जगत् से निवृत्त होकर अध्यात्म के मार्ग पर चलने लगता है। प्रयत्न करने से मन को मुक्ति मिलती है। अपने आचार-विचार शुद्ध होने पर, ब्रह्मज्ञान की जिज्ञासा होने पर तथा परमात्मा से एकाकार होने की प्रबल इच्छा होने पर यह ज्ञान प्राप्त होता है। यद्यपि यह वैयक्तिक साधना होती है तथापि यह सामूहिक रीति से करनी चाहिए। इससे व्यक्तिगत अहंकार की समाप्ति होगी।''

ब्रह्मविद्या मन्दिर में देश की अनेक युवतियाँ आ गयी थीं। कहीं कोई भी कठिनाई नहीं थी।

एक दिन बालकोबा ने विनोबा से पूछा, ''इन भगिनियों को ईश्वर सचमुच प्राप्त हो सकता है क्या? इस आश्रम में ऐसी अनेक युवतियाँ हैं जो विवाह न करके योगिनी बनकर यहाँ निवास कर रही हैं।''

विनोबा ने कहा, ''यह प्रश्न तुम स्वयं उनसे ही क्यों नहीं पूछते हो?''

जयदेव ये बातें सुन रहे थे। उस दिन महादेवी दीदी, मदालसा देवी, निर्मल दीदी, मीरा दीदी, कुसुम दीदी तथा अन्य अनेक युवतियाँ और प्रौढ़ स्त्रियाँ आश्रम में थीं।

जयदेव ने प्रार्थना के बाद विनोबा से कहा, ''बाबा! ये युवतियाँ यहाँ क्यों आयी हैं, यह इनसे पूछा?''

विनोबा हँसकर बोले, ''अरे! मुक्तामाता ने चांगदेव का कोरा कागज पढ़ा और वह बोली, 'चांगदेव! इतनी साधना करके भी तू कोरा ही रहा।' वैसा ही है आज का यह अवसर। अरे ये युवतियाँ यहाँ एक विशेष ध्येय से प्रेरित होकर आयी हैं। कुछ

परिस्थितिवश इस पदयात्रा में सम्मिलित हो गयी थीं। बारह वर्ष पदयात्रा कर वे यहाँ आयी हैं। तुम स्त्रीशक्ति को पहचान नहीं सके इसलिए मैंने तुमको कोरा कहा है।"

जयदेव ने कहा, "बाबा! सहयोग की अपेक्षा तो इनको भी रहेगी!"

विनोबा बोले, "सहयोग शब्द में स्त्री-पुरुष भिन्नता नहीं है। सहकार तथा सहकार्य पर ही संस्थाएँ चलती हैं।"

प्रातःकाल था।

प्रार्थना के बाद विनोबा प्रवचन दे रहे थे कि गाँव की लड़की शेवन्ता गोबर लेने के लिए बाड़े में गयी। उसको देखते ही काली कपिला ने सींग खड़े कर दिये। वह घबड़ाकर अन्दर आकर बोली, "कपिला गोबर नहीं लेने दे रही है जी!"

"सो क्यों?"

"मैंने कहा कि बाबाजी का घर लीपना है। कुसुमबाई बोलीं कि गोबर ले जाना। लेकिन वह कपिला सींग उठाकर मार रही है। अब मैं क्या करूँ?"

उसका रूप देखकर सब हँस पड़े। तब कुसुम दीदी ने कहा, "जयदेव! जरा देखेंगे क्या? वह कपिला दो दिन से ऐसा ही कर रही है। वह समझती है कि कोई उसके बछड़े को ले जाएगा!"

जयदेव ने हँसकर कहा, "देखा बाबा! सहकार्य के बिना कपिला को वश में करना कठिन है न?"

विनोबा बोले, "जयदेव! क्या कहा जा सकता है? इन युवतियों के साथ कपिला भी मन में वेदवाणी का उच्चारण करती होगी, उसमें व्यवधान पड़ने से वह क्रुद्ध हो गयी होगी!"

जयदेव ने कहा, "हो सकता है कि ऐसा ही हो! बालकोबा इन सभी योगिनियों को उपनिषद्-वेदान्त आदि ग्रन्थों का परिचय देते हैं। इस्लाम, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायों का परिचय देते हैं। भारतीय भाषाएँ सिखाते हैं।"

विनोबा बोले, "यह ठीक है जयदेव! मैं तो कहता हूँ कि पवनार अहिंसा का पावर-हाउस अर्थात् शक्ति-केन्द्र होना चाहिए। यहाँ सभी सम्प्रदायों का मिलन होना चाहिए। पवनार से आध्यात्मिक चिन्तन का प्रवर्तन और प्रसारण होना चाहिए। इससे मानसिक शक्ति बढ़ेगी।"

"इस समय कपिला का क्या किया जाए?" किसी ने कहा।

विनोबा हँस पड़े। तब कुसुम दीदी ही बाड़े की ओर चल दीं। विषय समाप्त हो गया।

विनोबा विचारमग्न थे, मैं लोगों से कहता हूँ कि समर्थ बनो परन्तु मैं स्वयं थकता जा रहा हूँ, यह प्रतीति अब होने लगी है। यहाँ आकर दो महीने वर्धा जिले में पदयात्रा करते समय बार-बार चक्कर आ जाते थे।

एक दिन विनोबा चलते-चलते ठहर गये। साथ में बालकोबा थे तथा अनेक कार्यकर्ता थे। वे भी रुक गये।

किसी ने पूछा, "क्या हुआ बाबा?"

विनोबा हँसकर बोले, "प्रभु का स्मरण हो आया।"

विनोबा पुन: चलने लगे। अन्य लोग भी चलने लगे। और तब विनोबा चलते-चलते गिर पड़े। बालकोबा के साथ अन्य लोग उनको उठाकर निवास पर ले आये। देह में ज्वर था। विनोबा चुपचाप सो गये।

कुछ देर बाद ज्वर में आँखें खोलकर विनोबा बोले, "बालकोबा! अब भटकना बहुत हो गया। अब मुझको क्षेत्रसंन्यास ले लेना चाहिए। है न? बोलना भी बहुत हो गया। मैं बड़ा हूँ। मुझको रोकनेवाला और कहनेवाला कोई नहीं है, यही बात है न?"

बालकोबा चकित हो गये, उनके मन में ठीक ये ही बातें आ रही थीं। यह विनोबा ने कैसे जान लिया?

बालकोबा ने कहा, "बाबा! अब विश्रान्ति ले लो!"

विनोबा बोले, "तुम कहते हो तो विश्रान्ति ले लूँगा। चिरविश्रान्ति ले लूँगा!"

बालकोबा ने कहा, "मैं यह नहीं कह रहा हूँ..."

विनोबा कहने लगे, "और यदि कह रहे हो तो बिगड़ क्या गया? बचपन से आज तक हम तीनों भाई एक-दूसरे के प्रति आदर-भाव रखते रहे परन्तु कभी किसी ने किसी प्रकार की हठ नहीं दिखायी! समझ-बूझकर अपने-अपने मार्ग पर चलते रहे! अब जैसा तुम कह रहे हो वैसा ही करूँगा।"

बालकोबा बोले, "एक बार डॉक्टर से अपना परीक्षण करवा लें!"

विनोबा ने कहा, "वैसे तो मुझको उसकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु तुम चाहते हो तो बुलवा लो डॉक्टर को!"

डॉक्टर ने विषम ज्वर का निदान किया और बोले, "कई दिनों से इनकी देह में ताप होना ही चाहिए!"

विनोबा बोले, "सचमुच परफेक्ट डायग्नोसिस किया है आपने डॉक्टर! परन्तु एक शब्द में गलती हो गयी है। बचपन से ही मुझको सन्ताप आता है। अनुताप भी आता है। प्रयत्न करने पर भी ये दूर नहीं होते। सिर भिन्नाने लगता है। गम्भीर विचार करता हूँ तो चक्कर खाकर गिर पड़ता हूँ।"

उनकी बात डॉक्टर कुछ-कुछ समझे और बोले, "बाबा! आपको 'लेबरन्थाइन वर्टिगो' हो गया है। ये सारे लक्षण उसी के हैं।"

विनोबा ने कहा, "अरे वाह! इस रोग का नाम तो परब्रह्म से भी कठिन है। डॉक्टर साहब! इस रोग के नाम से मैं एक प्रतिष्ठाप्राप्त व्यक्ति हो गया हूँ!"

डॉक्टर कुछ समझे-कुछ नहीं समझे। आश्रमवासियों को यह अच्छा लग रहा

था कि बाबा कुछ समय तक यहाँ रुकेंगे और विश्राम करेंगे।

बाबा का ज्वर दिन में एक बार तो 103° से 104° तक पहुँच जाता। तब उनके माथे पर पानी की पट्टी रखते, कभी इंजेक्शन लगाते, तब वह कम होता । इतने ज्वर में भी वे ग्लानिवश नहीं होते बल्कि प्रसन्न रहते। और अपने विनोदी स्वभाव से सबको हँसाते रहते।

एक दिन उन्होंने मोघे से कहा, "तुम मेरे बचपन के मित्र हो। सब कुछ छोड़कर तुम मेरे पीछे चले आये। परन्तु क्यों भई! तुमने मेरे और पीछे जाकर विवाह वगैरह कर लिया है क्या?"

मोघे ने पूछा, "क्यों? मेरे विवाह की याद कैसे आ गयी?"

"यों ही!"

"सच?"

"अरे भई! बच्चे होते हैं तो बार-बार सन्ताप आता है। सन्ताप आने पर लेबरन्थाइन वर्टिगो होता है—इसमें चक्कर आते हैं।"

मोघे ने कुछ नहीं कहा। इस ज्वरग्रस्त अवस्था में सात दिन तक दूध के बिना और कुछ भी न लेकर इस कृश मनुष्य की बुद्धि और बोलने की शक्ति स्थिर रह सकती है, इस पर सबको आश्चर्य हो रहा था।

कुछ देर बाद विनोबा बोले, "जयदेव! एक बात याद आ गयी...तुमको उस कस्तूरी की याद है...बापू ने उसकी देखभाल की थी। उस समय वह सात-आठ साल की थी। अब तो उस बात को भी पन्द्रह वर्ष हो गये होंगे! जीवन में कुछ घटनाएँ इतने वेग से घटित हुई हैं कि दूसरे की बात तो अलग स्वयं अपनी देखभाल करने को भी समय नहीं मिला।"

जयदेव कुछ न कहकर चुपचाप खड़े रहे।

विनोबा ने पूछा, "बताओ जयदेव! कस्तूरी अब क्या करती है?"

जयदेव ने कहा, "बाबा! वह अब इस संसार में नहीं है।"

वह क्यों चली गयी, कैसे चली गयी आदि कुछ न पूछते हुए विनोबा ने इतना ही कहा, "अरे ऐसे असमय में नहीं जाना था!"

बड़ी देर तक किसी ने कुछ न कहा।

विनोबा विचारों में खो गये थे—आध्यात्मिक शक्ति तो सबसे बड़ी शक्ति है। इस शक्ति के सामर्थ्य पर संसार सुखी रह सकता है। हिन्दुस्तान तत्त्व ज्ञान की जननी है। शक्ति और भक्ति की भूमि है। इसलिए यहाँ ब्रह्मविद्या मन्दिर की स्थापना विनोबा ने की थी। प्राचीन काल में ब्रह्मविद्या के शास्त्रों का निर्माण ऋषियों ने अरण्य में किया था। परन्तु गीता का तत्त्वज्ञान व्यवहार के क्षेत्र में रणभूमि पर कहा गया है। आज का अध्यात्म शारीरिक श्रम से उत्पन्न होगा। सम्पूर्ण स्वावलम्बन, प्रगाढ़ निष्ठा तथा परमेश्वर

पर अनन्य श्रद्धा होनी चाहिए। विचार करते-करते विनोबा को कालिन्दी का कथन याद आ गया।

उसने पूछा था, "बाबा! ब्रह्मविद्या मन्दिर से क्या लाभ होगा?"

विनोबा ने कहा था, "मिल गया तो अनन्त, नहीं फिर शून्य।"

उसने कहा था, "सो कैसे?"

विनोबा ने कहा था, "अन्य संस्थाएँ पैसे से बढ़ती हैं। उस रूप में यहाँ कुछ भी दिखाई नहीं देगा। यहाँ निश्चय करने पर मानसिक-आध्यात्मिक सुख मिल सकेगा।"

उसने कहा था, "तो फिर यदि शून्य मिला तो?"

विनोबा ने उत्तर दिया था, "जिनको शून्य ही प्राप्त करना हो वे संस्था में रहें ही किसलिए? मैं चाहता हूँ आत्मिक उन्नति और अनजाने ही उससे होनेवाली समाजोन्नति!"

उस विषय पर अनेक बार अनेक प्रकार से चर्चा हुई थी।

जब विनोबा ने सूक्ष्म में प्रवेश करने का विचार व्यक्त किया तो उनसे प्रश्न किया गया, "सूक्ष्म में प्रवेश—अर्थात् ठीक-ठीक क्या?"

विनोबा ने संक्षिप्त उत्तर दिया, "आध्यात्मिक साधना।"

विनोबा को घेरकर उत्सुक लोग बैठे हुए थे। उनमें पत्रकार भी थे।

एक ने कहा, "आज तक आपने अखण्ड साहित्य-साधना की है। लगभग दो सौ छोटी-बड़ी पुस्तकें लिखी हैं, यह हुई ज्ञानसाधना। चौदह वर्षों तक भूदान के लिए घूमते रहे, यह हुई कर्मसाधना। अखण्ड ईश्वर-चिन्तन करते रहे, यह ईश्वर-साधना हो गयी। उसमें आध्यात्मिक साधना अन्तर्हित थी ही, फिर सूक्ष्म में प्रवेश करके और कौन-सी साधना आप करना चाहते हैं?"

विनोबा बोले, "साधना का अर्थ है कार्य करने की नियमित परम्परा। किसी कार्य को सफल बनाने के लिए निरन्तर सक्रिय रहना साधना है। ईश्वर चिन्तन, ईश्वर प्राप्ति तथा ईश्वर के अस्तित्व का शोध—ये भिन्न-भिन्न बातें हैं। सूक्ष्म में प्रवेश करके मैं दो बातें सिद्ध करना चाहता हूँ। एक है ईश्वर के अस्तित्व का शोध और दूसरी यह कि मैं अपने मन के सन्देश को दूसरे के मन तक भेजने की अपनी शक्ति का परीक्षण करना चाहता हूँ।"

किसी ने पूछा, "जैसे?"

विनोबा बोले, "सरल बात है। मैं बंगलौर के किसी मनुष्य का स्मरण करता हूँ तो उसको भी मेरा स्मरण होना चाहिए। मेरे स्मरण में यह शक्ति होनी चाहिए।"

पूछनेवाला चुप हो गया।

विनोबा आत्म-चिन्तन में मग्न हो गये—साधना करने का मेरा एक सिद्धान्त है। मुझको कोई संकल्प करना होता है तो प्रात:काल करता हूँ। दिनभर उस संकल्प के

अनुसार आचरण करता हूँ और रात को सोते समय चित्त को एकाग्र कर दिनभर की साधना परमेश्वर को अर्पण करता हूँ। प्रातःकाल पुनः वही क्रम—संकल्प, साधना और समर्पण। यह क्रम अनेक वर्षों से चला आ रहा है। स्वभावतः मैं कठोर व्रताचरणी हूँ। परन्तु परमेश्वर की कृपा से और भूदान के अनुभवों से अब मैं संवेदनशील हो गया हूँ। उस परमेश्वर का स्मरण किये बिना मेरा एक भी क्षण व्यतीत नहीं होता है।

मैं कठोर हूँ। परन्तु वही मेरा संरक्षक-पक्ष है। जैसे बापू स्वयं को डरपोक कहलवाते थे। 'डरपोकपन' उनका संरक्षक-पक्ष था? डाकू-लुटेरों से मुझको भय नहीं लगा। लोग मुझको नारियल की उपमा देते हैं, वह उचित ही है। मैं कठोर हूँ परन्तु आँखों से जलधाराएँ बहने लगें, इतना संवेदनशील भी हूँ। पहले बापू के प्रति भावावेश में उन आँसुओं को एकान्त में बहाता था, अब वे सबके सामने भी बहते हैं। एकाध दोष भी कभी-कभी गुण बन जाता है, उसी प्रकार यह कठोर निग्रह साधना के लिए एक गुण बन गया है। मेरे जीवन का अन्तिम उद्देश्य है—सत्यनिष्ठा। उसके लिए प्रारम्भ में जो कठोरता थी वह बाद में स्वाभाविक गुण बनती गयी।

उस साधना से मैं ईश्वर को प्राप्त करना चाहता था। मेरा वह उद्देश्य सफल हुआ। जो परमात्मा अन्दर वही मुझको बाहर दिखाई देता था। मेरा-पराया इस भाव का विस्मरण होने पर मुझको ईश्वर के अनन्त रूप का दर्शन हुआ। मैंने जीवन में एक सिद्धान्त को स्वीकार कर ही जीवन बिताया—स्नेहे सहजीवनम्—स्नेहपूर्वक सहजीवन बिताना ही मेरे मन का लक्ष्य था। आश्रम में दस-दस घण्टे मेरे साथ काम करनेवाले लोग मुझपर प्रेम करते थे। ब्रह्मविद्या मन्दिर की भगिनियाँ प्रेम करती हैं और मेरे बाल मित्र, मेरे दो भाई उसी मार्ग पर चलते हुए अखण्ड प्रेम कर रहे हैं। अर्थात् मैंने वास्तव में ही स्नेहपूर्ण सहजीवन बिताया है!

परन्तु मरते समय इन सबको छोड़कर मुझको जाना पड़ेगा। इन सबका स्नेह निरन्तर बना रहे, यही मेरी इच्छा है।

आजकल सूक्ष्म में प्रवेश करने पर मैं विष्णु सहस्रनाम के स्थान पर सभी परिचितों के नामों का स्मरण करता हूँ। भारत में जो परिचित वृद्ध हैं उनका स्मरण मैं करता हूँ। एक-एक प्रान्त के लोगों का पुनः-पुनः स्मरण करता हूँ। तब सहस्रों नाम सहज याद आ जाते हैं। यह सब मैं केवल सहजीवन के लिए और आनन्द के लिए करता हूँ।

मैं आनन्द के लिए लिखता हूँ। जब मैं विषमज्वर पीड़ित था उस समय मैं ब्रह्मविद्या मन्दिर में रह रहा था। उस समय अकर्मयोग, वेदान्तसुधा, मनुशासनम्, विनयांजलि, गुरुबोध आदि पुस्तकों का संकलन मैंने किया। जीवनभर जो-जो अच्छा लगा उसको मैं अपने आनन्द के लिए लिखता रहा। सत्तर वर्ष की अवस्था में मैंने अपने विचार से प्रत्येक क्षण का हिसाब प्रस्तुत किया। मैं पक्का गणितज्ञ था। खाने से शरीर

का गणित प्रस्तुत किया और आचरण से दिन और महीनों का गणित किया। चलने का और दौड़ने का गणित भी मैंने प्रस्तुत किया।

वास्तव में जब मैं अपने विषय में विचार करता हूँ तब अपना भोजन, अपना सोना, यह सब मैं अपना मानकर नहीं करता हूँ बल्कि इसको एक सामाजिक कार्य मानता हूँ। इसीलिए यह सब मैं एक नियमित रूप में करता हूँ। समय पर सोना, समय पर उठना, दिनभर कार्य करते रहना, यह सब मैं व्यक्तिगत न समझकर सामाजिक कार्य समझकर ही करता हूँ। यह भी सत्य है कि जिसका लोकसम्पर्क जितना कम होता है उसको उतना ही कम ईश्वर-दर्शन होता है। ईश्वर का तीन बार साक्षात्कार होता है—एक लोकसम्पर्क में, दूसरा सृष्टि की विशालता में और विविधता में तथा तीसरा होता है अन्त:करण में। तीनों साक्षात्कारों में मिलकर परमात्मा-रूप दिखाई पड़ता है—मैंने यही जाना है।

लोग आते। विनोबा कभी उनसे बातें करते, कभी केवल सामने बैठे रहते। कभी विनोबा अपनी धुन में गुनगुनाते रहते। कभी कोई पूछ बैठता, ''बाबा! कभी आप खूब बोलते हैं और कभी एकदम मौन हो जाते हैं, ऐसा क्यों?''

बाबा कहते, ''पैंसठ वर्ष तक निरन्तर बोलता ही रहा हूँ। भाई! अब बहुत बोल लिया!''

वह पूछता, ''न बोलने से आपको क्या मिलेगा?''

विनोबा कहते, ''शून्य!''

वह पुन: पूछता, ''और बोलकर आपने क्या प्राप्त किया?''

विनोबा कहते, ''शून्य!''

सुननेवाला विचार करने लगता—जीवन में यदि शून्य ही प्राप्त करना है तो फिर देह को कष्ट देकर इतनी साधना क्यों की जाय?

प्रत्येक बार विनोबा के शून्य का अर्थ भिन्न होता था। कुछ न कहकर साध्य होनेवाला शून्य उनके विचार में ब्रह्म था। यह ब्रह्म शून्य था—निराकार, असीम, अरूप, अविनाशी था। इस शून्य से ही सृष्टि का उदय था और शून्य में ही अन्त था। मनुष्य केवल जन्म की ही कल्पना कर सकता था। मृत्यु की कल्पना भी अगम्य थी। प्रत्यक्ष जीवन समाप्त होने पर मृत्यु के दर्शन करनेवाला कभी मृत्यु का वर्णन नहीं कर सकता था। उसका रहस्य ज्यों-का-त्यों था।

विनोबा कहना चाहते थे कि शून्य प्राप्त करने का अर्थ यह है कि केवल बातें मत करो, अधिकाधिक कार्य करो। यों भी जीवन शून्य ही है, कर्तृत्व से उस शून्य को सार्थक बनाना चाहिए।

आजकल एक बात और होने लगी थी। विनोबा कम बोलते और संक्षिप्त बोलते।

लोग विचार करते कि बाबा शायद बोलना नहीं चाहते हैं। फिर भी वे अनेक प्रश्न पूछते रहते।

कभी-कभी विनोबा के मन में स्मृतियों का मेला लग जाता!

बापू की हत्या की स्मृति उनके मन को विदीर्ण कर देती—'हिंसा न हो इसलिए तुम जप करते हो न? जीवनभर अहिंसा का व्रत धारण किये हो न? तो फिर उसी अहिंसा की शिक्षा हिंसा से लो!' ऐसा अमानुषीय दण्ड! मरते समय बापू को कैसा लगा होगा, यह प्रश्न विनोबा को सदैव व्याकुल करता रहता था।

कभी-कभी विनोबा अत्यन्त अस्वस्थ हो जाते थे। लोग भाषावार प्रान्त-रचना के लिए लड़ते थे। प्रतिदिन मृत्यु को गले लगा रहे थे। यह देखकर विनोबा विचार करते—जिस भारत की स्वतन्त्रता के लिए लोगों ने संघर्ष किया, बलिदान दिये, उस स्वतन्त्र भारत के लोग अब भाषावार प्रान्त-रचना के लिए लड़ रहे हैं! भारत की सब भाषाएँ बहिनें हैं। उनका सामूहिक विकास होना चाहिए। एक मातृभाषा, एक राष्ट्रभाषा और एक जागतिक भाषा—इनका समन्वय कर लेने पर समस्या क्या है, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था। भाषाई दंगे प्रारम्भ होने पर विनोबा ने उपवास प्रारम्भ कर दिया था। उपवास की प्रक्रिया भी मन को कष्ट दे रही थी।

जुलाई 1965 में विनोबा ने महाराष्ट्र की यात्रा करके भाषा-विवाद को दूर करने का प्रयत्न भी किया था। वे लोगों से कहते थे, "शान्तिपूर्वक विचार-विमर्श करके किसी समस्या का समाधान नहीं कर सकते क्या?"

बिहार के लोग इन सारे विवादों से दूर ग्रामदान में ही मग्न थे। उन्होंने विनोबा को पुन: बुलाया। विनोबा गये और ग्रामदान की तूफानी यात्रा प्रारम्भ हो गयी। रोगग्रस्त होने के कारण पैदल यात्रा करने में विनोवा को कष्ट हो रहा था परन्तु वे पूर्ववत् उत्साह से ही घूम रहे थे।

बिहार के एक गाँव रानीपतरा में सभा में विनोबा ने निरन्तर पचास वर्षों तक किये गये कार्य को बापू को अर्पण करते हुए कहा, "बापू के साथ रहकर तदनुसार कार्य करते हुए आज पचास वर्ष हो रहे हैं। इस निमित्त से आज से मैं व्यक्तिगत पत्र-लेखन बन्द कर रहा हूँ। आज से मैं अपने सम्बन्ध में भी कोई निर्णय नहीं लूँगा, जो होगा सब सामूहिक निर्णय होगा!"

अनेक लोगों को विनोबा के इस कथन का अर्थ समझने में समय लगा। किसी ने कहा, "विनोबाजी ऐसे पत्र लिखते ही कब हैं?"

विनोबा ने यह कथन सुना और मन-ही-मन कहा, 'छोटी-सी बात को भी दूर करने का निश्चय कर लिया जाय तो उसकी अनुभूति और तीव्रता से होती है। पत्र-लेखन न करने का निश्चय कर लेने पर अब इच्छा होती है कि लेखनी हाथ में ही पकड़े रहें!'

यद्यपि निश्चय करके किसी बात से निवृत्त हो जाना—इसके विनोबा चिर अभ्यस्त थे तथापि वे आजकल अस्वस्थ अनुभव कर रहे थे।

उस समय जवाहरलालजी ने विनोबा को पत्र लिखा था। उन्होंने आग्रह करके विनोबा को दिल्ली बुलाया था। 25 दिसम्बर सन् 62 को बंगाल में नवग्राम में जवाहरलालजी ने चिन्तित होकर कहा था, ''विनोबाजी! हिंसा के मार्ग पर नहीं चलना है, यह विचारकर अहिंसा को अपनानेवाले बापूजी की हत्या हो गयी। उसी अहिंसा-व्रत का पालन करते हुए अपनी सुरक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया, परिणामस्वरूप चीन का आक्रमण हुआ। अब मन बहुत अशान्त हो गया है।''

अभी एक वर्ष नहीं बीत पाया था कि श्रीमन्नारायण एक दिन विनोबा के पास आये और बोले, ''बाबा! जवाहरलालजी ने आपको मिलने को बुलाया है। चलेंगे?''

विनोबा बोले, ''श्रीमन्नारायण! मेरा क्या है, मैं तो घूमता ही रहता हूँ। परन्तु अब मैं सत्तर के आसपास हूँ। यहाँ के लोगों ने मुझको फिर बिहार में बुला लिया है। वास्तविकता यह है कि मुझको लेबरन्थाइन वर्टिगो नामक अँग्रेजी रोग हो गया है। मुझको हर समय चक्कर आते रहते हैं। बिहार की इस यात्रा की समाप्ति होने पर मैं आऊँगा।''

श्रीमन्नारायण लौट गये।

विनोबाजी अब मन-ही-मन राजनीति से ऊब गये थे। जवाहरलालजी इच्छानुसार देश का विकास कर रहे थे। परन्तु अनेक लोगों को वे कष्ट भी दे रहे थे। सामाजिक निष्ठा समाप्त हो गयी थी और भ्रष्टाचार अंकुरित होने लगा था, यह विनोबा को अच्छा नहीं लगता था। स्वतन्त्र भारत में सम्पूर्ण लोकतन्त्र का चित्र उन्होंने देखा था परन्तु अब स्वतन्त्र भारत को भ्रष्टाचार से तथा सत्ता के शासन से पददलित होते देखकर उनकी कोई इच्छा ही नहीं होती थी, न किसी से मिलने की और न कुछ कहने की।

फिर भी वे जवाहरलालजी से मिलना चाहते थे।

पिछली बार जब मिले थे तब विनोबा ने कहा ही था, ''चीन का आक्रमण साधारण घटना नहीं है। अहिंसा का अर्थ यह नहीं है कि स्व-संरक्षण मत करो। आज चीन ने कुछ भाग पर अधिकार कर लिया है, कल को पाकिस्तान मुँह खोलेगा। पाकिस्तान नहीं बनना चाहिए था, यह एक बड़ी गलती हो गयी है। यह हमेशा का सिरदर्द हो गया जवाहरलालजी! राष्ट्र व्यक्तिगत स्वार्थ के ऊपर होता है—इसका सदैव ध्यान रहना चाहिए। दोनों में मैत्री संघ का बनना कठिन है।''

विनोबाजी के विचार जवाहरलालजी को कैसे लगे थे, यह तो वे ही जानें! परन्तु आगामी वर्ष में जवाहरलालजी ने सुरक्षा-विभाग को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया—यह समाचार सुनने को मिला।

विनोबा की अस्वस्थता, विनोबा के उपवास, उनकी महाराष्ट्र-यात्रा तथा बिहार

की तूफानी यात्रा! इस दौरान विनोबाजी को कभी-कभी जवाहरलाल का स्मरण हो आता था! उनके दो पत्र भी आ गये थे।

और एक दिन जवाहरलालजी का फोन आया, "विनोबाजी! मैं देश की समस्याओं पर आपसे सविस्तार चर्चा करना चाहता हूँ। आप एक बार दिल्ली आ जाएँ तो अच्छा हो! मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

फिर श्रीमन्नारायण ने भी प्रधानमन्त्री निवास से विनोबा को फोन किया परन्तु विनोबा कुछ नहीं बोले। तब श्रीमन्नारायण और पण्डितजी को असीम आश्चर्य का धक्का लगा। पण्डितजी ने दु:खावेग से कहा, "मेरी सारी आशाएँ समाप्त हो गयी हैं। मुझको ऐसी प्रतीति हो रही है जैसे मैं गहराई में डूबता जा रहा हूँ।"

श्रीमन्नारायण ने ये बातें विनोबा को बतायीं भी परन्तु विनोबा कुछ नहीं बोले।

कारागार से मुक्त होने के बाद शेख अब्दुल्ला विनोबा से मिलने पवनार में आये। उस समय जयप्रकाश नारायण भी उपस्थित थे। जब चीन का आक्रमण, कश्मीर का आतंकवाद आदि विषयों पर चर्चा हुई तब विनोबा ने कहा, "साम्प्रदायिकता को स्थान नहीं मिलना चाहिए। उस आधार पर देश का विभाजन भी नहीं होना चाहिए। राजनीति का आधार छोड़कर आध्यात्मिक दृष्टि से भी इस समस्या का समाधान हो सकता है।"

विनोबा का कथन लोग समझ नहीं पाते। वे प्रश्न करते। विनोबा उनको समझाने का प्रयत्न करते। फिर भी वे नहीं समझ पाते तो विनोबा चिढ़ जाते।

आजकल ऐसा बार-बार होने लगा था। तेरह वर्ष की पदयात्रा और दीर्घ अस्वस्थता तथा पुन: दो वर्ष की बिहार की तूफानी यात्रा—इससे शारीरिक थकान व्याप गयी थी। परन्तु विनोबा इसको प्रकट नहीं होने देते थे। लोगों के मानसिक अज्ञान से तथा परिश्रम को टालने की प्रवृत्ति से वे चिढ़ जाते थे।

निर्मला दीदी, महादेवी दीदी, मीरा दीदी, कुसुम दीदी आदि सभी लोगों की सहायता करतीं। विनोबा की बातें उनको समझातीं।

कभी-कभी विनोबा कहते, "कश्मीर की कोई समस्या है ही नहीं। कश्मीर भारत का ही है। भारतीय तन्त्र के अनुसार ही वहाँ शासन होना चाहिए। वहाँ युगों-युगों से भारतीय संस्कृति का ही वर्चस्व रहा है।"

यह सुनकर लोगों के मन प्रसन्न हो जाते।

पण्डितजी विनोबा से बहुत बातें करना चाहते थे। परन्तु विनोबा उनके पास जा नहीं रहे थे। पण्डितजी बार-बार बुला रहे थे, फिर भी विनोबा नहीं जा रहे थे, यह एक आश्चर्य की बात थी। जयदेव ने इसका कारण पूछा तब विनोबा बोले, "मेरी इच्छा ही नहीं हो रही है!" और इच्छा के विपरीत वे कुछ करना नहीं चाहते थे!

परन्तु सभी की इच्छा थी कि विनोबा पण्डितजी के पास जाएँ। कुन्दरजी दीवान

ने विनोबा से कहा भी, "बाबा! पण्डितजी की तबीयत आजकल ठीक नहीं है!"

विनोबा ने कहा, "तो उनसे कहो कि डॉक्टर के पास जाएँ!"

कुन्दरजी बोले, "यह बात नहीं है। वे आपसे मिलना चाहते हैं!"

विनोबा ने कहा, "परन्तु मेरी इच्छा नहीं है।"

कुन्दरजी बोले, "मैं समझता हूँ कि फिर भी आपको एक बार अवश्य जाना चाहिए।"

विनोबा ने हाथ में खुरपी ले ली और बगीचे की ओर चले गये।

27 मई 1964 को पण्डितजी का देहान्त हो गया! यह वार्ता सुनते ही विनोबा कुछ न कहकर गीतापाठ करते रहे। लगभग छह दिनों के बाद उन्होंने कहा, "एक तेजस्वी तारा टूट गया। अन्त तो होना ही है। परन्तु अन्त कैसा हो, इसके लिए जीवनभर मूल्य चुकाना पड़ता है। मरते हैं साधारण लोग! मरने के बाद भी जो शेष रह जाते हैं वे होते हैं असाधारण लोग! पण्डितजी के जाने से मुझको तीव्र दुःख हो रहा है।"

विनोबा पण्डितजी की स्मृतियों में खोये हुए थे। बड़ी देर बाद उन्होंने आँखों के आँसू पोंछे और वे उठे। उठते-उठते उनके मन में विचार आया—राजगृह में सर्वोदय-सम्मेलन में बिहार राज्य ही दान करने की घोषणा जब हुई थी तब विनोबा की आँखें समाधान से सजल हो उठी थीं। आँखें सजल हो जाएँ तथा ईश्वर की असीम अनुभूति से विनम्रता आए—ऐसे अवसर बार-बार आ रहे थे। राजगृह के सर्वोदय-सम्मेलन में विनोबा ने कहा था, "मेरे पास आपको देने योग्य कुछ नहीं है। एक वस्तु मेरे पास है। वह है निःस्वप्न-निश्चिन्त निद्रा। प्रगाढ़ निद्रा में मनुष्य मनुष्य नहीं रहता है। परमात्मा की प्राप्ति का यह अवसर ही मैं आपको दे सकता हूँ। मन में प्रसन्न भाव रखिए!"

एक स्मृति से दूसरी स्मृति निकल रही थी...मन प्रसन्न हो गया था। और शरीर भी हलका हो गया था। विनोबा उठकर दालान में आये। रात का दूसरा प्रहर प्रारम्भ हो गया था। वातावरण निस्तब्ध था।

ऐसा ही एक दिन आएगा जब सब शान्त हो जाएगा। स्मृतियों के इस संसार से विदा लेकर मुझको दूर जाना पड़ेगा। मुझको जीवन का मोह नहीं था। परन्तु उत्कट, अनुपम, शिवमंगल, मोक्षदायी मृत्यु का मोह अवश्य है।

हे आनन्दनिधि मृत्यो!
तुम अपने पैरों से चलकर आओ।
तुम्हारे स्वागत को मैं
आतुर हूँ, प्रस्तुत हूँ!

विनोबा दालान से पुनः कोठरी में आ गये। आज उनके मन में आनन्द-समुद्र की तरंगें उठ रही थीं।

26

रातभर विनोबा सदैव की भाँति सोये थे। परन्तु आजकल उठने पर पहले जैसी प्रसन्नता नहीं होती थी। क्या हो रहा है, यह अस्वस्थता क्यों है, इसका विचार करते हुए वे दिनचर्या में लगे रहते। वे परमधाम आश्रम में ही रह रहे थे। क्षेत्रसंन्यास पहले ही ले लिया था। स्थूल रूप से सूक्ष्म में जाने का उनका प्रयत्न भी सफल हो गया था। मन में किसी की स्मृति आ जाने पर वह व्यक्ति ऐसा दौड़ा चला आता था मानो बेतार का सन्देश मिल गया हो!

कभी-कभी विनोबा को श्रीरामकृष्ण का स्मरण हो आता। उनको काली माता दिखाई देने लगती। इसी उत्कटता से उन्होंने श्रीकृष्ण और श्रीराम के दर्शन भी किये थे। सुनने में यह चमत्कार लगता था, आभासात्मक प्रयोग लगता था। मन की तीव्रतर व्याकुलता निश्चय ही ईश्वर का स्वरूप घटित कर सकती है।

फिर भी अस्वस्थता समाप्त नहीं हो रही थी। अस्वस्थता का कारण भी उनकी समझ में नहीं आ रहा था। विनोबा विचार कर रहे थे, 'देह जीर्ण हो गया है। ठीक अस्सी वर्ष का परिपक्व हो गया है। अशक्त देह में अब रक्त-मांस के बजाय केवल चैतन्यरूप ईश्वरत्व है। परन्तु मन अब भी निश्चयपूर्व कार्य कर सकता है।'

देश में कत्लखाने बढ़ रहे थे। असम में और फिर सारे देश में वृक्षों का काटना रोकने के लिए 'चिपको' आन्दोलन हुआ था। 'जंगल सत्याग्रह' हुए थे। विनोबा के मन में विचार आया कि इन कत्लखानों में सैकड़ों गायें काटी जा रही हैं, इसके लिए जन-आन्दोलन होना चाहिए! बन्दूक के कारतूस में गाय की चमड़ी का प्रयोग होता है—यह पता चलने पर स्वतन्त्रता-संग्राम प्रारम्भ हो गया था, जो डेढ़ सौ वर्षों तक चला था। जिस गाय को भारतीय संस्कृति में माता का स्थान दिया गया है वह वास्तव में ही कामधेनु है। उसको हजारों की संख्या में रोज कत्ल किया जा रहा था!

वास्तव में गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगना चाहिए था। यह बात विनोबा के मन में जब आयी तब इन्दिरा गाँधी प्रधानमन्त्री थीं। विनोबा ने इन्दिरा गाँधी को इस सम्बन्ध में लिखा था। उनका कोई उत्तर न आने पर विनोबा को आश्चर्य हुआ था। वे इन्दिरा को मानसकन्या मानकर उनसे प्रेम करते थे। जब इन्दिरा गाँधी ने शासन-सूत्र हाथ में लिये थे, तब विनोबा ने उनका अभिनन्दन करते हुए कहा था, "भारत में दो नारियों ने इतिहास रचा है। अहल्याबाई होलकर ने सत्य और न्याय की प्रतिष्ठापना के लिए अवसर आने पर अपने लड़के को भी हाथी के पैरों में डाल दिया था और स्वयं रणसंग्राम में कूद पड़ी थीं। ऐसे ही झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई भी राज्य की रक्षा के लिए जीवन बलिदान कर गयी। इन्दिरा! आज तुमको वर्तमान का निर्माण करना है।

संसार आज अत्यन्त निकट आ गया है तथा संसार के भावात्मक और व्यावसायिक धागे-डोरे एक-दूसरे में लिपट गये हैं। तरल संवेदनशील घटनाएँ हो रही हैं। ऐसे समय में तुम जैसी कुशल संगठनकर्त्री तथा सुव्यवस्थापिका की राष्ट्र को नितान्त आवश्यकता है जो राष्ट्र को कार्यकुशल विज्ञानवादी भूमिका प्रदान कर सकेगी।''

इन्दिरा गाँधी का आभार-प्रदर्शन का ऑफिशिअल पत्र आया तब विनोबा ने अपने मन को समझा लिया कि इन्दिरा इस समय उत्तरदायित्वों के बोझ से दबी हुई है, कुछ समय बीत जाने पर वह पत्र लिखेगी।

इन्दिरा गाँधी से पहले लालबहादुर शास्त्री प्रधानमन्त्री हुए थे। वे भी तत्काल विनोबा से मिलने आये थे। विनोबा के चरण स्पर्श करके शास्त्रीजी ने कहा था, ''आपके आशीर्वाद से यह उत्तरदायित्व मैंने ग्रहण कर लिया है। राष्ट्र के हित की दृष्टि से दो भाग हैं—एक देश की आन्तरिक सुव्यवस्था और दो बाहरी देशों से सुरक्षा।''

शास्त्रीजी की सात्त्विक ठिगनी मूर्ति, उनके स्वच्छ विचार, राष्ट्र के प्रति उनकी आस्था तथा बड़ों के प्रति उनके सम्मान को देखकर विनोबा सुखी हुए।

विनोबा ने उनसे कहा, ''शास्त्रीजी! अब आप प्रधानमन्त्री पद पर विराजमान हैं। आप विचार और आचार का समन्वय कीजिए। शास्त्रीजी! पड़ोसी राष्ट्रों से मित्रता के समझौते कीजिए। सुरक्षा-व्यवस्था ऐसी रखिए कि अन्य राष्ट्र धाक मानें। सुरक्षा-व्यवस्था सुदृढ़ होने पर कोई भी हमारी ओर वक्र दृष्टि से देखने का साहस नहीं कर सकेगा। कैसी भी हिंसा मत होने दीजिए। अहिंसा को शक्तिशाली बनाइए। शान्ति का प्रसार कीजिए!''

शास्त्रीजी को हँसते देखकर विनोबा ने पूछा, ''हँस क्यों रहे हैं?''

शास्त्रीजी बोले, ''राष्ट्रों से समझौते कीजिए, शान्ति का प्रसार कीजिए और अहिंसा को सशक्त बनाइए—ये परस्पर विरोधी नहीं हैं क्या? और फिर देश की चिन्ता आप आज भी कर रहे हैं?''

विनोबा ने कहा, ''कहावत है न कि श्मशान में पहुँचने पर भी मोह नहीं छूटता है। राष्ट्र का, ईश्वर का, अहिंसा का, सत्य का और सुन्दरता का मोह मुझको अब भी है। शास्त्रीजी! आपकी प्रतिमा स्वच्छ है। उसको वैसी ही रहने दीजिए। दल के नेता निःस्वार्थ तथा समाज के हितचिन्तक होने चाहिए। राजनीति में भ्रष्टाचार करके सिर उठाकर चलने में लज्जा आनी चाहिए। लोकतन्त्र में लोगों का अधिकार बहुत बड़ा होता है। दल के नेताओं को सत्ता के बल पर लोगों को खरीदना नहीं चाहिए।''

शास्त्रीजी भावाभिभूत हो गये थे।

विनोबा के मन में शास्त्रीजी के प्रति अद्‌भुत सात्त्विक भाव उत्पन हो गया।

शास्त्रीजी की ताशकन्द में मृत्यु होने पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए विनोबा ने दुःख से कहा था, ''एक स्वच्छ प्रतिमा काल के गाल में समा गयी। राष्ट्र

की बहुत हानि हुई है।"

फिर इन्दिरा गाँधी प्रधानमन्त्री बनीं।

विनोबा विचार कर रहे थे कि प्रधानमन्त्री बनने के बाद इन्दिरा गाँधी उनसे मिलने आएँगी और उनसे कहेंगी, "बाबा! तुम्हारी मानसकन्या आज प्रधानमन्त्री हो गयी है। उसको आशीर्वाद दो!"

परन्तु वे नहीं आयी थीं। विनोबा के मन के कोने में टीस कसकी थी।

फिर विनोबा ने स्वयं ही एक पत्र लिखा :

'प्रिय इन्दिरा गाँधी!

प्रधानमन्त्री पद को सँभाले हुए तीन वर्ष हो गये। समाचार-पत्रों में प्रतिदिन दर्शन हो जाते हैं। बाबा अब वृद्धत्व की ओर झुकने लगा है। प्रधानमन्त्री बनी हुई मानसकन्या के लिए वह आशीर्वाद और शुभकामनाएँ भेज रहा है।

तुम्हारा

बाबा'

पत्र लिखकर विनोबा उठे। तीन-चार पंक्तियों के पत्र से ही उनको सन्तोष मिल गया था। योगी बिरागी विनोबा के मन में इन्दिरा के प्रति स्नेहभाव था। तभी तो उनको इन्दिरा पर क्रोध भी आया था परन्तु फिर क्रोध हटाकर वे पत्र के द्वारा उससे मिलने गये थे।

गाँधीजी के सत्याग्रह-आश्रम में विनोबा ने सामूहिक प्रार्थना सीखी थी। उससे पहले प्रार्थना के नियत समय के महत्त्व का उन्होंने अनुभव नहीं किया था। परन्तु महात्माजी के आश्रम में दो बार प्रार्थना होती थी। प्रार्थना के बाद चर्चा होती थी। इस प्रार्थना का प्रभाव दिनभर मन पर छाया रहता था।

कोई महात्माजी से पूछता, "प्रार्थना में चित्त एकाग्र कैसे होगा?"

तब महात्माजी कहते, "मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करना ही चाहिए। मन सहज ही एकाग्र होनेवाला नहीं है। धीरे-धीरे एक-एक अवयव को भूलने का प्रयत्न करना चाहिए। बाहर के द्वार बन्द कर लेने चाहिए। एक-एक शब्द मन में अंकित होना चाहिए। इतना होने पर फिर मन के कपाट खोलकर अन्तर्यामी ईश्वर के दर्शन करने चाहिए।"

सर्व-धर्म-प्रार्थना में अनेक भाषाओं के लोग सम्मिलित होते थे। तब विनोबा प्राय: यह अनुभव करते कि इससे तो मौन प्रार्थना अच्छी है। उससे प्रत्येक का व्यक्तिगत समाधान तो होगा ही परन्तु मन का भी समाधान होगा। भूदान यात्रा में पहले सामूहिक प्रार्थना ही होती थी। स्थितप्रज्ञ लक्षण के श्लोक बोले जाते थे। परन्तु बाद में ध्यान में आया कि सामूहिक मौन प्रार्थना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

सामूहिक प्रार्थना के बाद मौन प्रार्थना विनोबा स्वयं के लिए भी करते। उसमें

प्रिय व्यक्तियों के कल्याण के लिए तथा राष्ट्रहितार्थ प्रार्थना का भी समावेश रहता था। मौन का तथा मौन प्रार्थना का विनोबा से बहुत पुराना सम्बन्ध था।

नये-नये प्रयोग करते समय अपना नाम भूलकर 'रामहरि' लिखना और फिर एक दिन 'रामहरि' लिखनेवाली लेखनी को भी दूर कर देना, कम भोजन करना आदि प्रयोग करते हुए अब विनोबा ने एक वर्ष का मौन रखने का प्रयोग करने का निश्चय किया।

गीता जयन्ती, ईद और क्रिसमस—ये तीनों धार्मिक तिथियाँ एकत्र आ गयीं। उसी दिन विनोबा ने अपना मौन संकल्प प्रकट कर दिया।

विनोबा विचार करते, इस मौन संकल्प के पीछे मेरा कोई स्थूल या सूक्ष्म विचार नहीं है। मुख्य कारण कोई है तो वह है गीता का आठवाँ अध्याय। अपने अन्त समय में ईश्वर का स्मरण कर सकूँ और जीवन का अवगाहन कर सकूँ, यही इच्छा है। सच तो यह है कि अन्त समय में ईश्वर का स्मरण तभी हो सकता है जब उसका स्मरण सदैव होता रहे। देखा जाय तो जीवन कितना अनिश्चित है! इसलिए प्रत्येक क्षण मृत्यु का है, यह मानकर ईश्वर-स्मरण और ईश्वर-साधना करनी चाहिए।

मौन व्रत ले लेने पर मीरा दीदी ने पूछा, "बाबा! कैसा लग रहा है?"

विनोबा ने संकेत से कहा, बहुत-बहुत शान्त!

न बोलने के कारण संक्षिप्त संवाद हुए थे।

विनोबा निरन्तर स्वाध्याय करते रहते थे। मौन प्रार्थना करते रहते थे। चरखा चलाते रहते थे तथा बाग में काम करते रहते थे। पढ़ना समाप्त होने पर ध्यान और चिन्तन प्रारम्भ हो जाता।

एक और अनुभव उनको हो रहा था। रात में मौन प्रार्थना के पश्चात् शयन करने पर अनेक बार अद्‌भुत साक्षात्कार होते थे। मौन का अनुभव दृढ़-दृढ़तर होता जाता।

आजकल बातें न करने से विनोबा के मन में इतने नये विचार और कल्पनाएँ आतीं कि वे स्वयं ही विस्मित होते। एक और बात हुई थी। बोलने के समय की बचत होने के कारण भरपूर पाठन और भरपूर ध्यान तथा विचार के साथ ही स्वच्छता की ओर ध्यान आकर्षित होने लगा था। स्वच्छता करते-करते मन एकाग्र होने लगा और स्वच्छता-अभियान ने ध्यानयोग का ही रूप धारण कर लिया!

एक बार महात्माजी ने विनोबा से कहा था, "दूसरों के छोटे लगनेवाले गुणों को भी बड़ा मानना चाहिए तथा स्वयं के छोटे लगनेवाले दोषों को भी बड़ा मानना चाहिए। स्वयं को कभी क्षम्य नहीं मानना चाहिए। अपने पक्ष में कभी निर्णय नहीं देना चाहिए!"

एक बार एक साधु पुरुष विनोबा को मिल गये।

विनोबा ने उनसे पूछा, "परमेश्वर ने प्रत्येक मनुष्य में गुण-दोष क्यों बनाये हैं?"

उन्होंने कहा, "बात यह है कि परमेश्वर बहुत स्वार्थी है।"

विनोबा ने पूछा, "सो कैसे?"

वे बोले, "यदि उसने निर्दोष मनुष्य का निर्माण किया होता तो उसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया होता। इसलिए अपने अस्तित्व को रखने के लिए उसने ऐसा किया है।"

उस समय विनोबा ने इसको विनोद समझा था। परन्तु आज उनको उसका ठीक अर्थ ज्ञात हो गया था। गुण का अर्थ ही ईश्वर है। अनेक दोषों से युक्त व्यक्ति में भी एकाध गुण होता है अर्थात् ईश्वर का वास होता है। परमेश्वर का अंश प्रत्येक में होता ही है। महापुरुष में भी दोष होते ही हैं। परन्तु उनके पास गुणाधिक्य होता है।

विनोबा स्वयं के लिए नित्य नये प्रयोग करते। उनका जीवन एक प्रयोगशाला बन गया था। रात में कभी आँख खुल जाने पर वे ध्यान-धारणा के लिए बैठ जाते। एक दिन ध्यान करते हुए उनके मन में आया, 'मनुष्य जो कल था वह आज नहीं है। सोकर उठने का अर्थ ही है नये दिन की शुरुआत करना। कल का मनुष्य पुन: नये काम में लगता है। यही सच्चा नया जीवन है। इसके लिए प्रतिदिन सूर्योदय के साथ नया मन भी तैयार करना चाहिए।'

विनोबा प्रतिदिन मन को अलग-अलग बातें समझाते—ऐसा कर, वैसा कर, कल का व्यवहार अलग था, आज का अलग है। स्नेह कर—इस पर, उस पर और सारे विश्व पर! जो तेरे पीछे दौड़ रहे हैं उन असंख्य लोगों पर स्नेह कर! तेरे लिए तेरे साथ जो कार्य कर रहे हैं उन पर स्नेह कर। शिवाजी और बालकोबा आज तुम्हारे साथ ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए कार्य कर रहे हैं, उन पर प्रेम कर। गोपालराव काले, रघुनाथ धोत्रे, बाबाजी तथा बगाग्रम इन मित्रों पर प्रेम कर। ये कॉलेज-जीवन से ही तेरे साथ हैं। वल्लभस्वामी तेरह वर्ष का था तब से अट्ठावन वर्ष तक तेरे साथ रहा। वर्धा में बालूकर पानसे, दत्तोबा, रणजीत, रामभाऊ, गिरिधर गोपाल, कुन्दर दीवान आदि अनेक लोग प्रेम के अधिकारी हैं। ब्रह्मविद्या मन्दिर में दूर दूर से आनेवाली बहिनें तथा कन्याएँ सब पर अपना स्नेहछत्र रख!

स्नेहवृक्ष का अर्थ है वटवृक्ष—जिसकी प्रत्येक शाखा पर सैकड़ों पक्षियों का निवास होता है। बरगद की जटाएँ नीचे धरती में पुन: मूल धारण कर लेती हैं! अनेक बार स्नेह की असीमितता हम जान ही नहीं पाते। स्नेह से जीवन परिपूर्ण होता है—इस बात पर विनोबा को अटल विश्वास था।

बचपन से ही कोई-न-कोई व्रत रखना विनोबा का स्वभाव ही था। जो वस्तु अधिक अच्छी लगने लगती तो फिर उसको छोड़ देते। फिर वह उनका प्रिय दही-भात हो या मिष्टान्न हो। जो अच्छा नहीं लगता था, फिर वे उसको खाना प्रारम्भ कर देते—जैसे करेले का साग!

एक बार शिवाजी महाराज जब तोरण दुर्ग पर चढ़ गये तब उनके ध्यान में आया कि यहाँ केवल चावल ही मिलते हैं। साथ कुछ न होने से केवल अलोना भात खाना पड़ा। तब पता चला कि शरीर को नमक की कितनी आवश्यकता होती है। शरीर की अपेक्षा जीभ उसकी अभ्यस्त है। ऋषि-मुनि यों ही संयम का पालन नहीं करते थे! यों ही व्रताचरण नहीं करते थे! विनोबा ने भी एक समय नमक खाना छोड़ दिया।

आहार के प्रयोग करते समय विनोबा ने चार बातों का विचार किया—अध्यात्म, आरोग्य, स्वदेशी धर्म और अर्थशास्त्र। आध्यात्मिक दृष्टि से व्रताचरण-मितभोजन महत्त्वपूर्ण है। कुछ भी न खाना अच्छा है। इस खाने से भी स्वास्थ्य बिगड़ता है। इसलिए लोग विनोबा से पूछते तब विनोबा उत्तर देते, "मैं आकाश खाता हूँ।"

"अर्थात्?"

"अर्थात् शून्य खाता हूँ।"

"अर्थात्?"

"अर्थात् लगभग कुछ नहीं खाता हूँ।"

"आप कहते हैं कि वायु खाता हूँ तो... ?"

"उसका अर्थ भी लगभग यही है।"

"इतना कम खाकर स्वास्थ्य कैसे टिका रहेगा?"

विनोबा कहते, "शरीर को बहुत थोड़ी आवश्यकता होती है। हम लोग जीभ का कहना मानकर खाते हैं। जब हम उपवास करते हैं तब मन में धार्मिक विधि को भंग न करने की भावना होती है, इससे मन पर नियन्त्रण भी होता है। इस नियन्त्रण को मन पर स्थायी रखने का अर्थ है मन में जप करते रहना। इसी का अर्थ है आकाश और वायु का भक्षण करना।"

प्रश्नकर्ता कहता, "परन्तु कम खाने से स्वास्थ्य कैसे टिकेगा?"

विनोबा उत्तर देते, "इस शरीर में पंचमहाभूत व्याप्त हैं, इसलिए पंच महाभूतों का भी प्रयोग आवश्यक है, यह मेरा विचार है। कम खाना, वायु-भक्षण करना, निरन्तर जल पीते रहना तथा सूर्यशक्ति का प्रयोग करना, इससे शरीर का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। मेरे ये विचार ऋषि-मुनियों के आचरण पर आधारित हैं। पूर्व ऋषियों की दीर्घायु का आधार उनकी योगनिष्ठा तथा पंचमहाभूतों का स्वीकार ही था।"

एक बार विनोबा ने हँसकर कहा था, "अरे भाई! क्यों मेरे पीछे लगते हो? मैं चौबीस घण्टों में दो घण्टे सोकर भी काम चला सकता हूँ और दस घण्टे भी प्रगाढ़ निद्रा में रह सकता हूँ। उपवास, कम खाना, बिल्कुल न खाना—आदि प्रयोग भी मैं करता रहता हूँ।"

किसी ने पूछा, "ये प्रयोग आप कब तक करेंगे?"

विनोबा कुछ न कहकर हँस पड़े।

एक बार एक युवती आश्रम को देखने कलकत्ते से आयी। उसने विनोबा से पूछा, "आपने मौन क्यों धारण कर लिया है?"

विनोबा ने लिखकर बताया, "जब मैं बोलता था तब बोलते समय भी मौन हो जाता था और अब मौन धारण कर लेने पर भी बोल सकता हूँ।"

वह युवती हँसकर बोली, "बाबा! अपने वाक्य का अर्थ स्पष्ट करेंगे?"

बाबा ने पुनः स्लेट लेकर उस पर लिखा, "यदि अर्थ समझ में नहीं आता है तो मौन रहना ही अच्छा है!"

वह युवती बुद्धिमती थी। वह विनोबाजी के और महात्माजी के जीवन पर लेख लिखना चाहती थी। वह एक समाचारपत्र की संवाददाता थी। उसने अपना 'बायो डाटा' विनोबा के आगे रख दिया। विनोबा ने स्लेट पर लिखा, "शिक्षण और उपाधियों से जीवन का ज्ञान नहीं होगा।"

सत्य यह था कि विनोबा ने मौन धारण करने से पहले ही कहा था, "मैं जैसे बोलना बन्द करूँगा, वैसे ही लिखना भी बन्द करूँगा। 'रामहरि' के अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखूँगा।"

परन्तु लोगों को मौन अच्छा नहीं लगता था। और फिर जो लोग दूर से आते थे उनसे बातें भी न करके उनको लौटा देना तो—आखिर थोड़ा-बहुत लिखकर विनोबा उत्तर देते या फिर 'रामहरि' लिख देते!

उस युवती ने कहा, "बाबा! देश की दशा पर बात करना चाहती थी। मौन का अर्थ भी जानना चाहती थी। मैं कब मिलने आऊँ?"

विनोबा ने 'रामहरि' लिखकर सम्भाषण को विराम दे दिया।

एक दिन जयप्रकाशजी का पत्र आया। सर्वोदय को समर्पित एक कर्मयोगी मानव की देश के प्रति व्याकुलता उस पत्र में थी। अन्त में लिखा था, 'आचार्य कुल की स्थापना आपने की। उनको राष्ट्रीय सम्मान मिले—यह आपकी प्रामाणिक इच्छा थी। परन्तु बाबा! वर्तमान समय में उनकी ऐसी स्थिति नहीं है कि वे ज्ञानी आचार्य देश की नैया पार लगा दें! मैं आपसे मिलने आ रहा हूँ!'

विनोबा के मौन की बात जयप्रकाशजी को ज्ञात हो गयी थी। फिर भी वे मिलने को आ रहे थे—इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि सारी परिस्थिति उनको असह्य लग रही थी।

जयप्रकाश आये। रात में पवनार आश्रम में रुके। परन्तु विनोबा को केवल नमस्कार करके वे कोठरी से बाहर आ गये। रातभर विनोबा व्याकुल रहे। प्रातः प्रार्थना के समय विनोबा मौन थे। प्रार्थना के बाद विनोबा अपनी कुटिया में जाकर बैठ गये। सब विनोबा को घेरकर बैठ गये। सामने दरी पर जयप्रकाश बैठ गये। प्रातःकाल के पौने नौ बज रहे थे।

जयप्रकाश ने कहा, "बाबा! देश की दशा आप जानते ही हैं। आप इस ओर

ध्यान देकर कोई उपाय बता सकेंगे क्या? कम-से-कम इन्दिरा गाँधी को!''

''अवश्य बताऊँगा जयप्रकाशजी!''

मौनव्रत धारण करने के तीन महीनों के बाद विनोबा की सुस्पष्ट मधुर आवाज सबने सुनी। और तब प्रसन्नता से सबकी आँखें सजल हो उठीं।

जयप्रकाश व्याकुलता से कह रहे थे, ''आज राजनीति भ्रष्ट हो गयी है। लोगों का ध्यान सत्ता प्राप्त करने पर रहता है। भूदान आन्दोलन मन्द हो गया है। भूदान में मिली हुई भूमि का हिसाब भी ठीक-ठाक नहीं है। मैं आपको कितनी समस्याएँ बताऊँ बाबा!''

विनोबा उनको समझाते हुए बोले, ''जयप्रकाशजी! कोई भी स्थिति एक-सी नहीं रहती है। समय बदलता जाता है। समस्याएँ धीरे-धीरे समाप्त हो जाती हैं। और यदि कभी बढ़ती हैं तो उनके लिए जन-आन्दोलन करना पड़ता है। ये सब जीवन के प्रयोग हैं। मुझको प्राप्त करने के लिए अब कुछ भी शेष नहीं रहा है। जो कुछ प्राप्त करना था वह सत्तर-बहत्तर वर्ष की अवस्था तक पूर्ण हो गया है। परन्तु जब तक देह से मन नहीं निकलता है तब तक मेरे कोई-न-कोई मनोरंजन के प्रयोग चलते ही रहेंगे। कोई कर्तव्य शेष नहीं है, यह सन्तोष की बात है। चिन्ता नहीं है, चिन्तन चलता रहता है।''

जयप्रकाशजी चले गये। विनोबा का मौनव्रत फिर प्रारम्भ हो गया। उनको जो कुछ कहना होता वह स्लेट पर लिखकर कह देते थे।

एक दिन केरल से सर्वोदय आश्रम के एक सज्जन आये। विनोबा को प्रणाम करके वे चटाई पर बैठ गये। बहुत समय बीतने पर भी वे कुछ नहीं बोले। विनोबा पढ़ने में मग्न थे। सम्पूर्ण पेपर पढ़ लेने पर विनोबा ने स्लेट पर लिखकर पूछा, ''काम हुआ नहीं क्या?''

''मुझको आप पर गुस्सा आ रहा है!'' उसने चिढ़े स्वर में कहा।

''क्यों?'' विनोबा ने संकेत से पूछा।

''क्योंकि जब कुछ कहने का समय होता है तब आप मौन रख लेते हैं!''

विनोबा ने संकेत किया, ''आप कहिए!''

वह बोला, ''बाबा! गोवंश की हत्याएँ बढ़ने लगी हैं। कलकत्ता, केरल और बम्बई के कत्लखानों में हजारों गायें मारी जा रही हैं।''

विनोबा कुछ नहीं बोले।

उसने कहा, ''कोई उपाय?''

विनोबा ने लिखा, ''रामहरि।''

वह व्यक्ति झुँझलाकर बोला, ''केवल रामहरि से कुछ नहीं होगा बाबा!''

विनोबा ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर आकाश की ओर देखा। वह व्यक्ति पुनः

झुँझलाकर बोला, "ईश्वर क्या करेगा! अपनी समस्या हमको ही सुलझानी चाहिए न?"

विनोबा ने हाथ जोड़कर उसको शान्त रहने का तथा ईश्वर पर विश्वास रखने का परामर्श संकेत से दिया। वह व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं हुआ।

इन्दिरा गाँधी का कार्यकाल समाप्त हुआ। तदनन्तर चुनाव सम्पन्न हुए।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इन्दिरा गाँधी के चुनाव को अवैध घोषित कर दिया। इन्दिरा गाँधी ने शक्ति का दुरुपयोग कर मनमानी की है—देश में सर्वत्र इस भावना का प्रसार होने पर उनके विरोध में सभाएँ होने लगीं। देश में खलबली मच गयी। विरोध अराजकता में बदलता जा रहा था, यह देखकर इन्दिरा गाँधी ने आपातस्थिति घोषित कर दी। उसकी तीव्र प्रतिक्रिया जनमानस में हुई।

इस सम्बन्ध में कुछ पत्रकार विनोबा से मिलने आये और उन्होंने पूछा, "आपने एक बार कहा था कि देश की प्रधानमन्त्री एक बुद्धिमती स्त्री है। आज आपका क्या मत है?"

विनोबा ने लिखकर दिखाया, 'रामहरि।' वे बोले नहीं। फिर अनेक प्रश्न उनसे किये गये—

"इन्दिरा गाँधी ने यह अच्छा किया है क्या?"

"इन्दिरा गाँधी ने अवैध ढंग से चुनाव लड़ा, यह उचित है क्या?"

"स्वार्थ के लिए देश का प्रधानमन्त्री अपनी मनमानी चलाएगा?"

"बाबा! अपनी मानसकन्या को आप कोई सलाह देंगे?"

"बाबा! आपने एक बार मौन छोड़कर जयप्रकाशजी से बातें की थीं। अब हमारे प्रश्नों के उत्तर भी दीजिए न?"

"बाबा! आपके इस मौन का अर्थ आपातकाल का समर्थन भी किया जा सकता है। आपको आपातकाल स्वीकार है?"

विनोबा ने पत्रकारों को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। फिर प्रश्न किया गया, "बाबा! केवल एक शब्द का संकेत कर बता दीजिए—आपातकाल आपको स्वीकार है या नहीं?"

विनोबा ने स्लेट पर लिखा, 'रामहरि।'

पत्रकार चले गये। परन्तु प्रतिदिन कोई-न-कोई आता और आपातकाल के सम्बन्ध में पूछता।

एक दिन वसन्तराव साठे आये। मन्त्री महोदय का आगमन आश्रम में नयी बात नहीं थी। परन्तु अब साठे मन्त्री महोदय से विनोबा क्या कहेंगे और कुछ न कहने पर साठेजी क्या अनुभव करेंगे—यह समस्या आश्रमवासियों के सामने थी। वसन्तराव साठे विनोबा के साथ कालीन पर बैठ गये और उन्होंने अत्यन्त विनम्र स्वर में पूछा, "बाबा!

इस आपातकाल को क्या कहें?"

विनोबा ने स्लेट पर लिखा, 'अनुशासनपर्व।'

वसन्तराव साठे अनुशासनपर्व और आपातकाल का समन्वय नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने अर्थ निकाला कि आपातकाल अनुशासनपर्व है। वे अनेक प्रश्न पूछना चाहते थे परन्तु वे मन में ही रह गये। वसन्तराव साठे चले गये।

प्रात:काल विनोबा प्रार्थना के समय पालथी लगाकर हाथ जोड़कर बैठे थे।

अचानक उनके हाथ-पैर बड़ी जोर से कँपकँपाने लगे। कोई और समय होता तो वे आवाज लगा देते। आज वे सबसे पीछे बैठे हुए थे। कुछ ही देर में उनका शरीर अकड़ने लगा। जैसे-तैसे वे उठकर खड़े हुए और उनका सन्तुलन बिगड़ गया। वे गिर पड़े।

कालिन्दी ने पूछा, "बाबा! बाबा!! क्या हुआ?"

परन्तु वे बोल नहीं सके! सब लोगों ने मिलकर उनको पलंग पर लिटाया। डॉक्टर आये। उन्होंने निमोनिया का निदान किया। बहुत दिनों से वे ठण्ड से ग्रस्त थे।

किसी ने कहा, "मौन धारण कर लेने के कारण पता नहीं चल पाया।"

डॉक्टर ने कहा, "परन्तु इनको निमोनिया का सीरियस अटैक हो गया है।"

विनोबा को बड़ा भारी कफ हो गया था। ज्वर और खाँसी भी बढ़ गयी थी। सभी कष्ट वे चुपचाप सहन कर रहे थे। उनके मुख पर प्रसन्नता ज्यों-की-त्यों थी। उनका एक वाक्य सबको याद रहता था—'देह का दु:ख देह को भोगने दो। मन को कुछ नहीं हुआ। वह तो प्रसन्न है।' परन्तु देह दुर्बल होती जा रही थी। खाँसी आने पर सारा शरीर काँप उठता। कफ निकल नहीं रहा था। कुसुम दीदी और निर्मला दीदी उनके पास बैठी रहतीं। विनोबा मुस्कराते रहते। वे संकेत से कहते, 'जाओ अपना-अपना काम करो!' वे अपनी दिनचर्या में परिवर्तन करने को तैयार नहीं थे। परन्तु डॉक्टर उनसे कहते, "बाबा! सारा संसार आपको वन्दनीय और श्रेष्ठ पुरुष समझता है। मैं भी आपका अत्यन्त आदर करता हूँ, परन्तु कृपा करके इस समय आप मेरी बात मान लीजिए। ठण्ड के दिन हैं। प्रात:काल सदैव की भाँति मत उठिए। प्रात:काल स्नान मत कीजिए। जब तक ज्वर है तब तक स्नान करिए ही नहीं। कृपा कीजिए बाबा!"

विनोबा हँसते। उनकी हँसी निर्मल निरागस् थी। डॉक्टर चकित होते।

डॉक्टर कहते, "बाबा! हमको आपकी आवश्यकता है।"

विनोबा आकाश की ओर हाथ उठाते।

डॉक्टर कहते, "ईश्वरेच्छा मैं मानता हूँ। परन्तु मेरे प्रयत्न में आप सहयोग दीजिए।"

भारत के सभी समाचारपत्रों में विनोबा के गम्भीर रूप से अस्वस्थ होने का समाचार छपा। और तब प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी विनोबा से मिलने आयीं। विनोबा

उठकर बैठ गये। इन्दिराजी ने उनका जरा-जर्जर शरीर देखा!

"बाबा!" गद्‌गद होकर उन्होंने कहा, "बहुत दिनों से मैं आना चाह रही थी..."

"ठीक है!" संकेत से विनोबा ने कहा और स्लेट पर लिखा, 'आपातकाल में कैसा चल रहा है?'

इन्दिराजी ने कुछ न कहा। विनोबा ने स्लेट दुबारा दिखायी। तब इन्दिराजी हँस पड़ीं। विनोबाजी भी हँस पड़े। कहने के लिए कुछ बचा ही नहीं था। बहुत देर तक इन्दिराजी बैठी रही थीं।

इन्दिराजी ने कहा, "बाबा! जल्दी ही जब आपका मौन समाप्त हो जाएगा तब मैं बातें करने आऊँगी।"

"देश की स्थिति?" विनोबा ने संकेत से पूछा।

इन्दिराजी बोलीं, "ठीक है। मैं यथाशक्ति प्रयत्न कर रही हूँ। परन्तु एक बात मैं समझ गयी हूँ। उत्तरदायित्व स्वीकार करनेवाले को तोप के मुँह पर खड़ा होना पड़ता है—मानसिक क्लेश सहन करने पड़ते हैं। सब कुछ छोड़कर मैं आपके आश्रम में आ सकूँगी क्या?"

विनोबा ने स्लेट पर लिखा, 'रामहरि।'

इन्दिराजी ने पूछा, "आपको भी मुझ पर सन्देह है?"

विनोबा हँस पड़े।

इन्दिराजी ने गम्भीर होकर कहा, "बाबा! जिसकी नस-नस में राजनीति बह रही है वह इन्दिरा कभी संन्यासिन नहीं हो सकेगी—यह सच है। परन्तु यदि कभी कोई चमत्कार हो गया तो आपके आश्रम के द्वार मेरे लिए खुले रहेंगे न?"

विनोबा पुनः हँस पड़े। उनके मन में आया, 'इन्दिरा! यह कभी सम्भव नहीं होगा। तुम्हारे व्यक्तित्व के हीरे में अधिक कोण हैं परन्तु वैराग्य की ओर झुकनेवाला कोई कोण नहीं है।' उन्होंने कहा कुछ नहीं।

इन्दिराजी उठीं और बोलीं, "बाबा! जल्दी स्वस्थ होइए। देश को आपकी आवश्यकता है। आपके बिना भारत देश अपूर्ण है।"

विनोबा ने नमस्कार के लिए हाथ जोड़े और कभी किसी को बरामदे के बाहर तक पहुँचाने न जानेवाले विनोबा अस्वस्थ होते हुए भी सहारा लेते हुए बाहर के फाटक तक गये! सबके मुख पर आश्चर्य का भाव छा गया था।

विनोबा विचार कर रहे थे, 'मैं अस्वस्थ हूँ, यह पता चलते ही सारे कार्यक्रम छोड़कर इन्दिरा यहाँ आयी, इससे मुझको असीम आनन्द हुआ है।' उनको एक कविता की दो पंक्तियाँ याद आ गयीं :

मित्र! व्याप्त है चारों ओर!
आनन्द ही आनन्द अ-छोर!!

आकाश में, दस दिशाओं में, धरती पर सर्वत्र ही आनन्दस्वरूप ईश्वर प्रकट हो गया है, यह विनोबा अनुभव कर रहे थे। यह आनन्द किस बात का है, यह उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था।

विनोबा का मौनव्रत समाप्त हुआ।

तदनन्तर अपने प्रथम भाषण में विनोबा ने कहा, ''मेरे अनुशासनपर्व का अर्थ लोगों ने, समाचारपत्रों ने और नेताओं ने आपातकाल से जोड़कर एक कोलाहल मचा दिया। वास्तव में इन्दिराजी के आपातकाल का और मेरे मौन का कैसा भी सम्बन्ध नहीं था। आपातकाल से छह महीने पहले से मैं मौन व्रत धारण किये हुए था। उसका आपातकाल से सम्बन्ध जोड़ने के कारण देश में व्यर्थ ही खलबली मच गयी। इन्दिराजी आयीं परन्तु मौन होने के कारण उनसे अधिक बातें नहीं हो सकीं। अस्तु! अनुशासनपर्व का अर्थ मैं आपको बता रहा हूँ। पहले विद्याध्ययन के पश्चात् जब विद्यार्थी गुरुगृह से अपने घर लौटता था तब आचार्य उसको उपदेश देते थे—'एतत् अनुशासनम् एवं उपासितव्यम्।' इसका अर्थ यह है कि 'जीवन में अनुशासन को कभी न छोड़। उस सुन्दर संस्कार की उपासना कर।' अनुशासन का अर्थ संस्कारों का सतत व्रतपालन है। सत्ताधीश शासन करता है। शासन में पक्ष-विपक्ष और गुटबन्दी सदैव रहती है। अनुशासन में अच्छे संस्कार रहते हैं। निर्भय-निर्वैर और निष्पक्ष—यह अनुशासन आचार्य सिखाते हैं। आज अनुशासनपर्व प्रारम्भ हो गया है। भारत में आचार्यों का अनुशासन रहना चाहिए—यह मेरे कथन का अर्थ है।''

अपने मन की बात कहकर विनोबा ने सन्तोष का अनुभव किया।

25 अप्रैल सन् 1976 को विनोबा ने एक पत्रक निकालकर गोवंश हत्या रोकने का अनुरोध किया था। मुख्यमन्त्रियों से लेकर प्रधानमन्त्री तक सबको पत्र लिखे थे।

मुख्यमन्त्री शंकरराव चव्हाण पवनार में आये और उन्होंने विनोबा को सब प्रकार के सहयोग का आश्वासन दिया।

विनोबा ने फिर एक और पत्रक निकालकर घोषणा की—'लगभग साढ़े तीन महीनों के बाद मेरा जन्मदिन है। तब तक यदि गोहत्या बन्द नहीं हुई तो मैं अपने जन्मदिन से आमरण अनशन प्रारम्भ कर दूँगा।'

वैसे सन् 1976 का वर्ष विनोबा की माता का जन्म शताब्दी वर्ष था। माता की स्मृति विनोबा के मन से कभी गयी नहीं। जब से उन्होंने गोहत्या के सम्बन्ध में विचार करना प्रारम्भ किया था तब से माता की स्मृति और अधिक तीव्र हो गयी। कितनी ही जल्दी क्यों न हो, माता स्नान करके तुलसी को जल अर्पण करती तथा भोजन करते

समय पहला ग्रास गाय के लिए रखती। माता कहती, 'विन्या! गाय माता है। उसके उदर में तैंतीस कोटि देव हैं।' उसी गाय को भयंकर कष्ट देकर मारा जाता था—यह विनोबा के लिए असह्य हो रहा था।

गायों की खाल उतारने के लिए उनको उनके ही आकार के गड्ढे में पन्द्रह दिनों तक निराहार रखा जाता था तथा उनकी देह पर खौलता पानी डाला जाता था। जब खाल फूल जाती थी तब जीवित अवस्था में ही उसको उतारा जाता था। फिर उसको मारकर रक्त और मांस की बिक्री की जाती थी। देवनार के कत्लखाने में गायें मशीनों से काटी जाती थीं। ये बातें सुनते समय विनोबा के रोंगटे खड़े हो जाते थे। उनको एक ओर माता और दूसरी ओर गोमाता दिखाई देने लगती। हजारों गायों की सामूहिक हत्या का दृश्य देखकर विनोबा को भोजन भी अच्छा नहीं लगता था। उन्होंने विचार किया, 'आज मेरी अवस्था इक्यासी वर्ष की है। तीन महीने शेष रह गये हैं। अब गोवंश हत्या रोकने के लिए मैं मृत्यु को वरण कर लूँ—यही श्रेयस्कर है। जनसंख्या वृद्धि की भीड़ में मैं अपनी क्षीण आवाज मृत्यु के माध्यम से ही लोगों तक पहुँचा सकता हूँ। अब आमरण अनशन ही एकमात्र मार्ग है। इससे गोहत्या बन्द हो जाए तो ठीक ही है और यदि मेरी मृत्यु हो जाती है तो वह ईश्वरेच्छा है!'

उन्होंने अपने विचार 'मैत्री' मासिक पत्रिका में प्रकाशित किये। और पत्रिका प्रकाशित होते ही सारे अंक पुलिस ने जब्त कर लिये! इसलिए उनके आमरण अनशन की घोषणा का समाचार छापने का साहस समाचारपत्र भी नहीं कर पा रहे थे। विनोबा ने विचार किया, 'आज प्रसार-माध्यम हैं इसलिए हमको ऐसा लगता है। परन्तु गौतमबुद्ध, महावीर, शंकराचार्य के प्रचार के लिए तो समाचारपत्र नहीं थे! अर्थात् प्रचार-प्रसार होता ही रहता है।'

विनोबा प्रतिदिन प्रात:काल प्रार्थना के बाद अपने विचार प्रकट करते। एक दिन उन्होंने आमरण अनशन की घोषणा कर दी और कहा, ''मेरे जन्मदिन में अभी दो महीने हैं। मैं आज से प्रतिदिन आधा भोजन करूँगा। इसका कारण यह है कि उपवास का दबाव शरीर पर एकदम न पड़े। पूर्ण आहार से पूर्ण उपवास तक जाना शायद शरीर सहन न कर सके। यह लम्बी छलाँग हो जाएगी।''

विनोबा ने पत्रक निकालकर कहा कि देश में उपवास और प्रार्थना होनी चाहिए। और ऐसा हुआ भी। जयप्रकाश नारायण का जन-आन्दोलन, गोहत्या-बन्दी का यह आन्दोलन—इनके कारण देशवासियों का ध्यान विनोबा के अनशन की ओर गया। 'इस आयु में विनोबाजी को आन्दोलन नहीं करना चाहिए, आमरण अनशन नहीं करना चाहिए'—यह सन्देश लेकर पत्र प्रधानमन्त्री तक पहुँचे थे। जनता जाग्रत होकर सक्रिय सहयोग करने को तैयार हो रही थी।

22 अप्रैल से विनोबा ने उपवास प्रारम्भ कर दिया। तब सदैव की भाँति 'समाप्तम् जय जगत्' न कहकर उन्होंने कहा, 'आरब्धम् जय जगत्।' गोहत्या के सम्बन्ध में अब तो आन्दोलन प्रारम्भ होगा ही—यह उनकी इच्छा थी।

उपवास के दूसरे ही दिन मोरारजी भाई देसाई मिलने आये। उन्होंने विनोबा को आश्वासन दिया कि संसद के दोनों सदनों में इस पर चर्चा करके संविधान में संशोधन करके गोवध बन्द किया जाएगा। चार दिन पहले प्रारम्भ किया गया अनशन आश्वासन मिलने पर विनोबा ने समाप्त कर दिया।

विनोबा अब थक गये थे। इस बात को वे स्वयं अनुभव करने लगे थे कि अब कार्य करना उनके वश की बात नहीं है। चार दिन का उपवास भी शरीर सहन नहीं कर सका था। मन चैतन्य था परन्तु शरीर जर्जर हो गया था।

वे अपनी कोठरी में विचारमग्न बैठे थे, 'सन्ध्याकाल हो गयी। अब अन्धकार सघन होगा। आकाश में तारे चमचमाएँगे। मन अन्धकार का भेदन कर आकाश के प्रकाश की ओर दौड़ेगा!'

वे बाहर आये। सायं आरती की घण्टी बज रही थी। वे अपने नियत स्थान पर बैठ गये। प्रार्थना प्रारम्भ हो गयी।

27

पकड़ो तो पकड़ में न आए
छोड़ो तो छोड़ते न बने
यत्र तत्र सर्वत्र है ही
वह परब्रह्म!
यहाँ वहाँ जहाँ तहाँ
विमुख होने पर सम्मुख होता है।
सम्मुख होने पर टलता नहीं है!
बैठे लोग, उठकर चले गये
वहाँ रह गया केवल आकाश
आकाश में चारों ओर देखा
तो सम्मुख था वही!

विनोबा 'दासबोध' के बीसवें शतक का अन्तिम अध्याय बोल रहे थे। आज दोपहर में ही वे बरामदे में आकर बैठ गये थे। अक्तूबर महीने में ठण्ड अच्छी पड़ने लगी थी। दोपहर समाप्त हुआ ही था कि सन्ध्या जल्दी-जल्दी सामने आँगन में अवतरित हो गयी। विनोबा बैठे थे। सामने दासबोध था। वह उनको कण्ठस्थ था।

दासबोध, ज्ञानेश्वरी, भगवद्‌गीता आदि सभी ग्रन्थों का परब्रह्म विनोबा के सामने साकार हो रहा था। ब्रह्मचिन्तन करते हुए वे बैठे रहते। समय का ध्यान न रहता। तब कालिन्दी आकर धीरे से कहती, "बाबा! बहुत देर से बैठे हो अब विश्राम कर लो।"

विनोबा हँस पड़ते!

लोग बाबा से कहते, "बाबा! आहार कम मत कीजिए।"

"बाबा! ठण्ड में मत उठिए!"

"बाबा! विश्राम कीजिए!"

विनोबा कहते, "जीवन कार्य समाप्त हो गया है। अब देह को कब तक रोककर रखें? जीवन कार्य समाप्त होने का ज्ञान होते ही ज्ञानेश्वर ने संजीवन समाधि ले ली! युवावस्था की देहली पर खड़े उस योगी के पास प्रचण्ड वैराग्य था। जब उन्होंने समाधि ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की तब उनकी बात को टालने की शक्ति उनके भाइयों में तथा वारकरी पन्थ के सन्तों में भी नहीं थी।"

कोई कहता, "परन्तु बाबा! हमको आपकी आवश्यकता है।"

विनोबा हँस पड़ते और मन-ही-मन कहते—मनुष्य नश्वर शरीर पर प्रेम करता है और चिरन्तन चेतन आत्मा पर प्रेम नहीं करता है। मृत्यु काव्य है, मृत्यु शिवमंगल है :

मृत्यु अनुपम, अगम्य और उत्कट है।
मृत्यु निराकार, सुन्दर है।
मृत्यु सहजता है, मृत्यु में सौन्दर्य है।

शान्त मन से विनोबा शैया पर लेट गये।

प्रत्यूष से पूर्व उनके मन में शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीकृष्ण साकार हुए। उन्होंने आवाज दी, "विन्या!"

हाथ जोड़कर विनोबा ने पूछा, "देव! कैसे आना हुआ?"

उन्होंने कहा, "तुम साधक आचार्य हो! और विज्ञानवादी भी हो। जीवन पर तुम्हारी श्रद्धा है और मृत्यु पर भी तुम्हारी अत्यन्त श्रद्धा है। तुमने विज्ञान और अध्यात्म दोनों को सँभाला है। सफल जीवन बिताया है। आज इस समय तुम्हारी कुछ माँगने की इच्छा नहीं है क्या?"

विनोबा बोले, "देव! अब क्या माँगूँ? अब रोज किसी की मृत्यु की खबर सुनता हूँ तो लगता है कि यह शुभ समाचार है। वह अपने घर चला गया। यह कहता हूँ तो

लोग आश्चर्य करते हैं और समझते हैं कि बाबा बुढ़ापे में पागल हो गये हैं। परन्तु यह साकार मोहमय विश्व कुछ समय के लिए हमको दिया गया है। हमारा वास्तविक घर निराकार आकाश में है—इस बात का ज्ञान ही लोगों को नहीं है।"

उन्होंने कहा, "नहीं है तो न सही! उनको उनके ढंग से जीने दो। अज्ञान में भी बड़ा आनन्द होता है। तुम्हारा कार्य समाप्त हो गया न? तो फिर प्रात:काल चलते हो मेरे साथ?"

विनोबा बोले, "प्रभो! एक ही याचना है। मुझको लेने आप दुबारा मत आना। मैं मृत्यु को देखना चाहता हूँ और मृत्यु के द्वार तक पैदल जाना चाहता हूँ।"

'तथास्तु' कहकर श्रीकृष्ण विनोबा के पास आये। श्रीकृष्ण के स्पृहणीय स्पर्श से विनोबा गद्‌गद हो गये। उन्होंने श्रीकृष्ण के चरणों पर सिर टेक दिया।

श्रीकृष्ण ने हँसकर कहा, "विन्या! साधक का स्थान मेरे हृदय में है।"

श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये और विनोबा की आँख खुल गयी। आश्रम की घण्टी बज रही थी। ब्राह्म समय में ब्रह्मस्वरूप दिखाई दे गया था। विनोबा अत्यधिक हर्षित थे।

दो दिन से शरीर में ज्वर था। पूरे शरीर में हड़कल थी। परन्तु उनका मन अत्यधिक प्रसन्न था। ईश्वर से उनकी केवल एक ही प्रार्थना थी—जीवन-पर्यन्त और मृत्यु के बाद सम्पूर्ण शरीर से श्री रामहरि का स्वर निकलने दे! रोम-रोम में श्रीरूप को बसने दो! रोम-रोम में श्री रामहरि का मन्त्र जाग्रत होने दो! बाबा को सब भूल जाएँ! और प्रभो! आपकी गीता को आचरण में लाएँ! जन-साधारण गीता माता का पाठ करे—बस मरणोपरान्त यही मेरी इच्छा है।

विनोबा बाहर आये। अक्तूबर का महीना समाप्त हो रहा था। अब भी घना अन्धकार चारों ओर था। परन्तु आश्रम जागकर कार्यरत हो गया था। ठण्ड की एक लहर उन तक आयी। ठण्ड से उनका कृश शरीर कँपकँपाने लगा। दौड़कर कोई आया। शायद जयदेव थे। कहा, "बाबा! दो दिन से आपको ज्वर है। ठण्ड में बाहर मत निकलिए।"

विनोबा अन्दर जाकर बिस्तर पर बैठ गये।

एक दिन विनोबा ने जयप्रकाश नारायण के देहान्त की खबर सुनी। वे अत्यन्त अधीर हो उठे। उन्होंने मन में कहा, 'मेरे समान काम करनेवाले बापू के साथ के लोग चटपट मर रहे हैं। तो फिर जीवित रहने का दण्ड मुझको क्यों?'

वे बार-बार कहते, "हे प्रभो! यह जर्जर जीवन अब नहीं सहा जाता!" परन्तु दैनिक व्यवहार में वे प्रसन्न दिखाई देते। वे भजन गाते और छोटे बच्चे की भाँति ताली बजाकर आनन्द प्रकट करते। लेखन-कार्य वे बहुत पहले छोड़ चुके थे। अब पढ़ना भी बन्द हो गया था। श्री रामहरि के अतिरिक्त वे अधिक कुछ कहते ही नहीं थे। भोजन अत्यल्प हो गया था। परन्तु उनके आनन्द में कोई कमी दिखाई नहीं दे रही थी। साथ

रहनेवालों के साथ वे विनोद वार्तालाप करते।

बचपन से ही व्रत-पालन करने का उनको अभ्यास था। मृत्यु का उत्सव स्वयं मनाने के लिए उन्होंने व्रत रखना प्रारम्भ कर दिया था।

मृत्युदेवता शिवशंकर! सहज-सादा—फिर भी कठोर कर्मयोगी। और सिद्धियाँ प्राप्त कर दान करनेवाला दाता भी! उसको प्राप्त करना इतना सरल नहीं था।

अब विनोबा का ध्यान केवल अगम्य-अद्भुत और अनाकलनीय प्रदेश की ओर लगा रहता था। जीवन का रहस्य विज्ञान ने खोज लिया था परन्तु मृत्यु का रहस्य विद्यमान था। मृत व्यक्ति जीवित होकर कभी कुछ नहीं कहता था और मृत्यु के बाद वह कभी वापस नहीं आता था। विनोबा उस गूढ़ प्रदेश का रहस्य जानने का प्रयत्न करते।

कभी वे मन में कहते, 'तेरह वर्षों तक चला हूँ। परन्तु अब पैर इतना नहीं चल पाएँगे। कानों ने असंख्य लोगों के कथन सुने हैं। इन हाथों ने कुदाल-फावड़ा लेकर खेत में काम किया है। इस मुख ने कितना बोला है, परन्तु अब रामहरि के अतिरिक्त कुछ नहीं बोलता है। ईश्वर कहता है—बहुत हो गया विन्या! अब महायात्रा की तैयारी कर!

आजकल विनोबा की नींद कम हो गयी थी। वे निरन्तर मृत्यु का चिन्तन करते रहते थे।

आज रात में उठकर उन्होंने कैलेण्डर देखा। अक्तूबर की इकत्तीस तारीख थी। नवम्बर महीना प्रारम्भ होने में केवल पन्द्रह मिनटें शेष थीं। पिछले महीने ही ग्यारह तारीख को उनका जन्मदिन मनाया गया था। तब 'जीवेत् शरदः शतम्' की कामना करनेवाले सैकड़ों पत्र आये थे।'

'अब बहुत हो गया!' विनोबा ने मन में कहा, 'अब जाने की तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिए।'

उस रात भी विनोबा अस्वस्थ थे। वे व्याकुल थे। अधीर थे।

'हे प्रभो! तुमसे मिलने को आ रहा हूँ। मेरे व्रताचरण के कुछ दिन रह गये हैं। उनको पूर्ण करके ही आना तुमको अच्छा लगेगा न? कभी विचार आता था कि अब क्या होगा व्रतपालन कर! परन्तु बाद में सोचा कि हो सकता है कि तुम मेरी अन्तिम परीक्षा ले रहे हो! सच है न! तो मैं अपना व्रताचरण पूर्ण कर लूँ न?'

और शायद उनके प्रश्न के उत्तर के रूप में ही आश्रम की प्रातःकाल की घण्टी बज उठी। विनोबा प्रसन्न मन से मुस्कराये।

'हे प्रभो! तुम्हारा आदेश मुझको स्वीकार है।'

वे बिस्तर पर उठकर बैठ गये और गाने लगे :

हे विश्वव्यापी प्रभो!
मेरे वाक्-यज्ञ में पधारो।
और प्रसन्न होकर मुझको दो
अपनी कृपा का प्रसाद!
दुष्टों की वक्रता का अन्त हो
सत्कर्मों में प्रीति बढ़े।
दुरितों के तिमिर का अन्त हो
प्राणियों में परस्पर प्रीति बढ़े!
विश्व में धर्म का सूर्य उदित हो!
प्राणी प्राप्त करें जो वांछित हो!

विनोबा की सुस्पष्ट-मधुर परन्तु क्षीण आवाज सुनकर आश्रमवासी आश्चर्यचकित होकर विनोबा की कोठरी के बाहर एकत्र हो गये थे। विनोबा अपनी धुन में गा रहे थे। विनोबा का प्रसन्न मुखमण्डल देखकर अनजाने सबके हाथ जुड़ गये।

विनोबा ने जब गाना बन्द किया तब उन सबकी ओर ध्यान गया। उन्होंने हँसकर सबको नमस्कार किया। उस समय जयदेव उनकी नाड़ी देख रहे थे। हृदय-गति अति उत्तम थी।

विनोबा मन-ही-मन हँसे। जयदेव ने कहा और वे बिस्तर पर लेट गये। उनका आत्मचिन्तन फिर प्रारम्भ हो गया।

॥ इत्यलम् ॥

परिशिष्ट

आचार्य विनोबा भावे : जीवन-पट

11 सितम्बर सन् 1895	— गागोदे (कुलाबा) में जन्म।
18 जून सन् 1900	— बालकोबा का जन्म।
सन् 1903	— आठ वर्ष की अवस्था में ज्ञानेश्वरी का अध्ययन।
सन् 1913	— मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण
सन् 1914	— विद्यार्थी-मण्डल की स्थापना।
25 मार्च सन् 1916	— ब्रह्म की जिज्ञासा से दो मित्रों के साथ गृहत्याग। गाँधीजी का काशी विश्वविद्यालय में भाषण। विनोबा का गाँधीजी से पत्रव्यवहार।
7 जून सन् 1916	— गाँधीजी के पत्रानुसार गुजरात के कोचरब आश्रम में प्रवेश।
सन् 1916-1917	— गाँधीजी से एक वर्ष की छुट्टी लेकर गीता पर प्रवचन करते हुए सम्पूर्ण महाराष्ट्र में भ्रमण।
6 मार्च सन् 1917	— लोकमान्य तिलक से प्रथम भेंट।
24 अक्तूबर सन् 1918	— माता रुक्मिणी बाई की मृत्यु।
8 अप्रैल सन् 1921	— जमनालाल बजाज के आग्रहानुसार वर्धा में सेवाश्रम की स्थापना।
जनवरी से अप्रैल सन् 1923	— 'महाराष्ट्र धर्म' मासिक में उपनिषदों पर लेखमाला।
13 अप्रैल सन् 1923	— भारत में प्रथम व्यापक झण्डा सत्याग्रह का संचालन और पहली बार चार महीनों का कारावास।
सन् 1924	— राष्ट्र की एकता के लिए महात्मा गाँधी ने 21

		दिन का उपवास किया। उसमें भाग लेने के लिए दिल्ली प्रस्थान।
सन् 1925	—	गाँधीजी के आदेशानुसार वैक्कम (केरल) में हरिजनों को मन्दिर में प्रवेश दिलाने का प्रयत्न किया। आते समय श्रीमती एनी बेसेण्ट की थियोसॉफिकल सोसाइटी में भाषण।
जून सन् 1926	—	राष्ट्रीय विद्या मन्दिर की स्थापना।
19 जुलाई सन् 1928	—	लक्ष्मीनारायण मन्दिर हरिजनों के लिए मुक्त।
7 दिसम्बर 28 से 23 मार्च 31	—	सायं प्रार्थना के बाद मौन।
सन् 1931-32	—	वर्धा जिले के मन्दिर और कुएँ हरिजनों के लिए खुले करने को प्रचार।
21 फरवरी-19 जून 1932	—	धुलिया कारागार में प्रत्येक रविवार को गीता-प्रवचन। साने गुरुजी द्वारा उसका लेखन।
7 अगस्त 1932	—	ग्रामाधारित विकेन्द्रित आश्रम केन्द्र योजना, ग्राम रचना और प्रचार कार्य।
25 दिसम्बर 1932	—	हरिजन बस्ती में निवास। एकादश व्रतमाला की रचना।
26 दिसम्बर 1933	—	गाँधीजी का स्थायी निवास के लिए वर्धा में आगमन।
18 मई 1936	—	वर्धा में महारोगी सेवामण्डल की स्थापना।
17 अक्तूबर 40 से दिसम्बर 41	—	व्यक्तिगत प्रथम सत्याग्रही के रूप में गाँधीजी ने चुना।
सन् 1942	—	'चले जाओ' आन्दोलन में कैद।
सन् 1942-1945	—	नागपुर-शिवनी कारागार में लेखन।
1947	—	धुलिया में पिता का देहान्त।
30 जनवरी सन् 1948	—	गाँधीजी की हत्या।
12 फरवरी सन् 1948	—	पवनार की धाम नदी में गाँधीजी की अस्थियों का विसर्जन।
15 मार्च सन् 1948	—	सर्वसेवा संघ की स्थापना। विस्थापितों के पुनर्वास के लिए दिल्ली गमन।
30 जनवरी सन् 1949	—	गाँधीजी की प्रथम पुण्यतिथि पर राजघाट पर भाषण।
7 मार्च सन् 1951	—	सर्वोदय यात्रा का शुभारम्भ—तेलंगाना में शिवरामपल्ली की ओर से।

18 अप्रैल सन् 1951 — पोचमपल्ली (आन्ध्र) में श्री रामचन्द्र रेड्डी ने प्रथम भूदान किया।

19 अप्रैल सन् 1951 — भूदान-यात्रा प्रारम्भ। 12,000 एकड़ भूदान प्राप्ति।

12 सितम्बर 1951 — पण्डित नेहरू के निमन्त्रण पर पवनार से दिल्ली पदयात्रा।

2 अक्तूबर 1951 — दिल्ली की यात्रा में 18,000 एकड़ भूमि प्राप्त हुई।

अप्रैल 1952 तक — 1 लाख एकड़ भूमि भूदान में मिली।

23 मई 1952 — उत्तर प्रदेश के मंगरोठ में प्रथम ग्रामदान घोषित।

12 सितम्बर 1952 — बिहार में अब तक 23 लाख एकड़ भूदान-प्राप्ति।

23 अक्तूबर 1952 — पटना में सम्पत्तिदान की घोषणा।

18 अप्रैल 1954 — बोध गया में समन्वय आश्रम की स्थापना।

सन् 1955 — बंगाल में प्रेमयात्रा। उड़ीसा में भू-क्रान्ति। साम्यसूत्र की रचना।

15 मार्च 1957 — कन्याकुमारी में ग्रामस्वराज्य की प्रतिज्ञा। केरल में कोलिक्कोड में शान्ति-सेना की घोषणा-स्थापना।

15 जनवरी 1959 — राजस्थान में भूदान-यात्रा। अजमेर में सर्वोदय-सम्मेलन।

22 मई 1959 — कश्मीर में प्रवेश।

10 जून 1959 — कश्मीर के कारागार में शेख अब्दुल्ला से भेंट।

11 जुलाई 1959 — पीरपंजाल की तेरह हजार पाँच सौ फीट ऊँची पर्वत शृंखला लाँघ कर प्रवेश। गुलमर्ग-कश्मीर घाटी में प्रवेश। श्रीनगर में प्रवेश।

12 मई 1960 — भिण्ड-मुरैना जिले में प्रवेश। कनेरा ग्राम में डाकुओं का आत्मसमर्पण। इन्दौर में अश्लील पोस्टरों के विरुद्ध आन्दोलन।

25 दिसम्बर 60 से 9 फरवरी 61 तक — बिहार यात्रा।

25 दिसम्बर 1962 — नवग्राम में पण्डित नेहरू से अन्तिम भेंट।

20 अप्रैल 1964 — 13 वर्ष 3 महीने बाद ब्रह्मविद्या मन्दिर में आगमन।